।। श्रीः ।।
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
592

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

(तृतीय भाग : स्वर्ग एवं ब्रह्म खण्ड)

सम्पादक एवं टीकाकार
आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्य)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

|| Shri ||
Chaukhamba Surbharti Prakashan
592

Śrīmanmaharṣikṛṣṇadvaipāyanavyāsaviracitaṁ

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM

Hindi Commentary with Śloka Index

(Part III : Svarga & Brahma Khaṇḍa)

Edited with Hindi Commentary by :
Acharya Shivprasad Dvivedi
(Shridharacharya)

Chaukhamba Surbharti Prakashan
Varanasi

विषयानुक्रम

३. स्वर्गखण्ड

४. ब्रह्मखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

ओम् श्रीपरमात्मने नमः
ओम् नमो भगवते वासुदेवाय
ओम् श्रियै नमः
भगवते कृष्णद्वैपायनाय नमः

श्रीपद्ममहापुराण का तृतीय

स्वर्गखण्ड

प्रथम अध्याय

नमामि गोविन्दपदारविन्दं सदेन्दिरावन्दितमुत्तमाढ्यम् ।
जगज्जनानां हृदि सन्निविष्टं महाजनैकायनमुत्तमोत्तमम् ।।१।।

एकदा मुनयः सर्वे ज्वलज्ज्वलनसन्निभाः। हिमवद्वासिनो वेदवेदाङ्गपरिनिष्ठिताः ।।२।।
त्रिकालज्ञा महात्मानो नानापुण्याश्रमाश्रयाः। महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः।।३।।
येऽर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः । श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ।।४।।
धर्म्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः। जम्बूमार्गरता ये च ये च सत्यनिवासिनः ।।५।।
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽमलाः ।
नैमिषं समुपायाताः शौनकं द्रष्टुमुत्सुकाः ।।६।।
तं पूजयित्वा विधिवत्तेन ते च सुपूजिताः। आसनेषु विचित्रेषु बृस्यादिषु यथाक्रमम्।।७।।

स्वर्गखण्ड के विषय में शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

सदा लक्ष्मीजी के द्वारा वन्दित, उत्तमोत्तम, सांसारिक जीवों के हृदय में प्रविष्ट तथा महापुरुषों के लिए एकमात्र आश्रय; भगवान् गोविन्द के चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ ।।१।। एक बार जलती हुयी अग्नि के ज्वाला के समान, देदीप्यमान, सभी मुनिजन, हिमालय पर रहने वाले, वेद-वेदाङ्ग पारंगत मुनिगण ।।२।। अनेक पवित्र आश्रमों में रहने वाले, त्रिकालज्ञ माहात्मागण, महेन्द्र पर्वत पर रहने वाले तथा विन्ध्य पर्वत पर रहने वाले मुनिगण ।।३।। अर्बुदारण्य, पुष्करारण्य तथा कुरुक्षेत्र में निवास करने वाले, श्रीशैल पर रहने वाले मुनिगण ।।४।। धर्मारण्य मे रहने वाले, दण्डकारण्य में रहने वाले, जम्बूमार्ग में रहने वाले और सत्यमार्ग में रहने वाले ।।५।। ये सभी मुनिगण तथा इन सबों के अतिरिक्त दूसरे भी बहुत से शिष्यों के साथ विद्यमान ऋषिगण नैमिषारण्य क्षेत्र में शौनक महर्षि से मिलने के लिए आये।।६।। उन महर्षियों ने शौनक महर्षि की विधिवत् पूजा की और शौनक महर्षि ने भी उन लोगों की पूजा की। उसके बाद शौनक महर्षि से प्रदत्त वृसी (मृगचर्म) आदि पवित्र आसनों पर वे सभी महर्षि बैठ गये और

शौनकेन प्रदत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः । कृष्णाश्रिताः कथाः पुण्याः परस्परमथाब्रुवन् ॥८॥
कथान्ते ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। आजगाम महातेजाः सूतस्तत्र महाद्युतिः॥९॥
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः । तान्प्रणम्य यथान्यायं स तैश्चैवाऽभिपूजितः॥१०॥
उपविष्टं यथायोग्यं शौनकाद्या महर्षयः । व्यासशिष्यं सुखासीनं सूतं वै रोमहर्षणम् ॥११॥
तं पप्रच्छुर्महाभागाः शौनकाद्यास्तपोधनाः ॥१२॥

ऋषय ऊचुः

पौराणिक ! महाबुद्धे ! रोमहर्षण ! सुव्रत ! ।
त्वत्तः श्रुता महापुण्याः पौराणिक्यःकथाःपुरा ॥१३॥
साम्प्रतं च प्रवृत्ताः स्म कथायां सक्षणा हरेः ।
स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ॥१४॥
पुनः पुराणमाचक्ष्व हरिवार्तासमन्वितम्। हरेरन्या कथा सूत श्मशानसदृशी स्मृता॥१५॥
हरिस्तीर्थस्वरूपेण स्वयं तिष्ठति तच्छ्रुतम्। तीर्थानां पुण्यदातॄणां नामानि किलकीर्तय ॥१६॥
कुत एतत्समुत्पन्नं केन वा परिपाल्यते । कस्मिन्विलयमभ्येति जगदेतच्चराचरम्॥१७॥
क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पूज्याः शिलोच्चयाः ।
नद्यश्च काः पराः पुण्या नृणां पापहराःशुभाः ॥१८॥
एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम् ॥१९॥

सूत उवाच

साधु साधु महाभागाः साधु पृष्टं तपोधनाः।
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम् ॥२०॥

भगवान् विष्णु की पवित्र कथाएँ आपस में कहने लगे ॥७-८॥ भक्तिभाव से भरे मुनियों उनकी की कथा समाप्त होने पर वहाँ पर महातेजस्वी कान्तिसम्पन्न सूतजी आये ॥९॥ वे व्यासजी के शिष्य और पुराणों के ज्ञाता थे । उनका नाम रोमहर्षण सूत था । उन्होंने उन ऋषियों को प्रणाम किया उसके बाद वे भी उन ऋषियों से पूजित हुए ॥१०॥ उनके बैठ जाने पर शौनक आदि महर्षियों ने सुखपूर्वक बैठे हुए व्यासजी के शिष्य रोमहर्षण सूत से ॥११॥ शौनक आदि महर्षियों ने पूछा **ऋषियों ने कहा**— हे सुव्रत! महाबुद्धिमान!! पौराणिक रोमहर्षण !॥१२॥ हमलोग पहले आपसे पौराणिक कथाओं को सुन चुके हैं । इस समय हमलोग श्रीहरि की कथा का ही चिन्तन कर रहे हैं ॥१३॥ मनुष्यों के लिए सबसे बड़ा धर्म वही है; जिससे कि श्रीहरि में भक्ति उत्पन्न हो । आप पुनः श्रीहरि की कथा से युक्त पुराणों की कथा को सुनायें ॥१४॥ हे सूत ! श्रीहरि की कथा से भिन्न कथा तो श्मशान के सदृश अपवित्र होती हैं। हमलोग सुन चुके हैं कि श्रीहरि स्वयं तीर्थ स्वरूप हैं ॥१५॥ आप पुण्यप्रदान करने वाले तीर्थों के नाम को बतलायें। यह जगत् किससे उत्पन्न होता है । उत्पन्न हुए जगत् का पालन कौन करता है ? और अन्त में यह चराचरात्मक जगत् किसमें लीन हो जाता है ? कौन-कौन से पवित्र क्षेत्र हैं ? कौन से पर्वत पूज्य हैं?॥१७॥ कौन सी नदियाँ अत्यन्त पवित्र हैं जो मनुष्यों के पापों का विनाश करती हैं ॥१८॥ **सूतजी ने कहा**— हे तपोधनों ! अपलोगों ने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं पद्मनामक पुराण को प्रणाम करके इन सारी

पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं, विद्याधारं विपुलमतिदं वेदवेदान्तवेद्यम् ।
शश्वच्छान्तं स्वमतिविषयं शुद्धतेजोविशालं, वेदव्यासं विततयशसं सर्वदाऽहं नमामि ॥२१॥
नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे। यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि नारायणकथामिमाम्॥२२॥
प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञितम्। सहस्रं पञ्चपञ्चाशत्सप्तखण्डैः समन्वितम् ॥२३॥
तत्राऽऽदौ सृष्टिखण्डं स्याद्भूमिखण्डं ततः परम् ।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम् ॥२४॥
पातालं पञ्चमं खण्डं षष्ठमुत्तरमेव च। क्रियाखण्डं सप्तमं स्यादित्येवं खण्डसप्तकम्॥२५॥
एतदेव महापद्ममद्भुतं यन्मयं जगत्। तद्वृत्तान्ताश्रयं तस्मात्पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥२६॥
एतत्पुराणममलं विष्णुमाहात्म्यमुत्तमम्। देवदेवो हरिर्यद्वै ब्रह्मणे प्रोक्तवान्पुरा॥२७॥
ब्रह्मा तन्नारदायाऽऽह नारदोऽस्मद्गुरोः पुरः ।
व्यासः सर्वपुराणानि सेतिहासानि संहिताः ॥२८॥
अध्यापयामास मुहुर्मामतिप्रियमात्मनः। तदहं सम्प्रवक्ष्यामि पुराणमतिदुर्लभम् ॥२९॥
यच्छ्रुत्वा ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नरः। सर्वतीर्थाभिषेकं च लभते शृणुते हि यः ॥३०॥
श्रद्धया परया भक्त्या श्रुतमात्रेण मुक्तिदः ।
अश्रद्धयाऽपि शृणुते लभते पुण्य सञ्चयम् ॥३१॥

बातों को कहता हूँ ॥१९॥ व्यासजी की स्तुति करते हुए सूतजी ने कहा— महर्षि पराशर के पुत्र, परमपुरुष, सम्पूर्ण वेदों तथा विद्याओं के एक मात्र उद्‌गम स्थान, सभी विद्याओं के आधार स्वरूप, विपुल मात्रा में ज्ञान प्रदान करने वाले, तथा वेदों एवं वेदान्तों के द्वारा जानने योग्य सम्पूर्ण ज्ञानों को विपुल मात्रा में प्रदान करने वाले सदैव शान्त रहने वाले, हमारी बुद्धि के विषय बने हुए जिनका विशाल, शुद्ध तेजोमय, यश फैला हुआ है; उन महर्षि वेदव्यास को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ ॥२०-२१॥ निस्सीम तेज: सम्पन्न उन भगवान् व्यासजी को नमस्कार है जिनकी कृपा से ही मैं भगवान् नारायण की कथा का वर्णन कर रहा हूँ ॥२२॥ मैं अत्यन्त पवित्र पद्मपुराण की कथा कह रहा हूँ । इस पुराण में पचपन हजार श्लोक हैं और इसके सात खण्ड हैं ॥२३॥ इसका पहला खण्ड सृष्टिखण्ड है, दूसरा भूमिखण्ड है । तीसरा स्वर्गखण्ड उसके बाद ब्रह्मखण्ड है । इसके बाद पातालखण्ड है । छठा खण्ड उत्तरखण्ड है । इसका सातवाँ क्रियासार खण्ड है । यही अद्भूत महापद्म है और यह जगत् पद्ममय है ॥२४॥ इसमें उसका वृत्तान्त वर्णित होने के कारण इस पुराण का नाम पद्मपुराण है ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं । इस निर्मल पुराण में भगवान् विष्णु का उत्तम माहात्म्य वर्णित है ॥२५॥ इस पुराण को सर्वप्रथम श्रीहरि ने ब्रह्माजी को सुनाया । ब्रह्माजी ने नारदजी को सुनाया । नारदजी ने हमारे गुरु व्यासजी को सुनाया । व्यासजी ने सभी पुराणों, इतिहासों तथा संहिताओं को अपने अत्यन्त प्रिय शिष्य मुझको बार-बार पढ़ाया ॥२६-२७॥ मैं उसी अत्यन्त दुर्लभ पुराण को आप लोगों के समक्ष कहता हूँ । उसका श्रवण करके मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है ॥२८॥ जो इसका श्रवण करता है उसको सभी तीर्थों में स्थान करने का फल प्राप्त होता है । अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक इसका श्रवण करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥२९-३०॥ जो मनुष्य, बिना श्रद्धा के भी इसका श्रवण करता है वह पुण्य समूह को प्राप्त करता है । इसलिए

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पाद्मं शृणुत मन्मुखात् ।
तत्रादिखण्डं वक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ।
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सशिष्यास्त्वत्र ये स्थिताः ॥३२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे सूतम्प्रति शौनकादिमहर्षिणां स्वर्गखण्ड विषयकप्रश्नकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

सूत उवाच

आदिसर्गमहं तावत्कथयामि द्विजोत्तमाः । ज्ञायते येन भगवान्परमात्मा सनातनः ॥१॥
जगतः प्रलयादूर्ध्वं नासीत्किञ्चिद्द्विजोत्तमाः ।
ब्रह्मसंज्ञामभूदेकं ज्योतिर्वै सर्वकारकम् ॥२॥
नित्यं निरञ्जनं शान्तं निर्मलं नित्यनिर्मलम् ।
आनन्दसागरं स्वच्छं यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥३॥
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम् । अविनाशि सदास्वच्छमच्युतं व्यापकं महत् ॥४॥
सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वा तज्ज्ञानरूपकम् ।
आत्मलीनं विकारं च तत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥५॥

हर प्रकार के प्रयासों के द्वारा पद्मपुराण का श्रवण करना चाहिए ॥३१॥ उसके आदि खण्ड को मैं कहता हूँ, यह पापों का विनाश करने वाला है । यहाँ पर अपने शिष्यों के साथ विद्यमान मुनिजन आपलोग इसे सुनें ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

अव्याकृत ब्रह्म से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन

सूतजी ने कहा— हे मुनीश्वरों ! मैं आदि सर्ग का वर्णन कर रहा हूँ । उसके द्वारा सनातन परमात्मा श्रीभगवान् का ज्ञान होता है ॥१॥ सृष्ट वस्तुओं के प्रलय हो जाने के बाद कुछ भी नहीं था । उस समय सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली ब्रह्म ज्योति हुयी ॥२॥ उसी नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्मल, नित्यनिर्मल, आनन्द सागर तथा स्वच्छ, ब्रह्म को मुमुक्षु जीव प्राप्त करना चाहते हैं ॥३॥ वे परंब्रह्म ही ज्ञान स्वरूप होने के कारण सर्वज्ञ हैं । वे अनन्त, अजन्मा, निर्विकार, विनाश रहित, सदा स्वच्छ रहने वाले (निर्दोष) अच्युत, सर्वत्र व्यापक और महान् हैं ॥४॥ सृष्टि काल के आ जाने पर ज्ञान स्वरूप होने के कारण वे उसे जानकर अपने में ही लीन समस्त विकारों की सृष्टि करना प्रारम्भ किए ॥५॥

तस्मात्प्रधानमुद्भूतं ततश्चाऽपि महानभूत् । सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान्॥६॥
प्रधानेनावृतो ह्येतत् त्वचा बीजमिवावृतम् । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः॥७॥
त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत । यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः॥८॥
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः । ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ॥९॥

शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः सममावृणोत् ।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥१०॥

बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः । आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥११॥
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह । ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तूद्रपगुणमुच्यते ॥१२॥
स्पर्शमात्रस्तु वै वायूरूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह॥१३॥

सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसमात्राणि तानि तु ।
रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ॥१४॥
विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ।
तस्माज्जाता मही चेयं सर्वभूतगुणाऽधिका ॥१५॥
स सङ्घातो यतस्तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रात्तेन तन्मात्रता स्मृता॥१६॥
तन्मात्राण्यविशेषाणि विशेषाः क्रमशोऽपराः ।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् ॥१७॥

उससे प्रधान (प्रकृति) की उत्पत्ति हुयी, उससे महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुयी । वह महान् तीन प्रकार का हो गया, सात्त्विक, राजस और तामस ॥६॥ यह महान् प्रधान से उसी तरह से आवृत हुआ जिस तरह छिलके से बीज आवृत (ढंका हुआ) रहता है । उस महत् तत्त्व से वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस्) और भूतादि (तामस) ये तीन प्रकार के अहङ्कार उत्पन्न हुए । जिस तरह प्रधान से महान् आवृत हुआ, उसी तरह से महान् से अहङ्कार आवृत हुआ ॥८॥ भूतादि अहङ्कार विकृत होकर सर्वप्रथम शब्द तन्मात्रा को उत्पन्न किया । उस शब्द तन्मात्रा से शब्द गुण वाले आकाश की उत्पत्ति हुयी ॥९॥ शब्द तन्मात्रा तथा आकाश को भूतादि अहङ्कार ने आवृत किया । उस शब्द तन्मात्रा से स्पर्श तन्मात्रा की सृष्टि हुयी॥१०॥ उससे बलवान् वायु की उत्पत्ति हुयी, वायु का गुण स्पर्श हुआ । आकाश तथा शब्द तन्मात्रा ने स्पर्श तन्मात्रा को आवृत किया ॥११॥ उसके बाद विकृत होकर वायु ने रूप तन्मात्रा की सृष्टि की । उस वायु से ज्योति (तेज) की उत्पत्ति हुयी और उसका गुण रूप हुआ ॥१२॥ स्पर्श तन्मात्रा ने वायु तथा रूप तन्मात्रा को आवृत किया तेज ने भी विकृत होकर रस तन्मात्रा की सृष्टि की । उससे जल की सृष्टि हुयी और यह रस स्वरूप हुआ । रस तन्मात्रा तथा जल को रूप तन्मात्रा ने आवृत किया ॥१३-१४॥ विकृत होकर जल ने गन्ध तन्मात्रा की सृष्टि की, उससे पृथिवी उत्पन्न हुयी । उसमें सभी भूतों के गुण हो गये ॥१५॥ वह चूकि संघात रूप है इसलिए उसका गुण गन्ध है । उन तन्मात्रओं में केवल उनके विशेष भूत ही पदार्थ थे अतएव वे तन्मात्रा कहलाते हैं ॥१६॥ ये तन्मात्राएँ विशेष रहित होती हैं, विशेष इनसे क्रमशः अधिक होते हैं । भूतों का यह तन्मात्र सर्ग तासहाहङ्कार से होता

कीर्तितस्तुसमासेन मुनिवर्यास्तपोधनाः। तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश॥१८॥
एकादशं मनश्चात्र कीर्तितं तत्त्वचिन्तकैः। ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चाऽत्र ञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥१९॥
तानि वक्ष्यामि तेषां च कर्माणि कुलपावनाः ।
श्रवणं त्वक्चक्षुर्जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ॥२०॥
शब्दादिज्ञानसिद्ध्यर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै। पायूपस्थं हस्तपादौ कीर्तिता वाक्चपञ्चमी ॥२१॥
विसर्गानन्दनादानगत्युक्तिकर्म तत्स्मृतम्। आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा॥२२॥
शब्दादिभिर्गुणैर्विप्राः संयुक्ता उत्तरोत्तरैः। नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं बिना॥२३॥
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागत्य कृत्स्नशः। समेत्यान्योऽन्य संयोगपरस्परमथाश्रयात् ॥२४॥
एकसङ्घास्सलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः। पुरुषाधितिष्ठतत्वाच्च प्रधानाऽनुग्रहेण च ॥२५॥
महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते। तत्क्रमेण विवृद्धं तु जलबुद्बुदवत्सदा॥२६॥
भूतेभ्योऽण्डं महाप्राज्ञा वृद्धं तदुदकेशयम्। प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥२७॥
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः ।
ब्रह्मरूपं समास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः ॥२८॥
स्वेदजाण्डमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः। गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याभून्महदात्मनः॥२९॥

है ॥१७-१८॥ हे तपोधन ! मुनियों इस तन्मात्र सर्ग का मैंने संक्षेप में वर्णन किया । ये इन्द्रियाँ तैजस (राजस) अहङ्कार जन्य हैं, और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता वैकारिक सात्त्विकाहंकार जन्य कहे गये हैं। इनमें ग्यारहवाँ इन्द्रिय मन है । यह तत्त्वों का चिन्तन करने वाले पुरुषों ने कहा है । ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं, कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच ही हैं ॥१९॥ हे अपने वंशों को पवित्र बनाने वाले महर्षियों ! मैं उन इन्द्रियों और उन इन्द्रियों के कार्यों को बतलाता हूँ । श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, तथा घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं ॥२०॥ ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द आदि (स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) का ग्रहण करती हैं । ये ही इन इन्द्रियों को विषय हैं । पायु, उपस्थ (जननेन्द्रिय) पाणि, पाद तथा वाक् ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥२१॥ विसर्ग (मलत्याग) आनन्द विशेष, ग्रहण, गति तथा वागुच्चारण ये कर्मेन्द्रियों के क्रमशः कार्य हैं । हे विप्रों ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये (पञ्च) महाभूत हैं ॥२२॥ इनमें उत्तरोत्तर भूतों के गुण पर्वू-पूर्व भूतों के साथ संयुक्त होते हैं । अर्थात् आकाश में केवल शब्द नामक गुण रहता है, वायु में शब्द और स्पर्श ये दो गुण होते हैं । तेज में तीन गुण होते है शब्द, स्पर्श और रूप । जल में चार गुण होते हैं— शब्द, स्पर्श, रूप और रस । पृथिवी में पाँच गुण होते हैं— शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध अनेक प्रकार की शक्ति शक्ति वाले ये महाभूत संघात के बिना अलग-अलग रहकर ॥२३॥ प्रजाओं की सृष्टि नहीं कर सके, क्योंकि वे एक दूसरे से मिले नहीं थे । उसके बाद एक दूसरे का संयोग प्राप्त करके, एक दूसरे का आश्रयण करने के कारण ॥२४॥ एक संघ तथा लक्ष्य से युक्त होकर प्रधान (प्रकृति) का अनुग्रह प्राप्त करके तथा पुरुष के द्वारा अधिष्ठित होकर, महत् तत्त्व से लेकर विशेष महाभूत पर्यन्त सभी मिलकर, ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करते हैं । वह (ब्रह्माण्ड) जल में उठने वाले बुदबुद (बुलबुले) के समान क्रमशः सदा बढ़ता रहा ॥२६॥ हे महाप्राज्ञ पुरुषों ! वह जल में पड़ा हुआ (एकार्णव के जल में पड़ा हुआ) ब्रह्माण्ड बढ गया । वह ब्रह्म स्वरूप भगवान् विष्णु को सर्वोत्तम प्राकृत स्थान

साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसङ्ग्रहः । तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३०॥
अनादिनिधनस्यैव विष्णोर्नाभेः समुत्थितम् । यत्पद्मं तद्धैममण्डमभूच्छ्रीकेशवेच्छया॥३१॥
रजोगुणधरो देवः स्वयमेव हरिः परः । ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्स्त्रष्टुं प्रवर्तते ॥३२॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना। नारसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत् ॥३३॥
स ब्रह्मरूपं विसृजन्महात्मा जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन् ।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति बभूव रुद्रो जगदेतदत्तुम् ॥३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे अव्याकृतब्रह्मणः पञ्चभूतादि ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

ऋषयऊचुः

नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सर्वशः । तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिताश्रिताः ॥१॥

है ॥२७॥ उसमें अव्यक्त स्वरूप भगवान् विष्णु ब्रह्मा का रूप धानण करके स्थित हो गये ॥२८॥ उन महान् आत्मा के स्वेद से ब्रह्माण्ड हुआ । पर्वत ही उनके जरायु हुए । सभी समुद्र उनके गर्भोदक हुए॥२९॥ पर्वत, द्वीप, समुद्र, तेज इन समस्त लोकों का वह (ब्रह्माण्ड) संग्रह स्वरूप है । उस ब्रह्माण्ड में देवता, असुर और मनुष्य स्थित हैं ॥३०॥ आदि तथा अन्त से रहित भगवान् विष्णु की नाभि से जो कमल उत्पन्न हुआ वही भगवान् केशव की इच्छा से सुवर्ण के समान ब्रह्माण्ड बन गया ॥३१॥ स्वयम् परमात्मा श्रीहरि ही रजोगुण को अपनाकर ब्रह्मा का रूप धारण करके, जगत् की सृष्टि करने में प्रवृत्त होते हैं॥३२॥ वे प्रत्येक युग में सृष्टि किए गये जगत् की रक्षा तब तक करते हैं जब तक कि एक कल्प का समय पूरा नहीं हो जाता है । उसके बाद वे नरसिंह तथा रुद्र आदि (यम, काल, शत्रु आदि) का रूप धारण करके जगत् का संहार करते हैं ॥३३॥ वे भगवान् विष्णु जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्माजी का रूप धारण करते हैं, वे जगत् की रक्षा करने की इच्छा से श्रीराम आदि विभव रूपों को धारण करते हैं, वे ही प्रलय काल की बेला आने पर इस जगत् का संहार करने के लिए रुद्र रूप को धारण कर लेते हैं ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

द्वीपों का विभाग, षड्रत्न पर्वत का वर्णन, सुमेरु वर्णन, तथा द्वीप आदि का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सत्तम सूतजी ! आप सभी नदियों, पर्वतो तथा पृथिवी पर विद्यमान सभी जनपदों के नामों को पूर्णरूप से बतलायें । हे प्रमाणज्ञ ! आप सम्पूर्ण पृथिवी के प्रमाण को बतलायें।

प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्याः किल सर्वतः ।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सत्तम ॥२॥

सूत उवाच

पञ्चेमानि महाप्राज्ञ महाभूतानि सङ्ग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥३॥
भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च। गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥४॥
शब्दः स्पर्शश्चरूपंच रसो गन्धश्च पञ्चमः। भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥५॥
चत्वारोऽप्सु गुणा विप्रा गन्धस्तत्र न विद्यते ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ॥६॥
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव च ।
एते पञ्च गुणा विप्रा महाभूतेषु पञ्चसु ॥७॥
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः। अन्योन्यं नातिवर्तन्ते साम्यं भवति वै तदा ॥८॥
यदा तु विषमीभावमाविशान्ति परस्परम्। तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा॥९॥
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः। सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥१०॥
यत्र यत्र हि दृश्यन्ते धावन्ति पाञ्चभौतिकाः ।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥११॥

आप सम्पूर्ण वनों को भी बतलायें ॥२॥ **सूतजी ने कहा**— हे महाप्राज्ञ ! संक्षेप में पाँचों महाभूत संसार के सभी वस्तु रूप हैं, इस तरह से मनीषियों ने कहा है ॥३॥ पृथिवी, जल, तेज वायु और आकाश ये सभी क्रमशः उत्तरोत्तर भूतों के गुण से युक्त हैं । इन पाँचों में पृथिवी प्रधान है ॥४॥ तत्त्वज्ञ ऋषियों ने बतलाया है कि पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँचो गुण विद्यमान हैं ॥५॥ हे विप्रों ! जल में चार ही गुण हैं, उसमें गन्ध नामक गुण नहीं है । तेज के तीन ही गुण हैं, शब्द स्पर्श और रूप ॥६॥ वायु में दो गुण हैं शब्द तथा स्पर्श और आकाश का गुण केवल शब्द है । हे व्रिपों ! ये पाँचों गुण पञ्च महाभूतों के हैं ॥७॥ जिन लोकों में भूत विद्यमान हैं, उन सभी लोकों में ये गुण पाये जाते हैं । ये परस्पर में एक दूसरे का अतिक्रमण उस स्थिति में नहीं करते हैं, जबकि इनमें साम्य भाव बना रहता है ॥८॥ जब इन पञ्चमहाभूतों में वैषम्यावस्था होती है तो वे एक दूसरे में प्रवेश कर जाते हैं । उसी अवस्था में देहधारी जीव शरीर बढ़ते हैं ॥९॥ ये प्रलयकाल के आने पर क्रमशः विनष्ट होते हैं और सृष्टिकाल में क्रमशः उत्पन्न भी होते हैं । इन (अर्थात् प्रलय काल आने पर पहले पृथिवी विनष्ट होती है, तब जल, तब तेज उसके बाद वायु और सबके अन्त में आकाश विनष्ट होता है । उसी तरह सृष्टि काल के आने पर पहले आकाश उत्पन्न होता है, फिर वायु उत्पन्न होती है, उसके बाद तेज, उसके बाद जल और सबके अन्त में पृथिवी उत्पन्न होती है ।) ये पाञ्चों भूत निस्सीम हैं, यह उन सबों का ऐश्वर रूप है ॥१०॥ जहाँ कहीं भी पाँचभौतिक पदार्थ दिखायी देते हैं, वहाँ सर्वत्र ये पाँचों महाभूत रहते हैं । इन महाभूतों के प्रमाण को मनुष्य तर्क के ही आधार पर बतलाते हैं ॥११॥ जो पदार्थ अचिन्त्य हैं उनकी सिद्धि तर्क के द्वारा नहीं करनी चाहिए । हे मुनिवर्यो!

अचिन्त्याः खलु ये भावास्तान्न तर्केण साधयेत् ।
सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु मुनिपुङ्गवाः ॥१२॥
परिमण्डलो महाभागा द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ।
नदीजलपरिच्छिन्नः पर्वतैश्चाब्धिसन्निभैः ॥१३॥
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा । वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नो धनधान्यवान् ॥१४॥
लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारितः । यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ॥१५॥
एवं सुदर्शनो द्वीपो दृश्यते चक्रमण्डलः । द्विरंशे पिप्पलस्तस्य द्विरंशे च शशो महान्॥१६॥
सर्वौषधीः समादाय सर्वतः परिवारितः । आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उच्यते॥१७॥

ऋषयऊचुः

उक्तो यस्य च संक्षेपो बुद्धिमन्विधिवत्त्वया ।
तत्त्वज्ञश्चासि सर्वस्य विस्तरं सूत ! नो वद ॥१८॥
यावान्भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे ।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ॥१९॥
एवं तैः किल पृष्टः स सूतो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥२०॥

सूत उवाच

प्रागायता महाप्राज्ञाः षडेते रत्नपर्वताः । अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ॥२१॥
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः । नीलश्च वैडूर्यमयः श्वेतश्च शशिसन्निभः ॥२२॥
सर्वधातुपिनद्धश्च शृङ्गवान्नामपर्वतः । एते वै पर्वता विप्राः सिद्धचारणसेविताः ॥२३॥

मैं आपलोगों को सुदर्शन द्वीप को बतलाता हूँ ॥१२॥ हे महाभागों ! यह द्वीप परिमण्डल रूप है और चक्र के ऊपर स्थित है । वह सागर के समान नदियों के जलों तथा पर्वतों, अनेक प्रकार के आकार वाले नगरों, मनोहर जनपदों, पुष्पों तथा फलों से युक्त वृक्षों से सम्पन्न तथा धन-धान्य से समृद्ध हैं ॥१३-१४॥ वह द्वीप चारों ओर से क्षारसागर से घिरा हुआ है । जैसे कोई मनुष्य अपना मुख दर्पण में देखता है, उसीतरह चक्र मण्डल रूपी सुदर्शन द्वीप दिखता है । उसके दो अंशों में पिप्पल और दो अंशों में महान् शश है ॥१६॥ वह सर्वोषधियों का ग्रहण करके उन सबों से घिरा हुआ है । उससे भिन्न अवशिष्ट वस्तु को जल समझना चाहिए । यही उसका संक्षेप में वर्णन है ॥१७॥ **ऋषियों ने कहा**— हे बुद्धिसम्पन्न ! सूतजी आपने जिनका संक्षेप में वर्णन किया है, आप उन सबों का विस्तार से वर्णन करें । आप तो तत्त्वज्ञ हैं ॥१८॥ शश के ऊपर जितना भूमि का अवकाश दिखता है उसका आप प्रमाण बतलायें, उसके बाद आप पिप्पल का वर्णन करें ॥१९॥ ऋषियों के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर सूतजी ने ऋषियों से कहा **सूतजी ने कहा**— हे महाप्राज्ञों आगे की ओर फैले हुए ये छह रत्नपर्वत हैं ॥२०॥ उनके दोनों ओर गहरे पूर्व एवं पश्चिम समुद्र है । हिमवान्, हिमकूट, पर्वतश्रेष्ठ निषध ॥२१॥ वैडूर्यमणिमय नील पर्वत, चन्द्रमा के समान धवल श्वेत पर्वत और सभी प्रकार के धातुओं से परिपूर्ण शृङ्गवान् पर्वत ॥२२॥ हे विप्रों ! इन छहों पर्वतों पर सिद्धों तथा चारणों का निवास है । इन सबों के बीच में हजारों योजन विस्तृत दो विद्यमान हैं ॥२३॥ वहाँ पर पवित्र जनपद विष्कम्भ और वर्ष विद्यमान

तेषामन्तरविष्कम्भा योजनानि सहस्रशः । तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि सत्तमाः ॥२४॥
वसन्ति तेषां सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥२५॥
हेमकूटात्परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते । दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण च ॥२६॥
प्रागायतो महाभागा माल्यवान्नाम पर्वतः । ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥२७॥
परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः । आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥२८॥
योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छितः । अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां द्विजोत्तमः ॥२९॥
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्च लोकानावृत्यो तिष्ठति ।
तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता द्विजाः ॥३०॥
भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च सत्तमाः । उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥३१॥
विहङ्गसुमुखो यस्तु सुपार्श्वस्यात्मजः किल ।
स वै विचिन्तयामास सौवर्णान्प्रेक्ष्य वायसान् ॥३२॥
मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम् । अविशेषकरो यस्मात्तस्मादेनं त्यजाम्यहम् ॥३३॥
तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः । चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः ॥३४॥
सपर्वतो महाप्राज्ञा ! दिव्यपुष्पसमन्वितः । भवनैरावृतैः सर्वैर्जाम्बूनदमयैः शुभैः ॥३५॥
तत्र देवगणा विप्रा गन्धर्वासुरराक्षसाः । अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वदा ॥३६॥
तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चापि सुरेश्वरः । समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः ॥३७॥
तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हाहाहूहूः । अभिगम्याऽमरश्रेष्ठं स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः ॥३८॥

हैं । उन सबों में अनेक जाति के जीवों का निवास है ॥२४॥ यह भारत वर्ष है, उसके बाद हिमवान् पर्वत है, हेमकूट पर्वत के बाद हरिवर्ष को बतलाया गया है ॥२५॥ नील पर्वत के दक्षिण ओर और निषध पर्वत के उत्तर ओर हे महाभागों ! माल्यवान् नाम का पर्वत है । यह आगे की ओर फैला हुआ है ॥२६॥ उस माल्यवान् पर्वत के बाद गन्धमादन पर्वत है । उन दोनों पर्वतों के बीच में परिमण्डल सुमेरु पर्वत है । वह सुवर्ण का पर्वत है ॥२७॥ वह दोपहर के सूर्य के समान तथा निर्धूम अग्नि के समान चमकता है । वह चौरासी हजार योजन ऊँचा हे ॥२८॥ वह नीचे भी चौरासी हजार योजन धँसा है । वह ऊपर, नीचे और तिरछा लोकों को घेरे हुए है ॥२९॥ हे विप्रों ! उस सुमेरु पर्वत के चारो ओर ये चार द्वीप विद्यमान, भद्राश्वद्वीप, केतुमाल द्वीप, जम्बूद्वीप ॥३०॥ और उत्तकुरु इन द्वीपों में पुण्यवान् पुरुष ही रहते हैं, वहाँ सुन्दर मुख वाले पक्षी हैं । सुपार्श्व के पुत्र विहंग सुमुख है ॥३१॥ उन्होंने सुवर्णमय पक्षियों को देखकर विचार किया कि यह सुमेरु पर्वत के उत्तम, मध्यम और अधम पक्षियों के ही समान है, अतएव मैं इसको त्याग दूँ । ज्योतियों में श्रेष्ठ सूर्य सदा उसके (सुमेरु के) चारो ओर घूमते रहते हैं ॥३३॥ नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा, प्रदक्षिणवायु तथा दिव्य पुष्पों से युक्त वह पर्वत विद्यमान हैं ॥३४॥ सुन्दर सुवर्णमय भवनों से घिरा हुआ उस पर्वत पर देवगण, गन्धर्व, असुर और राक्षस, अप्सराओं के साथ सदा क्रीड़ा करते रहते हैं । वहाँ पर ब्रह्माजी, रुद्र तथा देवराज इन्द्र ॥३५-३६॥ एकत्रित होकर ऐसे अनेक यज्ञों के द्वारा यजन करते हैं जिन यज्ञों में अनेक प्रकार की दक्षिणा दी जाती है । तुम्बरु,

सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः । तत्र गच्छन्ति भद्रं वः सदा पर्वणि पर्वणि ॥३९॥
तस्यैव मूर्द्धन्युशना ! काव्यो दैत्यैर्महीयते। तस्य हैमानि रत्नानि तस्यैते रत्नपर्वताः ॥४०॥
तस्मात्कुबेरो भगवाँश्चतुर्थं भागमश्नुते । ततःकलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति ॥४१॥
पर्वतस्यान्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् । कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुच्छितम् ॥४२॥
तत्र साक्षात्पशुपतिर्दिव्यभूतैः समावृतः । उमासहायो भगवान्रमते भूतभावनः ॥४३॥
कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रदापादलम्बिनीम् । त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्द्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥४४॥
तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः । पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः॥४५॥
तस्य शैलस्य शिखरात्क्षीरधाराद्विजोत्तमाः । विश्वरूपात्यपरिमिता भीमनिर्घातनिः स्वनाः ॥४६॥
पुण्यापुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा । पल्वती च प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे॥४७॥
तया ह्युत्पादितः पुण्यः सह्रदः सागरोपमः ।
तां धारयामास तदा दुर्द्धरां पर्वतैरपि ॥४८॥
शतं वर्षसहस्राणि शिरसैव पिनाकधृक् । मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो द्विजोत्तमाः ॥४९॥
जम्बूखण्डे तु तत्रैव महाजनपदो द्विजाः । आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां तत्र सत्तमाः ॥५०॥
सुवर्णवर्णाश्च नराःस्त्रियश्चाप्सरसां समाः । अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥५१॥

नारद, विश्वावसु तथा हाहा, हुहु अनेक प्रकार की स्तुतियों से श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । महात्मा सप्तर्षिगण तथा कश्यप प्रजापति ॥३७-३८॥ पर्वों (पूर्णिमा) के अवसर पर वहाँ हमेशा जाते हैं । उसी पर्वत के ऊपर शुक्राचार्य दैत्यों के द्वारा पूजे जाते हैं ॥३९॥ उस सुमेरु पर्वत के रत्न स्वर्णिम हैं तथा उसी के ऊपर उपर्युक्त छहो रत्न पर्वत हैं । उससे कुबेर चतुर्थ भाग को प्राप्त करते हैं ॥४०॥ उसी से वे अपनी एक कला के बराबर धन मनुष्यों को प्रदान करते हैं । उस पर्वत के भीतर कर्णिकार का दिव्य वन है, जो सभी ऋतुओं में पुष्पों से भरा रहता है ॥४१॥ वह मनोहर कर्णिकार वन शिला समूह से उन्नत बना हुआ है । वहाँ पर भगवान् शिव साक्षात् हैं और वे दिव्य भूतों से घिरे रहते हैं ॥४२॥ वहाँ पर पैर पर्यन्त लटकने वाली कर्णिकार पुष्पों से बनी हुयी माला को धारण करके भूतभावन भगवान शिव पार्वतीजी के साथ विहार करते हैं ॥४३॥ उनके तीनों नेत्रों से सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाश फैलता रहता है । भगवान् शिव का दर्शन उग्र तपस्वीजन, सिद्ध पुरुष, सुन्दर व्रत करने वाले तथा सत्यवादी पुरुष करते हैं दुर्वृत्त (पापी) मनुष्य उनका दर्शन नहीं कर सकते हैं । हे द्विजोत्तमों ! उस पर्वत के विश्वरूप नामक शिखर से दुग्ध की धारा के समान श्वेत ॥४४-४५॥ भयङ्कर निर्घात के समान ध्वनि करती हुयी पवित्र भागीरथी गङ्गा की धारा प्रवाहित होती है । वह पवित्र पुरुषों से सेवित है । सम्पूर्ण प्रदेशों को सींचती हुयी वह चन्द्रमा के पवित्र सरोवर में गिरती है । उस धारा ने वहाँ पर सागर के समान विशाल सरोवर बना दिया है ॥४६-४७॥ जिसको धारण करना कठिन है । उस गङ्गा की धारा को भगवान् शिव ने लाखों वर्षों तक अपने शिर पर धारण किया ॥४८॥ हे द्विजों ! सुमेरु पर्वत के पश्चिम भाग में केतुमाल वर्ष है वह जम्बूद्वीप के एक हिस्से में महान् जनपद हैं ॥४९॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठों! वहाँ पर रहने वाले पुरुषों की आयु दश हजार वर्षों की होती हैं । वहाँ के पुरुषों का वर्ण सुवर्ण के समान होता है और स्त्रियाँ अप्सराओं के समान सुन्दर होती हैं । वहाँ के मनुष्य आमय (रोग) तथा

जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः । गन्धमादनशृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥५२॥
संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः । गन्धमादनपार्श्वे तु परे विगतपातकाः ॥५३॥
एकादशसहस्राणि वर्षाणां परमायुषः । तत्र कृष्णा नरा विप्रास्तेजोयुक्ता महाबलाः ॥५४॥
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः । नीलोत्पलधरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं वरम् ॥५५॥
वर्षमैरावतं विप्रा नानाजनपदावृतम् । धनुषी ते महाभागा द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ॥५६॥
इलावृतं मध्यगं तु पञ्चवर्षाणि चैव हि । उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ॥५७॥
आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः । समन्वितानि भूतानि तेषु सर्वेषु सत्तमाः ॥५८॥
एवमेषा महाभागाः पर्वतैः पृथिवी चिता । हेमकूटस्तु सुमहान्कैलासो नामपर्वतः ॥५९॥
तत्र वैश्रवणो देवो गुह्यकैः सह मोदते । अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ॥६०॥
हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्यो मणिमयो गिरिः ।
तस्य पार्श्वे महद्दिव्यं शुभ्रं काञ्चनबालुकम् ॥६१॥
रम्यं विष्णुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ।
दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गामुवाच बहुलाः समाः ॥६२॥
यूपा मणिमयास्तत्र क्षेत्राश्चापि हिरण्मयाः । तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः ॥६३॥
स्त्रष्टा भूतिपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः । उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ॥६४॥
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः । तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ॥६५॥

शोक से रहित एवं सदा प्रसन्न रहने वाले होते हैं, उनके शरीर की कान्ति संतप्त सुवर्ण के समान होती है ॥५१॥ गन्धमादन पर्वत के शिखर पर राक्षसों के साथ कुबेर अप्सराओं के द्वारा घिरे रहते हैं और वे गुह्यकों (यक्षों) के स्वामी आनन्द का अनुभव करते रहते हैं ॥५२॥ गन्धमादन पर्वत के दूसरी तरफ निष्पाप पुरुषों का निवास हैं, उन लोगों की आयु ग्यारह हजार वर्षों की होती हैं ॥५३॥ हे विप्रों ! वहाँ के सभी मनुष्य श्याम वर्ण के होते हैं तथा स्त्रियाँ नील कमल के समान वर्ण वाली होती हैं । वे सब देखने में सुन्दर लगती हैं ॥५४॥ हे विप्रों ! श्वेत पर्वत पर नील कमल हैं, हिरण्यक पर श्वेत कमल हैं । हे विप्रों ! ऐरावत वर्ष अनेक जनपदों से घिरा हुआ है ॥५५॥ हे महाभागों ! धनुष के खण्ड के समान उसके उत्तर और दक्षिण में दो वर्ष हैं । उन दोनों के बीच में इलावृत वर्ष है । इस तरह ये पाँच वर्ष हो गये ॥५६॥ इनमें उत्तरोत्तर वर्षों में गुणों की अधिकता है । हे श्रेष्ठ ऋषियों ! उन सभी वर्षों में आयु, प्रमाण, निरोगिता, धर्म तथा काम से सम्पन्न पुरुष रहते हैं । हे महाभागों ! इसी तरह यह पृथिवी पर्वतों से भरी हैं ॥५७-५८॥ महान् हेमकूट ! पर्वत, कैलास पर्वत ये दो पर्वत है । इन दोनों पर्वतों पर गुह्यकों के साथ कुबेर आनन्दित होते रहते हैं ॥५९॥ कैलास पर्वत की उत्तर दिशा में मैनाक पर्वत है । उसके बाद महान् तथा दिव्य मणिमय पर्वत हैं और उसके शिखर सुवर्ण के हैं॥६०॥ उसके सन्निकट विष्णु सरोवर हैं वह अत्यन्त दिव्य है । उसके बालू सुवर्णमय हैं । वहाँ पर भागीरथी गङ्गा को देखकर राजा भागीरथ बहुत वर्षों तक निवास किए । वहाँ के स्तम्भ मणिमय हैं तथा वहाँ के क्षेत्र सुवर्णमय हैं ॥६१-६२॥ वहीं पर यज्ञ करके महायशस्वी इन्द्र सिद्धि प्राप्त कर लिए । वहाँ पर सृष्टि करने वाले सनातन ऐश्वर्य के स्वामी की उपासना सभी लोग करते हैं तथा अत्यधिक तेजस्वी की उपासना की जाती है । वहाँ पर नर, नारायण, ब्रह्माजी, मनु तथा शङ्कर इन पाँचों की उपासना की जाती है ॥६३-६४॥ वहीं पर सर्वप्रथम गङ्गाजी प्रतिष्ठित हुयीं । वे ब्रह्मलोक से निकल कर सात भागों में विभक्त हो गयी हैं ॥६५॥ उन सातों धाराओं के नाम हैं— बटोदका, नलिनी, पार्वती, सरस्वती,

ब्रह्मलोकादपाक्रान्ता सप्तथा प्रतिपद्यते। वटोदका सा नलिनी पार्वती च सरस्वती ॥६६॥
जम्बूनदी च सीता च गङ्गासिन्धुश्च सप्तमी ।
अचिन्त्या दिव्यसंज्ञा सा प्रभावैश्च समन्विता ॥६७॥
उपास्यते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये । दृश्याऽदृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती॥६८॥
एता दिव्याः सप्तगङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।
रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे च गुह्यकाः ॥६९॥
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ।
देवासुराणां सर्वेषां श्वेतः पर्वत उच्यते ॥७०॥
गन्धर्वानिषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा। शृङ्गवांस्तु महाभागा देवानां प्रतिसञ्चरः॥७१॥
इत्येतानि महाभागाः सप्तवर्षाणि भागशः ।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥७२॥
तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषा। अशक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेया तु विभूषिता॥७३॥
यां तु पृच्छथ मां विप्रा दिव्यामेनां शशाकृतिम् ।
पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे ॥७४॥
कर्णे तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च । कर्णद्वीपशिलो विप्राःश्रीमान्मलयपर्वतः ॥७५॥
एतद्द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यन्ते शशिसंस्थितम् ॥७६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानाद्वीपविभागवर्णने षड्रत्नमेरुपर्वतादिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

जम्बूनदी, सीता तथा गङ्गा ॥६६॥ ये नाम दिव्य और अचिन्त्य हैं तथा ये धाराएँ प्रभाव से युक्त हैं। वहाँ पर एक हजार युग पर्यन्त चलने वाले सत्र की उपासना की जाती है ॥६७॥ सरस्वती नाम की जो धारा है कहीं पर दृश्य है और कहीं पर अदृश्य है । ये सात दिव्य गङ्गा हैं और त्रैलोक्य में विख्यात हैं॥६८॥ हिमवान पर्वत पर राक्षसों का निवास है, हेमकूट पर गृह्यकों का निवास है, निषध पर्वत पर सूर्य और नाग हैं, वहाँ गोकर्ण नामक तपोवन है ॥६९॥ श्वेत पर्वत पर सभी देवताओं, असुरों तथा नागों का निवास है । निषध पर्वत पर सदा गन्धर्व रहते हैं, नील पर्वत पर ब्रह्मर्षियों का निवास है॥७०॥ हे महाभागों ! शृङ्गवान् पर्वत देवताओं के संचरण का स्थान है । हे महाभागों ! ये सात वर्ष पृथक्-पृथक् हैं॥७१॥ इन वर्षों में गतिमान् भूतों का निवास है । उन सबों की अनेक प्रकार की देवता और मनुष्य सम्बन्धी समृद्धि है । इन सबों को गिना पाना अशक्य है, ये सभी श्रद्धेय तथा विभूषित हैं । हे विप्रों ! आपलोग जिस दिव्य शशाकृति के विषय में पूछते हैं ॥७३॥ उस शश के बगल में दो वर्ष बतलायें गये है दक्षिण और उत्तर । इस शशक के नागद्वीप और कश्यपद्वीप दोनों कान हैं ॥७४॥ हे विप्रों ! कर्णद्वीप की शिला मलय पर्वत यह ऐश्वर्य सम्पन्न है । इसी तरह से दूसरा द्वीप भी उस शश पर स्थित हैं ॥७५-७६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के तीसरें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

चौथा अध्याय

ऋषय ऊचुः

मेरोरथोत्तरं पश्चात्पूर्वमाचक्ष्व सूत नः । निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥१॥

सूत उवाच

दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
उत्तराः कुरवो विप्राः पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥२॥
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥३॥

सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा द्विजोत्तमाः । अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र द्विजोत्तमाः ॥४॥
ये क्षरन्ति सदा क्षीरं तत्र पञ्चामृतोपमम् । वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥५॥
सर्वा मणिमयीभूमिःसूक्ष्मकाञ्चनबालुका । सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निर्मलाश्च तपोधनाः ॥६॥
देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः । शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ॥७॥
मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसन्निभम् ॥८॥
मिथुनं जायते काले समन्ताच्च प्रवर्द्धते । तुल्यरूपगुणोपेतं समवेशं तथैव च ॥९॥
एकमेवानुरूपं च चक्रद्वयसमं द्विजाः । निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ॥१०॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जीवन्ति ते महाभागा न चान्योन्यं जहत्युत ॥११॥
भारुडा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डामहाबलाः । तान्निर्हरन्तीहमृतान्दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥१२॥

सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी ! आप सुमेरु पर्वत के उत्तर तथा पूर्वभाग का वर्णन करें । हे महाबुद्धिमान् ! आप पूर्ण रूप से माल्यवान् नामक पर्वत का वर्णन करें ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— नील पर्वत के दक्षिण तरफ तथा सुमेरु पर्वत के उत्तर ओर उत्तर कुरुवर्ष हैं । वहाँ पर पवित्र सिद्धों का निवास है ॥२॥ वहाँ के वृक्षों के फल मधुर होते हैं और सदैव पुष्पों तथा फलों से भरे हुए रहते हैं । उनके पुष्प सुगन्धित हैं और फल रस से भरे हुए हैं ॥३॥ हे द्विजश्रेष्ठों ! वहाँ पर कुछ-कुछ वृक्षों के फल सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले । हे द्विजश्रेष्ठों ! वहाँ पर दूसरे दूध वाले वृक्ष हैं ॥४॥ वे सबके सब अमृत के समान दूध बहाते हैं । वे अपने फलों में वस्त्र और आभरणों को उत्पन्न करते हैं ॥५॥ वहाँ की सम्पूर्ण भूमि मणिमयी हैं और उसके बालू सुवर्ण के कण वाले हैं । वे सभी ऋतुओं में स्पर्श करने में सुख प्रदान करते हैं उनमें फल नहीं लगते हैं ॥६॥ देवलोक से भ्रष्ट हुए सभी जीव वहाँ उत्पन्न होते हैं, वे सभी पुण्यवान् परिवार से युक्त तथा देखने में अत्यन्त प्रिय लगते हैं ॥७॥ स्त्री पुरुष दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं स्त्रियाँ अप्सराओं के समान सुन्दर होती हैं । उन सबों के रूप तथा गुण एवं वेश एक समान होता है ॥८-९॥ वे चकवाक के समान एक दूसरे के अनुरूप होते हैं । वे सभी लोग नीरोग तथा सदा प्रसन्नमन वाले होते हैं ॥१०॥ वे सब ग्यारह हजार वर्ष जीवित रहते हैं और परस्पर में वे एक दूसरे का त्याग नहीं करते हैं ॥११॥ वहाँ तीक्ष्ण तुण्ड (चोंच) वाले भारुण्ड नामक पक्षी

उत्तराः कुरवो विप्रा व्याख्यातास्ते समासतः ।
मेरुपार्श्वमहं पूर्वं प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥१३॥
तस्य मूर्द्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य तपोधनाः । भद्रशालवनं यत्र कालाम्राश्च महाद्रुमाः ॥१४॥
कालाम्रास्तु महाभागा नित्यं पुष्पफलाः शुभाः ।
द्रुमाश्च योजनोत्सेधाः सिद्धचारणसेविताः ॥१५॥
तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः । स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥१६॥
चन्द्रवर्णाश्चतुर्वर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रशीतलगात्राश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥१७॥
दशवर्षसहस्राणि तत्रायुर्द्विजसत्तमाः । कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥१८॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु । सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः ॥१९॥
सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः । तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ॥२०॥
योजनानां सहस्रं च शतं च द्विजसत्तमाः । तथा माल्यवतः श्रृङ्गे पूर्वे पूर्वानुगान्तकाः ॥२१॥
योजनानां सहस्राणि सर्वे च ब्रह्मवादिनः ।
तपस्तप्यन्ति ते दिव्यं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः ॥२२॥
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ति दिवाकरम् । षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च ॥२३॥
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् । षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिरेव शतानि च ॥२४॥

होते हैं । वहाँ के लोगों के मर जाने पर वे उन सबों को उठाकर कन्दरा में फेंक देते हैं ॥१२॥ हे ब्राह्मणों ! आपलोगों को मैंने संक्षेप में उत्तर कुरुवर्ष का वर्णन सुनाया । अब मैं सुमेरु पर्वत का पूर्व पार्श्व जैसा है उसका वर्णन करता हूँ ॥१३॥ हे तपस्वियों ! भद्राश्व का मूर्द्धाभिषेक वहाँ हुआ जहाँ भद्रशाल नामक वन है और जहाँ पर कालाम्र नामक महावृक्ष हैं ॥१४॥ हे महाभागों ! कालाम्र सदैव पुष्पों तथा फलों से युक्त रहते हैं । उन वृक्षों की ऊँचाई एक योजन होती है, उन सबों का सेवन सिद्ध तथा चारण गण करते हैं ॥१५॥ वहाँ पर रहने वाले पुरुष श्वेत वर्ण के होते हैं और तेज से युक्त तथा महाबलवान् होते हैं । स्त्रियों का रङ्ग कुमुद पुष्प के समान होता है तथा वे देखने में सुन्दर लगती हैं ॥१६॥ चारो वर्णों के लोगों का रूप चन्द्रमा के समान आह्लादक होता है उनका मुख पूर्णचन्द्र के समान मनोहर होता है । उनका शरीर चन्द्रमा के समान शीतल होता है तथा वे नृत्य और गीत में निपुण होते हैं ॥१७॥ हे द्विजश्रेष्ठों ! वहाँ के लोगों की आयु दश हजार वर्षों की होती है । कालम्र का रस पीने के कारण वे सदा युवक ही बने रहते हैं ॥१८॥ नील पर्वत की दक्षिण ओर तथा निषध पर्वत के उत्तर ओर सुदर्शन नामक जामुन का महान् वृक्ष है ॥१९॥ वह सभी अभिप्रेत फलों वाला है, उसका सेवन सिद्ध तथा चारणगण करते हैं । उसी के नाम से जम्बूद्वीप प्रख्यात है ॥२०॥ यह एक हजार एक सौ योजन विस्तृत है । माल्यवान् पर्वत के पूर्व शिखर पर पहले अनुगमन करने वाले सब हैं ॥२१॥ हे द्विजों! माल्यवान् पर्वत पचास हजार योजन विस्तृत है । वहाँ के मानव महारजत के समान श्वेत वर्ण के होते हैं ॥२२॥ वे सब ब्रह्माजी के लोक से पतित रहते हैं । सबके सब ऊर्ध्वरेता होते है, और सब ब्रह्मवादी होते हैं, तथा दिव्य तपस्या करते हैं ॥२३॥ वे जीवों की रक्षा करने के लिए सूर्य में प्रवेश कर जाते

आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे मेरुपर्वतस्योत्तरप्रान्तवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च सत्तम । आचक्ष्व नो यथातत्त्वं ये च पर्वतवासिनः ॥१॥

सूत उवाच

दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु। वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः॥२॥
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः। निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥३॥
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च। जीवन्ति ते महाभागा नित्यं मुदितमानसाः ॥४॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु । वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥५॥
यत्र चायं महाप्राज्ञाः पक्षिराट् पतगोत्तमः। यज्ञानुगा विप्रवरा धन्विनः प्रियदर्शनाः ॥६॥
महाबलास्तत्र जना विप्रा मुदितमानसाः । एकादशसहस्राणि वर्षाणां ते तपोधनाः ॥७॥
आयुः प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ।
शृङ्गाणि च पवित्राणि त्रीण्येव द्विजपुङ्गवाः ॥८॥

हैं । छियासठ हजार की संख्या में वे सूर्य को घेर के अरुण के आगे विद्यमान रहते हैं । छियासठ हजार वर्ष तक सूर्य के संताप से संतप्त होकर वे चन्द्रमण्डल में प्रवेश कर जाते हैं ॥२४-२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

सुमेरु पर्वत के दक्षिण भाग का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे श्रेष्ठ ! आप वर्षों तथा पर्वतों के नाम को हमलोगों को बतलायें तथा पर्वतों पर रहने वालों को भी बतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** श्वेत पर्वत के दक्षिण ओर तथा निषध पर्वत के उत्तर ओर रमणक नामक वर्ष है । वहाँ पर रहने वाले मनुष्यों के अभिजन श्वेत वर्ण के होते हैं । सब देखने में सुन्दर होते हैं । वहाँ के मनुष्यों का कोई शत्रु नहीं होता है ॥२-३॥ वे महाभाग ग्यारह हजार पाँच सौ वर्षों तक प्रसन्नता पूर्वक जीवित रहते हैं ॥४॥ नील पर्वत के दक्षिण ओर और निषिध पर्वत के उत्तर ओर हिरण्यमय नामक वर्ष है । वहाँ पर हिरण्वती नाम की नदी है ॥५॥ हे महाप्राज्ञों! वहाँ पर पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड का निवास है । वहाँ के ब्राह्मण यज्ञ करते हैं और धनुष धारण करते हैं । वे देखने में सुन्दर हैं ॥६॥ हे विप्रों ! वहाँ के लोग महाबलवान् होते हैं तथा सदा प्रसन्न रहते हैं । वे तपस्वीजन बारह हजार पाँच सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं । वहाँ पर तीन पवित्र शिखर

एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम्। सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥९॥
तत्र स्वयं प्रभा देवी नित्यं वसति शृङ्गिणी ।
उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्तो द्विजोत्तमाः ॥१०॥
वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छ्रङ्गवतः परम्। न तु तत्र सूर्यगतिर्जीर्यन्ते न च मानवाः ॥११॥
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवाऽऽवृतः। पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥१२॥
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः। अनिष्पन्ना नष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः ॥१३॥
देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो द्विजाः ।
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते द्विजोत्तमाः ॥१४॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा धार्मिकपुङ्गवाः। क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः ॥१५॥
हरिस्तिष्ठति वैकुण्ठः शकटे कनकामये। अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोजवम्॥१६॥
अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम्। स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च द्विजसत्तमाः ॥१७॥
संक्षेपे विस्तरे चैव कर्त्ता कारयिता तथा। पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च सत्तमाः ॥१८॥
सयज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः ॥१९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे मेरुपर्वतस्य दक्षिणप्रदेशवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

हैं ॥७-८॥ उनमें से एक शिखर मणिमय भवनों से सुशोभित है । दूसरा सुवर्णमय भवनों से सुशोभित है और तीसरा रत्नमय भवनों से सुशोभित है ॥९॥ वहाँ पर स्वयं शृङ्गिणी प्रभा देवी निवास करती हैं । हे द्विजश्रेष्ठों ! शिखर की उत्तर ओर समुद्र- तट पर ऐरावत वर्ष है । उसके बाद शृङ्गवान् पर्वत है । वहाँ पर सूर्य की गति नहीं होती है, वहाँ के मनुष्य बूढे भी नहीं होते हैं ॥१०-११॥ वहाँ पर नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा प्रकाश करने का काम करते हैं । वहाँ के मनुष्य कमल के समान कान्ति वाले, कमल के समान वर्ण वाले, कमल दल के समान मनोहर नेत्र वाले एवं कमल दल के समान सुगन्धि वाले होते हैं । अनिष्पन्न, गन्ध से रहित, निराहार रहने वाले तथा जितेन्द्रिय होते हैं ॥१२-१३॥ हे द्विजो ! वे देवलोक से पतित और रजोगुण से रहित होते हैं उनकी आयु का प्रमाण तेरह हजार वर्ष होता है । वे श्रेष्ठ धार्मिक तथा उतने ही समय तक जीवित रहते हैं । क्षीर सागर के उत्तर तट पर प्रभु श्रीहरि सुवर्णमय यान में निवास करते हैं । उस यान में आठ चक्के हैं । जीवों से युक्त वह यान मन के समान वेग वाला है ॥१४-१६॥ वह अग्नि के समान वर्ण वाला तथा सुवर्ण से अलंकृत है। हे द्विजश्रेष्ठों ! वे श्रीहरि सभी जीवों के स्वामी तथा व्यापक हैं ॥१७॥ वे ही पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश का संक्षेप तथा विस्तार करने वाले हैं तथा कराने वाले भी वे ही हैं ॥१८॥ वे सभी भूतों के यज्ञ हैं तथा उनका मुख अग्नि है ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के स्वर्ग खण्ड के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

छठा अध्याय

ऋषय ऊचुः

यदिदं भारतं वर्षं पुण्यं पुण्यविधायकम् । तत्सर्वं नः समाचक्ष्व त्वं हि नो बुद्धिमान्मतः ॥१॥

सूत उवाच

अत्र वः कीर्त्तयिष्यामि वर्षं भारतमुत्तमम् । प्रियमित्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ॥२॥

पृथोश्च प्राज्ञो वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः ।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च ॥३॥

तथैव मुचुकुन्दस्य कुबेरोशीनरस्य च । ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥४॥
कुशिकस्यैव राजर्षेर्गाधेश्चैव महात्मनः । सोमस्य चैव राजर्षेर्दिलीपस्य तथैव च ॥५॥

अन्येषां च महाभागाः क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।
सर्वेषामेव भूतानां प्रियं भारतमुत्तमम् ॥६॥

ततो वर्षं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमहो द्विजाः । महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षवानपि ॥७॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः । तेषां सहस्रशो विप्राः पर्वतास्ते समीपतः ॥८॥
अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः । अन्ये तु परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ॥९॥
आर्यम्लेच्छसधर्माणस्ते मिश्राः पुरुपाद्विजाः । नदीं पिबन्ति विमलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ॥१०॥
गोदावरीं नर्मदां च बहूदां च महानदीम् । शतद्रुं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ॥११॥

दृषद्वतीं वितस्तां च विपाशां स्वच्छबालुकाम् ।
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णां वेणीं च निम्नगाम् ॥१२॥

भारतवर्ष, उसकी नदियों तथा जनपदों का वर्णन

ऋषियों ने कहा— यह जो पवित्र तथा पुण्यप्रदान करने वाला भारत वर्ष है उसका आप पूर्ण रूप से वर्णन करें । आप ही हमलोगों में बुद्धिमान हैं ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** अब मैं आपलोगों को उत्तम भारत वर्ष का वर्णन सुनाऊँगा । हे महाभागों ! प्रियमित्र, देव, वैवस्वत मनु ॥२॥ वेन के प्रिय पुत्र पृथु, महात्मा इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष ॥३॥ मुचकुन्द, कुबेर, उशीनर, ऋषभ, ऐल, तथा राजा नृग ॥४॥ राजर्षि कुशिक, महात्मा गाधि, सोम, राजर्षि, दिलीप ॥५॥ तथा दूसरे बलवान् क्षत्रियों तथा सभी जीवों के प्रिय तथा उत्तम भारतवर्ष का वर्णन मैं सुनाता हूँ ॥६॥ हे द्विजों ! मैंने जैसा सुना है उसी प्रकार से इसका वर्णन करूँगा । महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान् ॥७॥ विन्ध्य तथा पारियात्र ये सात यहाँ के कुलपर्वत हैं । हे विप्रों ! इन पर्वतों के समीप में हजारों पर्वत हैं ॥८॥ वे अविज्ञात, सारवान तथा विचित्र शिखर वाले हैं । दूसरे भी छोटे पर्वत हैं तथा छोटे पर्वतों के उपजीवी पर्वत हैं ॥९॥ हे द्विजों ! जो आर्य होकर म्लेच्छों के समान कर्म वाले पुरुष हैं । वे नदियों के जल को पीतें हैं । वे नदियाँ हैं गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती ॥१०॥ गोदावरी, नर्मदा, बहूदा, महानदी, शतद्रु, चन्द्रभागा तथा महानदी, यमुना ॥११॥ दृषद्वती, वितस्ता, विपापा, स्वच्छबालुका, वेत्रवती नदी, कृष्णानदी, वेणी (या वेणा) नदी ॥१२॥ इरावती, वितस्ता, पयोष्णी नदी, देविका नदी वेदस्मृति नदी,

इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि। वेदस्मृतिं वेदशिरां त्रिदिवां सिन्धुलाकृमिम्॥१३॥
करीषिणीं चित्रवहां त्रिसेनां चैव निम्नगाम्।
गोमतीं धूतपापां च चन्दनां च महानदीम्॥१४॥
कोशिकीं त्रिदिवां हृद्यां नाचितां रोहितारणीम्।
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च द्विजोत्तमाः॥१५॥
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा। शरावतीं पयोष्णीं च भीमां भीमरथीमपि॥१६॥
कावेरीं चुलुकां चापि तापीं शतमलामपि। नीवारां महितां चापि सुप्रयोगां तथा नदीम्॥१७॥
पवित्रां कृष्णलां सिन्धुं वाजिनीं पुरमालिनीम्।
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमां मालवतीं तथा॥१८॥
पलाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम्। करिषिणीमसिक्नीं च कुशचीरीं महानदीम्॥१९॥
मरुतां प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा। अनावतीमनुष्णां च सेव्यां कापीं च सत्तमाः॥२०॥
सदावीरामधृष्यां च कुशचीरां महानदीम्। रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम्॥२१॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुचीरामम्बुवाहिनीम्। वैनन्दीं पिङ्गलां वेणां तुङ्गवेगां महानदीम्॥२२॥
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि।
धेनुं सकामां वेदस्वां हविस्त्रावां महापथाम्॥२३॥
क्षिप्रां च पिच्छलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम्।
कौर्णिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम्॥२४॥
दुर्गामन्तःशिलां चैव ब्रह्ममेध्यां दृषद्वतीम्। परोक्षामथरोहीं च तथा जम्बूनदीमपि॥२५॥

वेदशिरा नदी, त्रिदिवा नदी, सिन्धुलाकृमि नदी ॥१३॥ करीषिणी, चित्रवहा, तथा त्रिसेना नदी, गोमती, धूतपापा तथा महानदी, चन्दना नदी ॥१४॥ कौशिकी नदी, मनोहर त्रिदिवा नदी, नाचिता नदी, रोहितारणी नदी। रहस्यानदी, शतकुम्भा नदी, तथा सरयू नदी ॥१५॥ चर्मण्वती, वेत्रवती, हस्तिसोमा तथा दिशा नदी। शरावती, पयोष्णी, भीमा नदी तथा भीमरथी नदी ॥१६॥ काबेरी, चुलुका, तापी, शतमला नदी, नीवारा, महिता तथा प्रयोगा नदी ॥१७॥ पवित्र कृष्णला नदी, वाजिनी नदी, पुरमालिनी नदी, पूर्वाभिरामानदी, वीरा नदी, भीमा नदी तथा मालवती नदी ॥१८॥ पापविनाशिका, पलाशिनी नदी, महेन्द्रा नदी, पाटलावती नदी। करिषिणी नदी, असिक्नी नदी, तथा महानदी, कुशचीरी ॥१९॥ मरुता नदी, प्रवरा नदी, मेना नदी, हेमा नदी, घृतवती नदी, अनावती नदी, अनुष्णा नदी, सेव्या तथा कापी नदी ॥२०॥ सदावीरा नदी, अधृष्या नदी, कुशचीरा नामक महानदी, रथचित्रा नदी, ज्योतिचित्रा नदी, विश्वामित्रा नदी, कपिञ्जला नदी ॥२१॥ उपेन्द्रा नदी, बहुला नदी, कुचीरा नदी, वैनन्दी, पिङ्गला नदी, वेणानदी, तुङ्गवेणा नामकी महानदी ॥२२॥ विदिशा नदी, कृष्णवेणा नदी, ताम्रानदी तथा कपिला नदी, धेनुनदी, सकामानदी, वेदस्वानदी, हविःस्त्रावानदी तथा महापथा नदी ॥२३॥ शिप्रा, पिच्छला तथा भारद्वाजी नदी, कौणिकी नदी, शोण नदी, बाहुदा नदी, चन्द्रमा नदी ॥२४॥ दुर्गा नदी, अन्तःशिला नदी, ब्रह्ममेध्या नदी, दृषद्वती नदीं। परोक्षा नदी, रोही नदी, जाम्बु नदी ॥२५॥ सुनासा नदी, तपसा नदी, हासी नदी, वारणा नदी असी नदी।

सुनासां तमसां दासीं सामान्यां वरणामसिम् ।
नीलां धृतिकारीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥२६॥
मानवीं वृषभां भासां ब्रह्ममेध्यां दृषद्वतीम्। एताश्चान्याश्च बहुला महानद्यो द्विजर्षभाः ॥२७॥
सदा निरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च सत्तमाः ॥२८॥
चित्रोत्पलां चित्ररथामतुलां रोहिणीं तथा । मन्दाकिनीं वैतरणीं कोकां चापि महानदीम् ॥२९॥
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम्। लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् ॥३०॥
कुमारीमृषितुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च सत्तमाः ॥३१॥
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा नद्यः सुप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३२॥
इत्येतास्सरितो विप्राः समाख्याता यथास्मृति ।
अतउद्र्ध्वं जनपदान्निबोधत वदाम्यहम् ॥३३॥
तत्रेमे कुरुपाञ्चलाः शाल्वमात्रेयजाङ्गलाः। शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बौधा मालास्तथैव च॥३४॥
मत्स्याः कुशट्टाः सौगन्ध्याः कुत्सपाः काशिकोशलाः ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥३५॥
उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैःसह। पञ्चालाः कोशलाश्चैव नैकपृष्ठयुगन्धराः ॥३६॥
बोधमद्राः कलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः। जठराः कुकुराश्चैव सुदशार्णाः सुसत्तमाः ॥३७॥
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः । गोमन्तामल्लकाः पुण्ड्रा विदर्भा नृपवाहिकाः॥३८॥

नीला नदी, धृतिकरा नदी, तथा महानदी, पर्णशा नदी ॥२६॥ मानवी नदी, वृषभा नदी, भासा नदी, ब्रह्ममेध्या नदी, दृषद्वती नदी । हे द्विजश्रेष्ठों ! ये सभी तथा इन सबों से भिन्न बहुत सी नदियाँ हैं॥२७॥ सदा निरामया नदी, कृष्णा नदी, मन्दगा नदी, मन्दवाहिनी नदी, ब्राह्मणी, महागौरी तथा दुर्गा नदी ॥२८॥ चित्रोत्पला, चित्ररथा, अतुलानदी तथा रोहिणी नदीं । मन्दाकिनी नदी, वैतरणी नदी तथा महानदी, कोका नदी ॥२९॥ शुक्तिमती नदी, अनङ्गा नदी तथा वृषा नदी । लौहित्या नदी, करतोया नदी वृषका नदी॥३०॥ कुमारी नदी, ऋषितुल्या नदी, मारिषा नदी, सरस्वती नदी, मन्दाकिनी नदी, तथा सभी गङ्गा नदी ॥३१॥ हे द्विज श्रेष्ठों ! ये सभी नदियाँ विश्व की माताएँ हैं तथा महान फल प्रदान करने वाली हैं । इसके अतिरिक्त और भी सैकड़ों तथा हजारों नदियाँ है ॥३२॥ हे विप्रों ! ये सभी नदियाँ स्मृतियों में वर्णित हैं । इसके बाद मैं जनपदों का वर्णन करता हूँ ॥३३॥ उनमें कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मात्रेय, जांगल, शूरसेन, पुलिन्द, बौध, माला, मत्स्या, कुशट्ट, सौगन्ध्या, कुत्सपा, काशि, कोशल, चेदि, मत्स्य, करूष, सिन्धु, पुलिन्द ॥३४-३५॥ उत्तम, दशार्ण मेकल, उत्कल, पंचाल, कोसल, नैकपृष्ठ, युगन्धर ॥३६॥ बोध, मद्र, कलिङ्ग, काशय, परकाशय, जठर, कुरर, सुदशार्ण, कुंतय, वंतय, अपरकुंतय, गोमन्त, मल्लक, पुण्ड्र, विदर्भ, नृपवाहिक ॥३७-३८॥ अश्मक, सोत्तर, गोपराष्ट्र, कनीयस, अधिराज्य, कुशट्टा, मल्लराष्ट्र,

अश्मकाः सोत्तराश्चैव गोपराष्ट्राः कनीयसः ।
अधिराज्यकुशट्टाश्च मल्लराष्ट्राश्च केरलाः ॥३९॥
मालवाश्चापवास्याश्च चक्रावक्रालयाः शकाः ।
विदेहा मगधाः सद्मा मलजाविजयास्तथा ॥४०॥
अङ्गा बङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा महिषाः शशकास्तथा ॥४१॥
वाह्लिकावाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पङ्कलाश्चर्मचण्डिकाः ॥४२॥
अटवीशेखाराश्चैव मेरुभूताश्च सत्तमाः । उपाबृत्तानुपावृत्ताः सुराष्ट्राः केकयास्तथा॥४३॥
कुट्टापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्धाश्च बहवो विप्रा अन्तर्गिर्यस्तथैव च ॥४४॥
बहिर्गिर्य्योऽङ्गमलदा मगधामालवार्घटाः। सत्वतराः प्रावृषेया भार्गवाश्च द्विजर्षभाः ॥४५॥
पुण्ड्राभार्गाःकिराताश्च सुदेष्णा भासुरास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ॥४६॥
पूर्णलाः पूतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कुशकास्तथा ।
तरिग्रहाश्शूरसेना ईजिकाः कल्पकारणाः ॥४७॥
तिलभागामसाराश्च मधुमत्ताः ककुन्दकाः । काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा॥४८॥
अभीसाराः कुद्रुताश्च सौरिला बाह्लिकास्तथा ।
दर्वी च मालवादर्वावातजामरथोरगाः ॥४९॥
बलरट्टास्तथा विप्राः सुदामानः सुमल्लिकाः ।
बन्धा करीकषाचैव कुलिन्दा गन्धिकास्तथा ॥५०॥
वना यवोदशाः पार्श्वरोमाणः कुशबिन्दवः ।
काच्छा गोपालकच्छाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥५१॥

केरल ॥३९॥ मालव, उपवास्य, चक्रालय, वक्रालय, शक, विदेह, मगध, सद्म, मलज, विलय, अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, यकृत, लोमान, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, महिष, शशक ॥४०-४१॥ वाह्लिक, वटधान, आभीर, कालतोय, अपरान्त, परान्त, पंकल, चर्म, चण्डिका ॥४२॥ अटवी, शेखर, मेरुभूत, उपावृत, अनुपावृत, सुराष्ट्र, केकय ॥४३॥ कुट्ट, परान्त, माहेय, कक्ष, सामुद्र, निष्कुट, हे विप्रों ! बहुत से अन्य जनपद हैं, अन्तगिर्य ॥४४॥ बहिर्गियी, योग, मलद, मगध, मालवा, घट, सत्त्वतर, प्रावृषेय, तथा भार्गव ॥४५॥ पुण्ड्रा, भार्ग, किरात, देदीप्यमान सुदेष्ण जनपद, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैऋत ॥४६॥ पूर्णल, पूतिमत्स्य, कुंतल, कुशल, तरिग्रह, शूरसेन, ईजिका, कल्पकारण ॥४७॥ तिलभाग, मसार, मधुमत्त, कुंकुरक, काश्मीर, सिन्धुसैषीर, गन्धार, दर्शका ॥४८॥ अभी सारा, कुद्रुत सौरिल, बाह्लिक दर्वी, मालव, दर्वा, वातजा, उरण, बलरट्ट, सुदाम, सुमल्लिक, बंधा, करीकष, कुलिंद, गन्धिक, वनायु, दश, पार्श्वरोम, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपालकच्छ, जंगल, कुरुवर्णक ॥४९-५१॥ किरात, बर्बर, सिद्धविदेह, ताम्रलिप्तिक, औड्र, म्लेच्छ,

किराता बर्बराः सिद्धावैदेहास्ताम्रलिप्तिकाः ।
ओड्रम्लेछाः ससैरिन्द्राः पार्वतीयाश्च सत्तमाः ॥५२॥
अथाऽपरे जनपदा दक्षिणा मुनिपुङ्गवाः । द्रविडाः केरलाः प्राच्यामूषिकाबालमूषिकाः ॥५३॥
कर्णाटका माहिषका विकन्था मषिकास्तथा ।
झल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदानलकाननाः ॥५४॥
कौक्कुटकास्तथा बोलाः कोङ्कणा मणिबालकाः ।
समङ्गाः कनकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥५५॥
ध्वजिन्युत्सवसङ्केतास्त्रिवर्गा माल्यसेनयः। व्यूढकाः कोरकाः प्रोष्टाः सङ्गवेगधरास्तथा ॥५६॥
तथैव विन्ध्यरुलिकाः पुलिन्दा बल्वलैः सह ।
मालवामलराश्चैव तथैवापरवर्तकाः ॥५७॥
कुलिन्दाः कालदाश्चैव चण्डकाः कुरटास्तथा ।
मुशलस्तनवालाश्च सतीर्थाः पूतिसृञ्जयाः ॥५८॥
अनिदायाः शिवाटाश्च तपनाः सूतपास्तथा। ऋषिकाश्च विदर्भाश्च स्तङ्गनापरतङ्गकाः ॥५९॥
उत्तराश्चापरे म्लेच्छा जना हि मुनिपुङ्गवाः। जवनाश्च सकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥६०॥
सकृघृहाः कुलट्याश्च हूणाः पारिसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चान्यास्तथा च दशमालिकाः ॥६१॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्राकुलानि च । शूराभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह॥६२॥
खाण्डीकाश्चतुषाराश्च पद्मगा गिरिगह्वराः। आद्रेयाः सभिरादाजास्तथैव स्तनपोषकाः ॥६३॥
द्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः ।
तोमराहन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥६४॥

सौरिन्द्र, तथा पार्वतीय ॥५२॥ हे मुनि पुगवों ! अब मैं दूसरे जगह दक्षिण जनपद हैं उन्हें बतलाता हूँ । द्रविड, केरल, प्राच्य, मूषिक, बालमूषिका ॥५३॥ कर्णाटक, माहिषक, विकंध, मूषिका, झल्लिका, कुंतल, सोहृद, अनल तथा कानन जनपद ॥५४॥ कुकुट्ट, बोल, कोंकण, मणिवाल, समंग, कनक, कुकुर, अङ्गार मारिष ॥५५॥ ध्वजिनी, उत्सव, सङ्केत, त्रिवर्ग, मालसेनी, व्यूढक, कोरक, प्रोष्ट, सङ्गवेगधर ॥५६॥ विंध्यरुलिक, पुलिन्द, बल्वल, मालव, मलर तथा अपरवर्तक ॥५७॥ कुलिदं कालद, चण्डक, कुरट, मुशल, तनवाल, तीर्थापूति, संजय ॥५८॥ अनिदा, शिवाटा, तपन, स्तुप, ऋषिक, विदर्भ, तंगना, परतंगक ॥५९॥ हे मुनिवर्यो ! उत्तर जनपद, म्लेच्छ जनपद, जवन, कम्बोज, तनपोषक, द्रोषक, कलिङ्ग ये सभी म्लेच्छों की जातियाँ हैं ॥६०॥ सकृघृहा, कुलट्य, हूण, पारसीक, रमण, दशमालिका ॥६१॥ ये सभी जनपद क्षत्रियों के उपनिवेश हैं, वैश्य, तथा शूद्र । शूर, आभीर, दरद, काश्मीर ये सभी जनपद हैं ॥६२॥ खण्डीक तुषार तथा पद्मराग ये पर्वतों की कन्दराएँ हैं । आद्रेय, सुभिरादाज, तथा स्तनपोषक ॥६३॥ द्रोषक, कलिङ्ग ये किरातों की जातियाँ हैं, तोमर, करभञ्जक ॥६४॥ ये सभी जनपद प्राच्य तथा उदीच्य

एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः सङ्कीर्तिता द्विजाः ॥६५॥
यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ॥६६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भारतवर्षस्य कुलपर्वतमहानदीदेशादीनांवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सातवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च। प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ॥१॥
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च सत्तम। आचक्ष्व नो विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥२॥

सूत उवाच

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनिपुङ्गवाः। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च द्विजसत्तमाः ॥३॥
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं द्विजाः। तत्पश्चाद्द्वापरं चाथ ततस्तिष्यः प्रवर्तते ॥४॥
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मुनिपुङ्गवाः। आयुः सङ्ख्या कृतयुगे सङ्ख्याता हि तपोधनाः ॥५॥
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायामायुषो विदुः ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥६॥
तत्प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्ये तु मुनिपुङ्गवाः। गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ॥७॥

हैं । हे द्विजों ! मैंने जनपदों का केवल नाम गिना दिया । इनमें गुण तथा बल के अनुसार फल की प्राप्ति होती हैं ॥६५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

काल निर्णय पूर्वक भारत वर्ष के लोक स्थिति का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी ! आप इस भारत वर्ष तथा भारत वर्ष के आयु का प्रमाण तथा शुभ एवं अशुभ बल का भी आप वर्णन करें ॥१॥ आप भविष्यत् काल, भूतकाल तथा वर्तमान काल का विस्तार पूर्वक वर्णन करें ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनिपुंगवों ! भारतवर्ष में चार ही युग होते हैं, कृतयुग (सत्ययुग) त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा तिष्य (कलि) युग ॥३॥ सबसे पहले सत्ययुग होता है, उसके बाद त्रेता युग होता है, उसके बाद द्वापर युग होता है और सबके अन्त में कलियुग आता है॥४॥ हे तपोधनों! सत्ययुग की आयु को चार हजार वर्ष बतलाया गया है ॥५॥ त्रेतायुग में तीन हजार वर्ष की आयु बतलायी गयी है । द्वापर में दो हजार वर्ष तक लोग पृथिवी पर रहते हैं ॥६॥ और कलियुग

महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः । प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्त्रशः ॥८॥

द्विजाः कृतयुगे विप्रा बलिनः प्रियदर्शनाः ।
प्रजायन्तो च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ॥९॥
महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शा वपुष्मन्तो महावीर्य्या धनुर्धराः ॥१०॥
वीरा हि युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसंमताः ।
त्रेतायां क्षत्रियास्तावत्सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥११॥

सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदैव द्वापरे युगे । महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परवधैषिणः ॥१२॥

तेजसान्येन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषाःकिल ।
लुब्धाश्चानृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भो द्विजाः !॥१३॥
इर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च ।
तिष्ये भवन्ति भूतानां रागोलोभश्च सत्तमाः ॥१४॥

संक्षेपो वर्त्तते विप्रा द्वापरे युगमध्यगे । गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम्॥१५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भारतवर्षस्य कालनिर्णयपुरस्सरं लोकस्थितिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

में उसी के समान आयु बतलायी गयी हैं । कलियुग में गर्भस्थों की भी मृत्यु हो जाती है । लोग उत्पन्न होकर भी मर जाते हैं ॥७॥ हे द्विजों ! सत्ययुग में उत्पन्न होने वाले मनुष्य महाबलवान् अत्यन्त सत्त्वगुण सम्पन्न तथा प्रज्ञा के गुण से युक्त होते हैं ॥८॥ उत्पन्न हुए लोगों में सैकड़ों तथा हजारों लोग बलवान् तथा देखने में सुन्दर होते हैं । उत्पन्न हुए वे लोग मुनि तथा तपस्वी हो जाते हैं ॥९॥ वे लोग महा उत्साह सम्पन्न, धार्मिक और सत्यवादी होते हैं । देखने में सुन्दर शरीर वाले, महापराक्रमी और धनुर्धारी होते हैं ॥१०॥ क्षत्रिय जाति के लोग युद्ध करने में शूरवीर होतें है । त्रेतायुग में सभी क्षत्रिय चक्रवर्ती होते हैं ॥११॥ द्वापरयुग में सभी वर्णों के मनुष्य महा उत्साही, पराक्रमी तथा सदैव एक दूसरे का वध चाहने वाले होते हैं ॥१२॥ हे ब्राह्मणों ! कलियुग में लोग तेज से अन्धे बने हुए, तथा क्रोधी होते हैं । वे लोग भी तथा मृषाभाषी होते हैं ॥१३॥ हे श्रेष्ठ पुरुषों ! कलियुग में लोगों में ईष्या, घमण्ड, क्रोध, माया, असूया, राग तथा लोभ स्वाभाविक रूप से भर जाते हैं ॥१४॥ हे विप्रों ! द्वापर युग में होने वाले गुणों का संक्षेप यही है । हिमवान् वर्ष के मनुष्यों में ये गुण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं । हिमवान् वर्ष के बाद में हरिवर्ष है ॥१५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

आठवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह सत्तम ! ।
विष्कम्भस्य च प्रब्रूहि परिमाणं हि तत्त्वतः ॥१॥
समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शन !। शाकद्वीपं च नो ब्रूहि कुशद्वीपं च धार्मिक ॥२॥
शाल्मलं चैव तत्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च ॥३॥

सूत उवाच

विप्राः सुबहवो द्वीपा यैरिदं सन्ततं जगत् ।
सप्तद्वीपान्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं द्विजपुङ्गवाः ॥४॥
अष्टादशसहस्राणि योजनानि द्विजोत्तमाः। षट् च तानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः॥५॥
लवणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः ।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥६॥
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरूपशोभितः। सिद्धचारणसङ्कीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥७॥
शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह सत्तमाः। शृणुताद्य यथान्यायं ब्रुवतो मम धार्मिकाः ॥८॥
जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स द्विजर्षभाः। विष्कम्भेन महाभागाः सागरोऽपि विभागशः ॥९॥
क्षीरोदो मुनिशार्दूला येन सम्परिवारितः। तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः ॥१०॥
कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते। शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावन्मुनिसत्तमाः ॥
उक्त एष महाभागाः किमन्यत्कथयामि वः ॥११॥

जम्बूद्वीप के विष्कम्भ वर्णन तथा शाकद्वीप का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी ! आपने जम्बूखण्ड का यथावत् वर्णन किया है । अब आप विष्कम्भों का ठीक-ठीक परिमाण बतलायें ॥१॥ आप समुद्र का निश्छिद्र प्रमाण बतलायें । आप हमलोगों को शाकद्वीप, कुशद्वीप ॥२॥ शाल्मलद्वीप तथा क्रौञ्चद्वीप का वर्णन सुनायें । **सूतजी ने कहा—** हे विप्रों ! इस जगत् में अनेक द्वीप हैं । मैं सात द्वीपों का वर्णन करूँगा, उसे आपलोग सुनें ॥३॥ जम्बू पर्वत का विस्तार अठराह हजार छह सौ योजन है ॥४॥ क्षार समुद्र का विस्तार उसके दो गुना है । अनेक जनपदों वाला मणियों तथा विद्रुमों (मूंगों) से मनोहर सिद्धों तथा चारणों से परिपूर्ण सागर का परिमण्डल है ॥६॥ हे द्विजश्रेष्ठों ! अब मैं ठीक-ठीक शकद्वीप का वर्णन सुनाता हूँ । हे धार्मिकों ! मैं उसका यथावत् वर्णन करता हूँ उसे आप लोग सुनें ॥७॥ जम्बूद्वीप की अपेक्षा शाकद्वीप दो गुना विस्तृत है । हे महाभागों विष्कम्भ से उसका सागर विभक्त है ॥८॥ हे महाभागों ! उसके द्वारा क्षीर सागर घिरा हुआ है । वहाँ के जनपद अत्यन्त पवित्र हैं, वहाँ पर रहने वाले मनुष्यों की मृत्यु नहीं होती है ॥९॥ उस द्वीप में कभी दुर्भिक्ष भी नहीं होता है । वहाँ के लोग क्षमा तथा तेज से युक्त हैं । हे मुनिश्रेष्ठों ! मैंने शाकद्वीप का संक्षेप में वर्णन किया । हे महाभागों ! आपलोगों को अब मैं क्या बतलाऊँ ?॥१०॥ **ऋषियों ने कहा—** हे महाभाग ! आपने अभी-अभी शाकद्वीप का संक्षेप में वर्णन किया है, अब आप उसका विस्तृत

ऋषय ऊचुः

शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावदिह धार्मिक !। उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः॥१२॥

सूत उवाच

तथैव पर्वता विप्राः सप्ताऽत्र मणिपर्वताः ।
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि वर्णये ॥१३॥

अतीवगुणवत्सर्वं तत्त्वं पृच्छथ धार्मिकाः । देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते॥१४॥
प्रागायतो महाभागा मलयो नाम पर्वतः। ततो मेघाः प्रवर्त्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः॥१५॥
ततः परेण मुनयो जलधारो महागिरिः। ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्॥१६॥
ततो वर्षं प्रभवति वर्षाकाले द्विजोत्तमाः। उच्चैर्गिरीरैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठितम्॥१७॥
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः। उत्तरेण तु विप्रेन्द्राः श्यामो नाम महागिरिः ॥१८॥
नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः । यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा मुदितमानसाः ॥१९॥

ऋषय ऊचुः

सुमहान्संशयोऽस्माकं प्राप्तोऽयं सूत यत्त्वया ।
प्रजाः कथं सूतसम्यक्सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ॥२०॥

सूत उवाच

सर्वेष्वेव महाप्राज्ञा द्वीपेषु मुनिपुङ्गवाः । गौरः कृष्णश्च पतगस्तयोर्वर्णान्तरे द्विजाः॥२१॥
श्यामो यस्मात्प्रवृत्तो वै तस्माच्छ्यामगिरिः स्मृतः ।
ततः परं मुनिश्रेष्ठा दुर्गशैलो महोदयः ॥२२॥

वर्णन करें ॥११॥ **सूतजी ने कहा—** हे विप्रों ! इस शाक द्वीप में सात मणियों के पर्वत हैं । वहाँ की नदियाँ रत्नों के आकर हैं, मैं उन सबों का नाम बतलाता हूँ ॥१२॥ हे धार्मिकों ! आपलोग अत्यन्त अच्छे तत्त्वों के विषय में प्रश्न करते हैं । उन पर्वतों में जो सुमेरु पर्वत है, वह देवर्षियों तथा गन्धर्वों से युक्त है । वहाँ पर दूसरा मलय नामक पर्वत है । वह अपने अग्रभाग में फैला हुआ है । उसी से मेघ उत्पन्न होते हैं और चलते हैं ॥१४॥ हे मुनियों ! उसके बाद जलधार नामक महापर्वत है । उसीसे इन्द्र सर्वोत्तम जल को लेते हैं ॥१५॥ हे द्विजोत्तमों वर्षाकाल में उसी से वर्षा होती है । वहीं पर रैवत नामक ऊँचा पर्वत प्रतिष्ठित है ॥१६॥ ब्रह्माजी ने द्युलोक में रेवती नक्षत्र को बनाया । हे विप्र श्रेष्ठों! उसके उत्तर में श्याम नामक महापर्वत है ॥१७॥ वह उन्नत है तथा नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण की कान्ति वाला है । उसका ऐश्वर्य सम्पन्न देदीप्यमान शरीर है । उसी के कारण सदा प्रसन्न रहने वाली वहाँ की प्रजायें श्याम वर्ण की हो गयीं है ॥१८॥ **ऋषियों ने कहा—** हे सूतजी ! आपके इस कथन से हमलोगों का अत्यधिक संशय है । सूतजी ! यहाँ की प्रजा कैसे श्याम वर्ण की हो गयी ॥१९॥ **सूतजी न कहा—** हे महाप्राज्ञों ! समस्त द्वीपों में पतग (पक्षी) गौर और कृष्णवर्ण के होते हैं और दोनों से भिन्न वर्ण के भी होते हैं ॥२०॥ किन्तु चूकि इसी पर्वत से श्यामता की प्रवृत्ति हुयी इसलिए इस पर्वत को श्याम गिरि कहते हैं । हे मुनिश्रेष्ठों ! उसके बाद महोदय (अत्यधिक उन्नत) दुर्गगिरि है॥२१॥

केशरीकेशरयुतो यतो वातः प्रवर्त्तते। तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः ॥२३॥
वर्षाणि तेषु विप्रेन्द्राः सम्प्रोक्तानि मनीषिभिः ।
महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरम् ॥२४॥
जलधारो महाप्राज्ञः सुकुमार इति स्मृतः। रेवतस्य तु कौमारः श्यामश्च मणिकाञ्चनः ॥२५॥
केशरस्याऽथ मौदाकी परेण तु महान्पुमान् ।
परिवार्य्य तु विप्रेन्द्रा दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च ॥२६॥
जम्बूद्वीपेन सङ्ख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ।
शाको नाम महाप्राज्ञाः प्रजास्तस्य सहाऽनुगाः ॥२७॥
तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शङ्करः। तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च॥२८॥
धार्मिकाश्च प्रजाः सर्वाश्चत्वारो गतमत्सराः ।
वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते ॥२९॥
दीर्घायुषो महाप्राज्ञा जरामृत्युविवर्जिताः। प्रजास्तत्र विवर्द्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः ॥३०॥
नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधगता। सुकुमारी कुमारी च शीता शीतोदका तथा॥३१॥
महानदी च भो विप्रास्तथा मणिजला नदी ।
इक्षुवर्द्धनिका चैव नदी मुनिवराः स्मृताः ॥३२॥
ततः प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः परमशोभनाः ।
सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः ॥३३॥

केशरी पर्वत केशर से युक्त है। वहीं से वायु चलती है। उन पर्वतों के विष्कभ उनके दो गुना योजन हैं। इन सभी पर्वतों के विष्कम्भ अलग-अलग हैं ॥२२॥ हे विप्रश्रेष्ठों ! उन सबों के वर्षों का वर्णन मुनियों ने किया है। सुमेरु पर्वत के वर्ष महामेरु, महाकाश, जलद, कुमुदोत्तर, जलधार, पर्वत सुकुमार तथा महाप्राज्ञ वर्ष है। रेवत पर्वत के वर्ष हैं— कौमार, श्याम और माणिकाञ्चन ॥२३-२४॥ केशर पर्वत का मौदकी वर्ष है। उसके बाद महान् पुरुष हैं जो उसके दीर्घत्व और ह्रस्वत्व को घेरे हुए है॥२५॥ ये सब जम्बूद्वीप के वर्ष हैं। जम्बूद्वीप के बीच में जामुन का महावृक्ष है। हे महाप्राज्ञ पुरुषों ! शाक द्वीप की प्रजायें उसका अनुसरण करने वाली हैं ॥२६॥ वहाँ के जनपद पुण्यमय हैं, उस द्वीप में शङ्करजी की पूजा होती है। उस द्वीप में सिद्ध, चारण तथा देवगण जाते हैं ॥२७॥ चारो वर्णों की प्रजायें धार्मिक होती हैं तथा द्वेष से रहित होती हैं। वहाँ के सभी लोग अपने वर्णधर्म का पालन करने वाले हैं। वहाँ कोई चोर नहीं है ॥२८॥ वे दीर्घायु, महाप्राज्ञ, जरा तथा मृत्यु से रहित होते हैं। जिसतरह से वर्षाकाल में नदियाँ बढ जाती हैं, उसीतरह से वहाँ की प्रजायें समृद्ध होती हैं ॥२९॥ वहाँ की नदियाँ पवित्र जल वाली हैं। वहाँ गङ्गा की अनेक धारायें हैं। हे मुनिवरों ! सुकुमारी, कुमारी, शीता, शीतोदका॥३०॥ महानदी, मणिजला नदी तथा इक्षुवर्द्धिनी ये सभी शाकद्वीप की मुख्य नदियाँ हैं ॥३१॥ उससे हजारों पवित्र जलवाली नदियाँ निकलती हैं। वे अत्यन्त सुन्दर नदियाँ है। उन सबों की हजारों की संख्या में नदियाँ है। उन सबों से जल लेकर इन्द्र वर्षा करते है ॥३२॥ उन सभी नदियों के नाम न तो स्मरण किये जा सकते हैं, और न तो उनके नामों को गिनाया जा सकता है ॥३३॥ वहाँ के चार पवित्र

न तासां नामधेयानि परिस्मर्तं तथैव च। शक्यन्ते परिसङ्ख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः॥३४॥
ततः पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकविश्रुताः। मृगाश्च मशकाश्चैव मानसा मल्लकास्तथा ॥३५॥
मृगाश्च ब्रह्मभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता द्विजाः। मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ॥३६॥
मानसाश्च महाभागा वैश्यधर्मोपजीविनः । सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः ॥३७॥
शूद्रास्तु मल्लका नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ।
न तत्र राजा विप्रेन्द्रा न दण्डो न च दण्डिकाः ॥३८॥
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्। एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ॥३९॥
एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥४०॥

इति श्रीपद्मपुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे जम्बूद्वीपविष्कम्भपरिमाणं शाकद्वीपवर्णनंनामाष्टोऽध्यायः ॥८॥

नवाँ अध्याय

सूत उवाच

उत्तरेषु च भो विप्रा द्वीपेषु श्रूयते कथा । एवं तत्र महाभागा ब्रुवतस्तन्निबोधत ॥१॥
घृततोयः समुद्रोऽथ दधिमण्डोदकोऽपरः । सुरोदसागरश्चैव तथान्यो दुग्धसागरः॥२॥
परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा द्विजर्षभाः । पर्वताश्च महाप्राज्ञाः समुद्रैः परिवारिताः॥३॥

जनपद लोकप्रख्यात है । उन जनपदों के नाम है मृग, मशक, मल्लक और मानस हैं ॥३४॥ मृग जनपद के लोग ब्रह्म भूयिष्ठ हैं, और अपने कर्म में लगे रहते हैं। मशक जनपद में क्षत्रिय, धार्मिक तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥३५॥ मानस जनपद के लोग वैश्य हैं तथा धर्म के आधार पर जीवित रहने वाले हैं । वे सभी काम्य पदार्थों से सम्पन्न शूर तथा धर्म और अर्थ को निश्चित करने वाले हैं, शूद्र सदा मल्लक है वे भी धार्मिक पुरुष हैं । हे विप्रेन्द्रों ! शाक द्वीप में न तो कोई राजा है, न दण्ड है, न कोई दण्डनीय है औन न तो कोई दण्ड देने वाला है ॥३७॥ वे धर्मज्ञ हैं तथा अपने धर्म से ही परस्पर में रक्षा करते हैं । शाक द्वीप के विषय में इतना ही कहा जा सकता है महा ओजस्वी शाकद्वीप के विषय में इतना ही सुनना चाहिये ॥३८-४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद समपूर्ण हुआ ।।८।।

धृतसागर, दुग्ध सागर आदि का वर्णन तथा अवशिष्ट द्वीपों का विभाग

सूतजी ने कहा— हे विप्रों ! उत्तर दिशा के द्वीपों के विषय में जो कथा सुनी जाती है उसको मैं कह रहा हूँ, उसे आपलोग सुनें ॥१॥ ये उत्तरोत्तर क्रमशः घृतसागर, दधिसागर, सुरासागर तथा दुग्ध सागर से आवृत द्वीप हैं ॥२॥ हे द्विजों ! वे परस्पर में उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्व की अपेक्षा दो गुना विस्तार

गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मनःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णा नारायणसखो द्विजाः ॥४॥
तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रसन्नश्चाभवत्तत्र प्रजानां व्यदधात्सुखम् ॥५॥
शरद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य ह । सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके द्विजाः॥६॥
क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौचो गिरीरत्नचयाकरः । सम्पूज्यते भो विप्रेन्द्राश्चातुर्वर्ण्येन नित्यशः ॥७॥
गोमन्तः पर्वतो विप्राः सुमहान्सर्वधातुकः । यत्र नित्यं निवसति श्रीमान्कमललोचनः॥८॥
मोक्षिभिः सङ्गतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।
कुशद्वीपे तु विप्रेन्द्राः पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥९॥
सुनामा च सुदुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः। द्युतिमान्नाम विप्रेन्द्रास्तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥१०॥
चतुर्थः पुण्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः। षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥११॥
तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः। औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं रेणुमण्डलम् ॥१२॥
तृतीयं सुरथं नाम चतुर्थं लम्बनं स्मृतम् । धृतिमत्पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥१३॥
सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्बकाः । एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च मुदिता द्विजाः ॥१४॥
विहरन्ति रमन्तो च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा द्विजाः ॥१५॥

वाले हैं । हे महाप्राज्ञों ! ये सभी पर्वत समुद्रों से घिरे हैं ॥३॥ इनमें बीच के द्वीप में गौर नामक महान् पर्वत है । उसकी मैनशिल नामक धातु की शिलायें हैं । यह पर्वत पश्चिम दिशा में कृष्ण नारायण का मित्र है । वहाँ पर उस पर्वत के दिव्य रत्नों की रक्षा स्वयं भगवान् केशव करते हैं । वे स्वयं प्रसन्न रहकर प्रजाओं को सुखी बनाये हुए हैं ॥४-५॥ शरद्वीप में जनपद के बीच कुश का स्तम्ब पूजित होता है । शाल्मलि द्वीप के मध्य में शाल्मलि (सेमर) की पूजा होती है ॥६॥ क्रौञ्च द्वीप में रत्न समूह के आकर (खजाना) रूपी महाक्रौञ्च गिरि की पूजा होती है । हे विप्रश्रेष्ठों ! इस पर्वत की पूजा चारो वर्णो के लोग करते हैं । यह पर्वत मुक्ति प्रदान करने वाला है ॥७॥ हे विप्रों ! गोमन्त पर्वत सभी प्रकार के धातुओं से परिपूर्ण है । वहाँ कमलनयन भवगान् श्रीहरि नित्य ही निवास करते हैं ॥८॥ वहाँ पर श्रीभगवान् के साथ मुक्त पुरुष रहा करते हैं । हे विप्रश्रेष्ठों ! कुशद्वीप विद्रुमों (मूंगों) से भरा हुआ है। यह द्वितीय सुवर्ण पर्वत है तथा यह दुर्घर्ष है । इसका नाम द्युतिमान पर्वत है । यहाँ का तीसरा पर्वत कुमुद गिरि है ॥९-१०॥ चौथे पर्वत का नाम पुष्पवान् है । इस कुशद्वीप के पाँचवें पर्वत का नाम कुशेशय है । छठे पर्वत का नाम हरिगिरि है । इसतरह से कुशद्वीप के छह पर्वत हैं ॥११॥ उनके बीच का जो विष्कम्भ (अन्तराल) है, पृथक्-पृथक् एक के अपेक्षा दो गुना है । कुशद्वीप का पहला वर्ष औद्भिद है, दूसरे वर्ष का नाम परिमण्डल है ॥१२॥ तीसरे का नाम सुरथ है और चौथे वर्ष का नाम लम्बन है । पाञ्चवें वर्ष का नाम घृतिमान् है और छठे वर्ष का नाम प्रभाकर वर्ष है ॥१३॥ सातवें वर्ष का नाम कापिल है । ये सातो वर्ष लम्बे हैं । हे द्विजों ! इन वर्षों की प्रजायें देवगन्धर्व जाति की हैं और ये सदा प्रसन्न रहती हैं । वे सदा विहार एवं रमण करते हैं, उनमें से कोई मरता नहीं है ॥१४॥ हे

गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च सत्तमाः। अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि द्विजपुङ्गवाः ॥१६॥
यथाश्रुतं महाप्राज्ञा वर्ण्यते शृणुत द्विजाः। क्रौञ्चद्वीपे महाभागाः क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥१७॥
क्रौञ्चात्परो वामनको वामनादन्धकारकः। अन्धकारात्परो विप्रा मैनाकः पर्वतोत्तमः ॥१८॥
मैनाकात्परो विप्रा गोविन्दो गिरिरुत्तमः। गोविन्दात्परतश्चैव पुण्डरीको महागिरिः ॥१९॥
पुण्डरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः। पुरस्ताद्द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो मुनिपुङ्गवाः ॥२०॥
देशांस्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु। क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः॥२१॥
मनोऽनुगात्परो देश उष्णो नाम तपोधनाः। उष्णात्परः प्रावरकः प्रावरादन्धकारकः ॥२२॥
अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः। मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ॥२३॥
सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरः प्रायो जनः स्मृतः।
एते देशाः समाख्याता देवगन्धर्वसेविताः ॥२४॥
पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान्। तत्र नित्यं प्रसरति स्वयं देवः प्रजापतिः ॥२५॥
पर्युपासन्ति तं नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः। वाग्भिर्मनोऽनुकूलाभिः पूजयन्ति द्विजोत्तमाः ॥२६॥
जम्बूदीपात्प्रवर्त्तन्ते रत्नानि विविधानि च। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां मुनिसत्तमाः ॥२७॥
विप्राणां ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च। आरोग्यायुष्प्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥२८॥
एते जनपदा विप्रा द्वीपेषु तेषु सत्तमाः। उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रवर्त्तते ॥२९॥

द्विजों ! इन वर्षों में न तो कोई लुटेरा है और न तो कोई म्लेच्छ जाति का है। यहाँ के सभी लोग प्रायः गोरे वर्ण के हैं और सुकुमार हैं ॥१५॥ हे महाप्राज्ञों ! अवशिष्ट द्वीपों का भी वर्णन मैं वैसा ही करूँगा जैसा कि मैंने उन द्वीपों के विषय में सुना है। आपलोग उसे सुनें ॥१६॥ क्रौञ्च द्वीप में क्रौञ्च नामक महान् पर्वत है। क्रौञ्च के बाद वामनक पर्वत है और वामनक के बाद अंधक पर्वत है ॥१७॥ हे विप्रों ! अन्धकार पर्वत के बाद मैनाक पर्वत है। मैनाक पर्वत के बाद गोविन्द पर्वत है ॥१८॥ गोविन्द पर्वत के पश्चात् पुण्डरीक नामक महा पर्वत है। पुण्डरीक पर्वत के पश्चात् दुन्दुभिस्वन नामक पर्वत है ॥१९॥ हे मुनिश्रेष्ठों ! उन सबों के आगे विस्कम्भ है। वहाँ पर विद्यमान देशों का मैं वर्णन करता हूँ उसे आपलोग सुनें ॥२०॥ हे तपोधनों ! क्रौञ्च पर्वत के देश का नाम कुशल है, वामन पर्वत के देश का नाम मनोनुग है। मनोनुग के बाद विद्यमान देश का नाम उष्ण है ॥२१॥ उष्ण देश के बाद प्रावरक देश है प्रावरक देश के बाद अन्धकारक देश है। अन्धकारक देश के बाद मुनि देश है॥२२॥ मुनि देश के बाद दुन्दुभिस्वन नामक देश है। उसके बाद प्रायोजन देश है जहाँ सिद्धों एवं चारणों का निवास है ॥२३॥ ये देश जो बतलाये गये हैं, उनमें सिद्धों तथा गन्धर्वों का निवास है। पुष्कर देश में मणियों और रत्नों से भरा हुआ पुष्कर पर्वत है ॥२४॥ वहाँ पर स्वयं प्रजापति का निवास है। वहाँ पर प्रजापति की उपासना सभी देवता और गन्धर्व करते हैं ॥२५॥ वे अपने मनोऽनुकूल वाणियों से प्रजापति की पूजा करते हैं। जम्बूद्वीप से अनेक प्रकार के रत्न उत्पन्न होते हैं ॥२६॥ हे मुनिश्रेष्ठों! उन सभी द्वीपों में प्रजाओं तथा विप्रों के सत्य, ब्रह्मचर्य और दम (आभ्यन्तरेन्द्रियों को वश में रखने के गुण) के द्वारा क्रमशः एक की अपेक्षा बाद बाद वाले द्वीपों में आरोग्य तथा आयु का प्रमाण दो-दो गुना ज्यादा हो जाता है। हे विप्रों ! उन द्वीपों के ये श्रेष्ठ जनपद हैं ॥२७-२८॥ जो जनपद जिस

ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः। द्वीपानेतान्मुनिवरा रक्षंस्तिष्ठति सर्वदा ॥३०॥
स राजा स शिवो विप्राः स पिता स पितामहः ।
गोपायति द्विजश्रेष्ठा प्रजा स द्विजपण्डिताः ॥३१॥
भोजनं चात्र विप्रेन्द्राः प्रजाः स्वयमुपस्थितम् ।
सिद्धमेव महाभागा भुञ्जते तद्धि नित्यशः॥३२॥
ततः परं महाशैलो दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
चतुरस्रो महाप्राज्ञः सर्वतः परिमण्डलः ॥३३॥
तत्र तिष्ठन्ति विप्रेन्द्राश्चत्वारो लोकसंमताः ।
दिग्गजा हि मुनिश्रेष्ठा वामनैरावताञ्जनाः ॥३४॥
सुप्रतीकस्तथा विप्राः प्रभिन्नकरटामुखाः। तस्येह परिमाणं न सङ्ख्यातुमहमुत्सहे ॥३५॥
असङ्ख्यातः सुनित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्यः एव च ॥३६॥
असम्बन्धा मुनिश्रेष्ठास्तान्निगृह्णन्ति ते गजा। पुष्करैः पद्मसङ्काशैर्विकर्षन्ति महाप्रभैः ॥३७॥
शतधा पुनरेवाशु ते तान्मुञ्चन्ति नित्यशः। श्वसद्भिर्मुखनासाभ्यां दिग्गजैरिवमारुतः॥३८॥
आगच्छन्ति द्विजश्रेष्ठास्तत्र तिष्ठन्ति वै प्रजाः ।
यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥३९॥
श्रुत्वेदं पृथिवीमानं पुण्यदं च मनोऽनुगम्। श्रीमांस्तरति विप्रेन्द्राः सिद्धार्थः साधुसंमतः ॥४०॥

द्वीप में बतलाये गये हैं उन सबों में एक ही प्रकार का धर्म है । उन जनपदों में स्वयं प्रजापति दण्ड धारण करके उन सबों का नियमन करते हैं ॥२९॥ प्रजापति ही उन द्वीपों की रक्षा करते हैं । हे विप्रों! वे ही राजा, शिव, पिता और पितामह हैं ॥३०॥ वे ही सारी प्रजाओं, पण्डितों तथा द्विजों की रक्षा करते हैं । हे विपेन्द्रों ! यहाँ पर सारी प्रजाएँ अपने आप उपस्थित सिद्ध भोजन को करते हैं । प्रजापति नित्य ही उस भोज को उन्हें प्रदान करते हैं । हे विप्रेन्द्रों ! वहाँ पर चार प्रकार के लोक सम्मत दिग्गज हैं ॥३१-३३॥ वामन, ऐरावत, अंजन तथा सुप्रतीक । उनके करट (गाल) और मुख भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं ॥३४॥ उन जनपदों के परिमाण की गणना मैं नहीं कर सकता हूँ । वह तिरक्षा ऊपर तथा नीचे की ओर असंख्यात है ॥३५॥ वहाँ पर सभी दिशाओं से हवाएँ चलती हैं । हे मुनिश्रेष्ठों उन सबों का परस्पर में कोई सम्बन्ध नहीं होता है । उन सबों को नियमित करने का काम वहाँ के ब्राह्मण करते हैं ॥३६॥ वे कमल के सदृश अत्यन्त कान्ति सम्पन्न पुष्करों के द्वारा अनेक प्रकार से उनको आकर्षित करने का काम करते हैं और वे उन हवाओं को शीघ्र ही छोड़ देते हैं ॥३७॥ मानों दिग्गज्ज अपनी नाक तथा मुख से श्वास ले रहे हों । इसी प्रकार की हवायें वहाँ आती हैं; जहाँ पर प्रजायें रहती हैं॥३८॥ इस जगत् का निर्माण आदि जैसे बतलाया गया है, उसका वर्णन मैंने किया इस पृथिवी के पुण्यप्रद तथा मनोऽनुकूल प्रमाण को सुनकर मनुष्य ऐश्वर्य सम्पन्न हो जाता है तथा संसार सागर को पार कर जाता है । उस साधु सम्मत पुरुष के सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं । उसकी आयु, बल तथा कीर्ति

आयुर्बलं च कीर्त्तिश्च तस्य तेजश्च बर्द्धते। यः श्रृणोति समाख्यानं पर्वणीदं धृतव्रतः ॥४१॥
प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे घृततोयसमुद्रप्रभृतिसर्वावशिष्टद्वीपविभागवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

पृथिव्या हि परीमाणं संस्थानं सरितस्तथा ।
त्वत्तः श्रुत्वा महाभाग अमृतं पीतमेव च ॥१॥
तत्र भूमौ च तीर्थानि पावनानीति नः श्रुतम् ।
आचक्ष्व तानि सर्वाणि यथाफलकराणि च ॥२॥
सविशेषं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामहे तव ॥३॥

सूत उवाच

धन्यं पुण्यं महाख्यानं पृष्टमेव तपोधनाः । यथामति प्रवक्ष्यामि यथायोगं यथाश्रुतम् ॥४॥
पुरा वृत्तं प्रवक्ष्यामि देवर्षेर्नारदस्य हि। युधिष्ठिरेण संवादं श्रृणुत द्विजसत्तमाः ॥५॥
हतराज्याः पाण्डुपुत्रा वने तस्मिन्महारथाः। निवसन्ति महाभागा द्रौपद्या सह पाण्डवाः ॥६॥

की वृद्धि होती है ॥३९-४०॥ पर्व के अवसर पर व्रत धारण करके इस आख्यान को जो सुनता है उसके पितृ पितामहगण प्रसन्न हो जाते हैं ॥४१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

पृथिवी के तीर्थों और उनके माहात्म्य का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे महाभाग ! आप से पृथिवी के परिमाण तथा नदियों के संस्थान को सुनकर हमलोगों ने मानो अमृत का पान कर लिया ॥१॥ पृथिवी पर विद्यमान अनेक पवित्र तीर्थ हैं, इस तरह से हमलोगों ने सुना है । उन सबों का आप उनसे प्राप्त होने वाले फलों के साथ वर्णन करें । हे महाप्राज्ञ! इस बात को हमलोग विशेष रूप से आपसे सुनना चाहते हैं ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** हे तपोधनों! आपलोगों ने धन्य तथा पवित्र महाख्यान को पूछा है, मैंने इसे जिस प्रकार से श्रवण किया है, उसका उसी प्रकार से अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करता हूँ ॥३-४॥ हे द्विजसत्तमों ! मैं आपलोगों को नारद और युधिष्ठिर के प्राचीन संवाद को सुनाता हूँ ॥५॥ जिस समय पाण्डवों के राज्य का अपहरण हो गया था उस समय सभी पाण्डव द्रौपदी के साथ वन में निवास कर रहे थे ॥६॥ उनलोगों ने वहाँ

अथापश्यन्महात्मानं देवर्षिं तत्र नारदम् । दीप्यमानं श्रिया ब्राह्म्या दीप्ताग्निसमतेजसम् ॥७॥

स तैः परिवृतः श्रीमान्भ्रातृभिः कुरुनन्दनः ।
दिवि भाति हि दीप्तौजा देवैरिव शतक्रतुः ॥८॥
यथा च देवान्सावित्री याज्ञसेनी तथा पतीन् ।
न जहौ धर्मतः पार्थान्मेरुमर्कप्रभा यथा ॥९॥

प्रतिगृह्य ततः पूजां नारदो भगवानृषिः । आश्वासयद्धर्मपुत्रं युक्तरूपप्रियेण च ॥१०॥
उवाच च महात्मानं धर्मराजं युधिष्ठिरम् । ब्रूहि धर्म्मभृतां श्रेष्ठ किं प्रार्थ्यं हि ददामि ते ॥११॥

अथ धर्मसुतो राजा प्रणम्य भ्रातृभिः सह ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं नारदं देवसंमितम् ॥१२॥

त्वयि तुष्टे महाभाग सर्वलोकाभिपूजिते । कृतमित्येव मन्ये हि प्रसादात्तव सुव्रत ! ॥१३॥
यदि त्वहमनुग्राह्यो भ्रातृभिःसहितोऽनघ ! । सन्देहं मे मुनिश्रेष्ठ हृत्स्थं त्वं छेत्तुमर्हसि॥१४॥
प्रदक्षिणां यः कुरुते पृथिवीं तीर्थतत्परः । किं फलं तस्यकात्स्न्येंन तद्ब्रह्मन्वक्तुमर्हसि ॥१५॥

नारद उवाच

श्रृणुराजन्नवहितो दिलीपेन यथा पुरा । वसिष्ठस्य सकाशाद्वै सर्वमेतदुपश्रुतम् ॥१६॥
पुरा भागीरथी तीरे दिलीपो राजसत्तमः । धर्म्यं व्रतं समास्थाय न्यवसन्मुनिवत्तदा ॥१७॥
शुभे देशे महराज पुण्ये देवर्षिपूजिते । गङ्गाद्वारे महातेजा देवगन्धर्वसेविते॥१८॥

पर आये हुए ब्राह्मी श्री से सम्पन्न तथा देदीप्यमान अग्नि के समान तेजस्वी देवर्षि नारद को देखा ॥७॥ उस समय अपने भाइयों से घिरे हुए कुरुनन्दन युधिष्ठिर उसीतरह से सुशोभित हो रहे थे जिसतरह स्वर्गलोक में देवताओं से घिरे हुए इन्द्र सुशोभित होते हैं ॥८॥ जिस तरह देवताओं का साथ कभी सावित्री नहीं छोड़ती हैं उसी तरह यागसेनी ने भी अपने पतियों का साथ नहीं छोड़ा । अथवा जैसे सूर्य की प्रभा सुमेरु पर्वत का त्याग नहीं करती है, उसी तरह द्रौपदी ने पाण्डवों का साथ नहीं छोड़ा ॥९॥ उसके बाद पाण्डवों के द्वारा की गयी पूजा को स्वीकार करके देवर्षि नारद ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर को उनके स्वरूपानुरूप प्रिय वाक्यों से आश्वासन प्रदान किया ॥१०॥ उन्होंने महात्मा धर्मराज युधिष्ठिर से कहा— हे धार्मिकों में श्रेष्ठ! आपको क्या अभिप्रेत है ? उसे आपको मैं प्रदान करना चाहता हूँ ॥११॥ उसके बाद अपने भाइयों के साथ प्रणाम करके धर्मराज युधिष्ठिर हाथ जोड़कर देवतुल्य नारदजी से कहें ॥१२॥ हे महाभाग! आप सम्पूर्ण लोकों में पूजित हैं । आपके प्रसन्न होने से मैं यह समझता हूँ कि मुझको सब कुछ प्राप्त हो गया ॥१३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे भाइयों के साथ मुझपर यदि आपकी कृपा है, तो मेरे हृदय में जो सन्देह बना हुआ है उस सन्देह को आप दूर करें ॥१४॥ जो मनुष्य तीर्थों में जाते हुए पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है, उसको कौन सा फल प्राप्त होता है ? इस बात को आप मुझे पूर्ण रूप से बतलायें॥१५॥

नारदजी ने कहा— हे राजन् ! आप सावधान होकर सुनें । प्राचीन काल में महाराज दिलीप ने जिस तरह महर्षि वसिष्ठ की सन्निध में इन सारी बातों को सुना था उसे मैं बतलाता हूँ ॥१६॥ प्राचीनकाल में भागीरथी के तट पर राजाओं में श्रेष्ठ महाराज दिलीप धर्म्यव्रत को धारण करके मुनियों के समान निवास कर रहे थे ॥१७॥ हे महाराज ! देवर्षियों के द्वारा पूजित, शुभ तथा पवित्र देवताओं और गन्धर्वों

सपितृंस्तर्पयामास देवांश्च परमद्युतिः । ऋषींश्च तर्पयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१९॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य जपन्नेव महामनाः । ददर्श भूतसङ्काशं वसिष्ठमृषिमुत्तमम्॥२०॥

पुरोहितं स तं दृष्ट्वा दीप्यमानमिव श्रिया ।
प्रहर्षमतुलं लेभे विस्मयं परमं ययौ ॥२१॥

उपस्थितं महाराज पूजयामास भारत। स हि धर्म्मभृतां श्रेष्ठो विधिदृष्टेन कर्मणा॥२२॥
शिरसा चार्घ्यमादाय शुचिः प्रयतमानसः । नाम सङ्कीर्त्तयामास तस्मिन्ब्रह्मर्षिसत्तमे ॥२३॥

दिलीपोऽहं तु भद्रं ते दासोऽस्मि तव सुव्रत ।
तव सन्दर्शनादेव मुक्तोऽहं सर्वकिल्बिषैः ॥२४॥
एवमुक्त्वा महाराजो दिलीपो द्विपदां वरः ।
वाग्यतः प्राञ्जलिर्भूत्वा तूष्णीमासीद्युधिष्ठिर ॥२५॥
तं दृष्ट्वा नियमेनाऽथ स्वाध्यायेन च कर्शितम् ।
दिलीपं नृपतिश्रेष्ठं मुनिः प्रीतमनाभवत् ॥२६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे पृथिवीस्थतीर्थवर्णनं दिलीपस्य वशिष्टेन सह समागमकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

से सेवित गङ्गाद्वार तीर्थ में महातेजस्वी दिलीप ने देवताओं तथा पितरों का तर्पण किया । उन्होंने शास्त्रीय विधि से ऋषियों का तर्पण किया ॥१८-१९॥ कुछ देर तक जप करते हुए उन्होंने भूत के समान ऋषियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ महर्षि को देखा ॥२०॥ ऐश्वर्य सम्पन्न देदीप्यमान अपने पुरोहित को देखकर वे बहुत अधिक प्रसन्न हुए और अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥२१॥ उन्होंने उपस्थित महर्षि वसिष्ठ की सविधि पूजा की क्योंकि महाराज दिलीप धार्मिकों में श्रेष्ठ थे । उन्होंने अपने शिर पर अर्घ्य धारण करके पवित्र तथा सावधान मन से उन महर्षि के समक्ष अपने नाम का उच्चारण किया ॥२२-२३॥ हे सुव्रत ! मैं आपका दास दिलीप हूँ, आपका दर्शन पाकर मैं सभी पापों से रहित हो गया ॥२४॥ हे युधिष्ठिर ! मनुष्यों में श्रेष्ठ महाराज दिलीप इसतरह से कहकर चुप हो गये और हाथ जोड़कर महर्षि वशिष्ठ के समक्ष खड़े हो गये ॥२५॥ नियम का पालन करने तथा स्वाध्याय करने के कारण कृष बने हुए महाराज दिलीप को देखकर महर्षि वशिष्ठ प्रसन्न हो गये ॥२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

वसिष्ठ उवाच

अनेन तव धर्मज्ञ ! प्रश्रयेण दमेन च। सत्येन च महाभाग ! तुष्टोऽस्मि तव सर्वशः ॥१॥
यस्येदृशस्ते धर्मोऽयं पितरस्तारितास्त्वया । तेन पश्यसि मां पुत्र याज्यश्चासि ममानघ ॥२॥
प्रीति में वर्द्धते तेऽद्य ब्रूहि किं करवाणि ते ।
यद्वक्ष्यसि नरश्रेष्ठ ! तस्य दाताऽस्मि तेऽनघ ॥३॥

दिलीप उवाच

वेदवेदाङ्गतत्वज्ञ सर्वलोकाभिपूजित । कृतमित्येव मन्ये हि यदहं दृष्टवान्प्रभुम् ॥४॥
यदित्वहमनुग्राह्यस्तव धर्मभृतां वर । प्रक्ष्यामि हृत्स्थं सन्देहं तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥५॥
अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थे यो धर्मसंशयः। तदहं श्रोतुमिच्छामि पृथक्सङ्कीर्तनं त्वया॥६॥
प्रदक्षिणां यः पृथिवीं करोति द्विजसत्तम । किं फलं तस्य विप्रर्षे ! तन्मे ब्रूहि तपोधन॥७॥

वसिष्ठ उवाच

कथयिष्यामि तदहमृषीणां मत्परायणम्। तदेकाग्रमनास्तात शृणु तीर्थेषु यत्फलम्॥८॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयुतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥९॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः। अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१०॥
अकल्किको निराहारोऽलब्धाहारो जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वदोषैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥११॥

महर्षि वसिष्ठ का राजा दिलीप को पुष्कर तीर्थ की महिमा सुनाना

महर्षि वसिष्ठ ने कहा— हे महाभाग धर्मज्ञ ! आपके इस नियम, दम तथा सत्य के कारण मैं पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हूँ ॥१॥ हे राजन् ! आपने इस तरह से धर्म का पालन करके अपने पितरों का उद्धार कर दिया है इसी कारण तुम मेरा दर्शन कर सके हो तुम मेरी पूजा करने के योग्य हो ॥२॥ तुमको देखकर मेरी प्रसन्नता बढ रही है, बतलाओ मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ । तुम जो कहोगे मैं तुम्हें वही प्रदान करूँगा ॥३॥ **दिलीप ने कहा—** हे वेदों तथा वेदाङ्गों के तत्त्वों को जानने वाले! हे सम्पूर्ण संसार से पूजित प्रभो ! मैं आपका दर्शन ही पाकर अपने को धन्य मानता हूँ ॥४॥ हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं अपने हृदय में विद्यमान एक प्रश्न पूछता हूँ; आप उसका निराकरण कर दें ॥५॥ हे भगवन् ! मुझे तीर्थो के विषय में एक संशय है; मैं चाहता हूँ कि आप उसे मुझे अलग से बतला दें ॥६॥ हे विप्रर्षे ! जो कोई पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है, उसको कौन सा फल प्राप्त होता है ? हे तपोधन ! आप इसे ही मुझे बतलायें ॥७॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे तात ! हे मेरे और ऋषियों के आश्रय स्वरूप राजन् ! आपको मैं बतलाता हूँ; आप सावधानी पूर्वक सुनें कि तीर्थों में कौन सा फल होता है ॥८॥ तीर्थों का फल वही व्यक्ति प्राप्त करता है, जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति अत्यन्त संयमित होते हैं, वही तीर्थों का फल प्राप्त करता है ॥९॥

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥१२॥

ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवेष्वपि यथाक्रमम् ।
फलं चैव यथातत्त्वं प्रेत्य चेह च सर्वशः ॥१३॥
न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ।
बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः ॥१४॥

प्राप्यन्ते पार्थिवैरेते समृद्धैर्वा नरैःक्वचित् । न निर्धनैर्नरगणैरेकात्मभिरसाधनैः ॥१५॥

यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं जनेश्वर ।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तं निबोध महीपते ॥१६॥

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं धर्म्मभृतां वर ! । तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ॥१७॥
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थाभिगमनेन च । अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ॥१८॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः । न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्॥१९॥
नृलोके देवलोकस्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। पुष्करं तीर्थमासाद्य देवदेवसमो भवेत्॥२०॥
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीपते ! । सान्निध्यं पुष्करे येषां त्रिसन्ध्यं सूर्यवंशज ॥२१॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च समरुद्गणाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव तत्र सन्निहिताः प्रभो ! ॥२२॥

जो किसी तरह का दान तीर्थों में नहीं लेता है; सदा सन्तुष्ट और पवित्र रहने वाला, तथा अहङ्कार से रहित रहने वाला होता है, वह तीर्थ का फल प्राप्त करता है ॥१०॥ जो किसी से कलह नहीं करता है, निराहार, आहार को नहीं लेने वाला, जितेन्द्रिय तथा सभी दोषों से रहित जो होता है, वह तीर्थ का फल प्राप्त करता है ॥११॥ हे राजेन्द्र ! जो क्रोध नहीं करता है, सत्य का पालन करता है, अपने नियम का दृढता पूर्वक पालन करता है, तथा अपने ही समान सभी जीवों के प्रति जो व्यवहार करता है, वह तीर्थों के फल को प्राप्त करता है ॥१२॥ ऋषियों ने तत्-तत् देवताओं के क्रमानुसार यज्ञों को बतलाया है और उन यज्ञों का इस लोक में तथा परलोक में प्राप्त होने वाले फलों को भी बतलाया है ॥१३॥ हे महीपते ! उन यज्ञों को दरिद्र व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि यज्ञों के लिए बहुत अधिक उपकरणों तथा सामग्रियों की आवश्यकता होती है ॥१४॥ इन यज्ञों को कोई राजा अथवा सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है, किन्तु जो अकेले हैं तथा निर्धन हैं, ऐसे मनुष्य इन यज्ञों को नहीं कर सकते हैं ॥१५॥ हे जनेश्वर ! जिस विधि को दरिद्र व्यक्ति भी कर सकते हैं और जिस विधि का फल यज्ञ के फल के ही समान होता है, उसे मैं बतलाता हूँ, उसे आप सुनें ॥१६॥ हे धार्मिकों में श्रेष्ठ राजन्! तीर्थों में गमन करना ऋषियों के लिए भी गोपनीय है और तीर्थाटन का फल यज्ञों के फल से अधिक होता है ॥१७॥ वह मनुष्य जो दरिद्र होता है जो तीन रात्रियों तक उपवास किए बिना ही तीर्थों में जाता है, और तीर्थों में जाकर भी सुवर्ण तथा गौ का दान नहीं करता है ॥१८॥ अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने से भी उस फल की प्राप्ति नहीं होती है जिस फल की प्राप्ति तीर्थ में जाने से होती है ॥१९॥ मनुष्यलोक तथा देवलोक में विख्यात पुष्कर तीर्थ है । उस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य श्रीभगवान् के समान हो जाता है ॥२०॥ हे सूर्यवंशी राजन् दिलीप ! पुष्कर तीर्थ में सदैव तीनों कालों में दश हजार

यत्र देवा तपस्तप्त्वा दैत्या ब्रह्मर्षयस्तथा । दिव्ययोगा महाराज पुण्येन महता द्विजाः ॥२३॥
मनसाऽप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनीषिणः। पूजयन्ते सर्वपापानि नाकपृष्टे च पूज्यते ॥२४॥
अस्मिंस्तीर्थे महाभाग ! नित्यमेव पितामहः ।
उवास परमप्रीतो देवदानवसंमतः ॥२५॥
पुष्करेषु महाभाग ? देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
सिद्धिं परमिकां प्राप्ताः पुण्येन महताऽन्विताः ॥२६॥
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः । अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२७॥
अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः । तेनैति पूजितांल्लोकान्ब्रह्मणः सदने स्थितान् ॥२८॥
सायं प्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः ।
उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थेषु पार्थिव ॥२९॥
जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
पुष्करे गतमात्रस्य सर्वमेव प्रणश्यति ॥३०॥
यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु मधुसूदनः । तथैव पुष्करो राजंस्तीर्थानामादिरुच्यते॥३१॥
उष्ट्वा द्वादशवर्षाणि पुष्करे नियतः शुचिः ।
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥३२॥
यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निमहोत्रमुपाचरेत्। कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव तत्॥३३॥
दुष्करं पुष्करे गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः। दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम्॥३४॥

करोड़ तीर्थों का सन्निधान बना रहता है ॥२१॥ वहाँ आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, साध्यगणों, मरुद्गणों, गन्धर्वां तथा अप्सराओं का सन्निधान रहता है ॥२२॥ उस पुष्कर तीर्थ में देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षिगण तपस्या करके महान् पुण्य के कारण दिव्य योग को प्राप्त कर लिए ॥२३॥ जो मनुष्य मन से भी पुष्कर जाने की कामना करते हैं, वे सभी पापों से रहित हो जाते हैं और देवलोक में पूजित होते हैं ॥२४॥ हे महाभाग ! पुष्करतीर्थ में देवों तथा दानवों के सम्मत देव ब्रह्मा सदैव प्रेम पूर्वक निवास करते हैं ॥२५॥ हे महाभाग ! तीनों पुष्करों में देवताओं तथा ऋषियों ने अत्यधिक पुण्य को प्राप्त करके परमासिद्धि को प्राप्त किए हैं ॥२६॥ देवताओं तथा पितरों की पूजा करने वाला जो व्यक्ति पुष्कर तीर्थ में स्नान करता है उसको अश्वमेध यज्ञ करने के दश गुना अधिक फल प्राप्त होता है ॥२७॥ जो व्यक्ति पुष्कर तीर्थ में एक ब्राह्मण को भी भोजन कराता है, वह उसके कारण ब्रह्मलोक में विद्यमान पूजित लोकों में जाता है ॥२८॥ जो सायंकाल तथा प्रातःकाल हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता है हे राजन् ! उसको सभी तीर्थों में आचमन करने का फल प्राप्त होता है ॥२९॥ किसी स्त्री अथवा पुरुष ने जीवनभर जिन पापों को किया है, वे सभी पाप पुष्कर जाने मात्र से ही विनष्ट हो जाते हैं ॥३०॥ हे राजन् ! जिसतरह सभी देवताओं में भगवान् मधुसूदन प्रथम हैं, उसीतरह सभी तीर्थों में पुष्करतीर्थ आदि तीर्थ है ॥३१॥ जो व्यक्ति पुष्करतीर्थ में नियम पूर्वक पवित्रता का पालन करते हुए बारह वर्ष तक निवास करता है, वह सभी यज्ञो के करने का फल प्राप्त करता है और अन्त में ब्रह्मलोक में जाता है ॥३२॥ सौ वर्षों तक अग्निहोत्र की उपासना करके कोई भी जिस फल को प्राप्त करता है उस फल की प्राप्ति पुष्कर

त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्कराण्यादितीर्थानि न विद्मस्तत्र कारकम् ॥३५॥
उष्ट्वा द्वादश वर्षाणि नियतो नियताशनः। समुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वक्रतुफलं लभेत् ॥३६॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे पुष्करतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

वसिष्ठ उवाच

प्रदक्षिणमुपावृत्तो जम्बूमार्गे समाविशेत्। जम्बूमार्गं समाविश्य पितृदेवर्षिपूजितम् ॥१॥
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति। तत्रोष्य रजनीः पञ्च षष्ठे कालेऽश्नुवन्नरः ॥२॥
न दुर्गतिमवाप्नोति सिद्धिं चाऽऽप्नोत्यनुत्तमाम् ।
जम्बूमार्गादुपावृत्तो गच्छेत्तु दुलिकाश्रमम् ॥३॥
न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गलोके च पूज्यते । अगस्त्याश्रममासाद्य पितृदेवार्चने रतः ॥४॥
त्रिरात्रोपोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् । शाकवृत्तिः फलैर्वापि कौमारं विन्दते परम् ॥५॥

में केवल कार्तिक पूर्णिमा के दिन रात्रि में निवास करने मात्र से हो जाती है ॥३३॥ पुष्कर में जाना दुष्कर है, पुष्कर में तपस्या करना दुष्कर हैं, पुष्कर में जाकर दान करना दुष्कर है और पुष्कर में निवास करना दुष्कर है ॥३४॥ पुष्कर में तीन शिखर पवित्र हैं, तीन झरने पवित्र हैं और तीन ही पुष्कर तीर्थ हैं, उसके कारण का कोई भी पता नहीं है ॥३५॥ जो पुष्कर में नियमित रूप से निवास करता है और नियत मात्रा में भोजन करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर सभी यज्ञों के फल को प्राप्त कर लेता है ॥३६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तीसरे स्वर्गखण्ड के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

वसिष्ठ महर्षि ने कहा— जम्बूमार्ग की यात्रा करने वाले का प्रदक्षिण क्रम से यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए। यह जम्बूमार्ग पितरों तथा देवताओं से पूजित है ॥१॥ जम्बूमार्ग की यात्रा करने वाला अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है और वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । जो पुरुष पाँच रात्रियों तक यहाँ निवास करके छठे दिन भोजन करता है ॥२॥ उसकी कभी दुर्गति नहीं होती है और वह सर्वोत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है । जम्बूमार्ग की यात्रा करके दुलिकाश्रम में जाना चाहिए ॥३॥ ऐसा करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है, वह स्वर्गलोक में जाता है । यहाँ के अगस्त्याश्रम में जाकर जो पितरों तथा देवताओं की पूजा करता है ॥४॥ और वहाँ पर तीन रात्रियों तक उपवास करता है वह अग्निष्टोम

कन्याश्रमं समासाद्य श्रीपुष्टं लोकपूजितम्। धर्मारण्यं हि तत्पुण्यमाद्यं च पार्थिवर्षभ !॥६॥

यत्र प्रविष्टमात्रो वै पापेभ्यो विप्र ! मुच्यते ।

अर्चयित्वापि तान्देवान्प्रयतो नियताशनः ॥७॥

सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते। प्रादक्षिण्यं ततः कृत्वा ययातिपतनं व्रजेत् ॥८॥

हयमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति तत्र वै। महाकालमतो गच्छेन्नियतो नियताशनः॥९॥

कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत्। ततो गच्छेत् धर्मज्ञ स्थानं तीर्थमुमापतेः ॥१०॥

नाम्ना भद्रवटं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। तत्राभिगम्य चेशानं गोसहस्रफलं लभेत् ॥११॥

महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यमवाप्नुयात्। समृद्धमसपत्नं तु श्रियायुक्तं नरोत्तम॥१२॥

नर्मदां तु समासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम्। तर्पयित्वा पितृन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥१३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानातीर्थाश्रममाहात्म्यकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

याग करने का फल प्राप्त करता है । शाक अथवा फलों से निर्वाह करने वाला कौमार व्रत के फल को प्राप्त कर लेता है ॥५॥ कन्याश्रम में जाकर श्रीसम्पन्न तथा लोकपूजित धर्मारण्य में जाना चाहिए। वह अत्यन्त पवित्र अरण्य है । हे विप्र ! धर्मारण्य में जाने मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । वहाँ निश्चित मात्रा में भोजन करके सप्रयास पितरों तथा देवताओं की अर्चना करनी चाहिए ॥७॥ ऐसा करने वाला सर्वकाम समृद्ध होकर यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है । उसके बाद धर्मारण्य की प्रदक्षिण करके ययातिपतन स्थल पर जाना चाहिए ॥८॥ वहाँ जाने से अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है । उसके बाद नियमित आहार करते हुए महाकाल तीर्थ (उज्जैन) जाना चाहिए ॥९॥ वहाँ पर विद्यमान कोटितीर्थ में स्नान करके मनुष्य अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है । हे धर्मज्ञ ! उसके पश्चात् शिवजी के तीर्थ में जाना चाहिए ॥१०॥ वह तीर्थ भद्रवट के नाम से त्रैलोक्य में विख्यात है। वहाँ पर शङ्करजी का दर्शन करने से एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त होता है ॥११॥ वह पुरुष शङ्करजी की कृपा से गाणपत्य को प्राप्त करता है । हे नरोत्तम ! वह पुरुष समृद्ध, शत्रु रहित तथा श्रीसम्पन्न होता है ॥१२॥ त्रैलोक्य विख्यात नर्मदा नदी में आकर जो अपने पितरों तथा देवताओं का तर्पण करता है, वह अग्निष्टोम याग करने का फल प्राप्त करता है ।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

तेरहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

वसिष्ठेन दिलीपाय कथितं तीर्थमुत्तमम्। नर्मदेति च विख्यातं पापपर्वतदारणम् ॥१॥
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय नारद! । नर्मदायाश्च महात्म्यं वसिष्ठोक्तं द्विजोत्तम ॥२॥
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता। नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि नारद ॥३॥

नारद उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी। तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥४॥
नर्मदायास्तु माहात्म्यं वसिष्ठोक्तं मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराज ! सर्वं हि कथयामि ते ॥५॥
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥६॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ॥७॥
कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके । पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ॥८॥
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धिं च परमां गताः ॥९॥
तत्र स्नात्वा महाराज नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥१०॥
जनेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥११॥

नारदजी द्वारा युधिष्ठिर को नर्मदा नदी की महिमा का विस्तार पूर्वक सुनाया जाना

युधिष्ठिर ने कहा— महर्षि वसिष्ठ ने पाप रूपी पर्वत को विदीर्ण करने वाले उत्तम नर्मदा तीर्थ का वर्णन सुनाया ॥१॥ हे नारदजी ! मैं उसको पुनः विस्तार से सुनना चाहता हूँ; उसे आप मुझे सुनायें। महर्षि वसिष्ठ जिस नर्मदा का माहात्म्य सुनायें ॥२॥ वह अत्यन्त पुण्यवती नर्मदा नदी सर्वत्र विख्यात हो गयी उसे आप मुझे सुनायें ॥३॥ **नारदजी ने कहा—** नर्मदा सभी नदियों में श्रेष्ठ है । वह सभी पापों का विनाश करने वाली है । वह समस्त चर एवं अचर जीवों को तारने वाली है ॥४॥ महर्षि वसिष्ठ ने नर्मदा का जो माहात्म्य बतलाया उसको मैंने सुना है हे महाराज ! उसी को मैं पूर्ण रूप से आपको सुनाता हूँ ॥५॥ कनखल में गङ्गानदी पवित्र है, कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी पवित्र है किन्तु नर्मदा नदी ग्राम में अथवा अरण्य में सर्वत्र पवित्र है ॥६॥ तीन दिनों तक स्नान करने से सरस्वती नदी का जल पवित्र बना देता है । एक सप्ताह तक स्नान करने से गङ्गा का जल पवित्र बनाता है किन्तु नर्मदा नदी का जल तो देखने मात्र से पवित्र बनाता है । कलिङ्ग देश के पीछे भाग में अमरकण्टक पर्वत पर त्रैलोक्य में पवित्र मनोरम तथा रमणीय भूमि है ॥७-८॥ हे महाराज ! वहाँ पर तपस्या करके देव, असुर और गन्धर्व, ऋषिगण तथा तपस्वीगण परमसिद्धि को प्राप्त कर लिए ॥९॥ हे महाराज ! वहाँ पर नर्मदा नदी में स्नान करके नियम का पालन करने वाला तथा जितेन्द्रिय रहकर एक रात तक

पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता। स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥१२॥
प्रीता तस्य भवेत्सर्वा रुद्रकोटिर्न संशयः। पर्वते पश्चिमस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः ॥१३॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
पितृकार्यं तु कुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१४॥
तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत्पितृदेवताः। आसप्तमं कुलं स्वर्गे तस्य तिष्ठति पाण्डव !॥१५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। अप्सरोगणसङ्कीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥१६॥
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले॥१७॥
धनवान्दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते। पुनः स्मरति तत्तीर्थगमनं तत्र कुर्वते ॥१८॥
तारयित्वा कुलशतं रुद्रलोकं स गच्छति। योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सुरिदुत्तमा ॥१९॥
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमन्तरम्। षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च ॥२०॥
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके। ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥२१॥
सर्वहिंसानिवृत्तश्च सर्वभूतहिते रतः। एवं सर्वसमाचारः क्षेत्रपालान्परिव्रजेत्॥२२॥
तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणुष्वाऽवहितो हि मे।
शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव ॥२३॥

उपवास करके मनुष्य अपने सो पीढ़ी के पुरुषों को तार देता है ॥१०॥ जो पुरुष जनेश्वर तीर्थ में स्नान करके विधि पूर्वक अपने पितरों को पिण्डदान करता है, उसके पितृगण महाप्रलय काल तक तृप्त रहते हैं ॥११॥ अमरकण्टक पर्वत के चारो ओर करोड़ रुद्र प्रतिष्ठित है। वहाँ पर स्नान करके जो शङ्करजी को गन्ध, चन्दन तथा माला इत्यादि चढाता है ॥१२॥ उससे करोड़ रुद्र प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। पर्वत के पश्चिम दिशा के अन्तिम भाग में स्वयं महेश्वर विद्यमान रहते हैं ॥१३॥ मनुष्य को चाहिए कि वहाँ पर स्नान करके जितेन्द्रिय रहकर तथा ब्रह्मचारी व्रत का पालन करते हुए विधि पूर्वक श्राद्ध करें ॥१४॥ वहाँ पर तिल और जल से पितरों तथा देवताओं का तर्पण करना चाहिए। हे पाण्डव ! ऐसा करने वाले के सात पीढी के पितृगण स्वर्ग में निवास करते है ॥१५॥ वह पुरुष साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग लोक में पूजित होता है। वह अप्सराओं तथा दिव्य स्त्रियों से घिरा रहता है ॥१६॥ वह दिव्य गन्ध से लिप्त तथा दिव्य अलङ्कारों से भूषित रहता है। उसके बाद स्वर्ग से भ्रष्ट होकर महान् वंश में जन्म लेता है ॥१७॥ वह धनवान्, शील, गुण सम्पन्न तथा धार्मिक होता है। वह पुनः उस तीर्थ का स्मरण करके उस तीर्थ में जाता है ॥१८॥ वह अपने सौ वंशों को तारकर रुद्रलोक में जाता है। इस नर्मदा नदी की लम्बाई सौ योजन से कुछ अधिक बतलायी गयी है ॥१९॥ हे राजन् ! वह दो योजन चौड़ी सुनी जाती है। अमरकण्टक पर्वत पर साठ करोड़ तथा साठ हजार तीर्थो का निवास है। तीर्थयात्री को चाहिए कि वह ब्रहचारी व्रत पालन करते हुए पवित्र रहे, क्रोध तथा इन्द्रियों को अपने वश में रखे ॥२०-२१॥ उसे किसी प्रकार की हिंसा नहीं करनी चाहिये, सभी जीवों का कल्याण करने वाला होना चाहिए। इस प्रकार के आचरण करने वाला पुरुष अमरकण्टक से क्षेत्रपाल तीर्थ में जाय ॥२२॥ हे राजन् ! इस तीर्थ में होने वाले पुण्य रूपी फल को मैं बतलाता हूँ, उसे आप सुनें। हे युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में जाने वाला व्यक्ति सौ हजार वर्ष स्वर्ग में रहकर आनन्दानुभव

अप्सरोगणसङ्कीर्णे दिव्यस्त्रीपरिचारिते। दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः ॥२४॥
क्रीडते देवलोके तु दैवतैः सह मोदते। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥२५॥
गृहं स लभते चैव नानारत्नविभूषितम्। स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैडूर्यभूषितैः ॥२६॥
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम्। मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां ह्रेषितेन च ॥२७॥
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारमिन्द्रस्य भवनं यथा। राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः ॥२८॥
तस्मिन्गृहे उषित्वा तु क्रीडाभोगसमन्वितः। जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ॥२९॥
एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके। अग्निप्रवेशेऽथ जले तथा चैव अनाशने ॥३०॥
अनिवर्तिकागतिस्तस्य पर्वतस्याम्बरे यथा। पतनं पतते यस्तु स नरो मानवाधिपः ॥३१॥
कन्यास्त्रीणि सहस्राणि एकैकस्यापि चापरे।
तिष्ठन्ति भवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च ॥३२॥
दिव्यभोगसमुत्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम्। पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते ॥३३॥
यादृशोऽयं नरश्रेष्ठ पर्वतेऽमरकण्टके। कोटितीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे ॥३४॥
रूद्रो जालेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
तस्य पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा ॥३५॥
पितरो दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति ते। दक्षिणे नर्मदायास्तु कपिलाख्या महानदी ॥३६॥

करता है ॥२३॥ उस स्वर्ग में अप्सराओं का समूह रहता है, दिव्य स्त्रियाँ उस पुरुष की सेवा करती है। दिव्य गन्ध से उसके अङ्ग अनुलिप्त रहते हैं, वह दिव्य अलङ्कारों से अलंकृत रहता है ॥२४॥ वह देवताओं के साथ क्रीडा करता हुआ आनन्दानुभव करता है। उसके बाद स्वर्ग से भ्रष्ट होकर वह संसार में बलवान् राजा होता है ॥२५॥ उसको अनेक रत्नों से विभूषित गृह प्राप्त होता है। उस गृह के स्तम्भ मणि से निर्मित होते है तथा दिव्य हीरों तथा वैडूर्य मणियों से भूषित रहते हैं। उसमें अनेक प्रकार के चित्र बने रहते है। वह भवन दासों एवं दासियों से युक्त होता है। उसके यहाँ मदमत्त हाथियों के शब्द होते रहते हैं तथा घोड़े हिनहिनाते रहते हैं ॥२६-२७॥ उसका भवन इन्द्र के भवन के समान सुशोभित होता है, वह राजराजेश्वर होता है तथा सभी स्त्रियों का प्रिय होता है ॥२८॥ इस प्रकार के गृह में रहता हुआ वह राजा नीरोग रहकर सौ वर्ष से भी अधिक वर्षों तक जीवित रहता है ॥२९॥ जिस व्यक्ति की अमरकण्टक में मृत्यु हो जाती है उसको भी इसी तरह के भोगों की प्राप्ति होती है। यदि कोई अग्नि में प्रवेश करके, अथवा जल में प्रवेश करके अथवा उपवास के द्वारा अपने प्राणों का त्याग अमरकण्टक में करता है तो ॥३०॥ उसकी भी गति उसी प्रकार की आवागमन रहित होती है। जो मनुष्य अमरण्कटक में जाकर जो गिरकर अपने प्राणों को त्यागता है, वह मनुष्य मरकर राजा होता है ॥३१॥ स्वर्गलोक में उसके प्रत्येक भवन में तीन-तीन हजार कन्या नारियाँ रहती हैं और वे राजा के दर्शन की कामना करती रहती हैं ॥३२॥ वह दिव्य भोग को प्राप्त करके अक्षय काल तक क्रीडा करता है। उसके समान समुद्र पर्यन्त पृथिवी पर कोई भी दूसरा राजा नहीं होता है ॥३३॥ हे नरश्रेष्ठ! अमरकण्टक पर्वत की पश्चिम दिशा में कोटि तीर्थ है ॥३४॥ वहाँ पर जालेश्वर नामक रुद्र विद्यमान हैं वे त्रैलोक्य में विख्यात हैं। वहाँ पर संध्योपासन करके पितरों को पिण्डदान करने से ॥३५॥ पितरों को दश वर्ष तक तृप्ति

सरलार्जुनसञ्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता। अस्ति पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥३७॥
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर। पुराणे श्रूयते राजन्सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥३८॥
तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।
नर्मदातोयसंयुक्तास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३९॥
द्वितीया तु महाभाग ! विशल्यकरणा शुभा ।
तत्र तीरे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात् ॥४०॥
तत्र देवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः। यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ॥४१॥
सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके। तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः ॥४२॥
नर्मदा संश्रिता पुण्या विशल्या नाम नामतः ।
उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी ॥४३॥
तत्र स्नात्वा नरोराजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥४४॥
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम ! ।
ईश्वरेण पुराणोक्ता लोकानां हितकाम्यया ॥४५॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्। अनशनं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ॥४६॥
सर्वपापपिशुद्धात्मा इन्द्रलोकं स गच्छति। नर्मदायां तु राजेन्द्र ! पुराणं यच्छ्रुतं मया॥४७॥
तत्र तत्र नरः स्नात्वा अश्वमेधफलं लभेत् ।
ये वसन्त्युत्तरे कूले इन्द्रलोके वसन्ति ते ॥४८॥

बनी रहती है । नर्मदा नदी के दाहिनी ओर कपिला नाम की नदी है ॥३६॥ वह नर्मदा के सन्निकट में ही विद्यमान है तथा वह सरल (देवदारु) तथा अर्जुन के वृक्षों से भरी हुयी है । वह पवित्र नदी त्रैलोक्य में विख्यात है ॥३७॥ हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर सौ करोड़ से भी अधिक तीर्थ विद्यमान है । हे राजन् ! पुराणों में यह सुना गया है कि वहाँ पर किए गये पुण्य कर्मों के फल करोड़ गुने होते हैं । उस नदी के तीर पर जो वृक्ष हैं, वे जब कालक्रम से गिर जाते हैं, तो उसके अधिष्ठातृ जीव नर्मदा नदी के जल का संयोग प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं ॥३९॥ हे महाभाग ! वहाँ पर दूसरी नदी विशल्यकरणी है । उस नदी के तट पर जाकर स्नान करने वाला मनुष्य क्षणभर में शोक रहित हो जाता है ॥४०॥ वहाँ पर सभी देवता, किन्नर, महोरग, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, ऋषिगण, तपस्विगण ॥४१॥ वे सभी अमरकण्टक पर्वत पर आकर निवास करते हैं । उन सभी मुनियों के साथ ॥४२॥ आकर विशाल्या नाम की नदी नर्मदा नदी में मिलती है । इस प्रकार से वह महाभागा सभी पापों को विनष्ट करने वाली हो गयी है ॥४३॥ हे राजन् ! वहाँ पर ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय रहकर जो मनुष्य स्नान करके एक रात तक उपवास करता है वह अपने सौ पीढी के पूर्वजों को तार देता है ॥४४॥ जीवों का कल्याण करने के लिए शिवजी ने कपिला तथा विशल्या नाम की दोनों नदियों का पुराण में वर्णन किया है॥४५॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य अवश्मेध याग करने के फल को प्राप्त करता है । हे नराधिप! वहाँ पर जो लोग उपवास करते हैं ॥४६॥ वे सभी पापों से विशुद्ध होकर इन्द्र के लोक में जाते हैं। हे राजन् ! मैंने पुराणों में सुना है कि नर्मदा नदी में विभिन्न स्थानों में स्नान करने वाला मनुष अश्वमेध

सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ।
समं दानं च स्नानं च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥४९॥
परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके । वर्षकोटिशतं साग्रमिन्द्रलोके महीयते ॥५०॥
नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिसमलङ्कृतम् । पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५१॥
नर्मदा सर्वपुण्या च ब्रह्महत्यापहारिणी । अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥५२॥
एवं पुण्या च रम्या च नर्मदा पाण्डुनन्दन ।
त्रयाणामपि लोकानां पुनात्येषा महानदी ॥५३॥
बटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने । एतेषु सर्वस्थानेषु येऽर्दिताः संशितव्रताः ॥५४॥
श्रूयते दशगुणं पुण्यं नर्मदोद्वास सङ्गमे ॥५५॥
इति श्रीपद्मपुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदामाहात्म्यकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

नारद उवाच

नर्मदा तु नदी श्रेष्ठा पुण्या पुण्यतमा त्रिषु ।
मुनिभिस्तु महाभागैर्विभक्ता धर्मकाङ्क्षिभिः ॥१॥

याग का फल प्राप्त करता है । जो लोग नर्मदा नदी के उत्तर तट पर निवास करते हैं वे इन्द्र के लोक में जाते हैं ॥४७-४८॥ हे युधिष्ठिर ! मुझे शङ्करजी ने बतलाया है कि सरस्वती नदी, गङ्गानदी तथा नर्मदा नदी में दान और स्नान करने का एक समान फल होता है ॥४९॥ जो पुरुष अमकरण्कटक पर्वत पर अपने प्राणों का परित्याग करता है वह करोड़ वर्ष से अधिक समय तक इन्द्रलोक में निवास करता है ॥५०॥ नर्मदा का फेन और लहर से युक्त जल पवित्र होता है । उसको अपने शिर पर धारण करने वाला व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥५१॥ नर्मदा नदी सर्वत्र पवित्र है, वह ब्रह्महल्या के भी पापों को विनष्ट करने वाली है यहाँ पर एक दिन तथा एक रात उपवास करने वाला व्यक्ति ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥५२॥ हे पाण्डुनंदन ! नर्मदा नदी इस प्रकार से मनोहर और पवित्र है । यह महानदी तीनों लोकों को पवित्र बनाती है ॥५३॥ अत्यन्त पवित्र बटेश्वर तीर्थ में, गङ्गाद्वार तीर्थ में तथा तपोवन में इन सभी स्थानों में जो पुण्य बतलायें गये हैं उसके दश गुना पुण्य नर्मदा नदी के उत्पत्ति स्थान में निवास करने से होता है ऐसा सुना जाता है ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

ज्वालेश्वर तीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन तथा त्रिपुर दहन का उपक्रम

नारदजी ने कहा— इन तीनों (गङ्गा, सरस्वती और नर्मदा) नदियों में नर्मदा नदी श्रेष्ठ है, वह

यज्ञोपवीतमात्राणि प्रविभक्तानि पाण्डव। तेषु स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
जलेश्वरं च यत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। तस्योत्पत्तिं कथयतः शृणु पाण्डवनन्दन॥३॥
पुरा मुनिगणाः सर्वे सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः। स्तुवन्ति ते महात्मानं देवदेवं महेश्वरम् ॥४॥
स्तुवमानास्तु सम्प्राप्ता यत्र देवो महेश्वरः। विज्ञापयन्ति देवेशं सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः ॥५॥
भयोद्विग्नान्विरूपाक्ष परित्रायस्व नः प्रभो ॥६॥

ईश्वर उवाच

स्वागतं तु मुनिश्रेष्ठाः किमर्थमिह चागताः ।
किं दुःखं को नु सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ॥७॥

कथयध्वं महाभागा एतदिच्छामि वेदितुम्। एवमुक्तास्तु रुद्रेण कथयन्नमितव्रताः ॥८॥

ऋषय ऊचुः

अपि घोरो महावीर्यो दानवो बलदर्पितः। बाणो नामेति विख्यातो यस्य वै त्रिपुरं पुरम्॥९॥
गगने तु वसेद्दिव्यं भ्रमते तस्य तेजसा। तस्माद्भीता विरूपाक्ष त्वामेव शरणं गताः॥१०॥

त्रायस्व महतोदुःखाद् देव त्वं हि परा गतिः ।
एवं प्रसादं देवेश सर्वेषां कर्तुमर्हसि ॥११॥

येन देवाः सुप्रसन्नाः सुखमेधन्ति शङ्कर। परां निर्वृतिमायान्ति तत्प्रभो कर्तुमर्हसि ॥१२॥

देव उवाच

एतत्सर्वं करिष्यामि मा विषादं करिष्यथ। अचिरेणैव कालेन कुर्यां युष्मत्सुखावहम्॥१३॥

अत्यन्त पवित्र है। धर्म चाहने वाले मुनियों ने इस प्रकार से विभाग किया है ॥१॥ हे पाण्डव ! केवल यज्ञोपवीत से नापकर ये तीर्थ विभक्त किए गये हैं। हे राजेन्द्र ! उन तीर्थों में स्नान करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२॥ हे युधिष्ठिर ! मैं त्रैलोक्य में विख्यात जालेश्वर तीर्थ की उत्पत्ति की कथा को बतलाता हूँ, उसे आप सुनें ॥३॥ प्राचीन काल में सभी मुनियों तथा इन्द्रादि देवताओं ने शङ्करजी की स्तुति की ॥४॥ वे सब स्तुति करते हुए वहाँ गये जहाँ पर भगवान् शिव विद्यमान थे। इन्द्र इत्यादि सभी देवताओं ने शङ्करजी से प्रार्थना की, हे विरूपाक्ष ! हम सभी भयभीत हो गये हैं, आप हमलोगों की रक्षा कीजिए ॥५-६॥ **शङ्करजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठों ! आपलोगों का स्वागत है। आपलोग यहाँ पर किस प्रयोजन से आयें है ? आपलोगों को कौन सा दुःख अथवा सन्ताप है। अथवा आपलोगों को कौन सा भय है ॥७॥ हे महाभागों ! आपलोग उसे बतलायें मैं उसे सुनना चाहता हूँ। शङ्करजी की बातों को सुनकर आत्यन्त तपस्वी मुनियों ने नम्र होकर कहा ॥८॥ **ऋषियों ने कहा—** अत्यन्त भयङ्कर, अत्यन्त पराक्रमी, एवं बल से दृप्त बना हुआ विख्यात दानव बाण है, उसकी नगरी त्रिपुर है॥९॥ तेज से दिव्य आकाश घूम रहा है। हे विरूपाक्ष ! उसी से भयभीत होकर हमलोग आपके शरण में आये हैं ॥१०॥ हे देव ! आप ही हमलोगों के श्रेष्ठ रक्षक हैं। आप हमलोगों की रक्षा करें हे देवेश! आप हमसबों पर कृपा करें ॥११॥ हे प्रभों ! आप ऐसा करे कि सभी देवता प्रसन्न होकर सुख को प्राप्त करें तथा सर्वश्रेष्ठ शक्ति को प्राप्त करें ॥१२॥ **शङ्करजी ने कहा—** मैं इन सारी बातों को करूँगा, आपलोग विषाद न करें। मैं शीघ्र ही आपलोगों को सुख प्रदान करने वाला कार्य करूँगा ॥१३॥ उन

आश्वासयित्वा तान्सर्वान्नर्मदातटमास्थितः । चिन्तयामास सर्वेशस्तद्वधं प्रति पाण्डव ॥१४॥
कथं केन प्रकारेण हन्तव्यस्त्रिपुरो मया । एवं सञ्चिन्त्य भगवान्नारदं स्मरते तदा ॥१५॥
स्मरणादेवसम्प्राप्तो नारदः समुपस्थितः ॥१६॥

नारद उवाच

आज्ञापय महादेव किमर्थं संस्मृतो ह्यहम् । किं कार्यं तु मया देव कर्त्तव्यं कथयस्व मे॥१७॥

ईश्वर उवाच

गच्छ नारद तत्रैव यत्रतत्रिपुरं पुरम् । बाणस्य दानवेन्द्रस्य शीघ्रं गच्छाथ तत्कुरु ॥१८॥
भर्तारो देवताभाश्च स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । तासां वै तेजसा विप्र भ्रमते त्रिपुरं दिवि ॥१९॥
तत्र गत्वा तु विप्रेन्द्र मन्त्रमन्यं प्रचोदय । देवस्य वचनं श्रुत्वा मुनिस्त्वरितविक्रमः ॥२०॥
स्त्रीणां हृदयनाशाय प्रविष्टस्तं पुरं प्रति । शोभते तत्पुरं दिव्यं नानारत्नोपशोभितम् ॥२१॥
शतयोजनविस्तीर्णं ततोद्विगुणमायतम् । ततः पश्यति तत्रैव बाणं तु बलदर्पितम् ॥२२॥
मालाकुण्डलकेयूरैर्मुकुटेन विराजितम् । हाररत्नैश्च संछन्नं चन्द्रकान्तिविभूषितम् ॥२३॥

ललनास्तस्य रत्नाढ्यकराः कनकमण्डिताः ।
उत्थितो नारदं दृष्ट्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥२४॥

बाण उवाच

सदेवर्षिः स्वयं प्राप्तो मद्गृहं प्रति सम्प्रति ।
अर्घं पाद्यं यथान्यायं क्रियतां द्विजसत्तम ॥२५॥

सबों को आश्वस्त करने के बाद नर्मदा नदी के तट पर स्थित भगवान् शिव त्रिपुर के वध के विषय में विचार करने लगे ॥१४॥ वे सोचे कि किस उपाय से तथा कैसे त्रिपुर का वध करूँ । इस तरह से सोचकर शिवजी ने नारदजी का स्मरण किया । स्मरण करते ही नारदजी वहाँ उपस्थित हो गयें ॥१५॥ **नारदजी ने कहा—** हे महादेव ! आपने किस लिए मेरा स्मरण किया है ? आप आज्ञा दें आप बतलायें कि मुझे क्या करना है ॥१६॥ **शङ्करजी ने कहा—** हे नारदजी ! आप त्रिपुर की नगरी में जायँ । वह दानवेन्द्र बाण की नगरी है, वहाँ आप शीघ्र जायँ ॥१७॥ वहाँ की स्त्रियाँ अप्सराओं के समान हैं और उन सबों के पति देवता के समान है । हे विप्र ! वहाँ जाकर आप दूसरे प्रकार के धर्म का उपदेश दें । शङ्करजी की वाणी सुनकर शीघ्रगामी नारदजी ॥१८-१९॥ स्त्रियों के हृदय का नाश करने के लिए उस नगरी में प्रवेश किए । अनेक रत्नों से सुशोभित वह दिव्य नगर शोभता था ॥२०॥ वह सौ योजन विस्तृत तथा उसके दो गुना चौड़ा था । वहाँ पर उन्होंने बल से दृप्त बने हुए बाण को देखा ॥२१॥ बाण माला, कुण्डल केयूर तथा मुकुट धारण किए हुए था । वह हारों एवं रत्नों से ढँका हुआ तथा चन्द्रमा के समान कान्ति से सुशोभित था ॥२२॥ वहाँ की स्त्रियाँ बहुत अधिक रत्नों को धारण की थी और पुरुष सुवर्णालङ्कारों से मण्डित थे । नारदजी को देखकर महाबलवान् दानवेन्द्र बाण खड़ा हो गया॥२३॥ **बाण ने कहा—** देवर्षि आप मेरे घर स्वयं पधारे हैं अतएव हे द्विजश्रेष्ठों ! आपलोग इनकी अर्घ पाद्य इत्यादि से पूजा करें ॥२४॥ **बाण ने कहा—** हे विप्र ! बहुत दिनों के बाद आये आप इस आसन पर बैठें । सगागत नारदजी का इस प्रकार से पूजन करके ॥२५॥ बाण की पत्नी महादेवी अनौपम्या

चिरात्समागतो विप्र स्थीयतामिदमासनम्। एवं सम्भावयित्वा तु नारदं समुपस्थितम्॥२६॥
तस्य भार्या महादेवी अनौपम्या तु नामतः ॥२७॥

अनौपम्योवाच

भगवन्मानुषे लोके देवास्तुष्यन्ति केन व। व्रतेन नियमेनापि दानेन तपसाऽथवा ॥२८॥

नारद उवाच

तिलधेनुं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे। ससागरा नवद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी ॥२९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः। मोदते चाक्षयं कालं सुचिरं कृतशासनः ॥३०॥
आम्रातककपित्थानि कदलीघनमेव च। कदम्बचम्पकाशोका अनेकविविधद्रुमाः ॥३१॥

अष्टमी च चतुर्थी च द्वादशी च तथा उभे ।
सङ्क्रान्तिविषुवं चैव दिनच्छिद्रमुखं तथा ॥३२॥
पुण्यान्येतानि सर्वाणि उपवसन्ति च याःस्त्रियः ।
तासां तु धर्म्मयुक्तानां स्वर्गे वासो न संशयः ॥३३॥

कलिकालात्तु निर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः। उपवासरता नार्यो नोपसर्पन्ति तापसाः॥३४॥

एवं श्रुत्वा तु सुश्रोणि ! यथेष्टं कर्तुमर्हसि ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत् ॥३५॥

प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र दानं गृह्ण यथेप्सितम्। सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥३६॥

तत्ते दास्याम्यहं विप्र यच्चान्यदपि दुर्ल्लभम् ।
प्रतिगृह्ण द्विजश्रेष्ठ प्रीयतां हरिशङ्करौ ॥३७॥

थी । **अनौपम्या ने कहा—** हे भगवन् ! मनुष्य लोक में मनुष्य किस व्रत, नियम, या दान या तपस्या से सन्तुष्ट होते हैं ॥२६॥ **नारदजी ने कहा—** जो वेद पारङ्गत ब्राह्मण को तिलधेनु का दान देता है उसको सागरों के साथ नवद्वीपों वाली पृथिवी का दान करने का फल प्राप्त होता है ॥२७॥ ऐसा करने वाला मनुष्य करोड़ो सूर्य के समान देदीप्यमान तथा सभी काम्य पदार्थों को देने वाले विमानों से अक्षय काल पर्यन्त स्वर्ग में आनन्दानुभव करता है तथा दीर्घ काल पर्यन्त शासन करता है ॥२८॥ जो स्त्रियाँ, आम्रतक (आमड़ा) कैंथ, कदली वन, कदम्ब, चम्पा, अशोक आदि अनेक प्रकार के वृक्षों को लगाती है, अष्टमी, चतुर्थी, दोनों पक्ष की द्वादशी तिथि, संक्रान्ति, विषुव और क्षयतिथि इन सभी पुण्या तिथियों को उपवास करती हैं उन धार्मिक स्त्रियों का स्वर्ग में निवास होता हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२९-३१॥ वे स्त्रियाँ कलिकाल के दोषों से मुक्त हो जाती हैं । वे सभी पापों से रहित हो जाती हैं । उपवास करने वाली तपस्विनी नारियाँ पुनः संसार में नहीं आती हैं ॥३२॥ हे सुन्दरि ! इन बातों को जानकर तुम अपने अभिप्रेत कार्यों को कर सकती हो । नारदजी की वाणी सुनकर रानी ने कहा ॥३३॥ हे विप्रेन्द्र ! आप हमारे ऊपर कृपा करें और अपने मनोनुकूल दान स्वीकार करें । सुवर्ण, मणि, रत्न, वस्त्र, आभूषण ॥३४॥ हे विप्र ! मैं आपको इन सारी वस्तुओं को प्रदान करूँगी और दूसरी भी दुर्लभ वस्तुओं को प्रदान करूँगी । हे द्विजश्रेष्ठ ! आप इसे स्वीकार करें जिससे भगवान् शिव और श्रीहरि प्रसन्न हों ॥३५॥ **नारदजी ने कहा—** हे भद्रे ! जिसकी कोई वृत्ति न हो उस दूसरे ब्राह्मण को

नारद उवाच

अन्यस्मै दीयतां भद्रे क्षीणवृत्तिश्च यो द्विजः ।
वयं तु शीलसम्पन्ना भक्तिस्तु क्रियते मया ॥३८॥

एवं तासां मनोहृत्वा सर्वासामुपदिश्य वा । जगाम भरतश्रेष्ठ ! स्वकीयं स्थानकं पुनः॥३९॥

अन्याकृष्टमनास्तास्तु अन्यत्र गतमानसाः । पुरिच्छिद्रं समुत्पन्नं बाणस्य तु महात्मनः॥४०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे ज्वालेश्वरतीर्थोत्पतिवर्णनम् नारदस्य त्रिपुरे बाणपत्न्या अनौपम्याख्याया-उपदेशदाननेमनोहृत्वागमनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

नारद उवाच

यन्मां पृच्छसि कौन्तेय ! तन्निबोध च तच्छृणु ।
एतस्मिन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमास्थितः ॥१॥
नाम्ना महेश्वरं स्थानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तस्मिन्स्थाने महादेवश्चिन्तयंस्त्रैपुरं वधम् ॥२॥
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम् ।
स्थानं कृत्वा तु वैशाखं विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम् ॥३॥

आप दान दें दे । मैं तो शील सम्पन्न हूँ और सदा भक्ति करता हूँ ॥३६॥ इसतरह से उन सबों के मन का हरण करके तथा उपदेश देकर हे भरत श्रेष्ठ ! नारदजी अपने स्थान पर चले गये ॥३७॥ उन नारियों का मन आकृष्ट हो गया था और उनका मन अन्यत्र लग गया । उसके कारण बाण की उस नगरी में छिद्र हो गया ॥३८॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

शङ्करजी की प्रेरणा से अग्नि का त्रिपुर को जलाना

नारदजी ने कहा— हे कौन्तेय ! आप जो मुझसे पूछ रहे हैं उसे मैं बतलाता हूँ, उसे आप सुने । उस समय भगवान् शिव नर्मदा तट पर स्थित रहे ॥१॥ उस स्थान का नाम महेश्वर है, वह तीनों लोकों में विख्यात है । उसी स्थान पर शिवजी त्रिपुरासुर के बध का उपाय सोचते रहे ॥२॥ उन्होंने मन्दराचल को गाण्डीव (धनुष) बनाया, वासुकी को धनुष की डोरी बनाया, उन्होंने वैशाख महीने को स्थान बनाया और भगवान् विष्णु को उन्होंने बाण बनाया । उस बाग के अग्रभाग में उन्होंने अग्नि का सन्निवेश किया । बाण के मुख पर वायु को स्थापित किया । चारों वेदों को उन्होंने अश्व बनाया और

अग्रे चाग्निं प्रतिष्ठाप मुखे वायुः समर्पितः ।
हयाश्च चतुरो वेदाः सर्वदेवमयं रथम् ॥४॥
चक्रांगौ चाश्विनौ देवौ वक्षे चक्रधरः स्वयम् ।
स्वयमिन्द्रश्च चापान्ते बाणे वैश्रवणः स्थितः ॥५॥
यमस्तु दक्षिणे हस्ते वामे कालस्तु दारुणः ।
चक्राणामारकेन्यस्ता गन्धर्वा लोकविश्रुताः ॥६॥
प्रजापती रथश्रेष्ठे ब्रह्मा चैव तु सारथिः। एवं कृत्वा तु देवेशः सर्वदेवमयं रथम् ॥७॥
सोऽतिष्ठत्स्थाणुभूतो हि सहस्रं परिवत्सरान् ।
यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षचराणि च ॥८॥
त्रिपुराणि त्रिशल्येन तदा तानि विभेद सः ।
शरः प्रचोदितास्तत्र रुद्रेण त्रिपुरं प्रति ॥९॥
भ्रष्टतेजा स्त्रियो जाता बलं तेषां व्यशीर्यत ।
उत्पाताश्च पुरे तस्मिन्प्रादुर्भूताः सहस्रशः ॥१०॥
त्रिपुरस्य विनाशाय कालरूपोऽभवत्तदा। अट्टहासं प्रमुञ्चन्ति रूपाः काष्ठमयास्तथा॥११॥
निमेषोन्मेषणं चैव कुर्वन्ति चित्रकर्मणा। स्वप्ने पश्यन्ति चात्मानं रक्तान्तरविभूषितम्॥१२॥
स्वप्ने पश्यन्ति ते चैवं विपरीतानि यानि तु ।
एतान्पश्यन्ति तूत्पातांस्तत्र स्थाने तु ये जनाः ॥१३॥
तेषां बलं च बुद्धिश्च हरक्रोधेन नाशितम्। संवर्तको नामवायुर्युगान्तप्रतिमो महान्॥१४॥
समीरितोऽनलश्रे च उत्तमाङ्गेषु बाधते। ज्वलन्ति पादपास्तत्र पतन्ति शिखराणि च॥१५॥

तथा सभी देवताओं को रथ बनाया ॥३-४॥ दोनों अश्विनी कुमारों को उन्होंने चक्र का धूरा वनाया और उसका अक्ष भाग स्वयं भगवान् विष्णु बने । धनुष के अन्तिम भाग में उन्होंने इन्द्र को स्थापित किया, बाण में कुबेर को स्थापित किया ॥५॥ शिवजी के दाहिने हाथ में यमराज और बायें हाथ में काल प्रतिष्ठित हुए । चक्रों के अरभाग में गन्धर्व स्थित हो गये ॥६॥ रथ के श्रेष्ठ भाग में प्राजापति स्थित हुए और ब्रह्माजी उस रथ के सारथि बन गये । इसतरह से देवेश ने सर्वदेवमय रथ को बनाया ॥७॥ वे स्वयं हजारों वर्ष तक स्थाणु रूप से वहाँ स्थित रहे । जब शिवजी ने अन्तरिक्ष में एक साथ संचरण करने वाली इन तीनों नागरियों को तीन बाणों से बेध दिया और रुद्र ने त्रिपुर के प्रति वाण को प्रेरित किया ॥८-९॥ उस समय स्त्रियों का तेज विनष्ट हो गया और उनका बल भी समाप्त हो गया था । उन नगर में हजारों प्रकार के उत्पात होने लगे ॥१०॥ उस समय त्रिपुर का विनाश करने के लिए शङ्करजी कालरूप वन गये । काष्ठ निर्मित मूर्तियाँ अट्टहास करने लगीं ॥११॥ वे विचित्र रूप से अपनी आँखें खोलने और बन्द करने लगीं । नारियाँ स्वप्न में देखती थीं कि वे लाल वस्त्र धारण की हुयी हैं ॥१२॥ वे स्वप्न में विभिन्न विपरीत वस्तुओं को देखती थीं । वहाँ के सभी लोग इन उत्पातों को देखने लगे॥१३॥ शङ्करजी के क्रोध ने उन पुरुषों के वल और बुद्धि को विनष्ट कर दिया । युग के अन्त में चलने वाली संवर्तक नाम की वायु ने श्रेष्ठ अग्नि को प्रज्वलित कर दिया उससे उन पुरुषों के शिर में आग लग

सर्वन्तद्व्याकुलीभूतं हाहाकारमचेतनम्। भग्नोद्यानानि सर्वाणि क्षिप्रं तु प्रज्ज्वलन्ति च॥१६॥
तेनैव दीपितं सर्वं ज्वलते विशिखैः शिखैः ।
द्रुमा आरामगण्डानि गृहाणि विविधानि च ॥१७॥
दशदिक्षु प्रवृत्तोऽयं समिद्धो हव्यवाहनः। ततः शिलाः प्रमुञ्चन्ति दिशादशविभागशः॥१८॥
शिखासहस्रैरत्युग्रैः प्रज्वलन्ति हुताशनैः। सर्वं किंशुकसम्प्रख्यं ज्वलितं दृश्यते पुरम् ॥१९॥
गृहाद्गृहान्तरे नैव गन्तुं धूमैश्च शक्यते। हरकोपानलाद्दग्धं क्रन्दमानं सुदुःखितम्॥२०॥
प्रदीप्तं सर्वतो दिक्षु दह्यते त्रिपुरं पुरम्। प्रासादशिखराग्राणि विशीर्यन्ति सहस्रशः॥२१॥
नानारत्नविचित्राणि विमानान्यप्यनेकधा। गृहाणि चैव रम्याणि दह्यन्ते दीप्तवह्निना॥२२॥
बाह्यतो द्रुमखण्डेषु जनस्थाने तथैव च। देवागारेषु सर्वेषु प्रज्वलन्ते ज्वलन्त्यपि॥२३॥
सीदन्ति चानलस्पृष्टाः क्रन्दन्ति विविधैः स्वरैः ।
गिरिकूटनिभास्तत्र दृश्यन्तोऽङ्गारराशयः ॥२४॥
स्तुवन्ति देवदेवेशं परित्रायस्व मां प्रभो !। अन्योन्यं च परिष्वज्य हुताशनप्रपीडिताः॥२५॥
दह्यन्ते दानवास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः। हंसकारण्डवाकीर्णा नलिनीसहपङ्कजाः॥२६॥
दह्यतेऽनलदग्धानि पुरोद्यानानि दीर्धिकाः। अम्लानैः पङ्कजैश्छन्ना विस्तीर्णा योजनैः शतैः॥२७॥
गिरिकूटनिभास्तत्र प्रासादारत्नभूषिताः। पतन्त्यनलनिर्दग्धा निस्तोया जलदा इव॥२८॥
सहस्त्रीबालवृद्धेषु गोषु पक्षिषु वाजिषु। निर्दयो दहते वह्निर्हरकोपेन प्रेरितः॥२९॥

गयी । वहाँ पर वृक्ष जलने लगे और शिखर गिरने लगे ॥१४-१५॥ सबके सब लोग व्याकुल होकर हाहाकार मचाने लगे । शीघ्र ही वहाँ के उद्यान विनष्ट हो गये और जलने लगे ॥१६॥ उस बाण की अग्नि द्वारा ही सब कुछ जलने लगा, वृक्ष, उद्यान, खण्ड तथा अनेक घर जलने लगे ॥१७॥ धधकती हुयी अग्नि दशों दिशाओं में फैल गयी । उसके बाद दशों दिशाएँ शिलाओं की वर्षा करने लगीं ॥१८॥ अग्नि के द्वारा हजारों शिखायें जल रही थी । जलता हुआ सारा नगर विकसित पलाश वृक्ष के समान लाल दिखता था ॥१९॥ धुएँ के कारण लोग एक घर से दूसरे घर में नहीं जा सकते थे । शङ्करजी के क्रोधाग्नि से जलते हुए त्रिपुर के लोग अत्यन्त दुःखी होकर चिल्ला रहे थे ॥२०॥ त्रिपुर की सम्पूर्ण नगरी जल रही थी भवनों के हजारों शिखर टूट रहे थे ॥२१॥ अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित अनेकों विमान भी जल रहे थे । जलती हुयी अग्नि के कारण मनोहर भवन भी जल रहे थे ॥२२॥ सभी लोग वृक्ष के खण्डों, जनस्थानों, देवमन्दिरों में दुःखी होकर जल रहे थे ॥२३॥ आग लग जाने से सभी दुःखी थे, और अनेक प्रकार के स्वरों में रो रहे थे । वहाँ पर अङ्गार की राशि पर्वत समूह के समान प्रतीत होती थी ॥२४॥ वे शङ्करजी की स्तुति करके कहते थे, हे प्रभो ! आप मेरी रक्षा करें । अग्नि से पीड़ित वे लोग एक दूसरे को पकड़े हुए थे ॥२५॥ वहाँ पर सैकड़ों हजार दानव जल रहे थे । हंस, कारण्डव आदि पक्षियों के साथ कमल भी जल रहे थे ॥२६॥ नगर के उद्यान और बावलियाँ भी जल रही थीं । वे सुन्दर कमलों से भरी हुयी सैकड़ों योजन में फैली हुयी थीं ॥२७॥ वहाँ पर रत्नों से अलंकृत पर्वत राशि के समान भवन जल रहित मेघ के समान गिर रहे थे ॥२८॥ शङ्करजी के क्रोध से प्रेरित होकर निर्दय अग्नि स्त्री, बाल, बृद्ध, गौ तथा पक्षी आदि को जला रही थी ॥२९॥

सपत्नीकाश्चैव सुप्ताः संसुप्ता बहवो जनाः ।
पुत्रमालिङ्ग्यते गाढं दह्यते त्रिपुरारिणा ।।३०।।
अथ तस्मिन्पुरे दीप्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । अग्निज्वालाहतास्तत्र पतन्ति धरणीतले।।३१।।
काचिद्बाला बिशालाक्षी मुक्तावलिविभूषिता ।
धूमेनाकुलिता सा तु प्रतिबुद्धाशिखार्द्दिता ।।३२।।
सुतं सञ्चिन्तमाना सा पतिता धरणीतले। काचित्सुवर्णवर्णाभा नीलरत्नैर्विभूषिता।।३३।।
धूमेनाऽऽकुलिता सा तु पतिता धरणीतले ।
अन्या गृहीतहस्ता तु दह्यते सह बालवैः ।।३४।।
अनेन दिव्यरूपान्या दृष्टा मदविमोहिता । शिरसा प्राञ्जलिं कृत्वा विज्ञापयति पावकम् ।।३५।।
यदि त्वमिच्छसे वैरं पुरुषेष्वपकारिषु । स्त्रियः किमपराध्यन्ते गृहपञ्जरकोकिलाः ।।३६।।
पाप ! निर्दय ! निर्लज्ज ! कस्ते कोपोऽङ्गनासु वै ।
न दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौचवर्तिता ।।३७।।
अनेकरूपवर्णाढ्या उपलम्भ्या वदस्व ह। किं त्वया न श्रुतं लोके अवध्याः सर्वयोषितः।।३८।।
किंतु तुभ्यं गुणा ह्येते दहनस्त्र्यर्दनं प्रति। न कारुण्यं दया वापि दाक्षिण्यं वाङ्गनोपरि।।३९।।
दयां कुर्वन्ति म्लेच्छाश्च दहनं प्रेक्ष्य योषितः ।
म्लेच्छानामपि कष्टोऽसि दुर्निवार्यो ह्यचेतनः ।।४०।।
एते चैव गुणास्तुभ्यं दहनोत्सादनं प्रति । आसामपि दुराचार स्त्रीणां किं विनिपातने ।।४१।।

अपने पुत्र को अच्छी तरह से पकड़कर पत्नियों के साथ सोये लोग भी जल रहे थे ।।३०।। जब वह नगर जल रहा था उस समय अप्सराओं के समान सुन्दर नारियाँ अग्नि की ज्वाला से मरकर पृथिवी पर गिर रही थीं ।।३१।। कोई रमणी बड़ी-बड़ी आँखों वाली तथा मोती के हार से अलंकृत थीं, धूम के कारण व्याकुल बनी हुयी वह अग्नि की ज्वाला से दुःखी होकर जगी थी ।।३२।। अपने पुत्र के विषय में सोचती हुयी पृथिवी पर गिर पड़ी । कोई नारी सुवर्ण के समान कान्ति वाली तथा नीले रत्नों से अलंकृत थी ।।३३।। वह धूम से व्याकुल होकर पृथिवी पर गिर पड़ी । कोई अपने बालक को पकड़कर कह रही थी सखी बालक जल रहा है । इस तरह से मद से विह्वल बनी हुयी वह दिव्य रूप वाली दिखती थी । वह हाथ जोड़कर अग्नि से प्रार्थना कर रही थी ।।३४-३५।। कि यदि तुम अपने अपकारी पुरुषों से वैर चुकाना चाहते हो तो चुकाओ; किन्तु स्त्रियों तथा पिंजड़ों की कोकिलाओं ने क्या बिगाड़ा हैं ?।।३६।। हे पापी ! निर्दय, निर्लज्ज तुम स्त्रियों पर क्यों कोप करते हो, तुममें न तो दाक्षिण्य हैं, न लज्जा है, तुम सत्य एवं शौच से रहित हो ।।३७।। अनेक प्रकार के सौन्दर्य से युक्त वे स्त्रियाँ कहती थीं कि क्या तुमने यह नहीं सुना है कि स्त्रियाँ अबध्या होती हैं ।।३८।। किन्तु हे अग्नि ! तुम तो दहन रूप हो तुम तो जलाना जानते हो, तुममें स्त्रियों के प्रति दया, करुणा तथा दाक्षिण्य का अभाव है ।।३९।। हे अग्नि ! स्त्रियों को देखकर म्लेच्छ भी उन पर दया करते हैं, तुम तो म्लेच्छों से भी अधिक कठोर, दुर्निवार तथा जड हो ।।४०।। तुममें तो ये सभी गुण उजाड़ने वाले हैं । अरे दुराचारी! तुम इन दोषों का उपयोग स्त्रियों पर क्यों करते हों ?।।४१।। अरे दुष्ट, निष्ठुर, निर्लज्ज, मंदभाग्य अग्ने,

दुष्टनिर्घृणनिर्लज्ज हुताश ! मन्दभाग्यक ! ।
निराशस्त्वं दुराचारबालान्दहसि निर्दय !।।४२।।
एवं प्रलपमानास्ता जल्पमाना बहु स्वरम् ।
अन्याः क्रोशन्ति सङ्क्रुद्धा बालशोकेन मोहिताः ।।४३।।
दहते निर्दयो वह्निः सङ्क्रुद्धः सर्वशत्रुवत् ।
पुष्करिण्यां जले ज्वालाकृपेष्वपि तथैव च ।।४४।।
अस्मान्सन्दह्य म्लेच्छत्वं कां गतिं प्राप्स्यसेऽशुभाम् ।
एवं प्रलपतां तासां वह्निर्वचनमब्रवीत् ।।४५।।

वैश्वानर उवाच

स्ववशो नैव युष्माकं विनाशं तु करोम्यहम् ।
अहमादेशकर्ता वै नाहं कर्त्ताऽस्म्यनुग्रहम् ।।४६।।
अत्र क्रोधसमाविष्टो विचरामि यदृच्छया। ततो बाणो महातेजास्त्रिपुरं वीक्ष्य दीपितम्।।४७।।
आसनस्थोऽब्रवीदेवमहं देवैर्विनाशितः। अल्पसारैर्दुराचारैरीश्वरस्य निवेदितः ।।४८।।
अपरीक्ष्य ह्यहं दग्धः शङ्करेण महात्मना । नान्यः शत्रुस्तु मां हन्तुं वर्ज्जयित्वा महेश्वरम् ।।४९।।
उत्थितः शिरसा कृत्वा लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम् ।
निर्गतः स पुरद्वारात्परित्यज्य सुहृत्स्वयम् ।।५०।।
रत्नानि सुविचित्राणि स्त्रियो नानाविधास्तथा ।
गृहीत्वा शिरसा लिङ्गं न्यस्तं नगरमण्डले ।।५१।।
स्तुवते देवदेवेशं त्रैलोक्याधिपतिं शिवम् । हर ! त्वयाऽहंनिर्दग्धो यदि वध्योऽस्मि शङ्कर।।५२।।

अरे दुराचारी तुम निराश और निर्दय होकर बच्चों को जलाते है ।।४२।। इस तरह से बड़बड़ाती तथा अनेक प्रकार से रोती हुयी स्त्रियाँ क्रुद्ध होकर तथा बच्चों के शोक से मोहित दूसरी स्त्रियाँ अग्नि की निन्दा करती हुयी कहती थीं । यह निर्दय अग्नि क्रुद्ध होकर सब कुछ शत्रु के समान जला रहा है । पुष्करिणी तथा कूप में भी एक समान ज्वाला है ।।४३-४४।। हमलोगों को जलाकर तुम म्लेच्छत्व को प्राप्त करोगे । इस तरह से कहने वाली उन सबों से अग्नि ने कहा ।।४५।। **अग्नि ने कहा—** मैं स्वतंत्र रूप से तुमलोगों का विनाश नहीं कर रहा हूँ । मैं तो आदेश का पालन कर रहा हूँ, मैं अनुग्रह करने वाला नहीं हूँ।।४६।। मैं क्रोध से युक्त होकर यहाँ विचरण करता हूँ । उसके बाद महातेजस्वी बाण ने त्रिपुर को जलते हुए देखकर कहा ।।४७।। वह अपने आसन पर बैठे हुए कहा मेरा विनाश देवताओं ने किया है । उन कमजोर तथा दुराचारी देवताओं ने शङ्करजी से प्रार्थना की ।।४८।। बिना परीक्षा किए ही शङ्कर ने मुझे जलाया है । महेश्वर को छोड़कर दूसरा देवता मुझे नहीं मार सकता है ।।४९।। त्रिभुवनेश्वर नामक शिवलिङ्ग को अपने शिर पर रखकर वह खड़ा हो गया । वह अपने सुहृदों का परित्याग करके नगर के द्वार से निकल गया ।।५०।। अद्भुत रत्नों तथा अनेक स्त्रियों को त्यागकर नगर मण्डल में स्थापित शिवलिङ्ग को अपने शिर पर रखकर ।।५१।। वह त्रैलोक्य के स्वामी शिवजी की स्तुति कर रहा था। हे शिव ! तुमने मुझे जला दिया है, हे शङ्कर यदि मैं 'बध्य' हूँ तो ।।५२।। आप की कृपा से मेरा यह शिवलिङ्ग विनष्ट

त्वत्प्रसादान्महादेव मामे लिङ्गं विनश्यतु। अर्चितं हि महादेव ! भक्त्या परमया सदा ॥५३॥
त्वया यद्यपि वध्योऽहं मा मे लिङ्गं विनश्यतु।
प्राप्यमेतन्महादेव ! त्वत्पादग्रहणं मम ॥५४॥
जन्मजन्म महादेव त्वत्पादनिरतो ह्यहम्। तोटकच्छन्दसा देवं स्तुत्वा तु परमेश्वरम् ॥५५॥
ओं शिव शङ्कर सर्वकराय नमो भव भीम महेश शिवाय नमः।
कुसुमायुध ! देहविनाशकर ! त्रिपुरान्तकरान्धकचूर्णकर ! ॥५६॥
प्रमदाप्रिय ! कामविभक्त नमो हि नमः सुरसिद्धगणैर्नमितः।
हयवानरसिंहगजेन्द्रमुखैरतिह्रस्वसुदीर्घमुखैश्च गणैः ॥५७॥
उपलब्धुमशक्यतरैरसुरैर्व्यथितो न शरीरशतैर्बहुभिः।
प्रणतो भगवान्बहुभक्तिमता चलचन्द्रकलाधरदेव ! नमः ॥५८॥
सहपुत्रकलत्रकलापधनैः सततं जय देहि अनुस्मरणम्।
व्यथितोऽस्मि शरीरशतैर्बहुभिर्गमिताऽद्य महानरकस्य गतिः ॥५९॥
न निवर्तति यन्ममपापगतिः शुचिकर्म्मविशुद्धमपि त्यजति।
अनुकम्पति दिग्भ्रमति भ्रमति भ्रम एष कुबुद्धि निवारयति ॥६०॥
यः पठेत्तोटकं दिव्यं प्रयतः शुचिमानसः। बाणस्यैव यथा रुद्रस्तस्यैव वरदो भवेत् ॥६१॥
इमं स्तवं महादिव्यं श्रुत्वा देवो महेश्वरः। प्रसन्नस्तु तदा तस्य स्वयं देवो महेश्वरः ॥६२॥

ईश्वर उवाच

न भेत्तव्यं त्वया वत्स ! सौवर्णे तिष्ठ दानव !।
पुत्रपौत्रैः सपत्नीकै र्भार्याभृत्यजनैः सह ॥६३॥

न हो। हे महादेव ! मैं इसकी परमाभक्ति से पूजा की है ॥५३॥ यद्यपि मैं आपका बध्य हूँ; किन्तु मेरा शिवलिङ्ग विनष्ट न हो हे महादेव ! आप मेरे प्रणाम को स्वीकार करें ॥५४॥ तोटक छन्द के द्वारा, आप महेश्वर की स्तुति करके मेरी प्रत्येक जन्म में आपके चरणों में भक्ति हो ॥५५॥ सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले शिव शङ्कर को मेरा नमस्कार है, संसार के लिए भयङ्कर शिवजी को नमस्कार है। हे कामदेव ! के शरीर को विनष्ट करने वाले त्रिपुर तथा अन्धक को चूर्ण करने वाले ॥५६॥ अपनी पत्नी को प्रसन्न करने की इच्छा से विभक्त (अर्द्धनारीश्वर) शिवजी को बारम्बार नमस्कार है, देवता और सिद्धगण आपको नमस्कार करते हैं। घोड़ा, वानर, सिंह तथा गजेन्द्र के मुख वाले अपने छोटे तथा बड़े गणों के लिए आप अनुपलभ्य हैं। असुर आप को अपने असंख्य शरीर से व्यथित नहीं कर सके। हे भगवन् ! अत्यधिक भक्ति से युक्त मैं आपको नमस्कार करता हूँ, चंचल चन्द्रमा की कला को धारण करने वाले शिवजी को नमस्कार है ॥५८॥ अपनी पत्नी पुत्र समूह के साथ स्मरण करने वाले मुझको आप विजय प्रदान करें। सैकड़ों शरीरों को प्राप्त करके मैं दुःखी हूँ और मैं नरक में जाने वाला हूँ॥५९॥ मेरी जो पापगति दूर नहीं होती है और पवित्र तथा शुद्ध कर्म को मेरी बुद्धि त्याग देती है। कृपा करके मुझे जो दिग्भ्रम हो रहा है यह मेरी कुबुद्धि को दूर करने का काम कर रहा है ॥६०॥ जो पवित्र मन से प्रतिदिन इस शुभ तोटका का पाठ करता है उसको भगवान शिव उसी प्रकार से वरदान देते हैं,

अद्यप्रभृति बाण ! त्वमवध्यस्त्रिदशैरपि । भूयस्तस्य वरो दत्तो देवदेवेन पाण्डव ! ॥६४॥
अक्षयश्चाव्ययो लोके विचचार ह निर्भयः। ततो निवारयामास रुद्रः सप्तशिखं तथा॥६५॥
तृतीयं रक्षितं तस्य शङ्करेण महात्मना। भ्रमते गगने नित्यं रुद्रतेजः प्रभावतः॥६६॥
एवं तु त्रिपुरं दग्धं शङ्करेण महात्मना । ज्वालामालाप्रदीप्तं तु पतितं धरणीतले॥६७॥
एकं निपातितं तस्य श्रीशैले त्रिपुरान्तके । द्वितीयं पातितं तत्र पर्वतेऽमरकण्टके॥६८॥
दग्धे तु त्रिपुरे राजन्रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता । ज्वलन्तं पातितं तत्र तेन ज्वालेश्वरः स्मृतः ॥६९॥
ऊर्ध्वेन प्रस्थिता तस्य दिव्या ज्वाला दिवं गता ।
हाहाकारस्तदा जातो सदेवासुरकिन्नरान् ॥७०॥
तं शरंस्तम्भयेद्रुद्रो माहेश्वरपुरोत्तमे। एवं व्रजेत यस्तस्मिन्पर्वतेऽमरकण्टके॥७१॥
चतुर्दशभुवनानि सुभुक्त्वा पाण्डुनन्दन ! । वर्षकोटिसहस्रं तु त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः ॥७२॥
ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः ।
पृथिवीमेकच्छत्रेण भुङ्क्ते नास्त्यत्र संशयः ॥७३॥
एष पुण्यो महाराज सर्वतोऽमरकण्टकः । चन्द्रसूर्योपरागेषु गच्छेद्योऽमरकण्टकम्॥७४॥
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः। स्वर्गलोकमवाप्नोति दृष्ट्वा तत्र महेश्वरम्॥७५॥
सन्निहत्यागमिष्यन्ति राहुग्रस्ते दिवाकरे। तदेव निखिलं पुण्यं पर्वतेऽमरकण्टके॥७६॥

जिस तरह से उन्होंने बाण को वरदान दिया था ॥६१॥ इस अत्यन्त दिव्य स्तोत्र को सुनकर भगवान् शिव उस पर (बाण पर) प्रसन्न हो गये और **शङ्करजी ने कहा**— हे दानव ! हे वत्स ! तुम्हें डरना नहीं चाहिए; तुम अपने पुत्र, पौत्र, पत्नी एवं स्वजनों के साथ सौवर्ण तीर्थ में निवास करो ॥६२-६३॥ आज भी तुम अवध्य हो, तुम्हें कोई देवता भी नहीं मार सकता है । हे युधिष्ठिर ! उसको शङ्करजी ने पुनः वरदान दिया ॥६४॥ वह आश्रय तथा विकार रहित होकर लोकों में विचरण करता है । उसके बाद शङ्करजी ने अग्नि को रोक दिया ॥६५॥ और उसके तृतीय शिखा की रक्षा की । वह रुड के तेज के प्रभाव से सदा आकाश में भ्रमण करती रहती है ॥६६॥ इसतरह से शङ्करजी ने त्रिपुर को जला दिया वह (त्रिपुर) समूह जलता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा ॥६७॥ उनमें से एक-एक शिखर तो कैलास पर्वत पर गिरा, दूसरा, अमरकण्टक पर्वत पर गिरा ॥६८॥ हे राजन् ! त्रिपुर के जल जाने पर रुद्र कोटि की प्रतिष्ठा हुयी । चूकि वह त्रिपुर जलता हुआ गिर पड़ा था अतएव उस लिङ्ग को ज्वालेश्वर कहते हैं ॥६९॥ उसकी ऊपर की ओर जाती हुयी दिव्य ज्वाला स्वर्ग लोक में चली गयी । उस समय देवता असुर गन्धर्व तथा किन्नर हाहाकार करने लगे ॥७०॥ उस बाण को शिवजी ने शङ्करजी की नगरी में स्तम्भित कर दिया । इसतरह से (जानकर) जो पुरुष अमरकण्टक तीर्थ की यात्रा करता है ॥७१॥ हे पाण्डु नन्दन ! वह हजार करोड़ वर्ष तथा तीस करोड़ वर्ष तक चौदहों भुवनों का भोग करके ॥७२॥ पृथिवी पर आकर धार्मिक राजा होता है और पृथिवी का एकछत्र राज्य करता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥७३॥ हे महाराज ! यह अमरकण्टक पूर्णरूप से पुण्यमय है जो पुरुष चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के समय अमरकण्टक जाता है ॥७४॥ उसको अश्वमेध याग की अपेक्षा दशगुना अधिक फल प्राप्त होता है । यह मनीषियों का कहना है । वह अमरकण्टक पर शङ्करजी का दर्शन करके स्वर्गलोक

पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
तत्र ज्वालेश्वरो नाम पर्वतेऽमरकण्टके ॥७७॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
ज्वालेश्वरे महाराज ! यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥७८॥
चन्द्रसूर्योपरागे तु भक्त्या पि शृणु तत्फलम् ।
अमरा नाम देवास्ते पर्वतेऽमरकण्टके ॥७९॥
रुद्रलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्। अमरेश्वरस्य देवस्य पर्वतस्य तटे जले ॥८०॥
कोटिश ऋषिमुख्यास्ते तपस्तप्यन्ति सुव्रताः ।
समन्ताद्योजनं राजन्क्षेत्रं चामरकण्टकम् ॥८१॥
अकामो वा सकामो वा नर्मदायां शुभे जले ।
स्नात्वा मुच्येत पापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥८२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे अमरकण्टकपतितपुराज्वालेश्वरोत्पत्तिस्तन्माहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

सूत उवाच

पृच्छन्ति ते महात्मानो नारदं हि महाजनाः ।
युधिष्ठिरपराः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥१॥

में जाता है ॥७५॥ सूर्यग्रहण की वेला में राहु को मार देने का जो फल होता है, वही फल उसको अमरकण्टक यात्रा से प्राप्त होता है ॥७६॥ अमरकण्टक पर्वत पर विद्यमान ज्वालेश्वर का दर्शन करने वाला पुण्डरीक यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥७७॥ वहाँ पर स्नान करने वाला व्यक्ति स्वर्गलोक में जाता है, जिसकी वहाँ पर मृत्यु हो जाती है, वह मुक्त हो जाता है । हे महाराज ! जो पुरुष ज्वालेश्वर में अपने प्राणों का परित्याग कर देता है ॥७८॥ उसका फल यह है कि अमर नाम के जो देवता हैं, वे अमरकण्टक पर्वत पर ॥७९॥ उन सबों के साथ वह महाप्रलय काल तक रुद्रलोक में निवास करता है । अमरेश्वर देव के पर्वत के जल के किनारे ॥८०॥ हे सुव्रत ! करोड़ों ऋषिगण तपस्या करते है। हे राजन ! वह योजन पर्यन्त सम्पूर्ण क्षेत्र अमरकण्टक ही है ॥८१॥ कामना पूर्वक अथवा निष्काम रूप से नर्मदा के पवित्र जल में स्नान करके मनुष्य पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में निवास करता है ॥८२॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के स्वर्गखण्ड के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

काबेरी नर्मदा सङ्गम महात्म्य कुबेर स्थान का वर्णन

ऋषियों ने कहा— युधिष्ठिर से सम्वद्ध सभी ऋषिगण और तपस्वीगण जो थे वे सभी महापुरुष

आख्याहि भगवंस्तथ्यं काबेरीसङ्गमं महत् ।
लोकानां च हितार्थाय अस्माकं च विवृद्धये ॥२॥
सदा पापरता ये तु नरा दुष्कृतिकारिणः। मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो गच्छन्ति परमं पदम्॥३॥
एतदिच्छामो विज्ञातुं भगवन्वक्तुमर्हसि ॥४॥

नारद उवाच

श्रृणुध्वं सहिताः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः । अत्र कृत्वा महायज्ञं कुबेरः सत्यविक्रमः ॥५॥
इदं तीर्थमनुप्राप्य साम्राज्यादधिकोऽभवत् । सिद्धिं प्राप्तो महाराज ! तन्मे निगदतः श्रृणु ॥६॥
काबेरी नर्मदां यत्र सङ्गता लोकविश्रुताम्। तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः ॥७॥
तपस्तप्यति यक्षेन्द्रो दिव्यं वर्षशतं महत्। तस्य तुष्टो महादेवः प्रदद्याद्वरमुत्तमम्॥८॥
भो भो यक्ष ! महासत्त्व वरं ब्रूहि यथेप्सितम् ।
ब्रूहि कार्यं यथेष्टं तु यद्वा मनसि वर्त्तते ॥९॥

कुबेर उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम ।
आदिकृच्चैव सर्वेषां यक्षाणामाधिपो भवेत् ॥१०॥
कुबेरस्य वचः श्रुत्वा तुष्टो देवो महेश्वरः। एवमस्तु ततश्चोक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥११॥
सोऽपि लब्धवरो यक्षः शीघ्रं यक्षकुलं गतः ।
पूजितः सर्वयक्षेन्द्रैरभिषिक्तस्तु पार्थिवः ॥१२॥

नारदजी से पूछे ॥१॥ हे भगवन् ! कावेरी सङ्गम स्थल में होने वाले फल को आप बतलायें जिससे कि संसारी जीवों तथा हमलोगों का कल्याण हो सके ॥२॥ जो पापी जीव सदा पाप ही करते रहते हैं वे भी काबेरी संगम स्थल में स्नान करते हैं वे सभी पापों से मुक्त होकर परमापद को प्राप्त कर लेते हैं । ऐसा कहा जाता है । हे भगवन् ! मैं इस बात को जानना चाहता हूँ ॥३॥ **नारदजी ने कहा—** हे युधिष्ठिर ! के साथ विद्यमान महर्षियों आपलोग सुनें यहाँ पर सत्य पराक्रम सम्पन्न कुबेर में महायज्ञ किया; उसके बाद वे इस तीर्थ में यज्ञ करने के कारण उनका राज्य और अधिक बढ़ गया और उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली । उसे मैं बतलाता हूँ आप सभी सुनें । जहाँ पर काबेरी नदी लोक प्रख्यात नर्मदा नदी में मिली है ॥५॥ वहाँ पर स्नान करके कुबेर ने देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त तपस्या किया ॥६॥ उससे प्रसन्न होकर शङ्करजी ने कुबेर को उत्तम वरदान दिया । उन्होंने कहा— हे महासत्त्वसम्पन्न यक्ष! आप वर माँगें अथवा आपके मनोनुकूल जो कार्य हो उसे बतलायें ॥७॥ **कुबेर ने कहा—** हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वरदान देना चाहते हैं; तो मैं सभी यक्षों का राजा बन जाऊँ ॥८॥ कुबेर की वाणी सुनकर प्रसन्न हुए शङ्करजी ने कहा ठीक है ऐसा ही होगा । यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये ॥९॥ कुबेर भी वरदान प्राप्त करके यक्षों के पास गये । बड़े-बड़े यक्षों ने उनकी पूजा की और उनको अपना राजा बनाया ॥१०॥ वहाँ पर काबेरी संगम सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । इस बात को जो मनुष्य नहीं जानते हैं वे घोखे में ही हैं ॥११॥ अतएव हर प्रकार का प्रयास करके मनुष्य को वहाँ पर स्नान करना चाहिए । कावेरी और नर्मदा ये दोनों अत्यन्त पवित्र नदियाँ हैं ॥१२॥ हे राजेन्द्र!

काावेरीसङ्गमं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् । ये नरा नाभिजानन्ति वञ्चितास्ते न संशयः ॥१३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः। कावेरी च महापुण्या नर्मदा च महानदी॥१४॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र अर्चयेद् वृषभध्वजम् ।
अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते ॥१५॥
अग्निप्रवेशं यः कुर्याद्यश्च कुर्य्यादनाशनम्। अनिवर्तिका गतिस्तस्य यथा मे शङ्करोऽब्रवीत्॥१६॥
सेव्यमानो वरस्त्रीभिर्मोदते दिवि रुद्रवत्। षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापरे॥१७॥
मोदते रुद्रलोकस्थो यत्र यत्रैव गच्छति। पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ॥१८॥
भोगवान्धर्मशीलश्च महांश्चैव कुलोद्भवः । तत्र पीत्वा जलं सम्यक्चान्द्रायणफलं लभेत्॥१९॥
स्वर्गं गच्छन्ति ते मर्त्या ये पिबन्ति जलं शुभम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यत्फलं यान्ति मानवाः ॥२०॥
काबेरीसङ्गमे स्नात्वा तत्फलं तस्य जायते।एवं तु तस्य राजेन्द्र काबेरीसङ्गमं महत्॥२१॥
पुण्यं महत्फलं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥२२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे कावेरीनर्मदासङ्गममाहात्म्ये कुवेराख्यानवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

वहाँ स्नान करके शिवजी की पुजा करनी चाहिए । ऐसा करने वाला अश्वमेध का फल प्राप्त करके रुद्रलोक में पूजित होता है ॥१३॥ जो वहाँ पर अग्नि में प्रवेश करता है अथवा उपवास करता है, वह व्यक्ति मृत्यु के बाद इस संसार में नहीं आता है, इसतरह से मुझे शङ्करजी ने बतलाया है ॥१४॥ वहाँ उसकी सेवा श्रेष्ठ स्त्रियाँ रुद्र के समान करती हैं, वह साठ करोड़ तथा साठ हजार वर्ष ॥१५॥ तक रुद्रलोक में रहकर आनन्दानुभव करता है, और अपनी इच्छा के अनुसार संचरण करता है । पुण्य का क्षय हो जाने पर वह मर्त्यलोक में आकर धार्मिक राजा होता है ॥१६॥ वह भोग सम्पन्न, धार्मिक तथा महान् वंश में उद्भूत होता है । जो व्यक्ति उस कावेरी नर्मदा सङ्गम स्थल का पानी पीता है उसको चान्द्रायण व्रत करने का फल प्राप्त होता है ॥१७॥ जो मनुष्य वहाँ का जल पीते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं । गङ्गा और यमुना के सङ्गम स्थल में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति काबेरी सङ्गम स्थल में स्नान करने से होती है । हे राजेन्द्र ! उस कावेरी सङ्गम का फल और पुण्य महान् है । वह समस्त पापों का विनाश करने वाला है ॥१८-२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

नारद उवाच

उत्तरे नर्मदाकूले तीर्थं योजनविस्तरम् । पत्रेश्वरेति विख्यातं सर्वपापहरं परम् ॥१॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते । पञ्चवर्ष सहस्राणि क्रीडते कामरूपधृत् ॥२॥
गर्जनं तु ततो गच्छेद्यत्र मेघ उपस्थितः । इन्द्रजिन्नाम सम्प्राप्तं तस्य तीर्थप्रभावतः ॥३॥
मेघरावं ततो गच्छेद्यत्र मेघाभिगर्जितम् । मेघनादो गणस्तत्र वरसम्पन्नतां गतः ॥४॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमिति स्मृतम् । तत्र सन्निहितो ब्रह्मा नित्यमेव युधिष्ठर ॥५॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ब्रह्मलोके महीयते। ततोऽङ्गारेश्वरे तीर्थे नियतो नियमासनः ॥६॥
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति। ततो गच्छेत राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥७॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोप्रदान फलं लभेत् ।
काञ्चीतीर्थं ततो गच्छेद्देवर्षिगण सेवितम् ॥८॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोलोकं समवाप्नुयात् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥९॥

तत्र सन्निहितो रुद्रस्तिष्ठते उमया सह। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र अवध्यस्त्रिदशैरपि॥१०॥
पिप्पलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनम् । तत्र गत्वा तु राजेन्द्र ! रुद्रलोके महीयते ॥११॥
ततो गच्खेत्तु राजेन्द्र विमलं पिघलेश्वरम् । तत्र देव शिखा रम्या ईश्वरेण निपातिता॥१२॥

नर्मदा के उत्तर तट पर विद्यमान पत्रेश्वर तीर्थ की महिमा

नारदजी ने कहा— नर्मदा नदी के उत्तर तट पर एक योजन विस्तृत पत्रेश्वर तीर्थ है । वह समस्त पापों का विनाश करने वाला है ॥१॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य देवताओं के साथ आनन्दानुभव करता है । वह पाँच हजार वर्ष पर्यन्त अपने मनोऽनुकूल रूप धारण करके क्रीड़ा करता है ॥२॥ उसके पश्चात् वह गर्जनतीर्थ में जाय वहाँ पर मेघनाद गया था । उसी तीर्थ के प्रभाव से उसको इन्द्रजीत यह नाम मिला था ॥३॥ उसके बाद मेघराव तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ पर मेघनाद ने मेघ के समान गर्जना किया था । वहाँ पर अपने गण के साथ मेघनाद ने वरदान प्राप्त किया ॥४॥ हे राजेन्द्र! वहाँ से ब्रह्मावर्त नामक तीर्थ में जाना चाहिए हे युधिष्ठिर वहाँ पर ब्रह्माजी सदैव निवास करते हैं ॥५॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है । उसके पश्चात् अङ्गारेश्वर तीर्थ में जाय तथा नियमित भोजन करे ॥६॥ वहाँ स्नान करने वाला शुद्ध आत्मा वाला सभी पापों से रहित होकर रुद्रलोक में जाता है । हे राजेन्द्र ! वहाँ से कपिल तीर्थ में जाना चाहिए ॥७॥ हे राजन्! वहाँ स्नान करने से गोदान करने का फल प्राप्त होता है । उसके बाद देवर्षियों से सेवित काञ्ची तीर्थ में जाना चाहिए ॥८॥ हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से गोलोक की प्राप्ति होती है । हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए ॥९॥ वहाँ पर पार्वतीजी के साथ भगवान् शिव निवास करते हैं । हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य देवताओं के भी लिए अवध्य हो जाता है ॥१०॥ उसके पश्चात् सभी पापों को विनष्ट करने वाले पिप्पलेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए । हे राजेन्द्र ! वहाँ जाकर मनुष्य रुद्रलोक में सम्मानित होता है ॥११॥ हे राजेन्द्र वहाँ से स्वच्छ विमलेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए।

तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्। ततः पुष्करिणीं गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत् ॥१३॥
स्नानमात्रे नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत्। नर्मदा सरिता श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता ॥१४॥
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च। सर्वदेवातिदेवेन ईश्वरेण महात्मना ॥१५॥
कथिता ऋषिसङ्घेभ्यो ह्यस्माकं च विशेषतः ।
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी ॥१६॥
रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया। सर्वपापहरा नित्यं सर्वप्राणिनमस्कृता॥१७॥
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च। नमः पुण्यजले आद्ये नमः सागरगामिनि॥१८॥
नमोऽस्तु ते ऋषिगणैः शङ्करदेहनिःसृते ॥१९॥
नमोऽस्तु ते धर्मवृते वरानने नमोऽतु ते देवगणैकवन्दिते ।
नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने नमोस्तु ते सर्वजगत्सुपूजिते ॥२०॥
यश्चेदं पठते स्तोत्रं नित्यं शुद्धस्तु मानवः। ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥२१॥
वैश्यस्तु ल भते लाभं शूद्रश्चैव शुभांगतिम् ।
अन्नार्थी लभते ह्यन्नं स्मरणादेव नित्यशः ॥२२॥
नर्मदा सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः। तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥२३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदातीरवर्तिपत्रेश्वरतीर्थमाहात्म्येनर्मदास्तोत्रकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

वहाँ पर भगवान् शिव ने मनोहर देव शिखा को गिराया था ॥१२॥ वहाँ पर जो अपने प्राणों का परित्याग करता है वह रुद्रलोक को प्राप्त करता है । उसके बाद पुष्करिणी तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए।॥१३॥ वहाँ पर केवल स्नान करने से मनुष्य इन्द्र के आधे आसन का अधिकारी बन जाता है । नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा रुद्र के शरीर से निकली है ॥१४॥ वह स्थावर तथा जङ्गम सभी जीवों को तारने का काम करती है । सभी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीशङ्करजी ने इस बात को ऋषियों के समूह को तथा विशेष रूप से मुझको बतलाया है । श्रेष्ठ नदी नर्मदाजी की स्तुति मुनियों ने की है ॥१६॥ यह संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए रुद्र के शरीर से निकली हैं । यह सदैव सभी पापों का हरण करती हैं और सभी जीव इसको नमस्कार करते हैं ॥१७॥ इनकी स्तुति देवों, गन्धर्वो तथा अप्सराओं ने किया है । इनकी स्तुति करनी चाहिए कि हे पवित्र जल वाली ! नदियों में प्रधान, हे सागर गामिनि ! आपको नमस्कार है ॥१८॥ हे ऋषियों से स्तुति की गयी ! तथा भगवान् शिव के शरीर से निकली हुयी आपको नमस्कार है । हे धर्म से युक्त वरानने ! आपको नमस्कार है, हे देव समूह से वन्दिते आपको नमस्कार है ॥१९॥ हे सभी पवित्र वस्तुओं को पवित्र बनाने वाली आपको नमस्कार है, हे सम्पूर्ण जगत् से पूजिते! आपको नमस्कार है । जो मनुष्य शुद्ध होकर इस स्तोत्र को प्रतिदिन पढ़ता है ॥२०॥ वह ब्राह्मण वेद का ज्ञान प्राप्त कर लेता है और क्षत्रिय विजयी होता है । वैश्य को लाभ की प्राप्ति होती है तथा शूद्र शुभगति को प्राप्त करता है ॥२१॥ इस स्तोत्र का केवल स्मरण करने से अन्न चाहने वाला अन्न प्राप्त करता है, स्वयं भगवान् शिव नर्मदा का सेवन करते हैं इसलिए इस पवित्र नदी को ब्रह्महत्या के दोष को दूर करने वाली जानना चाहिए ॥२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

अठारहवाँ अध्याय

नारद उवाच

तदा प्रभृति ब्रह्माद्या ऋषयश्च तपोधनाः। सेवन्ते नर्मदां राजन्कामक्रोधविवर्जिताः ॥१॥
तस्मिन्निपतितं दृष्ट्वा शूलं देवस्य भूतले। तस्य पुण्यं समाख्यातं शङ्करेण महात्मना॥२॥
शूलभेदेति विख्यातं तीर्थं पुण्यतमं महत्। तत्र स्नात्वार्च्चयेद्देवं गोसहस्रफलं लभेत् ॥३॥
त्रिरात्रं कारयेद्यस्तु तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। अर्चयित्वा महादेवं पुनर्जन्म न विद्यते॥४॥
भीमेश्वरं ततो गच्छेन्नर्मदेश्वरमुत्तमम्। आदित्येशं महापुण्यं तथाऽऽज्यमधुना सह ॥५॥

मल्लिकेश्वरमभ्यर्च्य पर्याप्तं जन्मनः फलम् ।
वरुणेशं ततः पश्येन्नीराजेश्वरमुत्तमम् ॥६॥

सर्वतीर्थफलं तस्य पञ्चायतनदर्शनात्। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र युद्धं वै यत्र साधितम् ॥७॥

कोटितीर्थं तु विख्यातमसुरा यत्र योधिताः ।
यत्र ते निहता राजन्दानवा बलदर्पिताः ॥८॥
तेषां शिरांसि गृह्यन्ते निहतास्ते समागताः ।
तैस्तु संस्थापितो देवः शूलपाणिर्महेश्वरः ॥९॥

कोटिर्विनिहता तत्र तेन कोटीश्वरः स्मृतः। दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सदेहः स्वर्गमावहेत् ॥१०॥
तदा इन्द्रेण क्षुद्रत्वाद्वज्रकीलेन यन्त्रितः। तदाप्रभृति लोकानां स्वर्गमत्वं निवारितम्॥११॥

नर्मदा तट पर विद्यमान शूलभेद आदि अनेक तीर्थों का माहात्म्य

नारदजी ने कहा— हे राजन् ! उसी समय से ब्रह्मा आदि देवता, तथा तपस्वी ऋषिगण काम तथा क्रोध से रहित होकर, नर्मदा नदी का सेवन करते हैं ॥१॥ शूलभेद नामक तीर्थ में अपने त्रिशूल को पृथिवी पर गिरे हुए देखकर उस तीर्थ के पुण्य का वर्णन स्वयं शङ्करजी ने किया । उन्होंने कहा कि यह शूलभेद नाम से विख्यात महान् तीर्थ है । वहाँ पर स्नान करके जो भगवान् शिव की अर्चना करता है, वह एक हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है ॥२-३॥ हे राजन् ! जो पुरुष तीन रात्रियों तक यहाँ स्नान करके शिवजी की पूजा करता है, उसका पुन: इस संसार में जन्म नही होता है, वह संसार के बन्धन से छूट जाता है ॥४॥ उसके पश्चात् भी परमेश्वर तीर्थ तथा उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए उसके बाद आदित्येश्वर नामक अत्यन्त पवित्र तीर्थ में जाय, उसके बाद मल्लिकेश्वर की घी तथा मधु से पूजा करके मनुष्य जन्म का फल प्राप्त कर लेता है । उसके बाद उसको वरुणेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए, फिर नीरजेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए ॥५-६॥ भगवान् शिव के पञ्चायतन तीर्थ का दर्शन कर लेने से सभी तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है । हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् वहाँ जाना चाहिए जहाँ पर युद्ध हुआ था ॥७॥ उस तीर्थ का नाम कोटितीर्थ हैं । वहीं पर असुरों से युद्ध हुआ था । हे राजन् ! वहीं पर बल से दृप्त बने हुए दानव मारे गये ॥८॥ मार दिए जाने के बाद में जो दानव वहाँ आये उनके ही शिर को वहाँ ग्रहण किया जाता है । उन सबों ने ही वहाँ पर त्रिशूलधारी महेश्वर की स्थापना की है ॥९॥ वहाँ पर करोड़ दानव मारे गये इसीलिए उस तीर्थ का नाम कोटीश्वर

सघृतं श्रीफलं दत्त्वा कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणम् ।
सर्वः सह देवेन शिरसाऽऽदाय धारयेत् ॥१२॥
सर्वकामेन सम्पूर्णो राजा भवति पाण्डव। मृतो रुद्रत्वमाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥१३॥
स्वर्गं गत्वा ततो राज्यं कृत्वाऽऽगत्य ततो दिवम् ।
महादेवं तथोपास्य त्रयोदश्यां हि मानवाः ॥१४॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वयज्ञफलं लभेत्। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं परमशोभनम् ॥१५॥
नराणां पापनाशाय अगस्त्येश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥१६॥
कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षचतुर्दशी । घृतेन स्नापयेद्देवं समाधिस्थो जितेन्द्रियः ॥१७॥
एकविंशकुलोपेतो न मुच्येदैश्वरात्पदात्। यानं चोपानहौ छत्रं तथा दद्याच्च कम्बलम् ॥१८॥
भोजनं चैव विप्राणां सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र रविस्तवमनुत्तमम् ॥१९॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सिंहासनगतिर्भवेत्। नर्म्मदादक्षिणे कूले तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्॥२०॥
उपोष्य रजनीमेकां स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नानं कृत्वा यथान्यायमर्चयेत्तु जनार्दनम् ॥२१॥
गोसहस्रफलं तस्य विष्णुलोकं स गच्छति ।
ऋषितीर्थं ततो गच्छेत्सवपापहरं नृणाम् ॥२२॥

है । उस तीर्थ का जो दर्शन करता है, वह अपने शरीर के साथ स्वर्ग चला जाता है ॥१०॥ उस समय इन्द्र ने अपनी क्षुद्रता के कारण उस तीर्थ को कील से कीलित कर दिया । उसी समय से जीवों का सदेह स्वर्ग जाना रुक गया ॥११॥ तीर्थ यात्री को चाहिए कि वह घृत के साथ श्रीफल प्रदान करके उसके बाद प्रदक्षिणा करे । उसके पश्चात् शङ्करजी के साथ शिर को लेकर धारण करे । ऐसा करने वाले की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह राजा हो जाता है ॥१२॥ मृत्यु के पश्चात् उसको रुद्र की प्राप्ति होती है, वह पुनः इस संसार में उत्पन्न नहीं होता है । स्वर्ग जाकर उसके बाद राज्य करके, उसके बाद फिर स्वर्ग में आकर ॥१३॥ त्रयोदशी के दिन महेश्वर की उपासना करके स्वर्ग में चला जाता है । वहाँ पर केवल स्नान कर लेने से सभी यज्ञों के फल की प्राप्ति हो जाती है ॥१४॥ हे राजेन्द्र! उसके पश्चात् समस्त पापों का नाश करने के लिए मनुष्य को अत्यन्त सुन्दर अगस्त्येश्वर का दर्शन करना चाहिए ॥१५॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने से ब्रह्महत्या का नाश होता है । कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन जो मनुष्य भगवान् शिव को घी से समाधिस्थ तथा जितेन्द्रिय होकर स्नान कराता है उसके साथ उसके इक्कीस पीढ़ी के लोग सदा के लिए शिवलोक मे चले जाते हैं ॥१६-१७॥ वहाँ पर गोदान, उपानहदान, छत्र तथा कम्बल दान, करना एवं ब्राह्मण भोजन कराना इन सबों का करोड़ गुना फल होता है ॥१८॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से रविस्तव तीर्थ में जाय वहाँ पर स्नान करके मनुष्य सिंहासन को प्राप्त करता है ॥१९॥ नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर इन्द्रतीर्थ है, वहाँ पर स्नान करके एक रात उपवास रहकर निवास करना चाहिए ॥२०॥ स्नान करने के बाद हे राजेन्द्र ! स्नान करके भगवान् जनार्दन की पूजा करे । उसको एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त होता है, और वह विष्णु लोक में जाता है ॥२१॥ वहाँ से सभी पापों को विनष्ट करने वाले ऋषि तीर्थ में जाना चाहिए, वहाँ

स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके महीयते। नारदस्य च तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्॥२३॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्। देवतीर्थं ततो गच्छेद्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥२४॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते। अमरकण्टकं ततो गच्छेदमरस्थापितं पुरा॥२५॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्। ततो गच्छेत राजेन्द्र वामनेश्वरमुत्तमम्॥२६॥
तत्र वामनकं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया। ऋषितीर्थं ततो गच्छेदीशानेशं पुमान्ध्रुवम्॥२७॥
वटेश्वरं ततो दृष्ट्वा पर्य्याप्तं जन्मनः फलम्।
भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम्॥२८॥
स्नातमात्रो नरो राजन्सर्वदुःखात्प्रमुच्यते। ततो गच्छेत राजेन्द्र वारणेश्वरमुत्तमम्॥२९॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वदुःखात्प्रमुच्यते। सोमतीर्थं ततो गच्छेत्पश्येच्चन्द्रमनुत्तमम्॥३०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्भक्त्या परमया युतः।
तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्थः शिववन्मोदते चिरम्॥३१॥
षष्टिवर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते। ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्॥३२॥
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्। तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति॥३३॥
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतकुलस्य च।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥३४॥
यस्तु प्राणपरित्यागं तत्र कुर्य्यान्नराधिप!। अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥३५॥

केवल स्नान करने से मनुष्य शिवलोक में जाता है ॥२२॥ वहीं पर अत्यन्त सुन्दर नारद तीर्थ है, वहाँ पर स्नान करने मात्र से हजार गोदान करने का फल प्राप्त होता है ॥२३॥ उसके पश्चात् देवतीर्थ में जाना चाहिए उस तीर्थ का निर्माण ब्रह्माजी ने किया। वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य ब्रह्मलोक में समादृत होता है ॥२४॥ उसके पश्चात् अमरकण्टक जाना चाहिए उसकी स्थापना अमरों ने किया है। वहाँ स्नान करने मात्र से हजार गोदान करने का फल प्राप्त करते है ॥२५॥ हे राजेन्द्र! वहाँ से वामनेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पर भगवान् वामन का दर्शन करके मनुष्य ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाता है ॥२६॥ वहाँ से ऋषितीर्थ जाना चाहिए, उसके बाद ईशानेश्वर का दर्शन करे। तदनन्तर बटेश्वर का दर्शन करके मनुष्य जीवन का पर्याप्त फल प्राप्त कर लेता है ॥२७॥ वहाँ पर सभी व्याधियों का विनाश करने वाले भीमेश्वर का दर्शन करना चाहिए। हे राजन्! वहाँ केवल स्नान कर लेने से मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥२८॥ हे राजेन्द्र! वहाँ से वारणेश्वर का दर्शन करना चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥२९॥ उसके पश्चात् सोमतीर्थ में जाकर सर्वोत्तम चन्द्र का दर्शन करे। हे राजन्! वहाँ परमा भक्ति पूर्वक स्नान करके ॥३०॥ उसी क्षण वह दिव्य देह को प्राप्त करके भगवान् शिव के समान आनन्दित होता है। वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त शिवलोक में आनन्दित होता है ॥३१॥ हे राजेन्द्र! वहाँ से पिङ्गलेश्वर तीर्थ में जाय। वहाँ पर रात-दिन का उपवास करने से तीन रात तक रहने का फल मिलता है ॥३२॥ हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में जो कपिला गौ का दान करता है उसको उस गौ के शरीर में तथा उसके बच्चे के शरीर में जितने रोम होते हैं॥३३॥ उतने हजार वर्ष तक वह रुद्रलोक में समादृत होता है। हे राजन्! वहाँ पर जो व्यक्ति अपने प्राणों

नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठन्ति ये तु मानवाः । ते मृताः स्वर्गमायान्ति तथा सुकृतिनो यथा ॥३६॥
सुरभिकेश्वरं गच्छन्नारकं कोटिकेश्वरम् । गङ्गावतरणे तत्र दिने पुण्यो न संशयः ॥३७॥
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । तुष्यते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते ॥३८॥
ततोद्वीपेश्वरं गच्छेद्व्यासतीर्थं तपोवनम् । निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी ॥३९॥
हुङ्कारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥४०॥

व्यासस्तस्य भवेत्प्रीतो वाञ्छितं लभते फलम् ।
सूत्रेण वेष्टयेद्यस्तु दीप्तं देवं सवेदिकम् ॥४१॥
क्रीडते ह्यक्षयं कालं यथा रुद्रस्तथैव सः ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र एरण्डीतीर्थमुत्तमम् ॥४२॥
सङ्गमे तु नरः स्नात्वा मुच्यते सर्व पातकैः ।
एरण्डी त्रिषु लोकेषु विख्याता पापनाशिनी ॥४३॥

अथवाश्वयुजे मासि शुक्लपक्षस्य चाष्टमी । शुचिर्भूत्वा नरः स्नात्वा सोपवासपरायणः ॥४४॥
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता । एरण्डीसङ्गमे स्नात्वा भक्तिभावानुरञ्जितः ॥४५॥

शुक्तिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च वै जलम् ।
नर्मदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥४६॥
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥४७॥

का परित्याग करता है ॥३४॥ वह अक्षय लोकों में तब तक आनन्दानुभव करता है जब तक कि चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं । जो मनुष्य नर्मदा नदी के तट में निवास करते हैं ॥३५॥ वे मरने के पश्चात् पुण्यवान् पुरुषों के समान स्वर्गलोक में जाते हैं । इसके पश्चात् सुरभिकेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए तथा नारकोटिकेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए ॥३६॥ इन दोनों तीर्थों में गङ्गावतरण (गङ्गादशहरा) के दिन जाकर स्नान करे। फिर नन्दी तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए ॥३७॥ जो ऐसा करता है । उस पर भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं और वह पुरुष मृत्यु के पश्चात् सोमलोक में जाता है । उसके पश्चात् द्वीपेश्वर तीर्थ में जाय, फिर व्यास तीर्थ और तपोवन में जाय ॥३८॥ वहाँ पर व्यासजी से भयभीत होकर वह नदी लौट गयी है । जब व्यासजी ने हुंकार किया तो वह वहाँ से दक्षिण की ओर होकर चली गयी ॥३९॥ हे नराधिप! उस तीर्थ की जो प्रदक्षिणा करता है, उस पर प्रसन्न होकर व्यासजी उसे अभिलषित फल प्रदान करते हैं ॥४०॥ जो व्यक्ति देदीप्यमान शङ्करजी को तथा उनकी वेदी को सूत्र से वेष्टित करता है । वह रुद्र के ही समान अक्षय काल पर्यन्त क्रीडा करता है ॥४१॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद उत्तम एरंडी तीर्थ में जाना चाहिए । उस सङ्गम स्थल में स्नान करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥४२॥ एरंडी त्रैलोक्य में पापनाशिनी के रूप में विख्यात है । अथवा कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को ॥४३॥ पवित्र होकर मनुष्य स्नान करके वहाँ उपवास करे ॥४४॥ वहाँ जो एक ब्राह्मण को भोजन कराता है उसको करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल मिलता है । एरण्डीरंडीसंगम में भक्तिभाव पूर्वक स्नान करके ॥४५॥ उसके बाद नर्मदा नदी के जल में स्नान करके नर्मदा के जल से भरी हुयी

ततः सुवर्णतिलके स्नात्वा दत्त्वा च काञ्चनम् ।
काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोके महीयते ॥४८॥
ततः स्वर्गच्युतः कालाद्राजा भवति वीर्यवान् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु सङ्गमम् ॥४९॥
त्रैलोक्ये विश्रुतं दिव्यं तत्र सन्निहितः शिवः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गाणपत्यमवाऽऽनुयात् ॥५०॥
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् । आजन्मनः कृतं पापं स्नानमात्राद्व्यपोहति ॥५१॥
आङ्गिरसं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। गोसहस्रफलं तस्य रुद्रलोके महीयते ॥५२॥
लाङ्गलतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र गत्वा तु राजेन्द्र ! स्नानं तत्र समाचरेत्॥५३॥
सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । वटेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥५४॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्। सङ्गमेशं ततो गच्छेत्सर्वपापहरं परम् ॥५५॥
तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः ।
भद्रतीर्थं समासाद्य दानं दद्यात्तु यो नरः ॥५६॥
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत् । अथ नारी भवेत्काऽपि तत्र स्नानं समाचरेत्॥५७॥
गौरी तुल्या भवेत्सा तु इन्द्रं याति न संशयः ।
अङ्गारेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥५८॥

सीपी को अपने शिर पर जो धारण करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥४६॥ हे नराधिप! उस तीर्थ में जो प्रदक्षिण करता है उसको सप्तद्वीपा वसुन्धरा की प्रदक्षिणा करने का फल मिलता है॥४७॥ उसके बाद सुवर्ण तिलक तीर्थ में स्नान करके तथा सुवर्ण का दान करके मनुष्य सुवर्ण विमान से रुद्रलोक में जाकर पूजित होता है ॥४८॥ उसके बाद समयानुसार स्वर्ग से गिरकर वह पराक्रमी राजा होता है। हे राजेन्द्र ! वहाँ से इक्षुनदी के सङ्गम स्थल पर जाय ॥४९॥ वहाँ पर त्रैलोक्य विख्यात दिव्य शिव का सन्निधान बना रहता है । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य गाणपत्य को प्राप्त कर लेता है ॥४९-५०॥ वहाँ से सभी पापों को विनष्ट करने वाले स्कन्दतीर्थ में जाना चाहिए वहाँ पर स्नान करने मात्र से उसके जीवन भर के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥५१॥ उसके बाद आंगिरस तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए । ऐसा करने वाले को एक हजार गौ का दान करने का फल प्राप्त होता है, और वह रुद्र लोक में जाता है ॥५२॥ उसके बाद सभी पापों को विनष्ट करने वाले लांगल तीर्थ में जाय और वहाँ जाकर स्नान करे ॥५३॥ ऐसा करने वाला सात जन्मों में किए हुए पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है । उसके बाद सभी तीर्थों में श्रेष्ठ बटेश्वर तीर्थ में जाय ॥५४॥ हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त होता है । उसके पश्चात् सभी पापों को हरने वाले सङ्गमेश्वर तीर्थ में जाय ॥५५॥ वहाँ पर स्नान करने से राज्य की प्राप्ति होती है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । जो मनुष्य भद्रतीर्थ में जाकर दान करता है ॥५६॥ उस तीर्थ के प्रभाव से उसके सम्पूर्ण कर्मों का सौ गुणा पुण्य होता है । उसके बाद एक नारी है, वहाँ पर जाकर स्नान करना चाहिए ॥५७॥ वह गौरी के समान है और इन्द्र के पास जाती है । उसके बाद

स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते। अङ्गारक्यां चतुर्थ्यां तु स्नानं तत्र समाचरेत् ॥५९॥
अक्षयं मोदते कालं मुरारीकृतशासनः। अयोनिसङ्गमे स्नात्वा न पश्येद्योनिमन्दिरम् ॥६०॥
पाण्डवेश्वरकं गत्वा स्नानं तत्र समाचरेत् । अक्षयं मोदते कालमवध्यस्तु सुरासुरैः ॥६१॥

विष्णुलोकं ततो गत्वा क्रीडाभोगसमन्वितः ।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्मर्त्ये राजाऽभिजायते ॥६२॥

कम्बोतिकेश्वरं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । उत्तरायणे सम्प्राप्ते यदिच्छेत्तस्य तद्भवेत्॥६३॥
चन्द्रभागां ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते॥६४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् ।
पूजितं देवराजेन देवैरपि नमस्कृतम् ॥६५॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दानं दत्त्वा च काञ्चनम् ।
अथवा नीलवर्णाभं वृषभं यः समुत्सृजेत् ॥६६॥

वृषभस्य तु रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च । तावद्वर्षसहस्राणि नरो हरपुरे वसेत् ॥६७॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ।
अश्वानां श्वेतवर्णानां सहस्रेषु नराधिप ॥६८॥

स्वामी भवति मर्त्येषु तस्य तीर्थप्रभावतः । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! ब्रह्मावर्त्तमनुत्तमम् ॥६९॥
तत्र स्नात्वा नरो राजंस्तर्पयेत्पितृदेवताः । उपोष्य रजनीमेकां पिण्डं दत्त्वा यथाविधि॥७०॥

कन्यागते यथाऽऽदित्यं अक्षयं सञ्चितं भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥७१॥

अङ्गारेश्वर तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए ॥५८॥ वह स्नान कर लेने मात्र से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है । वहाँ पर अङ्गार की चतुर्थी तिथि को स्नान करना चाहिए ॥५९॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति अक्षय काल तक भोग करता है, यह भगवान् विष्णु का वरदान है । आयोनि सङ्गम तीर्थ में स्नान करके अयोनि मन्दिर का दर्शन करना चाहिए ॥६०॥ फिर पाण्डवेश्वर तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए। ऐसा करने वाला अक्षय काल तक भोगों को भोगता है और वह देवताओं और असुरों के लिए अवध्य हो जाता है ॥६१॥ उसके बाद वह विष्णुलोक में जाता है । वहाँ पर जाकर वह क्रीडा तथा भोग से युक्त महाभोगों को भोग कर राजा होता है ॥६२॥ वहाँ से कम्बोतिकेश्वर तीर्थ में जाकर स्नान करे । इस तीर्थ में जो उत्तरायण काल में जाता है, वह जो चाहता है, उसको उसी वस्तु की प्राप्ति होती है ॥६३॥ उसके बाद वह चन्द्रभागा तीर्थ में जाकर स्नान करे । वहाँ केवल स्नान करने से मनुष्य सोमलोक में जाकर पूजित होता है ॥६४॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद वह विख्यात शक्रतीर्थ में जाकर स्नान करे। वह तीर्थ इन्द्र के द्वारा नमस्कृत है ॥६५॥ वहाँ स्नान करके सुवर्ण का दान करे अथवा काला सांड छोड़े ॥६६॥ ऐसा करने वाला उतने हजार वर्षों तक शिवलोक में निवास करता है, जितने रोम उस सांड के शरीर में तथा उसके बच्चों के शरीर में होते हैं ॥६७॥ उसके बाद स्वर्ग से भ्रष्ट होकर वह पराक्रमी राजा होता है । वह श्वेत वर्ण के एक हजार अश्वों का स्वामी होता है ॥६८॥ उस तीर्थ के प्रभाव से वह मनुष्यों का स्वामी होता है । हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् ब्रह्मावर्त तीर्थ में जाना चाहिए॥६९॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्कपिलां यः प्रयच्छति ।
सम्पूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवाऽप्नुयात् ॥७२॥
नर्मदेशात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥७३॥
तत्र सर्वगतो राजा पृथिव्यामभिजायते। सर्वलक्षणसम्पूर्णः सर्वव्याधिविवर्जितः ॥७४॥
नार्मदीयोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्। आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेण तु भावितम् ॥७५॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! दानं दत्त्वा च शक्तितः ।
तस्य तीर्थप्रभावेण दत्तं भवति चाक्षयम् ॥७६॥
दरिद्रा व्याधिता ये तु ये च दुष्कृतकर्मिणः ।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च ॥७७॥
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षस्य सप्तमीम् ।
वसेदायतने यस्तु निरन्नो यो जितेन्द्रियः ॥७८॥
न जायन्ते व्याधितश्च कालेऽन्धो बधिरस्तथा ।
सुभगो रूपसम्पन्नः स्त्रीणां भवति बल्लभः ॥७९॥
इदं तीर्थं महापुण्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्। ये प्रयान्ति न राजेन्द्र ! वञ्चितास्ते न संशयः ॥८०॥
मासेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वलोकमवाऽऽप्नुरुयात् ॥८१॥
मोदते स्वर्गलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततः समीपतः स्थित्वा नागेश्वरं तपोवनम् ॥८२॥

हे राजन् ! वहाँ जाकर वह पितरों एवं देवताओं का तर्पण करे । वहाँ एक रात उपवास करके विधिपूर्वक पिण्डदान करना चाहिए ॥७०॥ उस समय यदि सूर्य कन्या राशि के हों तो अक्षय फल की प्राप्ति होती है । हे राजेन्द्र ! उसके बाद कपिला तीर्थ में जाना चाहिए । उससे सम्पूर्ण पृथिवी के दान का जो पुण्य होता है उसी पुण्य को वह प्राप्त करता है ॥७२॥ नर्मदेश्वर से बड़ा तीर्थ न तो कोई हुआ और न होगा । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने से अश्वमेध याग करने के फल की प्राप्ति होती है ॥७३॥ वहाँ पर जाने वाला मनुष्य सम्पूर्ण पृथिवा का राजा होता है । वह समस्त लक्षणों से युक्त तथा सभी व्याधियों से रहित होता है ॥७४॥ नर्मदा नदी के उत्तर तट पर अत्यन्त मनोहर आदित्यायतन नामक तीर्थ है उसकी सृष्टि शङ्करजी ने की है ॥७५॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्नान करके तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर उस तीर्थ के प्रभाव से मनुष्य दान के अक्षय फल को प्राप्त करता है ॥७६॥ जो मनुष्य दारिद्र्य तथा व्याधि से युक्त होता है तथा पाप कर्म करने वाला होता है वह भी सभी पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक में जाता है ॥७७॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को जो आदित्यायतन तीर्थ में उपवास करके तथा जितेन्द्रिय होकर निवास करता है ॥७८॥ वह रोगी, अन्धा अथवा बहरा नही होता है । वह रूपवान, सुभग तथा स्त्रियों को प्रिय होता है ॥७९॥ इस तीर्थ को मार्कण्डेय महर्षि ने अत्यन्त पुण्यवान् बतलाया है । जो मनुष्य इस तीर्थ में नहीं जाता है, वह निश्चित रूप से धोखे में है ॥८०॥ उसके पश्चात् मासेश्वर का दर्शन करे और वहाँ स्नान करे । वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्ग लोक में जाता है ॥८१॥ वह सभी लोकों में जाकर तब तक आनन्दित होता है जब तक चौदह इन्द्र होते हैं । उसके बाद नागेश्वर तथा तपोवन के सन्निकट रहकर ॥८२॥ वहाँ पवित्र होकर

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
बहुभिर्नागकन्याभिः क्रीडते कालमक्षयम् ॥८३॥
कुबेरभवनं गच्छेत्कुबेरो यत्र संस्थितः। कालेश्वरं परं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः ॥८४॥
यत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वसम्पदमाप्नुयात्। ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुतालयमुत्तमम् ॥८५॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
काञ्चनं तु ततो दद्यादन्नं शक्त्या तु बुद्धिमान् ॥८६॥
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति । मम तीर्थं ततो गच्छेन्माघमासे युधिष्ठिर !॥८७॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं तत्र समाचरेत्। नक्तं भोज्यं ततः कुर्यान्न गच्छेद्योनिसङ्कटम् ॥८८॥
अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र अप्सरोभिः प्रमोदते ॥८९॥
पारमेश्वरे तपस्तप्त्वा अहल्या मुक्तिमागमत् ।
चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी ॥९०॥
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां तु प्रपूजयेत्। यत्र तत्र समुत्पन्नो नरस्तत्र प्रियो भवेत् ॥९१॥
स्त्रीबल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः। अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्॥९२॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् । सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानमात्रं समाचरेत् ॥९३॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते । सोमग्रहे तु राजेन्द्र ! पापक्षयकरं भवेत्॥९४॥
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्। यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप !॥९५॥

स्नान करके वह अक्षय काल पर्यन्त नाग कन्याओं के साथ क्रीडा करता है ॥८३॥ उसके बाद कुबेर भवन में जाना चाहिए, वहाँ कुबेर का निवास है । उसके बाद कालेश्वर तीर्थ में जाय उससे कुबेर सन्तुष्ट होते हैं ॥८४॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेता है । उसके बाद उसके पश्चिम में उत्तम मरुतालय में जाय ॥८५॥ वहाँ पर स्नान करके पवित्र हो जाय फिर सुवर्ण का दान करे तथा अपनी शक्ति के अनुसार अन्न दान करे ॥८६॥ ऐसा करने वाला पुष्पक विमान से वायुलोक में जाता है । हे युधिष्ठिर ! उसके बाद माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को मेरे (नारदजी के) तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ नक्त की बेला में भोजन करे ऐसा करने वाला गर्भ में नहीं जाता है ॥८८॥ उसके बाद अहल्या तीर्थ में जाय और वहाँ स्नान करे । वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य अप्सराओं के साथ आनन्दित होता है ॥८९॥ परमेश्वर तीर्थ में तपस्या करके अहल्या ने मुक्ति प्राप्त की । चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को कामदेव के साथ अहल्या की पूजा करे । ऐसा करने वाला मनुष्य जहाँ उत्पन्न होता है, वहीं का प्रिय होता है ॥९०-९१॥ वह दूसरे कामदेव के समान सुन्दर, ऐश्वर्य सम्पन्न और स्त्रियों का प्रिय होता है । अयोध्या में इन्द्र का विख्यात तीर्थ है॥९२॥ वहाँ पर स्नान करने मात्र से मनुष्य हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है । उसके बाद सोमतीर्थ में जाकर केवल स्नान करे ॥९३॥ वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । हे राजेन्द्र ! सोमग्रह तीर्थ पापों का विनाश करने वाला है ॥९४॥ हे राजन् ! सोमतीर्थ महान् फल देने वाला तथा त्रैलोक्य में विख्यात है । हे राजन् ! उस तीर्थ में जो चान्द्रायण व्रत करता

सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति। अग्निप्रवेशे तु जलेऽप्यथवाऽपि ह्यनाशने॥९६॥
सोमतीर्थे मृतो यस्तु नासौ मर्त्योऽभिजायते ।
स्तम्भतीर्थे ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥९७॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ॥९८॥
यो धनीपुरविख्यातं विष्णुतीर्थमनुत्तमम्। असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः ॥९९॥
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुः प्रीतो भवेदिह। अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१००॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तापसेश्वरमुत्तमम्। अमोहकमिति ख्यातं पितॄन्यस्तत्र तर्पयेत् ॥१०१॥
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि। तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृपिण्डं तु दापयेत् ॥१०२॥
गजरूपाः शिलास्तत्र तोयमध्ये प्रतिष्ठिताः ।
तस्मिंस्तु दापयेत्पिण्डं वैशाखे तु विशेषतः ॥१०३॥
तृप्यन्ति पितरस्तावद्यावत्तिष्ठति मेदिनी। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! सिद्धेश्वरमनुत्तमम् ॥१०४॥
तत्र गत्वा तु राजेन्द्र ! गणपत्यन्तिकं व्रजेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! लिङ्गो यत्र जनार्दनः ॥१०५॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! विष्णुलोके महीयते ।
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ॥१०६॥
कामदेवः स्वयं तत्र तपस्तप्यत्यसौ महान्। दिव्यं वर्षसहस्रं तु शङ्करं पर्युपासते ॥१०७॥
समाधिपदग्धस्तु शङ्करेण महात्मना। श्वेतपर्वोपमश्चैव हुताशः शुक्लपर्वणि ॥१०८॥

है ॥९५॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर सोमलोक में जाता है । सोमतीर्थ में जो अग्नि में प्रवेश अथवा जल में प्रवेश करके या अनशन करके प्राणत्याग करता है वह पुनः मर्त्यलोक में नहीं आता है । उसके बाद में स्तम्भ तीर्थ में जाय और वहाँ स्नान करे ॥९६-९७॥ वहाँ पर स्नान करने मात्र से मनुष्य सोमलोक में पूजित होता है । हे राजेन्द्र ! उसके बाद विष्णुतीर्थ में जाय ॥९८॥ विष्णु तीर्थ योधनीपुर के नाम से विख्यात उत्तम तीर्थ है । वहाँ पर भगवान् वासुदेव ने करोड़ों असुरों के साथ युद्ध किया था ॥९९॥ वहीं पर विष्णुतीर्थ हो गया वहाँ पर एक दिन और एक रात का उपवास करने से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं । ऐसा करने वाले की ब्रह्महत्या का नाश होता है ॥१००॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद उत्तम तापसेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए । उसका विख्यात नाम अमोहक है । वहाँ पर जाकर पितरों का तर्पण करना चाहिए॥१०१॥ वहाँ पर अमावस्या तथा पूर्णिमा तिथि को सविधि श्राद्ध करना चाहिए । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके पितरों को पिण्डदान करें ॥१०२॥ वहाँ पर हाथी के आकार की शिलाएँ जल में स्थित हैं, उस तीर्थ में वैशाख मास में पिण्डदान करना चाहिए ॥१०३॥ ऐसा करने से जब तक पृथिवी रहती है तब तक पितृगण तृप्त रहते है । हे राजेन्द्र ! उसके बाद सिद्धेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए ॥१०४॥ उसके बाद गणपति तीर्थ में जाय । हे राजन् ! उसके बाद उस तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ पर भगवान् जनार्दन लिङ्गरूप में हैं ॥१०५॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य विष्णुलोक में समादृत होता है । हे राजेन्द्र ! नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर अत्यन्त सुन्दर तीर्थ है । वहाँ पर स्वयं कामदेव तपस्या किए हैं । उन्होंने देवताओं के एक हजार वर्ष तक भगवान् शङ्कर की उपासना की ॥१०६-१०७॥ शङ्करजी

एते दग्धास्तु वे सर्वे कुसुमेश्वरसंस्थिताः । दिव्यवर्षसहस्रेण तुष्टस्तेषां महेश्वरः ॥१०९॥
उमया सहितो रुद्रस्तेषां तुष्टो वरप्रदः । विमोक्षयित्वा तान्सर्वान्नर्म्मदातटमास्थितान् ॥११०॥
तस्य तीर्थप्रभावेण पुनर्देवत्वमागतः । त्वत्प्रसादान्महादेव तीर्थं च भवतूत्तमम् ॥१११॥
अर्धयोजनविस्तीर्णं तीर्थं दिक्षु समन्ततः । तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ॥११२॥
कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते। वैश्वानरे यमेनैव कामदेवेन वायवे ॥११३॥

तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र ! तत्रैव च पुरागतैः ।
अन्धोनस्य समीपे तु नातिदूरे तु तस्य वै ॥११४॥

स्नानं दानं च तत्रैव भोजनं पिण्डपातनम्। अग्निवेशे जले वापि अथवाऽपि अनाशने॥११५॥
अनिवर्तिकागतिस्तस्य मृतस्याप्यर्द्धयोजने । त्रैयम्बकेण तोयेन स्नापयेन्नरपुङ्गवः ॥११६॥

अन्धोनमूले दत्त्वा तु पिण्डं चैव यथाविधि ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥११७॥

उत्तरायणे सम्प्राप्तेतत्र स्नानं करोति यः । पुरुषो वापि स्त्री वा वसेदायतने शुचिः ॥११८॥
सिद्धेश्वरस्य देवस्य प्रभाते पूजनान्नरः । सतां गतिमवाप्नोति न तां स वै र्महामखैः॥११९॥
यदा च तीर्थकालेन रूपवान्सुभगो भवेत्। मर्त्ये भवति राजासावासमुद्रान्तगोचरे ॥१२०॥
क्षेत्रपालं न पश्येच्च दण्डपालं महाबलम्। वृथा तस्य भवेद्यात्रा अदृष्ट्वा कर्णकुण्डलम्॥१२१॥

ने समाधिपर्य को भस्म कर दिया, श्वेत पर्व के समान अग्नि शुक्ल पर्व में है ॥१०८॥ ये सभी दग्ध होकर कुसुमेश्वर तीर्थ में स्थित हो गये । देवताओं के एक हजार वर्ष के बाद शङ्करजी उन सबों पर प्रसन्न हो गये ॥१०९॥ पार्वतीजी के साथ शिवजी ने उन सबों को वरदान दिया और नर्मदा के तट पर स्थित उन सबों को शङ्करजी ने मुक्ति प्रदान कर दी ॥११०॥ उस तीर्थ के प्रभाव से वह पुनः देवता हो गया । शिवजी की कृपा से वह महादेव तीर्थ हो गया ॥१११॥ वह तीर्थ सभी दिशाओं में चारो ओर आधा योजन विस्तृत है । उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य उपवास करे ॥११२॥ ऐसा करने वाला कामदेव के रूप में भगवान् शिव के लोक में पूजित होता है । यमराज ने वैश्वानर तीर्थ में तथा कामदेव ने वायु तीर्थ में तपस्या की ॥११३॥ पहले आये हुयें तथा एक साथ तपस्या करके अंधोनस्य तीर्थ के समीप में ॥११४॥ स्नान, दान, ब्राह्मण भोजन तथा अपने शरीर का त्याग अग्नि प्रवेश, या जल में प्रवेश अथवा अनशन के द्वारा शरीर त्याग करे ॥११५॥ उस आधा योजन की सीमा में जो शरीर त्याग करता है उसको पुनः संसार में नहीं आना पड़ता है । उसको त्रैयम्बक जल से स्नान कराये ॥११६॥ अंधोनस्य के मूल में सविधि पिण्डदान करने से पितृगणों को तब तक तृप्ति बनी रहती है जब तक सूर्य एवं चन्द्रमा बने रहते हैं ॥११७॥ जो उत्तरायण के समय में वहाँ पर स्नान करता है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष वह गृह में निवास करता है ॥११८॥ प्रातःकाल सिद्धेश्वर की पूजा करने वाला मनुष्य, उस गति को प्राप्त करता है जिस गति को सभी बड़े-बड़े यज्ञों को करके भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है ॥११९॥ जब तीर्थ काल के द्वारा वह सुन्दर रूप वाला हो जाता है तो वह मृत्युलोक में समुद्र पर्यन्त पृथिवी का राजा होता है ॥१२०॥ जो क्षेत्रपाल और महाबलवान दण्डपाल का दर्शन नहीं करता है और न तो कर्णकुण्डल तीर्थ का जो दर्शन नहीं करता है, उसकी तीर्थ यात्रा व्यर्थ हो जाती है ॥१२१॥

एतत्तीर्थफलं ज्ञात्वा सर्वे देवाः समागताः ।
मुञ्चन्ति पुष्पवृष्टिं तु स्तुवन्ति कुसुमेश्वरम् ॥१२२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदातीर्थस्थशूलभेदादिनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

भार्गवेशं ततो गच्छेद्भक्त्या यत्र च विष्णुना ।
हुङ्कारितास्तु देवेन दानवाः प्रलयं गताः ॥१॥

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते। शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन !॥२॥
हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तरुणादित्यसङ्काशे तप्तकाञ्चनसन्निभे ॥३॥
वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले । जाम्बूनदमये दिव्ये नानापुण्पोपशोभिते॥४॥
तत्रासीनं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम्। लोकानुग्राहकं शान्तं गणवृन्दैः समावृतम्॥५॥
स्कन्दनन्दिमहाकालैर्वीरभद्रगणादिभिः । उमया सहितं देवं मार्कण्डः परिपृच्छति ॥६॥
देव ! देव महादेव इन्द्रकामादिसंस्तुत। संसारभवभीतोऽहं सुखोपायं ब्रवीहि मे॥७॥

इस तीर्थो के फल को जानकर सभी देवता आये और उन लोगों ने कुसुमेश्वर नामक शिव लिङ्ग पर पुष्पों की वर्षा की ॥१२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के स्वर्गखण्ड के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भार्गवेश्वर तीर्थ की महिमा तथा शुक्ल तीर्थ की उत्पत्ति और उसका माहात्म्य

नारदजी ने कहा— उसके पश्चात् भार्गवेशतीर्थ में जाना चाहिए । वहीं पर भगवान् विष्णु ने अपने हुङ्कार मात्र से दानवों को विनष्ट कर दिया था ॥१॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । हे पाण्डुनन्दन ! आप शुक्लतीर्थ की उत्पत्ति का श्रवण करें ॥२॥ हिमालय पर्वत के मनोहर, अनेक धातुओं से मण्डित, मध्याह्न सूर्य के समान तथा तप्त सुवर्ण के समान देदीप्यमान शिखर वाले, जिसकी सीढियाँ वज्रस्फटिक मणि से निर्मित हैं उस पर चित्र-विचित्र शिला के ऊपर अनेक प्रकार के सुवर्ण कमलों से सुशोभित, उस शिखर पर भगवान् शिव ॥४॥ स्कन्द, नन्दी, महाकाल, तथा वीरभ्रद इत्यादि तथा पार्वती देवी के साथ, संसार पर कृपा करने की इच्छा से निर्विकार तथा शान्त थे सर्वज्ञ भगवान् शिव देवताओं के समूह से घिरे हुए बैठे थे । उस समय महर्षि मार्कण्डेय ने उनसे पूछा ॥५-६॥ हे देवराध्य ! हे इन्द्र ! तथा काम आदि देवताओं से संस्तुत भगवन् शिव ! मैं संसार

भगवन्भूतभव्येश सर्वपापप्रणाशनम्। तीर्थानां परमं तीर्थं तद्वदस्व महेश्वर ॥८॥

ईश्वर उवाच

शृणु विप्र महाभाग ! सर्वशास्त्रविशाद ! ।
स्नानादि कुरु गच्छ त्वं ऋषिसङ्घैस्समावृतः ॥९॥
मन्वत्रियाज्ञवल्क्याश्च काश्यपश्चैव चाङ्गिराः ।
यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥१०॥

नारदो गौतमश्चैव पृच्छन्ति धर्मकाङ्क्षिणः। गङ्गा कनखले पुण्या प्रयागं पुष्करं गया ॥११॥
कुरुक्षेत्रं तु पुण्यं च राहुग्रस्ते दिवाकरे। दिवा वा यदि वा रात्रौ शुक्लतीर्थं महाफलम् ॥१२॥

दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव स्नानाद्ध्यानात्तपोऽर्जनात् ।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थफलं महत ॥१३॥
शुक्लतीर्थं महापुण्यं नद्यां तु संव्यवस्थितम् ।
चाणिक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्र समागतः ॥१४॥

एतत्क्षेत्रं समुत्पन्नं योजनावृत्तिसंस्थितम्। शुक्लतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१५॥
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति। अहमत्र ऋषिश्रेष्ठ ! तिष्ठमि ह्युमया सह ॥१६॥
वैशाखे विमले मासि कृष्णपक्षे चतुर्दशी। कैलासाच्चापि निर्गत्य तत्र सन्निहितो ह्यहम् ॥१७॥
देवकिन्नरगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा। गणाश्चाप्सरसोनागाः सर्वे देवाः समागताः ॥१८॥

गगनस्थास्तु तिष्ठन्ति विमानैः सर्वकामकैः ।
शुक्लतीर्थे तु राजेन्द्र आगता धर्मकाङ्क्षिणः ॥१९॥

के भय से डरा हुआ हूँ, मुझे कोई सुखप्रद उपाय बतलायें ॥७॥ हे भगवन् ! हे भूतभव्येश ! हे महेश्वर! आप मुझे सबसे बड़े तीर्थ को बतलायें ॥८॥ **ईश्वर (शिवजी) ने कहा—** हे महाभाग ! समस्त शास्त्रों में निपुण विप्र ! आप सुनें । आप ऋषि समूह के साथ जाकर स्नान करें ॥९॥ मनु, अत्रि, याज्ञवल्क्य, काश्यप, अङ्गिरा महर्षि, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति ॥१०॥ नारद तथा गौतम, ये सभी धर्म को जानना चाहते हैं और इस विषय में पूछते हैं । कनखल में गङ्गा पवित्र हैं, प्रयाग, पुष्कर गया॥११॥ तथा कुरुक्षेत्र ये सभी सूर्य ग्रहण के अवसर पर पवत्रि होते हैं । किन्तु शुक्लतीर्थ दिन-रात सदैव महान् फल देने वाला है ॥१२॥ वहाँ पर दर्शन करने से, स्पर्श करने से, स्नान करने से, ध्यान करने से तथा तपस्या करने से होम तथा उपवास करने से शुक्ल तीर्थ महान् फल प्रदान करता है ॥१३॥ शुक्ल तीर्थ नर्मदा नदी में स्थित है । यहीं पर चाणिक्य नामक राजर्षि ने सिद्धि प्राप्त किया था ॥१४॥ यह तीर्थ उत्पन्न होकर एक योजन में फैला है । शुक्ल तीर्थ अत्यन्त पवित्र है तथा सभी पापों का नाश करने वाला है ॥१५॥ वृक्ष को आगे करके उसका दर्शन करने से ब्रह्महत्या विनष्ट हो जाती है । हे ऋषिश्रेष्ठ ! मैं इस तीर्थ में पार्वतीजी के साथ निवास करता हूँ ॥१६॥ अत्यन्त शुद्ध वैशाख मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को मैं कैलास से निकल कर इस शुक्ल तीर्थ में निवास करता हूँ ॥१७॥ उस दिन देवता किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा अप्सराओं का समूह, नाग तथा सभी देवता यहाँ आकर ॥१८॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले विमानों से आकर आकाश में स्थित रहते हैं । हे

रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिण ।
आजन्मसञ्चितं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति ॥२०॥
स्नानं दानं महापुण्यं मार्कण्ड ! ऋषिसत्तम ।
शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥२१॥
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः ।
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति ॥२२॥
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः । देवदानेन या पुष्टिर्न सा क्रतुशतैरपि ॥२३॥
कार्तिकस्य च मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम् ॥२४॥
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेच्चैश्वरात्पदात् । शुक्लतीर्थं परं तीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम् ॥२५॥
तत्र स्नात्वा ततो राजन्पुनर्जन्म न विद्यते । स्नात्वा वै शुक्लतीर्थेऽपि अर्चयेद्वृषभध्वजम्॥२६॥
जागरं कारयेत्तत्र नृत्यगीतादिमङ्गलैः । प्रभाते शुक्लतीर्थे तु स्नानं वै देवतार्चनम्॥२७॥
आचार्यं भोजयेत्पश्चाच्छिवव्रतपरः शुचिः । भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं न करायेत् ॥२८॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत्। एवं वै कुरुते यस्तु तस्य पुण्यफलं श्रृण ॥२९॥
दिव्ययानसमारूढः स्तूयमानोऽप्सरोगणैः । शिवतुल्यबलोपेतस्तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम् ॥३०॥
शुक्लतीर्थे तु या नारी ददाति कनकं शुभम् ।
घृतेन स्नापयेद्देवं कुमारं चाभिपूजयेत् ॥३१॥

राजेन्द्र ! धर्म चाहने वाले लोग यहाँ आकर ॥१९॥ अपने जीवन भर के पापों को उसी तरह से दूर कर देते हैं, जिस तरह धोबी वस्त्र के मैलों को धोकर दूर कर देता है ॥२०॥ हे ऋषियों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय! स्नान तथा दान के लिए शुक्लतीर्थ अत्यन्त पवित्र है । इसके जैसा कोई तीर्थ न हुआ और न होगा॥२१॥ मनुष्य अपनी पहली अवस्था में पापों को जो करता है, वह शुक्ल तीर्थ में एक दिन और एक रात उपवास करके दूर कर लेता है ॥२२॥ तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, दान तथा देवदान के द्वारा जो पुष्टि प्राप्त होती है, उसकी प्राप्ति सैकड़ों क्रतुओं के करने से भी नहीं होती है ॥२३॥ कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को उपवास करे और भगवान् शिव को यहाँ स्नान (अभिषेक) करायें ॥२४॥ ऐसा करने वाले के इक्कीस पीढ़ी के पूर्वज शिवलोक से कभी भ्रष्ट नहीं होते हैं । शुक्लतीर्थ श्रेष्ठतीर्थ है, इसका सेवन ऋषिगण और सिद्धगण करते हैं ॥२५॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने से पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती है । शुक्लतीर्थ में स्नान करके भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिए ॥२६॥ रात्रि में मङ्गलमय नृत्य गीत आदि के द्वारा जागरण करे । प्रात:काल शुक्लतीर्थ में स्नान करके देव पूजन करे ॥२७॥ शिवव्रत करने वाले को चाहिए कि वह आचार्य को भोजन कराये । अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराये उससे कृपणता न करे ॥२८॥ उसके बाद प्रदक्षिणा करके भगवान् शिव के सन्निकट जाय। जो इसतरह से करता है उसको प्राप्त होने वाले फल को आप सुनें ॥२९॥ वह दिव्य विमान पर चढकर अप्सराओं के द्वारा स्तुति किया जाता हुआ शिव के ही समान बल से युक्त होकर महाप्रलय काल तक स्थित रहता है ॥३०॥ शुक्लतीर्थ में जाकर जो स्त्री सुवर्ण का दान करती है तथा जो शिवजी का घी

एवं या कुरुते भक्त्या तस्याः पुण्यफलं शृणु ।
मोदते देवलोकस्था यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३२॥
अयने वा चतुर्दश्यां सङ्क्रान्तौ विषुवे तथा ।
स्नात्वा तु सोपवासः स निर्जितात्मासमाहितः ॥३३॥
दानं दद्याद्यथाशक्त्या प्रीयेतां हरिशङ्करौ। शुक्लतीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥३४॥
अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा। उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३५॥
यावत्तद्रोमसङ्ख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च। तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥३६॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भार्गवेश्वरतीर्थमाहात्म्यशुक्लतीर्थोत्पत्तिवृत्तान्तमाहात्म्यवर्णनं नामैकानविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततस्तु नरकं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र नरकं न च पश्यति ॥१॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन !।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र यान्यस्थीनि विनिक्षिपेत् ॥२॥

से अभिषेक करके कुमार (स्कन्द) की पूजा करती है ॥३१॥ उसको प्राप्त होने वाले पुण्य फल को आप सुनें वह देवलोक में जाकर चौदह इन्द्रों के काल पर्यन्त आनन्दानुभव करती है ॥३२॥ अयन के अवसर पर या चतुर्दशी तिथि को, संक्रान्ति के अवसर पर तथा विषुव (संक्रान्ति) के समय स्नान करके सावधानी पूर्वक अपने मन को वश में रखकर उपवास करें ॥३३॥ अपनी शक्ति के अनुसार श्रीहरि तथा शङ्करजी की प्रसन्नता के लिए दान करे, उसके द्वारा किए गये समस्त दान आदि अक्षय होते हैं॥३४॥ अनाथ, दुर्गतिप्राप्त अथवा सनाथ ब्राह्मण का जो तीर्थ में विवाह कराता है उसका फल सुनो । विवाह करने वाले के शरीर में तथा उसके बच्चों के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने हजार वर्ष पर्यन्त वह शिवलोक में पूजित होता है ॥३५-३६॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के तीसरे स्वर्गखण्ड के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

नरकतीर्थ आदि अनेक तीर्थों का वर्णन भृगु महर्षि का शिवजी का वरदान और भृगु तीर्थ का वर्णन

नारदजी ने कहा— उसके बाद नरकतीर्थ में जाय और वहाँ पर स्नान करे, वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य नरक में नहीं जाता है ॥१॥ हे पाण्डु नन्दन ! आप इस तीर्थ का माहात्म्य सुनें । इस

विलयं यान्ति सर्वाणि रूपवाञ्जायते नरः। गोतीर्थं तु ततो गच्छेद्दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते॥३॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कपिलातीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ॥४॥
ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः। तत्रोपोष्य नरो भक्त्या कपिलां यः प्रयच्छति ॥५॥
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य घृतेन स्नापयेच्छिवम्। सघृतं श्रीफलं दत्त्वा कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणम् ॥६॥
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां यः प्रयच्छति। शिवतुल्यो नरो भूत्वा न चेह जायते पुनः ॥७॥
अङ्गरकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः। स्नापयित्वा शिवं भक्त्या ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ॥८॥
अङ्गारकनवभ्यां तु अमावास्यां तथैव च। स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत् ॥९॥
घृतेन स्नापयेल्लिङ्गं पूजयेद्भक्तितो द्विजान्। पुष्पकेण विमानेन सहस्रैः परिवारितः ॥१०॥
शैवं पदमवाप्नोति नात्र चाभिगतं भवेत्। अक्षयं मोदते कालं यथा रुद्रस्तथैव च ॥११॥
यदा तु कर्मसंयोगान्मर्त्यलोकमुपागतः। राजा भवति धर्मिष्ठो रूपवाञ्जायते बली ॥१२॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! ऋषितीर्थमनुत्तमम्। तृणबिन्दुऋषिर्नाम शापदग्धो व्यवस्थितः ॥१३॥
स तत्तीर्थप्रभावेण पापमुक्तोऽभवद्द्विजः। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गणेश्वरमनुत्तमम् ॥१४॥

श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ॥१५॥
पितृणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात् ।
गणेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम् ॥१६॥

तीर्थ में जिसकी अस्थियों को डाल दिया जाता है ॥२॥ वे सब विलीन हो जाती हैं और वह मनुष्य रूपवान् हो जाता है । उसके बाद मनुष्य को गोतीर्थ में जाना चाहिए उस तीर्थ का दर्शन करने मात्र से वह पाप मुक्त हो जाता है ॥३॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद कपिला तीर्थ में जाय । वहाँ स्नान करके मनुष्य एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त करता है ॥४॥ ज्येष्ठ मास की चतुर्दशी तिथि को वहाँ पर जो उपवास करके कपिला नदी में घी का दीपक जलाकर भगवान् शिव को घी से स्नान कराता है और घी से भरकर श्रीफल (गिरी गोला) का दान देता है और प्रदक्षिणा करता है ॥५-६॥ तथा घण्टा एवं आभूषण से युक्त कपिला गौ का दान करता है, वह शिव के तुल्य हो जाता है और वह पुनः इस संसार में नहीं आता है ॥७॥ भौमवार की चतुर्थी तिथि को विशेष रूप से भगवान् शिव का भक्तिपूर्वक घृतभिषेक करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥८॥ अङ्गारक नवमी को तथा आमावस्या तिथि को भगवान् शिव को यत्न पूर्वक स्नान कराने वाला रूपवान् हो जाता है ॥९॥ घी से शिवलिङ्ग का अभिषेक करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए । ऐसा करने वाला वह हजारों गणों के साथ पुष्पक विमान से शिवलोक में जाता है और वह पुनः इस संसार में कभी नहीं आता है । ऐसा करने वाला अक्षय काल तक रुद्र के ही समान आनन्दित होता है ॥१०-११॥ जब वह अपने पूर्वकर्मवशात् मर्त्यलोक में आता है तो वह धार्मिक तथा रूपवान् राजा होता है ॥१२॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद उसे ऋषि तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर तृणविन्दु नामक ऋषि शाप से दग्ध होकर वहाँ पर निवास करते है ॥१३॥ उस तीर्थ के प्रभाव से वह मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है । हे राजेन्द्र ! उसके बाद गणेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए ॥१४॥ हे राजेन्द्र ! श्रावणमास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को गणेश्वर तीर्थ में स्नान

अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः ।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥१७॥

सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्। पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥१८॥
प्रयागे यत्फलं दृष्टं शङ्करेण महात्मना। तदेव निखिलं पुण्यं गङ्गाराह्वर्कसङ्गमे॥१९॥
तस्यैवं पश्चिमे स्थाने समीपे नातिदूरतः। दशाश्वमेधिकं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥२०॥
उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे तथा। अमावास्यां नरः स्नात्वा व्रजेद्वै यत्र शङ्करः ॥२१॥
सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्। पितॄणां तर्पणं कृत्वा अश्वमेधफलं लभेत् ॥२२॥
दशाश्वमेधात्पश्चिमतो भृगुर्ब्राह्मणसत्तमः। दिव्यं वर्षसहस्रं तु ईश्वरं पर्युपासत॥२३॥

वल्मीकावस्थितश्चासौ दक्षिणं च निकेतनम् ।
आश्चर्यं च महज्जातमुमाया शङ्करस्य च ॥२४॥
गौरी तु पृच्छते देवं कोऽयमत्र तु संस्थितः ।
देवो वा दानवो वाथ कथयस्व महेश्वर ! ॥२५॥

ईश्वर उवाच

भृगुर्नाम द्विजश्रेष्ठ ऋषीणां प्रवरो मुनिः। ध्यायते मां समाधिस्थो वरं प्रार्थयते प्रिये !॥२६॥
तत्र प्रहसिता देवी ईश्वरं प्रत्यभाषत। धूमावर्तशिखा जाता ततोऽद्यापि न तुष्यसि ॥
दुराराध्योऽसि तेन त्वं नात्र कार्या विचारणा ॥२७॥

करने मात्र से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है ॥१५॥ वहाँ पर पितरों का तर्पण करके वह तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है। गणेश्वर तीर्थ के सन्निकट गङ्गावदन नामक उत्तम तीर्थ है ॥१६॥ वहाँ पर कामना विशेष से अथवा निष्काम होकर स्नान करके मनुष्य जीवन भर के सारे पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१७॥ पूर्णिमा के दिन वहाँ पर सदैव स्नान और पितरों का तर्पण करें। ऐसा करने वाला मनुष्य तीनों प्रकार के ऋणों (देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण) से मुक्त हो जाता है ॥१८॥ भगवान् शिव ने प्रयाग का जो फल बतलाया है वह सम्पूर्ण फल सूर्य ग्रहण के समय गङ्गा सङ्गम स्थल पर प्राप्त होता है ॥१९॥ उसी के समीप पश्चिम दिशा में तीनों लोकों में विख्यात दशाश्वमेधिक तीर्थ है ॥२०॥ भाद्रपद के महिने में वहाँ पर एक रात उपवास करके अमावस्या के दिन स्नान करके मनुष्य शिवलोक में जाता है ॥२१॥ वहाँ पर पर्व के दिन सदैव स्नान करे। तथा पितरों का तर्पण करे ऐसा करके वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥२२॥ दशश्वमेध से पश्चिम दिशा में ब्राह्मण श्रेष्ठ भृगुमहर्षि, देवताओं के एक हजार वर्ष पर्यन्त शङ्करजी की आराधना किए ॥२३॥ वे वल्मीक के ऊपर बैठकर दक्षिण दिशा की ओर देख रहे थे, उसे देखकर पार्वतीजी तथा शङ्करजी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥२४॥ गौरी ने पूछा कि यहाँ पर यह कौन बैठा है ? हे महेश्वर यह कोई देवता है अथवा दानव है, इसे आप बतलायें ॥२५॥ **ईश्वर ने कहा—** हे प्रिये ! ये ब्राह्मण श्रेष्ठ भृगु ऋषियों में श्रेष्ठ है। वे समाधिस्थ होकर मेरा ध्यान करते हैं और मुझसे वरदान प्राप्त करना चाहते हैं ॥२६॥ उस समय जोर से हँसकर पार्वती देवी ने शिवजी से कहा— इनकी शिखा से धूम निकलने लगा है, फिर भी आप प्रसन्न नहीं हो रहे हैं अतएव निश्चित रूप से दुराराध्य हैं ॥२७॥ **शिवजी ने कहा—**

देव उवाच

न जानासि महादेवि ! अयं क्रोधेन चेष्टितः ।
दर्शयामि यथातथ्यं प्रियं ते च करोम्यहम् ॥२८॥

स्मारितो देवदेवेन धर्मरूपो वृषस्तदा। स्मरणादेव देवस्य वृषः शीघ्रमुपस्थितः॥२९॥
प्राहासौ मानुषीं वाचमादेशो दीयतां प्रभो। वल्मीकैश्छादितो विप्र ! एनं भूमौ निपातय॥३०॥
योगस्थस्तु ततो ध्यायंस्ततस्तेन निपातितः। तत्क्षणात्क्रोधसन्तप्तो हस्तमुत्क्षिप्तवान्वृषम्॥३१॥
एवं सम्भाषणस्तु कुत्र गच्छसि भो वृष । अद्य त्वामथ पाप्मानं प्रत्यक्षं हन्म्यह वृष !॥३२॥
धर्षितस्तु तदा विप्रो ह्यन्तरिक्षं गतं वृषम्। आकाशे प्रेक्षते भूप ! एतदद्भुतमुत्तमम्॥३३॥
ततः प्रहसिते रुद्रे ऋषिरग्रे व्यवस्थितः। तृतीयं लोचनं दृष्ट्वा वै लक्ष्यात्पतितो भुवि ॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ स्तुवते परमेश्वरम् ॥३४॥

प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवम् त्वामहं दिव्यरूपम् ।
भवभीतो भुवनपते भूतं विज्ञापये किंचित् ॥३५॥
त्वद्गुणनिकरान्वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाथ! ।
वासुकिरयं हि कदाचिद्वदनसहस्त्रं भवेद्यस्य ॥३६॥
भक्त्या तवाऽपि शङ्कर भुवनपते त्वत्स्तुतौ तु मुखरस्य ।
वन्द्य क्षमस्व भगवन्प्रसीद मे तव चरणपतितस्य ॥३७॥
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्तौ विनाशने देव ! ।
त्वां मुक्त्वा भुवनपते ! भुवनेश्वर ! नैव दैवतं किञ्चित् ॥३८॥

हे देवि ! तुम नहीं जानती हो, ये क्रोध करके तपस्या कर रहे हैं । मैं तुमको प्रसन्न करने के लिए वास्तविकता दिखलाता हूँ ॥२८॥ शङ्करजी ने धर्मरूपी वृष का स्मरण किया । उनके स्मरण करते ही वह वृष उपस्थित हो गया ॥२९॥ उसने मनुष्य की वाणी में कहा हे प्रभों ! आप आज्ञा दें । **शिवजी ने कहा—** दीमकों ने इस ब्राह्मण को छेंक लिया है, इनको नीचे गिरा दो ॥३०॥ योग में स्थित ध्यान करते हुए मुनि को उसने नीचे गिरा दिया उसी क्षण क्रोधित मुनि ने वृष पर हाथ उठाया ॥३१॥ उन्होंने कहा वृष तुम कहाँ जा रहे हो आज ही तुम पापी को मैं मार देता हूँ ॥३२॥ उस समय वह वृष अन्तरिक्ष में चला गया और वे विप्र उसके द्वारा परास्त कर दिए गये । उस अद्भुत वृष को उन्होंने आकाश में देखा ॥३३॥ उसके बाद रुद्र के जोर से हँसने पर ऋषि उनके सामने आ गये । उनके तीसरे नेत्र को देखकर ऋषि डर गये और पृथिवी पर गिर पड़े ॥३४॥ दण्डवत् प्रणाम करता हूँ । ऋषि ने शङ्करजी की स्तुति की । मैं संसार की सृष्टि करने वाले भूतनाथ तथा दिव्य रूप वाले आपको प्रणाम करता हूँ हे भूतपते ! मैं संसार से भयभीत हूँ आपसे कुछ कह रहा हूँ ॥३५॥ हे नाथ ! कौन ऐसा मनुष्य है जो आपके गुण समूह का वर्णन कर सके ? हो सकता है यह हजार मुखोंवाला वासुकि आप के गुणों का वर्णन करें ॥३६॥ हे शङ्कर ! हे भुवनपते ! भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करने वाले मुझको हे वन्दनीय! आप क्षम करें, मैं आपके चरणों पर गिरा हुआ हूँ ॥३७॥ हे भुवनेश्वर ! हे भुवनपते !! हे देव ! आप सत्त्व स्वरूप, रजोगुण रूप तथा तमोगुण रूप हैं । आप से भिन्न कोई दूसरा जगत् की सृष्टि,

यमनियमयज्ञदानैर्वेदाभ्यासावधारणोद्योगात् ।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हति कलासहस्रांशेन ॥३९॥
उत्कृष्टरसरसायनखड्गाञ्जनपादुकादिसिद्धिर्वा ।
चिह्नानिभवत्प्रणतानां दृश्यन्त इह जन्मनि प्रकटम् ॥४०॥
शाठ्येन न मतिर्यद्यपि ददासि त्वं धर्ममिच्छतां देव ।
भक्तिर्भवच्छेदकरी मोक्षाय विनिर्मिता नाथ ॥४१॥
परदारपरस्वरतं परिभवपरिदुःखशोकसन्तप्तम् ।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि ॥४२॥
अलीकाभिमानदग्धं क्षणभङ्गुरविभवविलसितं देव ।
क्रूरं कुपथाभिमुखं पतितं मां त्राहि देवेश ! ॥४३॥
दीनेन्द्रियगणसार्थैर्बन्धुजनैरेव पूरिता आशा ।
तुच्छा तथापि शङ्कर ! किं मूढं मां विडम्बयसि ॥४४॥
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं मे देहि हृदयवासिनीं नित्याम् ।
छिन्धि मदमोहपाशानुत्तारय मां महादेव ! ॥४५॥
करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सिद्धिदं दिव्यम् ।
यः पठित भक्तियुक्तस्तस्य तुष्येद् भृगोर्यथा हि शिवः ॥४६॥

ईश्वर उवाच

अहं तुष्टोऽस्मि ते विप्र वरं प्रार्थय स्वेप्सितम् ।
उमया सहितो देवो वरं तस्य हि दापयेत् ॥४७॥

स्थिति और विनाश करने में समर्थ नहीं है ॥३८॥ यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाध्ययन अवधारणा आदि इन सबों के द्वारा आपकी भक्ति के हजारवें अंश को भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है ॥३९॥ आपके भक्तों को इस जन्म में उत्कृष्ट रस, रसायन, खड्ग, अञ्जन तथा पादुका की सिद्धि के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखते हैं ॥४०॥ हे देव ! जो अपनी शठतापूर्वक आपको नमस्कार करता है, उसके भी आप संसार के बन्धन को विनष्ट करने वाली अपनी भक्ति प्रदान करते हैं और उसके द्वारा वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥४१॥ हे परमेश्वर ! दूसरे की पत्नी, दूसरे की सम्पत्ति को चाहने वाले तथा अनादर जन्य दुःख तथा शोक से सन्तप्त तथा दूसरे का मुँह देखते रहने वाले मेरी आप रक्षा करें ॥४२॥ हे देवेश! मिथ्या अभिमान से दग्ध तथा क्षणभङ्गुर ऐश्वर्य में विलास करने वाले, क्रूर, कुमार्गगामी तथा पतित मेरी आप रक्षा करें ॥४३॥ दीन इन्द्रिय समूहों ने तथा बांधवों ने जिसकी तुच्छ आशा पूरी की है फिर भी हे शङ्कर ! मैं मूढ हूँ मुझे आप क्यों भ्रमित कर रहे हैं ॥४४॥ आप मेरी तृष्णा को हर लें और मेरे हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी को मुझे आप शीघ्र प्रदान करें । आप मेरे मद तथा मोह रूपी बन्धनों को काट दें । हे महादेव ! आप मेरा उद्धार करें ॥४५॥ यह करुणाभ्युदय नामक सिद्धि प्रदान करने वाला दिव्य स्तोत्र जो भी भक्ति पूर्वक पढ़ता है उस पर भगवान् शिव उसी तरह कृपा करते है जैसे भृगु महर्षि पर किए ॥४६॥ **ईश्वर ने कहा—** हे विप्र ! मैं प्रसन्न हूँ आप अपना अभिलषित वरदान

भृगुरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम। रुद्रवेदीभवेदेवमेतत्सम्पादयस्व मे ॥४८॥

ईश्वर उवाच

एवं भवतु विप्रेन्द्र क्रोधस्थानं भविष्यति । न पितापुत्रयोश्चैव एकवाक्यं भविष्यति ॥४९॥

तदाप्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वे देवाः सकिन्नराः ।
उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः ॥५०॥

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते। अवशाः स्ववशाश्चापि म्रियन्ते तत्र जन्तवः ॥५१॥

गुह्यातिगुह्यस्य गतिस्तेषां निःसंशया भवेत्। एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५२॥

गुह्यातिगुह्यस्य गतिस्तेषां निःसंशया भवेत्। एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५३॥

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
औपानहं तदा छत्रं देयमन्नं च काञ्चनम् ॥५४॥
भोजनं च यथाशक्त्या अक्षयं तस्य तद्भवेत् ।
सूर्योपरागे यो दद्याद्दानं चैव-यथेच्छया ॥५५॥
न जानन्ति नरा मूढ़ा विष्णुमायाविमोहिताः ।
नर्मदायां स्थितं दिव्यं वृषतीर्थं नराधिप ! ॥५६॥
भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः सकृत् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥५७॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गौतमेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः ॥५८॥

माँगें । पार्वतीजी के साथ शङ्करजी उनको वर देना चाहते थे ॥४७॥ **भृगु महर्षि ने कहा—** हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वरदान दे रहे हैं तो मैं रुद्रवेदी हो जाऊ ऐसा मुझे बना दें ॥४८॥ **ईश्वर ने कहा—** हे विप्र ! ऐसा ही होगा । आपका क्रोध उचित होगा । पिता और पुत्र में एक वाक्यता नहीं होती है ॥४९॥ उसी समय से ब्रह्मा इत्यादि देवता तथा किन्नर भृगुतीर्थ की उपासना करते हैं जहाँ पर भृगु महर्षि पर शङ्करजी प्रसन्न हुए ॥५०॥ उस तीर्थ का दर्शन करने मात्र से पुरुष सद्यः पापों से मुक्त हो जाता है । वहाँ जो कोई भी परवश अथवा स्वतन्त्र जीव मरता है ॥५१॥ उसको अत्यन्त गोपनीय गति होती है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । यह क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और पापों का नाश करने वाला है ॥५२॥ वहाँ पर स्नान करने वाले स्वर्ग में जाते हैं और वहाँ मरने वाले मुक्त हो जाते हैं । वहाँ पर जाकर उपानह छाता अन्न तथा सुवर्ण दान करना चाहिए ॥५३॥ अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए, वहाँ पर किया गया सारा दान अक्षय होता है । सूर्यग्रहण के समय जो अपनी इच्छा के अनुसार दान देता है ॥५४॥ चन्द्रग्रहण तथा सूर्य ग्रहण के समय जो दान दिया जाता है तथा जो तीर्थ स्नान किया जाता है, या वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह सब अक्षय होता है ॥५५॥ इस बात को भगवान् विष्णु की माया से मोहित जीव नहीं जानते हैं । नर्मदा नदी में दिव्य वृष तीर्थ है ॥५६॥ जो मनुष्य भृगुतीर्थ के माहात्म्य को एक बार सुनता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर रुद्र लोक में जाता है ॥५७॥ उसके बाद मनुष्य को गौतमेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए ।

काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते। धौतपापं ततो गच्छेद्धौतं यत्र वृषेण तु ॥५९॥
नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम्। तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥६०॥
तस्मिंस्तीर्थे महाराज ! प्राणत्यागं करोति यः ।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रस्तु रुद्रतुल्यबलो भवेत् ॥६१॥
वसेत्कल्पायुतं साग्रं रुद्रतुल्यपराक्रमः । कालेन महता प्राप्तः पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥६२॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! एरण्डीतीर्थमुत्तमम्। प्रयागे यत्फलं दृष्टं मार्कण्डेयेन भाषितम्॥६३॥
तत्फलं लभते राजन्स्नातमात्रस्तु मानवः। मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षस्य चाष्टमी ॥६४॥
उपोष्य रजनीमेकां तत्र स्नानं समाचरेत्। यमदूतैर्न बाध्येत इन्द्रलोकं स गच्छति ॥६५॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः। हिरण्यद्वीपविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥६६॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्धनवान्रूपवान्भवेत्। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं कनखलं महत्॥६७॥
गरुडेन तपस्तप्तं तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! । विख्यातं सर्वलोकेषु योगिनी तत्र तिष्ठति ॥६८॥
क्रीडते योगिभिः सार्धं शिवेन सह नृत्यति ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते ॥६९॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! ईशतीर्थमनुत्तमम्। ईशस्तत्र विनिर्मुक्तो गत ऊर्ध्वं न संशयः ॥७०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! सिद्धो यत्र जनार्दनः ।
वाराहं रूपमास्थाय अचिन्त्यः परमेश्वरः ॥७१॥

हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य को उपवास करना चाहिए ॥५८॥ वह सुवर्ण निर्मित विमान से ब्रह्मलोक में जाता है ; उसके बाद धौत पाप तीर्थ में जाना चाहिए वही पर वृष ने अपने पाप को धोया था ॥५९॥ वह तीर्थ नर्मदा नदी में स्थित है, तथा सभी पापों का नाश करने वाला है । वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या को दूर कर लेता है ॥६०॥ हे महाराज ! जो उस तीर्थ में प्राण त्याग करता है । वह चार भुजाओं वाला तथा तीन नेत्रों वाला एवं रुद्र के समान बलवान् होता है ॥६१॥ वह दश हजार कल्प पर्यन्त रुद्र लोक में निवास करता है तथा रुद्र के समान पराक्रम वाला होता है। वहुत अधिक समय के पश्चात् वह सम्पूर्ण पृथिव का अकेला सम्राट् होता है ॥६२॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद एरंडीतीर्थ में जाय वहाँ जाने वाले को वही फल मिलता है जो फल प्रयाग जाने वाले को होता है । यह महर्षि मार्कण्डेय ने कहा है ॥६३॥ उस फल को वह वहाँ स्नान करने मात्र से प्राप्त करता है । भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को ॥६४॥ एक रात उपवास करके वहाँ स्नान करना चाहिए । ऐसा करने वाले को यमदूत बाधित नहीं करते हैं, वह इन्द्रलोक में जाता है ॥६५॥ हे राजेन्द्र! उसके बाद उस तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ सिद्ध जर्नादन हैं । उसको हिरण्यद्वीप कहते हैं, वह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है ॥६६॥ हे राजन् ! वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य धनवान् और रूपवान होता है । हे राजेन्द्र उसके बाद कनखल तीर्थ में जाना चाहिए ॥६७॥ हे नराधिप ! वहाँ पर गरुड ने तपस्या की है । वह सभी लोकों में विख्यात है, और वहाँ पर योगिनी का निवास है ॥६८॥ वह योगियों के साथ क्रीडा करती है और शिव के साथ नृत्य करती है । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है ॥६९॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद मनुष्य को ईश तीर्थ में जाना चाहिए।

वराहतीर्थे नरः स्नात्वा द्वादश्यां तु विशेषतः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति नरकं तु न गच्छति ॥७२॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र सोमतीर्थमनुत्तमम्। पौर्णमास्यां विशेषेण तत्र स्नानं समाचरेत् ॥७३॥
प्रणिपत्य च ईशानं बलिस्तस्य प्रसीदति। हरिश्चन्द्रपुरं दिव्यमन्तरिक्षे तु दृश्यते ॥७४॥
चक्रध्वजे समावृत्ते सुप्ते नागारिकेतने। नर्मदातोयवेगेन रुरुकच्छोपसेवितम् ॥७५॥
तस्मिन्स्थाने निवासं च विष्णुः शङ्करमब्रवीत् ।
द्वीपेश्वरे नरः स्नात्वा लभेद् बहुसुवर्णकम् ॥७६॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र रुद्रकन्यां तु सङ्गमे । स्नातमात्रो नरस्तत्र देव्याः स्थानमवाऽऽप्नुयात्॥७७॥
देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम्। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! दैवतैः सह मोदते॥७८॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! शिखितीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र वै दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥७९॥
अपरपक्षेऽमावस्यां स्नानं तत्र समाचरेत्। ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता ॥८०॥
भृगुतीर्थे तु राजेन्द्र ! तीर्थकोटिर्व्यवस्थता ।
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नायीत मानवः ॥८१॥

उसी तीर्थ में मुक्त होकर ईश ऊपर के लोकों में चले गये ॥७०॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद में वहाँ जाना चाहिये जहाँ पर जनार्दन सिद्ध हैं। वहाँ पर अचिन्त्य परमेश्वर वाराह रूप धारण करके स्थित है॥७१॥ वराह तीर्थ में द्वादशी तिथ को स्नान करके मनुष्य विष्णुलोक में चला जाता है, वह नरकों में नहीं जाता है ॥७२॥ हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् सर्वोत्तम सोमतीर्थ में जाय और विशेष रूप से पूर्णिमा तिथि को वहाँ स्नान करे ॥७३॥ वहाँ पर शङ्करजी को प्रणाम करके उनकी पूजा करने से वे प्रसन्न होते हैं। दिव्य हरिश्चन्द्रपुर अन्तरिक्ष में दिखायी पड़ता है ॥७४॥ चक्रध्वज के समाप्त हो जाने पर तथा गरुडध्वज भगवान् विष्णु के सो जाने पर नर्मदा नदी के जल के वेग से उसके किनारे पर रुरु (सर्प विशेष) तथा कच्छप आ गये। उस स्थान पर विष्णु भगवान् ने शङ्करजी के निवास को बतलाया है। उस द्वीपेश्वर में स्नान करने वाले मनुष्य को बहुत अधिक सुवर्ण की प्राप्ति होती है ॥७६॥ हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् रुद्रकन्यासङ्गम तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पर केवल स्नान कर लेने से मनुष्य देवी के स्थान को प्राप्त करता है ॥७७॥ उसके बाद सभी देवताओं से नमस्कृत देव तीर्थ में जाना चाहिए। हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य देवताओं के साथ आनन्दानुभव करता है ॥७८॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद उत्तम शिखितीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पर जो कुछ भी दान किया जाता है उसका करोड़ गुणा फल होता है ॥७९॥ दूसरे पक्ष की अमावस्या तिथि को वहाँ स्नान करना चाहिए। वहाँ पर एक ब्राह्मण को भोजन कराने से एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल होता है ॥८०॥ हे राजेन्द्र ! भृगुतीर्थ में करोड़ तीर्थों का निवास है, मनुष्य को चाहिए कि वह किसी कामना विशेष से अथवा निष्काम होकर वहाँ

अश्वमेधमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते। तत्र सिद्धिमवाप्नोति भृगुस्तु मुनिपुङ्गवः ॥८२॥
अवतारः कृतस्तेन शङ्करेण-महात्मना ॥८३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नरकतीर्थादिनानातीर्थमाहात्म्यकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र विहगेश्वरमुत्तमम्। दर्शनात्तस्य राजेन्द्र ! मुच्यते सर्वपातकैः ॥१॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! नर्मदेश्वरमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्गलोके महीयते ॥२॥
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। सुभगो दर्शनीयश्च भोगवाञ्जायते नरः ॥३॥
पितामहं ततो गच्छेद्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिंडं तु दापयेत् ॥४॥
तिलदर्भविमिश्रं तु उदकं तु प्रदापयेत्। तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥५॥
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत्। विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ॥६॥
मनोहरं च तत्रैव तीर्थं परम् शोभनम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृलोके महीयते ॥७॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते ॥८॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! क्रतुतीर्थमनुत्तमम्। विख्यातं सर्वलोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥

स्नान करे ॥८१॥ ऐसा करने वाला अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है । वहीं पर भृगु ऋषि सिद्धि को प्राप्त किए । वहीं पर भगवान् शङ्कर का अवतार हुआ ॥८२-८३॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

विहगेश्वर आदि अनेक तीर्थों का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् विहगेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए । हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ का दर्शन करने मात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में जाय वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥२॥ उसके वाद अश्वतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे । ऐसा करने वाला सुन्दर, दर्शनीय और रूपवान् हो जाता है ॥३॥ वहाँ ब्रह्माजी द्वारा पूर्वकाल में निर्मित पितामहतीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर मनुष्यों को चाहिए कि वे भक्तिपूर्वक स्नान करके पितरों को पिण्डदान करें ॥४॥ वहाँ तिल और जल मिलाकर तर्पण करें । उस तीर्थ के प्रभाव से वहाँ किया गया सारा कर्म अक्षय होता है ॥५॥ जो मनुष्य सावित्री तीर्थ में जाकर स्नान करता है, वह सभी पापों को विनष्ट करके ब्रह्मलोक में जाता है ॥६॥ वहीं पर अत्यन्त सुन्दर मनोहर तीर्थ है । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य पितृलोक में समादृत होता है ॥७॥

यान्यान्प्रार्थयते कामान्पशुपुत्रधनानि च। प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ॥१०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र त्रिदशद्योतिविश्रुतम्। तत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपस्तप्यन्ति सुव्रताः ॥११॥
भर्त्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः। प्रीतस्तेषां महादेवश्चण्डरूपधरो हरः ॥१२॥
विकृताननबीभत्सस्तच्च तीर्थमुपागतः। तत्र कन्या महाराज ! वराय परमेश्वरः ॥१३॥

कन्याऋद्धिं च यः सेवेत्कन्यादानं प्रयच्छति ।
तीर्थं तत्र महाराज दशकन्येति विश्रुतम् ॥१४॥

तत्र स्नात्वाऽर्च्चयेद्देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततो गच्छेत राजेन्द्र स्वर्गबिन्दुरिति श्रुतम् ॥१५॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्दुर्गतिं च न पश्यति ।
अप्सरेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१६॥
क्रीडते नागलोकस्थोऽप्सरोभिः सह मोदते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र नरकं तीर्थमुत्तमम् ॥१७॥
तत्र स्नात्वाऽर्च्चयेद्देवं नरकं च न गच्छति ।
भारभूतं ततो गच्छेदुपवासपरायणः ॥१८॥

एत्ततीर्थं समासाद्य अवतारं तु शाम्भवम्। अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते ॥१९॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा भारभूते महात्मनः ।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ॥२०॥

हे राजेन्द्र ! वहाँ से मानस तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्र लोक में पूजित होता है ॥८॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से क्रतु तीर्थ में जाना चाहिए वह सभी लोकोंमें पाप प्रणाशक रूप से विख्यात है ॥९॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके वह जिन पशु, पुत्र तथा धन आदि की कामना करता है, उन सबों को वह प्राप्त करता है ॥१०॥ वहाँ से मनुष्य त्रिदशद्योति तीर्थ में जाय, वहाँ पर सुन्दर व्रत वाली ऋषि कन्यायें तपस्या करती हैं ॥११॥ उन सबों ने कामना किया कि हम सबों के पति भगवान् शिव हों । उन सबों पर प्रसन्न होकर शिवजी ने प्रचण्ड रूप धारण किया ॥१२॥ विकृत मुख वाले तथा बीभत्स रूप धारी वे उस तीर्थ में आये । हे महाराज ! वहाँ महेश्वर रूप वर के लिए कन्यादान करे ॥१३॥ वहाँ जो कन्यादान करता है, वह कन्याओं की समृद्धि को प्राप्त करता है । हे महाराज ! वहाँ पर विख्यात दश कन्या तीर्थ हैं ॥१४॥ वहाँ पर स्नान करके शिवजी की जो पूजा करता है, वह समस्त पापों से रहित हो जाता है । हे राजेन्द्र ! वहाँ से स्वर्गविन्दु तीर्थ में जाना चाहिए॥१५॥ राजन् ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है उसके बाद अप्सरेश तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए ॥१६॥ ऐसा करने वाला मृत्यु के पश्चात् नाग लोक में अप्सराओं के साथ क्रीडा करता है और आनन्दित होता है । हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् उत्तम नरकतीर्थ में जाना चाहिए॥१७॥ वहाँ पर स्नान करके शिवजी की पूजा करने वाला नरक में नहीं जाता है । उसके बाद भारभूत तीर्थ में जाकर उपवास करे ॥१८॥ इसी तीर्थ में आकर शङ्करजी का अवतार हुआ था । वहाँ पर विरूपाक्ष शिवजी की पूजा करने वाला रुद्रलोक में पूजित होता है ॥१९॥ उस भारभूत तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य जहाँ कही भी मरता है वह शङ्करजी का गण अवश्य होता है ॥२०॥ जो मनुष्य कार्तिक मास

कार्तिकस्य तु मासस्य अर्चयित्वा महेश्वरम् ।
अश्वमेधाच्छतगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१॥
दीपकानां शतं कृत्वा घृतपूर्णं तु दापयेत्। विमानैः सूर्यशङ्काशैर्व्रजते यत्र शङ्करः॥२२॥
वृषभं यः प्रयच्छेत शङ्खकुन्देन्दुसंनिभम्। वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥२३॥
चरुमेकं तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ॥२४॥
यथाशक्त्यन राजेन्द्र भोजयेत्सहदक्षिणम्। तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥२५॥
नर्मदाया जलं सिक्त्वा अर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
दुर्गतिं च न पश्यन्ति तत्तीर्थस्य प्रभावतः ॥२६॥
एतत्तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। सर्वपापविशुद्धात्मा व्रजते यत्र शङ्करः॥२७॥
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥२८॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः। गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत्स्वर्गे महीयते ॥२९॥
अनाशनं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। गर्भवासे तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते नरः ॥३०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! अटवीतीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्याऽर्द्धासनं लभेत्॥३१॥
शृङ्गतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्। तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ॥३२॥
एरण्डी नर्मदायाश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम्। तत्र तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥३३॥
उपवासपरो भूत्वा नित्यं ब्रह्मपरायणः। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥३४॥

में यहाँ शङ्करजी की पूजा करता है उसको अश्वमेध याग के फल के सौ गुना अधिक फल मिलता है॥२१॥ जो एक सौ दीपकों को घी से भरकर वहाँ दान करता है, वह सूर्य के समान देदीप्यमान विमान से शिवलोक में जाता है ॥२२॥ जो श्वेतवर्ण के बैल का वहाँ दान करता है वह वृष से युक्त विमान से रुद्र लोक में जाता है ॥२३॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो केवल चरु का दान करता है तथा मधु से युक्त खीर तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का भी दान करता है ॥२४॥ तथा अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करता हे, उसके वे सारे कर्म उस तीर्थ के प्रभाव से करोड़ गुना पुण्यप्रद होते हैं ॥२५॥ नर्मदा नदी के जल से स्नान करके, भगवान् तथा शिव की पूजा करके मनुष्य उस तीर्थ के प्रभाव से दुर्गति को नहीं प्राप्त करते हैं ॥२६॥ इस तीर्थ में आकर जो अपने प्राणों का परिग्या कर देता है, वह सभी पापों से रहित होकर भगवान् शङ्कर के लोक में जाता है ॥२७॥ हे राजन् ! उस तीर्थ में जाकर जो मनुष्य जल में प्रवेश करके अपने प्राणों का परित्याग कर देता है वह हंसों से युक्त विमान के द्वारा भगवान् शिव के लोक में जाता है ॥२८॥ जब तक चन्द्रमा, सूर्य, हिमालय और सागर रहते हैं तथा गङ्गा आदि नादियाँ रहती हैं, तब तक वह स्वर्ग में पूजित होता है ॥२९॥ हे नृप ! उस तीर्थ में जाकर जो अनशन (उपवास) करता है, वह मनुष्य मृत्यु लोक पुनः कभी गर्भ में नहीं आता है ॥३०॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद अटवीतीर्थ में जाना चाहिए । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने वाला इन्द्र के आधे आसन को प्राप्त करता है ॥३१॥ वहाँ से सभी पापों का विनाश करने वाले शृङ्ग तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर भी स्नान करने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से भगवान् शिव का गण होता है ॥३२॥ एरण्डी तथा नर्मदा का सङ्गम लोक विख्यात

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! नर्मदोदधिसङ्गमम् । जमदग्निरिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ॥३५॥
यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदोदधिसङ्गमे ॥३६॥
त्रिगुणस्याश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः । पश्चिमोदधिसायुज्यं मुक्तिद्वारविघाटनम् ॥३७॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः ऋषयः सिद्धचारणाः ।
आराधयन्ति देवेशं त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम् ॥३८॥

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते। विमलेशं परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥३९॥
तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम्। सर्वपापविनिर्मुक्ता रुद्रलोकं व्रजन्ति ते ॥४०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! केशिनीतीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः ॥४१॥
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः। तत्र तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया॥४२॥
सर्वतीर्थाभिषेकं च यः पश्येत्सागरेश्वरम् । योजनाभ्यन्तरे तिष्ठेदावर्ते संस्थितः शिवः ॥४३॥

तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टानि स्युर्न संशयः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ॥४४॥

नर्मदासङ्गमं यावद्यावच्चामरकण्टकम्। तत्रान्तरे महाराज ! तीर्थ कोन्यो [illegible] स्थिताः॥४५॥
तीर्थात्तीर्थाटनं चर्या ऋषिकोटिनिषेविता । अग्निहोत्रैश्च दिव्यांशैः सर्वैर्ज्ञानपरायणैः ॥४६॥

है । वहाँ पर विद्यमान तीर्थ अत्यन्त पवित्र है और समस्त पापों का विनाश करने वाला है । निरन्तर परंब्रह्म का ध्यान करते हुए उपवास करने वाला पुरुष वहाँ स्नान करके ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है॥३४॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद नर्मदा और समुद्र के सङ्गम स्थल पर जाना चाहिए । वह जमदग्नि तीर्थ के नाम से विख्यात है । वहाँ पर सिद्ध भगवान् जर्नादन का निवास है ॥३५॥ वहीं पर अनेक यज्ञों को करके इन्द्र देवराज हो गये । हे राजन् ! उस नर्मदा और सागर के सङ्गम स्थल में स्नान करके ॥३६॥ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के तीन गुना फल प्राप्त करता है । पश्चिम समुद्र का सायुज्य; मुक्ति के द्वार को खोल देने वाला है ॥३७॥ वहाँ पर देवता, गन्धर्व, ऋषिगण, सिद्ध और चारण तीनों सन्ध्याओं में देवेश विमलेश्वर की उपासना करते हैं ॥३८॥ उस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है । विमलेश्वर तीर्थ से बड़ा तीर्थ न तो कोई हुआ और न होगा ॥३९॥ वहाँ पर जो लोग उपवास करके विमलेश्वर का दर्शन करते हैं वे सभी पापों से विशुद्ध होकर रुद्रलोक में जाते हैं ॥४०॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से वह केशिनी तीर्थ में जाय । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य को उपवास करना चाहिए ॥४१॥ एक रात उपवास करके नियम का पालन करते हुए नियत रूप से भोजन करने वाला उस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥४२॥ जो मनुष्य सागरेश्वर का दर्शन करता है उसको सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है । वह उस तीर्थ के एक योजन के भीतर ही रहे, उसके आवर्त (चकोह) में भगवान् शिव का निवास है ॥४३॥ उस तीर्थ का दर्शन करने से सभी तीर्थों के दर्शन करने का फल प्राप्त हो जाता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । वह मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है ॥४४॥ नर्मदा सङ्गम से लेकर अमरकण्टक पर्यन्त हे महाराज ! जल में एक करोड़ तीर्थों का निवास है ॥४५॥ एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जाने से करोड़ ऋषियों की सेवा हो जाती है । वे सभी तीर्थ अग्निहोत्रों, दिव्य अंशों तथा ज्ञानियों से सेवित हैं । अतएव

सेवितास्तेन राजेन्द्र ! ईप्सितार्थप्रदायिका:। यश्चेदंवैपठेन्नित्यं शृणुयाद्वाऽपि भक्तित: ॥४७॥

तं तु तीर्थानि सर्वाणि अभिषिञ्चन्ति पाण्डव !।

नर्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्रसंशय: ॥४८॥

प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनि: । वन्ध्या च लभते पुत्रान्दुर्भगा सुभगा भवेत् ॥४९॥

कुमारीं लभते भर्त्ता यच्च यो वाञ्छते फलम् ।

तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥५०॥

ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।

वैश्यस्तु लभते धान्यं शूद्र: प्राप्नोति सद्गतिम् ॥५१॥

मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं य: पठेन्नर: ।

नरकं च न पश्येत वियोनिं च न गच्छति ॥५२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विहगेश्वराद्यनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्याय: ॥२१॥

बाइसवाँ अध्याय

नारद उवाच

एवं ते कथितं राजन्नर्मदातीर्थमुत्तमम्। पुरा गन्धर्वकन्यानां शापजं भयमुल्वणम् ॥१॥

हे राजेन्द्र ! वे सब अभिप्रेत अर्थों को प्रदान करते हैं । जो मनुष्य इन प्रसङ्गों को सदा पढ़ता है अथवा भक्तिपूर्वक श्रवण कमरता है ॥४६-४७॥ हे पाण्डव ! उसको ये सभी तीर्थ अभिषिक्त करते हैं और उन सबों पर नर्मदा नदी सदा प्रसन्न रहती है ॥४८॥ उस पर भगवान् शिव और महामुनि मार्कण्डेय प्रसन्न होते है । इसका श्रवण करने से वन्ध्या पुत्रवती हो जाती है, दुर्भागा, सुभगा हो जाती है ॥४९॥ कुमारी पति को प्राप्त कर लेती है जो जिस फल को प्राप्त करना चाहता है, वह उसी फल को प्राप्त कर लेता है इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥५०॥ ब्राह्मण वेदज्ञ हो जाता है और क्षत्रिय विजयी होता है । वैश्य धन सम्पत्ति को प्राप्त करता है और शूद्र सद्गति को प्राप्त करता है॥५१॥ मूर्ख विद्या को प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य इस प्रसङ्ग को तीनों सन्ध्याओं में पढता है वह न तो नरक में जाता है और न तो वह बुरी योनि में जाता है ॥५२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तीसरे स्वर्गखण्ड के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

प्रमोहिनी आदि अनेक गन्धर्व कन्याओं का इतिहास

नारदजी ने कहा— हे राजन् ! इस प्रकार से मैंने आपको नर्मदा तीर्थ का वर्णन सुनाया । प्राचीन काल में गन्धर्वों की कन्याओं के शाप जन्य भयङ्कर भय को उसने नष्ट कर दिया ॥१॥ हे महाराज!

नाशितं तन्महाराज ! रेवाजलकणाग्निना। रेवाजलकणस्पर्शान्मुक्तो भवति मानवः ॥२॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्बहुकन्याभिः शापो लब्धः कथं कुतः ।
कस्यापत्यानि तास्तासां नाम किं कीदृशं वयः ॥३॥

कथं रेवाजलस्पर्शाद्विपाकाच्छापसम्भवात् । विमुक्ताः कुत्र ताः सस्नुः सर्वं मे कथय प्रभो !॥४॥
नर्मदातीर्थमाहात्म्यं चमत्कारकरं भवेत्। श्रवणादपि पापानां मलनाशनमुच्यते ॥५॥
नर्मदानर्मदाशब्दो येन केनचिदुच्यते। तस्य स्याच्छाश्वती मुक्तिर्यावदाचन्द्रतारकम् ॥६॥
व्याहृतं भवता पूर्वं रेवामाहात्म्यमुत्तमम् । तथापि चरितं साधो ! यदेतत्तन्निगद्यताम् ॥७॥

अथ चोत्तमावार्ता या सेवितव्या मनीषिभिः ।
अतः पृच्छामि विप्रेन्द्र रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ।
इतिहासं वद विभो ! कन्यानां चरितोज्ज्वलम् ॥८॥

नारद उवाच

श्रूयतां राजशार्दूल ! धर्मगर्भा परा कथा ।
यथारणिर्वह्निगर्भा धर्म्मस्तु ब्रह्मसूरिव ॥९॥

गन्धवः शुकसङ्गीतस्तस्य कन्याप्रमोहिनी। सुशीलस्य सुशीला च सुस्वरा स्वरवेदिनः ॥१०॥

सुतारा चन्द्रकान्तस्य चन्द्रिका सुप्रभस्य च ।
इमानि वरनामानि तासामप्सरसां नृप ॥११॥
कुमार्यः पञ्चसर्वास्ता वयसा सुभगाः पुनः ।
भाषन्ते च मिथस्तास्तु भगिन्य इव सर्वदा ॥१२॥

उसको रेवा के जल के कण रूपी अग्नि ने उस भय को नष्ट किया । रेवा के जल कण के भी स्पर्श करने वाला भी मानव मुक्त हो जाता है ॥२॥ **युधिष्ठर ने कहा—** हे भगवन् ! अनेक कन्याओं ने शाप कैसे प्राप्त किया ? वे सब किसकी सन्ताने थीं ? उनका नाम क्या था और उन सबों की अवस्था क्या थी ?॥३॥ शाप जन्य परिणाम से वे रेवा के जल का स्पर्श करके कैसे मुक्त हुयीं ? उन सबों ने कहाँ स्नान किया ? इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ॥४॥ नर्मदा तीर्थ के माहात्म्य का चमत्कार कैसे हुआ ? इसके सुनने से भी पाप रूपी मल का नाश हो जाता है ॥५॥ जो मनुष्य नर्मदा-नर्मदा इस शब्द का उच्चारण करता है उसकी भी शाश्वत मुक्ति हो जाती है और वह तब तक बनी रहती है जब तक चन्द्रमा और तारे रहते हैं ॥६॥ पहले आप रेवा के उत्तम मांहात्म्य को बतला चुके हैं । फिर भी हे साधो ! यह जो चरित है उसको आप मुझे सुनाइये ॥७॥ मनीषियों को उत्तम वार्ता का सेवन करना ही चाहिए । इसीलिए हे विप्रेन्द्र ! मैं आप से रेवा का उत्तम माहात्म्य पूछता हूँ । हे विभो! कन्याओं के चरित से प्रकाशित इस इतिहास को आप मुझे बतलाइये ॥८॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजश्रेष्ठ! आप अत्यन्त धार्मिक कथा को सुनिये । जिस तरह अरणि अग्निगर्भा होती है, उसी तरह धर्म ब्रह्म की संतति है ॥९॥ शुकसंगीति नामक गन्धर्व की कन्या का नाम प्रमोहिनी था । सुशील की पुत्री का नान सुशीला था, स्वरवेदि की पुत्री सुस्वरा थी ॥१०॥ चन्द्रकान्त नामक गन्धर्व की पुत्रो सुतारा थी, और

चन्द्रादिव विनिष्क्रान्ताश्चन्द्रिका इव सोज्ज्वलाः ।
चन्द्राननाः सुकेश्यश्च चन्द्रकान्ता इवोज्ज्वलाः ॥१३॥
देवेष्वेता विलासिन्यः कौमुद्यः कैरवेष्विव ।
लावण्यपिण्डसम्भूता दिव्यरूपा मनोहराः ॥१४॥
उद्भिन्नकुचपद्मिन्यः केतक्य इव माधवे । उत्पन्नयौवनैः कान्ता वल्लीव नवपल्लवैः ॥१५॥
हेमगौराश्च हेमाभा हेमाभरणभूषिताः । हेमचम्पकमालिन्यो हेमच्छविसुवाससः ॥१६॥
स्वरग्रामावलीहासु विविधामूर्च्छनासु च । तालवाद्यविनोदेषु वेणुवीणाप्रवादने ॥१७॥
मृदङ्गनादसम्भिन्नलास्यमध्यलयेषु च । चित्रादिषु विनोदेषु कलासु च विशारदाः ॥१८॥
एवं भूताश्च ताः कन्या मुमुहुः क्रीडनैर्वरैः ।
पितृभिर्लालिताः सर्वाश्चेरुश्च धनदालये ॥१९॥
कौतुकादेकदा पञ्च मिलित्वा मासि माधवे ।
कन्यामन्दारपुष्पाणि विचिन्वन्त्यो वनाद्वनम् ॥२०॥
गौरीं समाराधयितुं सुराङ्गनाः कदाचिदच्छोदसरोवरं ययुः ।
हेमाम्बुजानि प्रवराणि ताः पुनस्तस्मादुपादाय वरोत्पलैः सह ॥२१॥
वैडूर्यशुद्धस्फटिकप्रकुट्टिमे स्नात्वा तु घट्टे परिधाय चाम्बरम् ।
मौनेन च स्थण्डिलापिण्डिकामुमां सुवर्णमुक्ताभरणां विनिर्ममुः ॥२२॥

सुप्रभ की पुत्री का नाम चन्द्रिका था । हे राजन् ! उन अप्सराओं के ये ही नाम थे ॥११॥ ये पाँचो कुमारियाँ युवती और सुन्दर थीं । वे आपस में सदा बहन के समान बातें करती थीं ॥१२॥ चन्द्रमा से निकली हुयी चाँदनी के समान वे सब सुन्दर थीं । उन सबों का मुख चन्द्रमा के समान था उन सबों के केश सुन्दर थे और उन सबों की कान्ति चन्द्रमा के समान थी ॥१३॥ जिस तरह कुमुदिनियाँ कैरव से विलास करती हैं उसी तरह ये सब देवताओं के साथ विलास करती थीं । लगता था कि वे सब जैसे सौन्दर्य पिण्ड से उत्पन्न हुई हों । उन सबों का रूप दिव्य और मनोहर था ॥१४॥ जिस तरह वसन्त में केवड़ा खिल जाता है, उसीतरह उन सबों के स्तन उठे हुए थे । नवीन पल्लवों से युक्त लता के समान उन सबों की नवीन जवानी थी ॥१५॥ वे सब सुवर्ण के समान गौर वर्ण की थीं, सुवर्ण के समान उन सबों की कान्ति थी तथा सुवर्णालङ्कारों से अलंकृत थीं । वे सब सुवर्ण चम्पा की माला धारण की थीं औन उन सबों का वस्त्र भी सुवर्ण की कान्ति से युक्त था ॥१६॥ वे सब स्वर समूहों, अनेक मूर्छनाओं, तालों तथा वाद्यों के विनोद के विषय में तथा वीणा एवं वेणु को बजाने में ॥१७॥ मृदङ्ग की ध्वनि से मिश्रित नृत्यों के बीच के लय के विषय में, चित्र आदि को वनाने में तथा अन्य कलाओं में दक्ष थीं ॥१८॥ इस तरह से वे कन्यायें श्रेष्ठ खिलौनों के साथ कुबेर के यहाँ संचरण करती थीं। वे सबके सब अपने माता-पिता से लालित थीं ॥१९॥ एक बार वे पाँचों कन्यायें कौतुकवशात् चैत्र के महीने में मन्दार पुष्पों को चुनती हुयी एक वन से दूसरे वन में गयीं ॥२०॥ वे सब गौरी देवी की आराधना करने के लिए फिर अच्छोद सरोवर पर गयीं । वहाँ से उन सबों ने नील कमलों के साथ सुवर्ण कमलों को लेकर ॥२१॥ वैडूर्य तथा शुद्ध स्फटिक मणि से निर्मित फर्श वाले घाट

समर्चितां चन्दनगन्धकुङ्कुमैरभ्यर्च्य गौरीं वरपङ्कजादिभिः ।
नानोपहारैः शुभभक्तिभाविता लास्यप्रयोगैर्ननृतुः कुमारिकाः ॥२३॥
गान्धर्वमाश्रित्य परं स्वरं ततो गेयं स्वभावध्वनिभिः कुमारिकाः ।
एणीदृशस्ताः प्रजगुः कलाक्षरं तारप्रवृद्धं गतिभिश्च सुस्वरम् ॥२४॥
तस्मिन्सुभावे रसवर्षहर्षं कन्यास्वलं निर्भरचित्तवृत्तिषु ।
अच्छोदतीर्थे प्रवरे तदागतः स्नातुं मुनेर्वेदनिधेः सुतोऽग्रजः ॥२५॥
रूपेण निःसीमतरो वराननः प्रफुल्लपद्मायतलोचनो युवा ।
विस्तीर्णवक्षाः सुभुजोऽतिसुन्दरः श्यामच्छविः काम इवापरो हि सः ॥२६॥
स ब्रह्मचारी सुशिखो हि शोभते दण्डेन युक्तो धनुषेव मन्मथः ।
एणाजिनप्रावरणः समुद्रधृग्घेमाभमौञ्जीकटिमेखलः परः ॥२७॥
तं दृष्ट्वा ब्राह्मणं बालास्तास्तत्र सरसस्तटे ।
जहृषुः कौतुकाविष्टा अयं नो भविताऽतिथिः ॥२८॥
सम्मुक्तगीतनृत्यास्तास्तस्याऽऽलोकनलालसाः ।
हरिण्यो लुब्धकेनैव विद्धाः कामेन सायकैः ॥२९॥
पश्यपश्येति जल्पन्त्यो मुग्धाः पञ्च ससम्भ्रमम् ।
तस्मिन्विप्रवरे यूनि कामदेवभ्रमं ययुः ॥३०॥
पुनःपुनस्तमभ्यर्च्य नयनैः पङ्कजैरिव । पश्चाद्विचारमारब्धमप्सरोभिः परस्परम् ॥३१॥

पर स्नान करके वस्त्र धारण किया और मौन होकर सुवर्ण तथा मोतियों से स्थण्डिल (वेदी) का निर्माण किया ॥२२॥ उसके पश्चात् उन सबों ने चन्दन, सुगन्धि द्रव्य, कुंकुम, कमल पुष्प तथा अनेक प्रकार के उपहारों से गौरी देवी की पूजा भक्तिभाव से की । उसके बाद उन कुमारियों ने नृत्य भी किया ॥२३॥ उन सबों के नेत्र हरिणी के नेत्र के समान बड़े-बड़े थे । उन सबों ने गान्धर्व स्वर को अपनाकर सुन्दर मूर्छना से युक्त ध्वनियों वाले तथा मनोहर शब्द तथा ध्वनियों एवं तार स्वर से युक्त गीत भी गाया ॥२४॥ सुन्दर भावना से युक्त कन्याओं के चित्त में रस की वर्षा तथा हर्ष का संचार करने वाले, उस श्रेष्ठ अच्छोद सरोवर नामक तीर्थ में स्नान करने के लिए वेदनिधि मुनि के ज्येष्ठ पुत्र आये ॥२५॥ वे अत्यधिक सुन्दर मुख वाले, विकसित कमल के समान नेत्र वाले तथा चौड़ी छाती वाले तथा लम्बी भुजाओं वाले, श्यामवर्ण की कान्ति वाले तथा दूसरे कामदेव के समान सुन्दर युवक थे ॥२६॥ सुन्दर शिखा वाले, दण्डधारी, वे ब्रह्मचारी कामदेव के धनुष के समान सुशोभित होते थे । मृगचर्म धारण किए हुए, मुद्रा से युक्त उनके कमर में सुवर्ण के समान कान्तिवाली मौञ्जी मेखला सुशोभित होती थी ॥२७॥ वे सभी बालाएँ उस सरोवर के तट पर उनको देखकर अत्यन्त हर्षित इसलिए हुयीं कि ये हमारे अतिथि होंगे॥२८॥ उन सबों ने गीत और नृत्य का परित्याग कर दिया, और उनको साभिलाष देखने लगीं । वे उसी तरह से काम के बाण से पीड़ित हो गयीं जिस तरह कोई हरिणी बहेलिये के बाण से विद्ध हो जाय ॥२९॥ वे पाञ्चों मोहित होकर कह रही थीं देखो देखो । उन युवक ब्राह्मण श्रेष्ठ में उन सबों को कामदेव का भ्रम हो रहा था ॥३०॥ उन सबों ने उनको बार-बार देखा उसके बाद वे पाँचों अप्सरायें आपस

यद्ययं कामदेवो हि रतिहीनः कथं भवेत्। अथवा हाश्विनौ देवौ तावुभौ युगचारिणौ ॥३२॥
गन्धर्वः किन्नरो वाऽथसिद्धो वा कामरूपपृथक् ।
ऋषिपुत्रोऽथवा कश्चित्कश्चिद्वा मनुजोत्तमः ॥३३॥
अस्ति वा कश्चिदेवायं धात्रा सृष्टो हि नः कृते ।
यथा भाग्यवतामर्थे निधानं पूर्वकर्मभिः ॥३४॥
यथाऽस्माकं कुमारीणां गौर्याऽऽनीतो वरोत्तमः ।
करुणाजलकल्लोललब्धार्द्रीकृतचित्तया ॥३५॥
मयावृतस्त्वया चायं त्वया वृतस्तथानया। एवं पञ्चसु कन्यासु वदन्तीषु नृपोत्तम॥३६॥
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र कृतमाध्याह्निकक्रियः। चिन्तयामास मेधावी किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥३७॥
गाधिसम्भवपराशरादयः कण्डुदेवलमुखाश्च ये द्विजाः ।
तेऽपि योगिबलिनो विमोहिता लीलया तदबलाभिरद्भुतम् ॥३८॥
योषितां नयनतीक्ष्णसायकैर्भ्रूलतासुदृढचापनिर्गतैः ।
धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतति वा मनोभृशम् ॥३९॥
तावदेव नयधीर्विराजते तावदेव जनताभयं भवेत् ।
तावदेव धृतचित्तता भृशं तावदेव गणना कुलस्य च ॥४०॥
तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव शमसेवनं नृणाम् ।
यावदेव ललनेक्षणासवैर्माद्यते द्रुतमदैर्न पुरुषः ॥४१॥

में विचार करनें लगीं ॥३१॥ यदि ये कामदेव हैं तो इनके साथ रति देवी क्यों नहीं हैं ? अथवा ये अश्विनी कुमार हो सकते हैं किन्तु दोनों अश्विनी कुमार एक साथ चलते हैं ॥३२॥ हो सकता है कि कोई गन्धर्व, किन्नर अथवा सिद्ध कामदेव का रूप धारण कर लिया हो । ये कोई ऋषि पुत्र अथवा मानव श्रेष्ठ भी हो सकते हैं ॥३३॥ अथवा ब्रह्माजी ने इनकी सृष्टि हमलोगों के लिए ही की हो । जैसे भाग्यवानों के लिए उनके कर्मों के द्वारा धन का खजाना मिल जाता है ॥३४॥ उसी तरह से हो सकता है कि करुणा रूपी जल के लहरियों से आर्द्र चित्तवाली गौरी देवी हम कुमारियों के लिए ही इनको श्रेष्ठ पति के रूप में यहाँ लायीं हों ॥३५॥ वे आपस में कहने लगी मैंने इनक वरण किया है, तुमने भी इनका वरण किया है अन्य कन्या कहती थी इनका इसने और तुमने भी वरण किया है । हे नृपोत्तम! जब इस प्रकार से वे पाँचों कन्यायें कह रही थीं ॥३६॥ उन सबों की बातों को सुनकर माध्याह्निक क्रिया सम्पन्न करके उन मेधवी ने सोचा कि मैं क्या करूँ कि मेरा कल्याण हो ॥३७॥ विश्वामित्र, पराशर ऋषि, कंण्डु ऋषि, देवल ऋषि ये सभी महान योगी थे । किन्तु वे भी अवलाओं के द्वारा बड़ी आसानी से मोहित कर लिए गये ॥३८॥ स्त्रियों के भौहें रूपी चाप से निकलने वाला नेत्र रूपी तीक्ष्ण बाणों से धनुर्धारी कामदेव ने किसके मन रूपी मृग को नहीं मार दिया ?॥३९॥ नीतिमयी बुद्धि, तब तक ही सुशोभित होती है, और तब तक ही जनता का भय होता है, तब तक ही चित्त धैर्य सम्पन्न रहता है, और मनुष्य को तब तक ही अपने वंश की परवाह होती है ॥४०॥ तब तक ही तपस्या की अधिकता बनी रहती है, तथा मनुष्य तब तक ही जितेन्द्रिय बना रहता है, जव तक कि मनुष्य नारी

मोहयन्ति मदयन्ति रागिणं योषितः स्वललितैर्मनोहरैः ।
मोदयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षणपरं हि स्वैर्गुणैः ॥४२॥
मांसरक्तमलमूत्रनिर्मिते योषितां वपुषि निर्गुणेऽशुचौ ।
कामिनस्तु परिकल्प्य चारुतामाविशन्ति सुविमूढचेतसः ॥४३॥
दारुणा हि परिकीर्तिताङ्गना साधुभिर्विमलबुद्धिभिर्बुधैः ।
यावदेव न समीपगा इमास्तावदेव हि गृहं व्रजाम्यहम् ॥४४॥
समीपं तस्य यावन्न आगच्छन्ति वरस्त्रियः ।
वैष्णवेन प्रभावेण तावदन्तर्दधे द्विजः ॥४५॥
तस्य योगबलाद्भूप गतस्यादर्शनं तदा । दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म वैष्णवब्रह्मचारिणः ॥४६॥
वित्रस्तनयना बालाः कुरङ्ग्य इव कातराः ।
सङ्क्रान्तनयना शून्या ददृशुस्ता दिशो दश ॥४७॥
इन्द्रजालं स्फुटं वेत्ति मायां जानाति वा पुनः ।
दृष्टोऽप्यदृष्टरूपोऽभूदित्यूचुस्ताः परस्परम् ॥४८॥
व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना । ज्वलद्दावानलेनैव सुस्निग्धं सर्वकाननम् ॥४९॥
त्यजेन्द्रजालिकां विद्यां कान्त दर्शय सत्वरम् ।
आत्मानं न हि ते त्यक्तं प्राग्ग्रासे मक्षिकोपमम् ॥५०॥
हा कष्टं दर्शितः कस्माद्धात्रा त्वं घटितः कुतः ।
ज्ञातं महानुसंतापहेतुर्नः स्वं विनिर्मितः ॥५१॥

के नेत्रों के द्वारा अवलोकन किया जाना रूपी मदिरा को पीकर मदमत्त नहीं हो जाता है ॥४१॥ ये नारियाँ अपने मनोहर चेष्टाओं से रागी पुरुष को मोहित कर देती हैं और मदमत्त बना देती हैं । मैं धर्म की रक्षा कर रहा हूँ, किन्तु मुझको ये सब अपने गुणों के द्वारा मोहित करके मदमत्त बना रही हैं ॥४२॥ मांस, रक्त, मल और मूत्र ये भरा हुआ नारी के निर्गुण और अपवित्र शरीर में कामी पुरुष' सौन्दर्य की कल्पना करके अज्ञानी बन जाता है, 'और उसी में रमण करने लग जाता है ॥४३॥ स्वच्छ बुद्धि वाले ज्ञानी पुरुषों ने नारी को अत्यन्त भयङ्कर बतलाया है । ये जब तक मेरे समीप नहीं आ जाती है उससे पहले ही मैं अपने घर चला जा रहा हूँ ॥४४॥ उस ब्राह्मण के समीप जब तक वे स्त्रियाँ नहीं आयी थीं उससे पहले ही वे ब्राह्मण भगवान् विष्णु के प्रभाव से अन्तर्धान हो गये ॥४५॥ हे भूप ! वे ब्राह्मण अपने योग के सहारे अन्तर्धान हो गये उस वैष्णव ब्रह्मचारी के उस अद्भुत कर्म को देखकर ॥४६॥ अत्यन्त भयभीत नेत्रों वाली, मृगी के समान वे नारियाँ कातर हो गयीं । अब उन सबों के नेत्र शून्य से हो गये थे, और वे दशों दिशाओं में देख रही थीं ॥४७॥ **कन्याओं ने कहा—** वह निश्चित रूप से इन्द्रजाल अथवा माया करना जानता है । वह दिखायी पड़कर भी अब नहीं दिखायी पड़ रहा है इस तरह वे परस्पर में कहने लगीं ॥४८॥ उसी समय उन सबों का हृदय विराहग्नि से व्याप्त हो गया जिस तरह जलती हुयी वनाग्नि सम्पूर्ण वन को जला देती है उसी तरह उन सबों का हृदय जलने लगा॥४९॥ वे कह रही थीं हे कान्त ! अपनी इन्द्रजाल विद्या को आप त्याग दें अपना रूप दिखायें, आपका ऐसा

कच्चिते निर्दयं चेतः कच्चिदस्मासु नो मतिः ।
कच्चित्क्रूरोऽसि हे कान्त कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥५२॥
कच्चिन्न प्रत्ययोऽस्मासु कच्चिदस्मान्परीक्षसे ।
कच्चिन्निर्ममता शीलः कच्चिन्मायाविशारदः ॥५३॥
कच्चिच्चिते प्रवेष्टु च वेत्सि विज्ञानलाघवम् ।
कच्चिन्निष्क्रमणोपायं न जानासि कुतः पुनः ॥५४॥
कच्चिद्विनाऽपराधं तु किमस्मासु प्रकुप्यसे ।
कच्चिद्दुःखं न जानासि परेषां विप्रलम्भनम् ॥५५॥
त्वद्दर्शनं विना नष्टा हृदयेश्वर साम्प्रतम् । न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाशया ॥५६॥
वयं नीयतां तत्र शीघ्रं यत्र गतो भवान् । त्वद्दर्शनहरो धाता व्यधान्मोहाङ्कुरच्छिदाम् ॥५७॥
सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यंभज सर्वथा। पर्य्यन्तं न प्रपश्यन्ति कस्यचित्सुजना जनाः ॥५८॥
इत्थं विलप्य ताः कन्याः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ।
पितुर्भयाद्गृहं गन्तुं शीघ्रमारेभिरे ततः ॥५९॥
तत्प्रेमनिगडैर्बद्धा भृशं विरहविक्लवाः। कथंचिद्धैर्यमालम्ब्य ताः स्वं स्वं गृहमागताः॥६०॥
आगत्य पतिताः सर्वा मातॄणां तु समीपतः ।
किमेतन्मातृभिः पृष्टाः कुतः कालात्ययोऽभवत् ॥६१॥

करना उचित नहीं है, यह तो **प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः** के समान दूषित है ॥५०॥ हाय बड़े कष्ट की बात है, ब्रह्मा ने आपको क्यों दिखाया ? इस महान् संताप के कारण को तो हमलोगों ने बनाया है ॥५१॥ क्या तुम्हारा हृदय निर्दय है ? क्या तुम हमलोगों को नहीं चाहते हो ? हे कान्त क्या आप क्रूर हैं ? क्या आप हमलोगों के मन को चुरा रहे हैं ॥५२॥ क्या आपका हमलोगों पर विश्वास नहीं है ? क्या आप हमलोगों की परीक्षा कर रहे हैं ? क्या आपका शील निर्मम है ? क्या आप माया करने में दक्ष हैं ?॥५३॥ क्या आप विज्ञान की क्षिप्रता के कारण चित्त में प्रवेश कर जाना जानते हैं? क्यां आप किसी के हृदय से निकल जाने के उपाय को नहीं जानते हैं ?॥५४॥ बिना अपराध के ही आप हमलोगों पर क्रोध क्यों कर रहे हैं ? आप दूसरों को ठगना ही जानते हैं क्या ? दूसरों के दुःख को आप नहीं जानते हैं क्या ?॥५५॥ हे हृदयेश्वर ! आपके बिना हमलोग मर जायेंगी, हम लोग जी नहीं सकती हैं, आपके पुनः दर्शन की लालसा से ही हमलोग जीवित हैं ॥५६॥ आप शीघ्र हमलोगों को भी वहीं ले चलें जहाँ आप गये हैं । आपके दर्शन को छिन लेने वाले ब्रह्मा ने हमलोगों के आनन्द के अङ्कुर को ही काट दिया ॥५७॥ आप शीघ्र दर्शन दें, आप अपने में करुणा लायें । सज्जन पुरुष किसी की मृत्यु को नहीं देखते हैं ॥५८॥ इसतरह से विलाप करती हुयी उन कन्याओं ने बहुत समय तक प्रतीक्षा की अन्त में अपने माता-पिता के भय से शीघ्र ही अपने घर चली गयीं ॥५९॥ उस ब्राह्मण के प्रेम रूपी जंजीर में बद्ध तथा विरह से व्याकुल बनी हुयी, किसी तरह धैर्य धारण करके वे सब अपने-अपने घर चली गयीं ॥६०॥ वे सब आकर अपनी माताओं के सन्निकट गिर पड़ी । जब माताओं ने पूछा कि यह क्या हैं ? कहाँ पर इतनी देर लगायी ?॥६१॥ इस पर उन कन्याओं ने कहा कि

कन्या ऊचु:

क्रीडन्त्यः किन्नरीभिस्तु सार्द्धं सङ्गतकं यदा ।
संस्थितास्तेन न ज्ञातो दिवसोऽच्छोदसरोवरे ॥६२॥
पथि श्रान्ता वयं मातः सन्तापस्तेन नस्तनौ ।
मोहेन महता वक्तुं न केनाप्युत्सहामहे ॥६३॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा लुठितास्तत्र मणिभूमौ कुमारिकाः ।
आकारं गोपयन्त्यस्ता मुग्धा जल्पन्ति मातृभिः ॥६४॥
काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । न पाठयति तं कीरं पञ्जरेऽन्या कुतूहलात्॥६५॥
लालयन्नकुलं नान्या नोल्लापयति सारिकाम् ।
अपरातीव संमुग्धा नैव खेलति सारसैः ॥६६॥
भेजिरे न विनोदं ता रेमिरे नैव मन्दिरे। ऊचिरे बान्धवैर्नालं वीणावाद्यं न चक्रिरे ॥६७॥
कल्पद्रुमप्रसूनं यत्सर्वं तच्चानलोपमम् । मन्दारकुसुमामोदि न पपुर्मधुरं मधु ॥६८॥
योगिन्य इव ताः कन्या नासाग्रन्यस्तलोचनाः ।
अलक्ष्यध्यानसन्ताना: पुरुषोत्तममानसाः ॥६९॥
चन्द्रकान्तमणिच्छन्ने स्रवद्वारिणि कन्दरे । क्षणं वातायने स्थित्वा जलयन्त्रगृहे क्षणम्॥७०॥
रचयन्ति क्षण शय्यां दीर्घिकाम्भोजिनीदलैः ।
वीज्यमानाः सखीभिस्ताः शीतलैर्नलिनीदलैः ॥७१॥

हमलोग किन्नरियों के साथ खेल रही थी, उन सबों की ही सङ्गत में पड़कर सामय का पता नहीं चल पाया अच्छोद सरोवर पर ही देर लग गयी ॥६२॥ हे माँ ! मै रास्ते में ही थक गयी हूँ इसीलिए हमारे शरीर में सन्ताप है । बहुत अधिक थकी हुयी होने के कारण मैं किसी के साथ बातचित नहीं कर पा रहा हूँ ॥६३॥ इस तरह से कहकर वे कुमारियाँ वहीं मणि रचित फर्श पर ही लेट गयीं । अपने आकार को छिपाने के लिए वे सब अपनी माताओं से झूठ बोल रही थीं ॥६४॥ कोई भी कुमागी प्रेम पूर्वक अपने क्रीड़ा मयूर को नहीं नचाती थीं । कोई कुमारी कुतूहल पूर्वक पिजड़े में विद्यमान शुक को भी नहीं पढ़ाती थी ॥६५॥ दूसरी कोई कुमारी न तो नेवले से प्यार करती थी और न सारिका के साथ वातें करती थीं । कोई भी कुमारी अत्यन्त मोहित होने के कारण सारस पक्षियों के साथ क्रीड़ा नहीं करती थी ॥६६॥ वे सब न तो मनोविनोद करती थीं और न तो अपने गृह में विहार करती थीं । उन सबों ने अपने बन्धुओं से बातें भी नहीं की और न तो वीणा ही बजाया ॥६॥ उन सबों को कल्पवृक्ष के पुष्प अग्नि के समान सन्ताप कारक हो गये थे । उन सबों ने मन्दार पुष्प की सुगन्धि से युक्त मदिरा का पान भी नहीं किया ॥६८॥ वे सभी कन्यायें योगिनियों के समान अपनी नासिका के अग्रभाग में देखती थीं, उन सबों का ध्यान उस अलक्ष्य उत्तम पुरुष में लगा था ॥६९॥ चन्द्रकान्त मणि से घिरि हुयी जिसमें जल चू रहा था ऐसी कन्दरा में थोड़ी देर तक खिड़की पर खड़ी होकर वे पुनः जल यंत्र गृहा को देखने लगती थीं ॥७०॥ वे सब बावलियों के कमलों से शय्या का निर्माण करती थीं और

इत्थं युगसमां रात्रिमनयंस्ता वरस्त्रियः। कथंचिद्धारणं कृत्वा विह्वलाः सज्वरा इव ॥७२॥
प्रातर्व्योममणिं दृष्ट्वा मन्यमानाः स्वजीवितम् ।
विज्ञाप्य मातरं स्वां स्वां गौरीं पूजयितुं गताः ॥७३॥
स्नात्वा तेन विधानेन पुष्पैर्धूपैस्तथा पुनः । विधाय पूजनं देव्या गायन्त्यस्तत्र ताः स्थिताः॥७४॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रः स्नातुं सोऽपि समागतः ।
पितुराश्रमतस्तस्मादच्छोदेऽत्र सरोवरे ॥७५॥
मित्रं दृष्ट्वैव रात्र्यन्ते पद्मिन्य इव कन्यकाः ।
तत्फुल्लनयना जातास्तं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणम् ॥७६॥
गत्वा तत्रैव ताः कन्याः समीपं ब्रह्मचारिणः ।
सव्यापसव्यबन्धेन भुजपाशं च चक्रिरे ॥७७॥
गतोऽसि प्रिय पूर्वेद्युर्गन्तुमद्य न लभ्यते। वृतस्त्वं नूनमस्माभिर्नात्र तेऽस्ति विचारणा ॥७८॥
इत्युक्तो ब्राह्मणः प्राह प्रहसन्बाहुपाशगः। युष्माभिरुच्यते भद्रमनुकूलं प्रियं वचः ॥७९॥
प्रथमाश्रमनिष्ठस्य किं तु नश्येत मे व्रतम्। विद्याभ्यसनशीलस्य नाभूत्पारं गुरोः कुले ॥८०॥
आश्रमे यत्र योधर्मो रक्षणीयः सुपण्डितैः। विवाहोऽयमतो मन्ये न धर्म इति कन्यकाः॥८१॥
आकर्ण्य विप्रवाक्यानि विप्रमूचुर्वरस्त्रियः । सकलध्वनिसोत्कण्ठ्यः कोकिला इव माधवे॥८२॥
धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामात्सुखफलोदयः ।
इत्येवं निश्चयज्ञास्ते वर्णयन्ति विपश्चितः ॥८३॥

उन सबों की सखियाँ उन सबों को शीतल कमल के पत्ते से हवा कर रही थीं ॥७१॥ इस तरह से उन श्रेष्ठ नारियों ने रात्रि को बड़ी मुश्किल से बिताया । वे किसी-किसी प्रकार से धैर्य धारण की थीं। वे सब ज्वरग्रस्त के समान थीं ॥७२॥ प्रात:काल उदित सूर्य को देखकर उनके जान में जान आ गयी। वे सब अपनी माताओं से आज्ञा लेकर गौरी पूजन के लिए चली गयीं ॥७३॥ उन सबों ने विधि पूर्वक स्नान किया और धूप दीप आदि से गौरी देवी की पूजा की और वहीं पर गीत गाने लगीं ॥७४॥ उसी समय वे ब्राह्मण भी वहाँ पर स्नान करने के लिए आये । वे अपने पिता के आश्रम से अच्छोद सरोवर में स्नान करने के लिए आये थे ॥७५॥ जिसतरह रात्रि के अन्त में सूर्य को देखकर कमल खिल जाते हैं, उसीतरह उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण को देखकर उन कन्याओं के नेत्र प्रसन्न हो गये ॥७६॥ उन सभी कन्याओं ने उस ब्रह्मचारी के सन्निकट दायें-बायें से जाकर उनको अपने भुजापाश में बाँध लिया ॥७७॥ उन सबों ने कहा प्रियतम ! कल तो आप चले गये थे; किन्तु आज आप नहीं जा सकते हैं । आपका हमलोगों ने पति रूप में वरण कर लिया है, किन्तु आप इसका विचार ही नहीं करते हैं ॥७८॥ इसतरह से कहने पर उन सबों के बाहुपाश में बाँधे हुए ब्राह्मण ने हँसते हुए कहा । आपलोग अनुकूल और कल्याणकारी बातें कह रही हैं ॥७९॥ किन्तु मैं ब्रह्मचारी हूँ ऐसा करने से हमारा व्रत नष्ट हो जायेगा। मैं विद्या का अभ्यास कर रहा हूँ, मैं गुरुकुल से बाहर नहीं निकला हूँ ॥८०॥ विद्वानों को चाहिए कि जिस आश्रम का जो धर्म है, वे उसका पालन करें । अतएव मैं विवाह करने को अधर्म मानता हूँ ॥८१॥ उस ब्राह्मण की बातों को सुनकर **कुमारियों ने कहा—** उन सबों की ध्वनि वसन्त मास में कोयलों

सकामो धर्मबाहुल्यात्पुरतस्ते समुत्थितः । सेव्यतां विविधैर्भोगैः स्वच्छाभूमिरियं यतः ।।८४।।
श्रुत्वा तद्वचनं तासां प्राह गम्भीरया गिरा। तथ्यं वो वचनं किं तु ममाप्यावश्यकं व्रतम्।।८५।।
प्राप्यानुज्ञां गुरोः कुर्वे विवाहकर्म नान्यथा। इत्युक्ताः पुनरूचुस्ताः स्फुटं मूढोऽसि सुन्दर।।८६।।

सिद्धौषधं ब्रह्मधिया रसायनं सिद्धिर्निधिः साधुकुलावराङ्गनाः ।
मन्त्रस्तथासिद्धरसश्च धर्मतो मुने निषेव्याः सुधिया समागताः ।।८७।।
कार्यं न दैवाद्यदिसिद्धिमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च यान्ति नीतिगाः ।
यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ।।८८।।

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्। नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।।८९।।

सान्द्रानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचित्तासुगिरः स्वयंवराः ।
कन्याः सुरूपाः खलु चारुयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ।।९०।।

क्व वयं सुरसुन्दर्य्यः क्व भवांस्तापसो बटुः ।
दुर्घटस्य विधानेन मन्ये धातैव पण्डितः ।।९१।।
तस्मादस्मानिदानीं तु स्वीकुर्य्यान्मङ्गलं भवान् ।
गान्धर्वेण विवाहेन अन्यथा नोपजीवनम् ।।९२।।
श्रुत्वा वाक्यं ततः प्राह ब्राह्मणो धर्मवित्तमः ।
भो मृगाक्ष्यः कथं त्याज्यो धर्मो धर्मधनैर्नरैः ।।९३।।

की आवाज के समान मधुर थी ।।८२।। धर्म से अर्थ की प्राप्ति होती है, अर्थ से काम की पूर्ति होती है और काम से सुख मिलता है । इसीतरह से विद्वानों ने निर्णय किया है ।।८३।। वह धर्म की बहुलता से युक्त होकर आपके समक्ष उपस्थित है, अतएव आप उसका सेवन करें । यह भूमि अत्यन्त स्वच्छ है ।।८४।। उन सबों की वाणी को सुनकर उस ब्राह्मण ने गम्भीर वाणी में कहा तुमलोग ठीक कह रही हो । किन्तु मेरा भी तो अपना व्रत है ।।८५।। मैं अपने गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही विवाह करूँगा, ऐसे नहीं । इस बात को सुनकर उन सबों ने कहा तुम निश्चित रूप से मूर्ख हो ।।८६।। हे मुने ! बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह उपस्थित सिद्ध औषध, ब्रह्म बुद्धि से रसायन, निधि की सिद्धि, सद्वंश में उत्पन्न सुन्दर नारियाँ, मन्त्र तथा सिद्ध रस इन सबों का धर्मानुकूल सेवन करें ।।८७।। भाग्यवशात् उपस्थित सिद्धि को करना ही चाहिए, नीति को जानने वाले पुरुष उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं; क्योंकि उपेक्षा पुनः फल को नहीं प्रदान करती है, अतएव उसमें देर नहीं करना चाहिए ।।८८।। विष में से भी आपृत को निकाल कर ले लेना चाहिए, अपवित्र वस्तु में से भी सुवर्ण निकाल लेना चाहिए, नीच पुरुष से भी उत्तम विद्या को जान लेना चाहिए और असद् वंश से भी नारी रूपी रत्न को लेना चाहिए।।८९।। अत्यधिक प्रेम से युक्त, तथा सद्वंश में उत्पन्न, जिनका स्नेह से अन्तःकरण आर्द्र बना है, तथा स्वयं पति का वरण करने वाली सुन्दर तथा युवती कन्याओं को भाग्यवान् पुरुष ही संसार में प्राप्त करते हैं, दूसरे नहीं ।।९०।। कहाँ तो हमलोग देव सुन्दरियाँ हैं और आप तपस्वी ब्रह्मचारी हैं । इसतरह से ज्ञानी ब्रह्मा ही दुर्घट विधान से मिलाते हैं ।।९१।। अतएव इस समय आप हमलोगों को स्वीकार करके हमलोगों का मङ्गल करें । आप हमलोगों के साथ गान्धर्व विवाह करें, अन्यथा हमलोग जी नहीं सकती

धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैतच्चतुष्टयम्। यथोक्तं फलदं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् ॥९४॥
नाकालेऽहं व्रती कुर्यामतो दारपरिग्रहम्। न क्रियाफलमाप्नोति क्रियाकालं न वेत्ति यः॥९५॥
यतो धर्मविचारेऽस्मिन्प्रसक्तं मम मानसम्। तस्माच्छृणुत हे कन्या न समीहे स्वयंवरम् ॥९६॥
एवं ज्ञात्वाऽऽशयं तस्य समीक्ष्यैव परस्परम् ।
करात्करं विमुच्याथ जग्राहाङ्घ्रिं प्रमोहिनी ॥९७॥
भुजौ जगृहतुस्तस्य सुशीला सुस्वरा तथा। आलिलिङ्ग सुतारा च वक्त्रं चुम्बति चन्द्रिका॥९८॥
तथापि निर्विकारोऽसौ प्रलयानलसन्निभः । शशाप ब्रह्मचारी ताः क्रोधेनात्यन्तमूर्च्छितः॥९९॥
पिशाच्य इव मां लग्नास्तिर्त्पिशाच्यो भविष्यथ ।
एवं तेनाशु शप्तास्तास्तं त्यक्त्वा पुरतः स्थिताः ॥१००॥
किमेतच्चेष्टितं पापं ह्यनागसि विचेष्टया ।
प्रियङ्कृतोऽप्रियं कृत्वा धिक्त्वां धर्मकृतान्तकम् ॥१०१॥
अनुरक्तेषु भक्तेषु मित्रेषु द्रोहकारिणः ।
पुंसो लोकोभयोः सौख्यं नाशमेतीति नः श्रुतम् ॥१०२॥
तस्मात्त्वमपि नः शापात्पिशाचो भव सत्वरम् ।
इत्युक्त्वापि च ता बाला निःश्वसन्त्यः क्रुधाकुलाः ॥१०३॥
तदेवान्योन्यसंरम्भात्तस्मिन्सरसि पार्थिव ! । ताः कन्या ब्रह्मचारी च सर्वे पैशाच्यमागताः॥१०४॥

हैं ॥९२॥ उन सबों की बातों को सुनकर ज्ञानी ब्राह्मण ने कहा ऐ सुन्दरियों, धार्मिक पुरुष अपने धर्म का त्याग कैसे कर सकते हैं ? शास्त्रानुसार ही पालित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारो फलप्रद होते हैं, शास्त्र विपरीत होने पर तो ये निष्फल हो जाते हैं ॥९३-९४॥ मैं व्रत का पालन करता हूँ अतएव बिना समय आये मैं विवाह नहीं कर सकता हूँ । जो कर्मों के समय को नहीं जानता है, वह अपनी की हुयी क्रियाओं का फल नहीं प्राप्त करता है ॥९५॥ चूकि मेरा मन धर्म के विचार में लगा हुआ है; अतएव हे कन्याओं मैं स्वयम्बर नहीं चाहता हूँ ॥९६॥ इसतरह से उस ब्रह्मचारी के अभिप्राय को जानकर उन सबों ने परस्पर में एक दूसरे को देखा और हाथ से हाथ को छोड़कर प्रमोहिनी ने उस ब्रह्मचारी के पैर को पकड़ लिया । सुशीला और सुस्वरा ने उन ब्रह्मचारी के दोनों हाथों को पकड़ लिया। सुतारा ने उनको अपने गले से लगा लिया और चन्द्रिका ने उनके मुख को चूम लिया ॥९७-९८॥ फिर भी प्रलयाग्नि के समान वे ब्रह्मचारी निर्विकार बने रहे । वे क्रोध से अत्यन्त व्याकुल हो गये और उन सबों को शाप दिये ॥९९॥ तुमलोग पिशाची के समान मुझे लग गयी हो अतएव पिशाची हो जाओ। ब्रह्मचारी के द्वारा शापित होकर वे उनके सामने खड़ी हो गयीं ॥१००॥ आपने यह पाप कर्म क्यों किया, हमलोग निरपराध हैं । हमलोग तो आपका प्रिय कार्य कर रही थी और आपने हमलोगों का अप्रिय कार्य कार्य कर दिया, धिक्कार हैं आपको ॥१०१॥ जो प्रेमियों, भक्तों, तथा मित्रों से द्रोह करता है उस पुरुष को लोक तथा परलोक दोनों में सुख नहीं मिलता है यह हमलोगों ने सुना है ॥१०२॥ अतएव तुम भी हमलोगों के शाप के कारण पिशाच हो जाओ । इसतरह से शाप देकर वे कन्यायें भी क्रोध से व्याकुल होकर लम्बी श्वास लेने लगीं ॥१०३॥ हे राजन् ! परस्पर में क्रोध करने के कारण वे ब्रह्मचारी

स पिशाचः पिशाच्यस्ताः क्रन्दमानाः सुदारुणम् ।
क्षपयन्ति विपाकांस्तान्पूर्वोपात्तस्य कर्म्मणः ॥१०५॥
स्वकाले प्रभवत्येव पूर्वोपात्तं शुभाशुभम् । स्वच्छायेव च दुर्वारं देवानामपि पार्थिव ॥१०६॥
क्रन्दन्ति पितरस्तासां मातरस्तत्र तत्र च । भ्रातरश्चैव बालानां दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥१०७॥
अत ऊर्ध्वं पिशाचास्ते आहारार्थं सुदुःखिताः ।
इतस्ततश्च धावन्तो वसन्ति सरसस्तटे ॥१०८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रमोहिन्यादिगन्धर्वकन्यानामितिहासवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

तेइसवाँ अध्याय

नारद उवाच

एवं बहुतिथे काले लोमशो मुनिसत्तमः । आगतश्च महाभागस्तत्र यादृच्छिको मुनिः ॥१॥
तं दृष्ट्वा ब्राह्मणं सर्वे पिशाचाः क्षुत्समाकुलाः ।
धावन्तो ह्यत्तुकामास्ते मिलित्वा यूथवर्तिनः ॥२॥
दह्यमानास्तु तीव्रेण तेजसा लोमशस्य तु । असमर्थाः पुरः स्थातुं ते सर्वे दूरतः स्थिताः ॥३॥
तत्र पूर्वकर्मबलात्पिशाचैः सह वै द्विजः । समीक्ष्य लोमशं राजन्साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥४॥

तथा कन्यायें उसी सरोवर में पिशाच और पिशाची हो गयी ॥१०४॥ वह पिशाच और वे पिशाचियाँ भयङ्कर रुदन करते हुए अपने पूर्वकृत कर्मों का परिणाम भोगते हुए समय बिताते रहे ॥१०५॥ पूर्वकृत पुण्य तथा पाप कर्मों का फल समयानुसार भोगना ही पड़ता है, कर्म अपनी छाया के समान दुर्वार होता है, उसे देवताओं को भी भोगना पड़ता है ॥१०६॥ उन सबों के माता-पिता और भाई सर्वत्र रोते रहते थे, क्योंकि भाग्य का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥१०७॥ उसके बाद वे पिशाच अपने आहार के लिए अत्यन्त दुःखी होकर इधर-उधर दौड़ते रहते थे और उस सरोवर के ही तट पर रहते थे ॥१०८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

लोमश मुनि के साथ पिशाचियों और पिशाचों का सम्वाद

नारदजी ने कहा— उसके बाद बहुत दिन बीत जाने पर वहाँ पर संयोगवशात् मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि लोमश आये ॥१॥ उन ब्राह्मण को देखकर भूख से व्याकुल वे सभी पिशाच एक साथ उनको खाने के लिए दौड़ पड़े ॥२॥ किन्तु महर्षि लोमश के तीव्र तेज के द्वारा जलते हुए वे सब उनके सामने खड़ा नहीं रह सके वे दूर ही खड़े रहे ॥३॥ अपने पूर्व कर्म के प्रभाव से वह पिशाच महर्षि लोमश

उवाच सूनृतां वाचं बद्ध्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।
महाभाग्योदये विप्र साधूनां सङ्गतिर्भवेत् ॥५॥
गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वथा। यः करोति सतांसङ्गं तयोः सत्सङ्गमो वरः ॥६॥
गुरूणां सङ्गमो विप्र दृष्टादृष्टफलो भुवि। स्वर्गदो रोगहारी च किं तमोऽपहरो मतः ॥७॥
इत्युक्त्वा कथयामास पूर्ववृत्तान्तमद्भुतम्। इमा गन्धर्वकन्यास्ता मुने सोऽहं द्विजात्मजः ॥८॥
सर्वे पिशाचरूपेण मिथःशापविमोहिताः। दीनाननास्सुतिष्ठामस्तवाग्रे मुनिसत्तम ॥९॥
त्वद्दर्शनेनबालानां निस्तारो नो भविष्यति । सूर्योदये तमस्तोमः किं न नश्येत पुष्कलः ॥१०॥
श्रुत्वैतल्लोमशो वाक्यं कृपार्द्रीकृतमानसः । प्रत्युवाच महातेजाः दुःखितं तं मुनेः सुतम् ॥११॥
मत्प्रसादाच्च सर्वेषां स्मृतिः सपदि जायताम् ।
धर्मे च वर्ततां येन मिथः शापो लयं व्रजेत् ॥१२॥

पिशाच उवाच

महर्षे ! कथ्यतां धर्मो मुच्येम येन किल्बिषात् ।
नायं कालो विलम्बस्य शापाग्निर्दारुणो यतः ॥१३॥

लोमश उवाच

मया सार्द्धं प्रकुर्वन्तु रेवास्नानं विधानतः । शापान्मोक्ष्यति वो रेवा नान्यथा निष्कृतिर्भवेत्॥१४॥
शृणुष्वावहितो विप्र पापनाशो ध्रुवं नृणाम्। रेवास्थानेन जायेत इति मे निश्चिता मतिः ॥१५॥
सप्तजन्मकृतं पापं वर्तमानं च पातकम्। रेवास्नानं दहेत्सर्वं तूलराशिमिवानलः ॥१६॥

को देखकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके ॥४॥ हाथ जोड़कर सुन्दर वाणी में कहा— हे विप्र ! भागोदय होने पर ही साधु पुरुषों की सङ्गति होती है ॥५॥ जो मनुष्य गङ्गा आदि तीर्थों में सदा स्नान करता है, जो सज्जनों का सङ्ग करता है उन दोनों का सङ्गम होना श्रेष्ठ है ॥६॥ हे विप्र ! गुरुजनों का सङ्गम संसार में दृष्ट तथा आदृष्ट फलों को प्रदान करने वाला होता है, वह स्वर्ग प्रदान करने वाला, रोग को दूर करने वाला तथा अज्ञानान्धकार को दूर करने वाला बतलाया गया है ॥७॥ इसतरह से कहकर उसने अपने पूर्वकालिक अद्भुत वृत्तान्त को बतलाया । उसने कहा— हे द्विज ! ये सभी गन्धर्व कन्यायें हैं और मैं ब्राह्मण पुत्र हूँ ॥८॥ हम सभी परस्पर के शाप से मोहित होकर पिशाच रूप से यहाँ दीन होकर आपके समक्ष खड़े हैं ॥९॥ आपके दर्शन से इन बालिकाओं का और मेरा उद्धार हो जायेगा सूर्योदय हो जाने पर जिस तरह अन्धकार समूह का नाश हो जाता है ॥१०॥ इस वाक्य को सुनकर महर्षि लोमश का मन करुणा से भर गया । उन महातेजस्वी ने उस दुःखी ब्राह्मण के पुत्र से कहा ॥११॥ मेरी कृपा से तुमलोगों को शीघ्र ही स्मृति उत्पन्न हो जायेगी । और तुम लोग धर्म का पालन करोगे तथा तुम लोगों के शाप का नाश हो जायेगा ॥१२॥ **पिशाच ने कहा—** हे महर्षे ! आप उस धर्म को बतलायें जिससे हमलोग पाप मुक्त हो जायँ । आप बिलम्ब नहीं करें यह पाप की अग्नि अत्यन्त भयङ्कर है ॥१३॥ **लोमश महर्षि ने कहा—** तुमलोग मेरे साथ रेवा नदी में विधि पूर्वक स्नान करो । रेवा नदी तुमलोगों को शाप से मुक्त क देगी इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥१४॥ हे विप्र ! सावधानी से सुनो, पाप का नाश होना निश्चित रूप से रेवा में स्नान करने से हो जायेगा यह मेरा निश्चित मत है ॥१५॥ सात

प्रायश्चित्तं न पश्यन्ति यस्मिन्पापे पिशाचक ।
तत्सर्वं नर्मदातोये स्नानमात्रेण नश्यति ॥१७॥
ज्ञानकृन्नर्म्मदास्नानमतो मोक्षफला हि सा । हिमवत्पुण्यतीर्थानि सर्वपापहराणि वै ॥१८॥
इन्द्रलोकप्रदं हीदं निर्मितं ब्रह्मवादिभिः । सर्वकामफला रेवा मोक्षदा परिकीर्तिता॥१९॥
पापघ्नी पापहारिणी सर्वकामफलप्रदा । विष्णुलोकद आप्लावो नार्मदः पापनाशनः॥२०॥
यामुनः सूर्यलोकाय भवेदाप्लाव उत्तमः । सारस्वतोऽथविध्वंसी ब्रह्मलोकफलप्रदः ॥२१॥
विशालफलदा प्रोक्ता विशाला हि पिशाचक ।
पापेन्धनदवाग्निस्तु गर्भहेतुक्रियापहः ॥२२॥
विष्णुलोकाय मोक्षाय नार्मदः परिकीर्तितः ।
सरयूगण्डकीसिन्धुश्चन्द्रभागाच कौशिकी ॥२३॥
तापी गोदावरी भीमा पयोष्णी कृष्णवेणिका ।
कावेरी तुङ्गभद्रा च अन्याश्चापि समुद्रगाः ॥२४॥
तासु रेवा परा प्रोक्ता विष्णुलोकप्रदायिनी। रेवा तु प्राप्यते पुण्यैः पूर्वजन्मकृतैर्द्विज ॥
अपुनर्भवदं तत्र मज्जनं मुनिपुत्रक ॥२५॥
गायन्ति देवाः सततं दिविष्टा रेवा कदा दृष्टिगता हि नो भवेत् ।
स्नाता नरा यत्र न गर्भवेदनां पश्यन्ति तिष्ठन्ति च विष्णुसन्निधौ ॥२६॥
मज्जन्ति ये प्रत्यहमत्र मानवा रेवासु तोये बहुपापकञ्चुकाः ।
मज्जन्ति ते नो निरयेषु धर्म्मतः स्वर्गे तु ते चारु चरन्ति देववत् ॥२७॥

जन्मों में किये गये तथा वर्तमान जन्म के पाप को रेवा नदी का स्नान उसीतरह से विनष्ट कर देता है जिस तरह रुई के ढेर को अग्नि जला देती है ॥१६॥ हे पिशाच ! जिस पाप का कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है, वह सारा पाप नर्मदा स्नान से विनष्ट हो जाता है ॥१७॥ नर्मदा का स्नान, ज्ञान प्रदान करने वाला है अतएव नर्मदा नदी मोक्ष देने वाली है । रेवा नदी मोक्षदायिनी कही गयी है ॥१९॥ यह सभी पापों को विनष्ट करने वाली, पाप हारिणी तथा सभी काम्य पदार्थों को देने वाली है । नर्मदा में स्नान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । यह पापों का नाश करने वाला है ॥२०॥ युमना में स्नान करने से उत्तम सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । सरस्वती नदी में स्नान करना पाप समूह का विनाश करने वाला और ब्रह्मलोक को प्रदान करने वाला है ॥२१॥ हे पिशाच ! विशाला नदी विशाल फल देने वाली कही गयी है । वह पाप रूपी इन्धन के लिए दावाग्नि के समान है तथा गर्भ में आने के कारणों को विनष्ट करने वाला हे ॥२२॥ विष्णुलोक तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए नर्मदा नदी का स्नान बतलाया गया है । सरयू, गण्डकी, सिन्धु, चन्द्रभागा, कौशिकी ॥२३॥ तापी, गोदावरी, भीमा, पयोष्णी, कृष्वेणा, कावेरी, तुङ्गभद्रा तथा दूसरी समुद्रगामिनी नदियाँ हैं ॥२४॥ इन सबों में विष्णुलोक प्रदान करने वाली रेवा नदी श्रेष्ठ है । हे द्विज ! पूर्वजन्म के पुण्यों से ही रेवा नदी की प्राप्ति होती है । हे मुनिपुत्र! उसमें स्नान करने से मुक्ति हो जाती है ॥२५॥ स्वर्गलोक में रहने वाले देवता सदा गाते हैं कि न जाने कब हमलोग रेवा नदी का दर्शन करेंगे । उस रेवा नदी में स्नान करने वाले जीव गर्भ की वेदना

तीव्रैर्व्रतैर्दानतपोभिरध्वरैः सार्धं विधात्रा तुलया धृता पुरा ।
रेवापिशाचाऽऽशु तयोर्द्वयोरभूद्रेवा वरा तत्र च मोक्षसाधिका ॥२८॥

नारद उवाच

एतज्छ्रुत्वा वचस्तस्य लोमशस्य पिशाचकाः ।
तेन सार्द्धं ययुः शीघ्रं रेवामज्जनहेतवे ॥२९॥

ततो दैवात्समुत्पन्नो रेवारोधसि मारुतः । तेषां प्रवाहस्पृष्टानां गात्रे जलकणप्रदः ॥३०॥
रेवाजलकणस्पर्शात्पैशाच्यात्तेविमोचिताः । तत्क्षणाद्दिव्यवपुषः प्रशशंसुश्च नर्मदाम् ॥३१॥
ततो लोमशवाक्येन ताश्च गन्धर्वकन्यकाः। परिणीताः सुखं तेन विप्रेण नर्मदातटे ॥३२॥
उवास सुचिरं कालं स्नानपानावगाहनैः । अर्चित्वा नर्मदामत्र विष्णुलोकं गताश्च ते॥३३॥
एवं ते कथितो राजन्नर्मदागुणसंश्रयः । इतिहासो महापुण्यः श्रवणात्पापनाशनः ॥३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदामाहात्म्यवर्णने पैशाच्यान्मोचनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

को नहीं प्राप्त करते हैं और भगवान् विष्णु के सन्निकट निवास करते हैं ॥२६॥ अत्यन्त पापी भी जो मनुष्य प्रतिदिन इस रेवा नदी के जल में स्नान करते हैं, वे कभी नरकों में नही जाते हैं अपितु स्वर्ग लोक में जाकर वे देवताओं के समान विचरण करते हैं । हे पिशाच ! तीव्र व्रत, दान, तपस्या एवं यज्ञों के फलों के साथ ब्रह्माजी ने रेवा के महात्म्य के साथ तुला पर रखकर तौला तो रेवा ही श्रेष्ठ मोक्ष प्रदात्री सिद्ध हुयी ॥२८॥ **नारदजी ने कहा—** महर्षि लोमश की वाणी को सुनकर वे सभी पिशाच शीघ्र ही उनके साथ रेवा नदी में स्नान करने के लिए चले गये ॥२९॥ भाग्यवशात् रेवा के तट पर वायु उत्पन्न हो गयी जिसके कारण नर्मदा नदी के प्रवाह के जल का कण उन पिशाचों के ऊपर पड़ा॥३०॥ रेवा नदी के जल के कण का स्पर्श होने से वे पिशाचत्व से मुक्त हो गये और उन सबों का दिव्य शरीर हो गया उन सबों ने नर्मदा नदी की प्रशंसा की ॥३१॥ उसके बाद महर्षि लोमश की आज्ञा से उन सभी गन्धर्व कन्याओं ने उस ब्राह्मण के साथ नर्मदा नदी के तट पर ही विवाह कर लिया ॥३२॥ उन ब्राह्मण ने वहाँ पर दीर्घकाल तक रेवा तट पर ही रहकर रेवा में स्नान, जलपान तथा दान करते हुए निवास किया । नर्मदा नदी की पूजा करके वे सब भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥३३॥ हे राजन् ! आपको मैंने नर्मदा नदी के गुणों को सुनाया यह अत्यन्त पवित्र इतिहास है, यह सुनने मात्र से पापों का नाश करता है ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

चौबीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

अथान्यानि तु तीर्थानि वसिष्ठोक्तानि मे वद ।
श्रुत्वा यानि च पापानि विलयं यान्ति नारद ! ॥१॥

नारद उवाच

शृणुष्वात्र हि तीर्थानि वसिष्ठोक्तानि पार्थिव ।
दक्षिणं सिन्धुमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥२॥

अग्निष्टोममवाप्नोति विमानं चाधिरोहति। चर्मण्वतीं समासाद्य नियतो नियताशनः ॥३॥
रन्तिदेवाभ्यनुज्ञातश्चाग्निष्टोमफलं लभेत् । ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! हिमवत्सुतमर्बुदम् ॥४॥
पृथिव्या यत्र वै छिद्रं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर। तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥५॥
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् । पिङ्गातीर्थमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी नराधिप ॥६॥

कपिलानां नरव्याघ्र ! शतस्य फलमाप्नुयात् ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! प्रभासङ्क्लोलविश्रुतम् ॥७॥

यत्र सन्निहितो नित्यं स्वयमेव हुताशनः । देवतानां मुखं वीर ! अनलोऽनिलसारथिः ॥८॥
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः। अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥९॥

ततो गत्वा सरस्वत्याः सागरस्य च सङ्गमम् ।
गोसहस्रफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥१०॥

अन्य तीर्थों का माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा— जिन तीर्थों का महर्षि वशिष्ठ ने वर्णन किया है, जिन तीर्थों का श्रवण करने मात्र से पापों का विनाश होता है आप मुझे उन तीर्थों का वर्णन सुनायें ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! आप महर्षि वसिष्ठ के द्वारा प्रोक्त तीर्थों को सुनें । ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय रहकर दक्षिण समुद्र के तट पर जाय ऐसा करने वाला अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है और विमान से स्वर्ग जाता है । नियम का पालन करते हुए तथा नियमित भोजन करने वाला तीर्थयात्री चर्मण्वती नामक नदी के तट पर जाय ॥२-३॥ ऐसा करने वाला रन्तिदेव की आज्ञा से अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है । हे धर्मज्ञ ! उसके पश्चात् हिमवान् के पुत्र अर्वुद तीर्थ में जाय ॥४॥ हे युधिष्ठिर ! पहले वहाँ पर पृथिवी में छिद्र था । वहाँ पर त्रैलोक्य विख्यात महर्षि वसिष्ठ का आश्रम है ॥५॥ वहाँ पर एक रात निवास करने से एक हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त होता है । हे नराधिप! वहाँ से पिंगा तीर्थ में ब्रह्मचारी रहकर आचमन करके ॥६॥ सौ कपिला गौओं के दान करने का फल मनुष्य प्राप्त करता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ से लोक विख्यात प्रभास क्षेत्र में जाय ॥७॥ वहाँ पर स्वयं अग्नि का निवास रहता है । हे राजन् ! अग्नि देवताओं के मुख हैं और वायु देवताओं के सारथि हैं॥८॥ वहाँ शान्तमना तथा पवित्र रहकर स्नान करे, ऐसा करने वाला अग्निष्टोम तथा अतिरात्र इन दोनों यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है ॥९॥ उसके बाद सरस्वती नदी और सागर के सङ्गम स्थल पर जाय,

दीप्यमानोऽग्निवन्नित्यं प्रभया भरतर्षभ !। तीर्थे सलिलराजस्य स्नात्वा प्रयतमानसः ॥११॥
त्रिरात्रमुषितस्तत्र तर्पयेत्पितृदेवताः । विराजति यथा सोमो थाजिमेधं च विन्दति ॥१२॥
वरदानं ततो गच्छेतीर्थं भरतसत्तम ! । विष्णोर्दुर्वाससा यत्र वरो दत्तो युधिष्ठिर ! ॥१३॥
वरदाने नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत। ततो द्वारवतीं गच्छेन्नियतो नियताशनः ॥१४॥
पिण्डारके नरः स्नात्वा लभेद् बहुसुवर्णकम् ।
तस्मिंस्तीर्थे महाराज ! पद्मलक्षणलक्षिताः ॥१५॥
अद्यापि मुद्रा दृश्यन्ते तदद्भुतमरिन्दम !। त्रिशूलाङ्कानि पद्मानि दृश्यन्ते कुरुनन्दन॥१६॥
महादेवस्य सान्निध्यं तत्रैव भरतर्षभ !। सागरस्य च सिन्धोश्च सङ्गमं प्राप्य भारत ॥१७॥
तीर्थे सलिलराजस्य स्नात्वा प्रयतमानसः । तर्पयित्वा पितॄन्देवानृषींश्च भरतर्षभ !॥१८॥
प्राप्नोति वारुणं लोकं दीप्यमानः स्वतेजसा ।
शङ्कुकर्णेश्वरं देवमर्चयित्वा युधिष्ठिर ॥१९॥
अश्वमेधं दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः । प्रदक्षिणमुपावृत्य गच्छेत भरतर्षभ॥२०॥
तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। तिमीति नाम्ना विख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥२१॥
यत्र शक्रादयो देवा उपासन्तेमहेश्वरम् । तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च रुद्रं देवगणैर्वृतम् ॥२२॥
जन्मप्रभृति पापानि कृतानि मुदते नरः । तिमिरत्र नरश्रेष्ठ सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥२३॥
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ हयमेधमवाऽऽप्नुयात्। जित्वा तत्र महाप्राज्ञा विष्णुना दितिनन्दनम्॥२४॥

वहाँ पर वह हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करके स्वर्ग लोक में चला जाता है ॥१०॥ हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! अग्नि के समान देदीप्यमान रहकर उस तीर्थ में समुद्र के जल में शान्त मना होकर स्नान करे ॥११॥ वहाँ पर तीन रात तक रहकर पितरों तथा देवताओं का तर्पण करे । ऐसा करने वाला अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है तथा सोम के समान सुशोभित होता है ॥१२॥ हे भरत श्रेष्ठ ! वहाँ से वरदान तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर दुर्वासा मुनि ने भगवान् विष्णु को वरदान दिया है ॥१३॥ वरदान तीर्थ में स्नान करके मनुष्य एक हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है । वहाँ से नियमित भोजन करने वाला नियम पूर्वक द्वारका तीर्थ में जाय ॥१४॥ वहाँ पिण्डारक तीर्थ में स्नान करने वाला बहुत अधिक सुवर्ण को प्राप्त करता है ॥१५॥ हे महाराज ! वहाँ पर आज भी पद्म के चिह्नों से सुशोभित मुद्राएँ दिखायी देती हैं ॥१६॥ हे कुरुनंदन ! वहाँ त्रिशूल के चिह्न से चिह्नित कमल भी दिखायी देते हैं । हे भरतर्षभ ! वहीं पर भगवान् शिव का निवास है ॥१७॥ हे भरतर्षभ सागर तथा सिंधु के सङ्गम स्थल पर जाकर वहा पर उस तीर्थराज के जल में शान्त मना होकर स्नान करे ॥१८॥ उसके बाद देवताओं और ऋषियों का तर्पण करके मनुष्य अपने तेज से प्रकाशित होता है वह मनुष्य वरुण लोक को प्राप्त करता है ॥१९॥ हे युधिष्ठिर ! शङ्कुकर्णेश्वरशिव की पूजा करके मनुष्य अश्वमेध याग के दश गुना फल प्राप्त करता है; ऐसा मनीषियों का कहना है ॥२०॥ हे भरतर्षभ ! प्रदक्षिणा करते हुए तुम त्रैलोक्य विख्यात तीर्थों में जाओ ॥२१॥ तिमीति नामक विख्यात तीर्थ है, वही सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । वहाँ पर इन्द्र इत्यादि देवता भगवान् शिव की उपासना करते हैं ॥२२॥ वहाँ पर देवताओं से घिरे हुए रुद्र की पूजा करके मनुष्य पूरे जीवन भर में

पुरा शौचं कृतं राजन्हत्वा दैवतकण्टकम्। ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! वसुधारामभिष्टुताम्॥२५॥
गमनादेव तस्यां हि हयमेधमवाप्नुयात्। स्नात्वा कुरुवरश्रेष्ठ ! प्रयतात्मा तु मानवः ॥२६॥
तर्पयित्वा पितृन्देवान्विष्णुलोके महीयते । तीर्थं चापि परं तत्र वसूनां भरतर्षभ ! ॥२७॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वसूनां सम्मतो भवेत् ।
सिन्धुतममिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८॥
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ लभेद्बहुसुवर्णकम्। ब्रह्मतुङ्गं समासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ॥२९॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति सुकृती विरजा नरः । कुमारिकाणां शक्रस्य तीर्थं सिद्धनिषेवितम् ॥३०॥
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ शक्रलोकमवाप्नुयात्। रेणुकायाश्च तत्रैव तीर्थं देवनिषेवितम्॥३१॥
स्नात्वा तत्र भवेद्विप्रो विमलश्चन्द्रमा इव । अथ पञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः॥३२॥
पञ्चयज्ञानवाप्नोति क्रमशो ये तु कीर्तिताः। ततो गच्छेत धर्मज्ञ भीमायाः स्थानमुत्तमम्॥३३॥
तत्र स्नात्वा न योन्यां वै नरो भरतसत्तम। देव्याः पुत्रो भवेद्राजंस्तत्र कुण्डलविग्रहः॥३४॥
गवां शतसहस्रस्य फलं चैवाऽऽप्नुयान्महत् ।
गिरिकुञ्जं समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥३५॥
पितामहं नमस्कृत्य गोसहस्रफलं लभेत्। ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! विमलं तीर्थमुत्तमम् ॥३६॥

किए हुए पापों को विनष्ट कर देता है ॥२३॥ वहाँ पर सभी देवताओं से संस्तुत राजा तिमि का निवास है । वहाँ पर स्नान करने वाला अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥२४॥ वहाँ पर प्राचीन काल में भगवान् विष्णु ने दैत्यराज को जीतकर देवताओं के शत्रु उस दैत्य को मारकर उस तीर्थ को पवित्र बना दिया ॥२५॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद वसुधारा नामक तीर्थ में जाना चाहिए । उस तीर्थ में जाने मात्र से ही मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ॥२६॥ हे कुरुओं में श्रेष्ठ ! वहाँ पर शान्त मन से स्नान करके जो मनुष्य पितरों तथा देवताओं का तर्पण करता हे, वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२७॥ हे भरतर्षभ ! जहाँ पर वसुओं का श्रेष्ठ तीर्थ है; वहाँ पर स्नान करके तथा वहाँ का जल पीकर मनुष्य वसुओं के लोक में जाता है ॥२८॥ उस तीर्थ का नाम सिन्धूतम है, वह सभी पापों का विनाश करने वाला है । हे नरश्रेष्ठ ! वहाँ पर स्नान करने वाला बहुत अधिक सुवर्ण को प्राप्त करता है ॥२९॥ शान्तमना तथा पावित्र्य का पालन करते हुए ब्रह्मतुंग तीर्थ में जाय, वहाँ जाने वाला मनुष्य रजोगुण रहित और पुण्यवान हो जाता है और ब्रह्मलोक में जाता है ॥३०॥ कुमारियों तथा इन्द्र के तीर्थ में सिद्धों का निवास है । हे नरश्रेष्ठ ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य इन्द्र के लोक में जाता है ॥३१॥ वहीं पर रेणुका तीर्थ हैं, वहाँ पर देवताओं का निवास है । वहाँ पर स्नान करने वाला चन्द्रमा के समान निर्मल हो जाता है ॥३२॥ उसके बाद नियत रूप से रहने वाला तथा नियमित भोजन करने वाला मनुष्य पंचनद तीर्थ में जाय । ऐसा करने वाला क्रमशः प्रख्यात और पाँच यज्ञों के फल को प्राप्त करता है ॥३३॥ हे धर्मज्ञ ! वहाँ से भीमा नामक उत्तम स्थान में जाना चाहिए । हे भरतर्षभ ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य पुनः गर्भ में नहीं आता है ॥३४॥ हे राजन् ! वह देवी पार्वती का कुण्डलधारी पुत्र होता है । वह सौ हजार गायों के दान करने का महान् फल प्राप्त करता है ॥३५॥ उसके बाद त्रैलोक्य विख्यात गिरिकुञ्ज तीर्थ में जाकर ब्रह्माजी का दर्शन करे ऐसा करने

अद्यापि यत्र दृश्यन्ते मत्स्याः सौवर्णराजताः ।
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ वाजपेयमवाप्नुयात् ॥३७॥
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत्परमिकां गतिम् ॥३८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानातीर्थमाहात्म्यकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

वितस्तां च समासाद्य सन्तर्प्य पितृदेवताः। नरः फलमवाप्नोति वाजपेयस्य भारत ॥१॥
काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च। वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥२॥
तत्र स्नात्वा नरो नूनं वाजपेयमवाप्नुयात् । सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम्॥३॥
ततो गच्छेत मलदं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। पश्चिमायां तु सन्ध्यायामुपस्पृश्य यथाबि धि ॥४॥
चरुं सप्तार्चिषे राजन्यथाशक्ति निवेदयेत् । पितृणामक्षयं दानं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५॥
गवां शतसहस्रेण राजसूयशतेन च। अश्वमेधसहस्रेण श्रेयान्सप्तार्चिषश्चरुः ॥६॥
तती निवृत्तो राजेन्द्र ! रुद्रास्पदमथाविशेत्। अभिगम्य महादेवमश्वमेधफलं लभेत्॥७॥

से एक हजार गोदान का फल प्राप्त होता है ॥३६॥ हे धर्मज्ञ ! वहाँ से उत्तम विमला तीर्थ में जाना चाहिए, वहाँ पर आज भी सोने तथा चाँदी के समान देदीप्मान मत्स्य दिखायी देते हैं ॥३७॥ हे नरश्रेष्ठ! वहाँ पर स्नान करने से वाजपेय यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है । वह मनुष्य सभी पापों से रहित होकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

कश्मीर के तक्षक आदि तीर्थों का वर्णन

नारदजी ने कहा— वितस्ता तीर्थ में जाकर पितरों तथा देवताओं का तर्पण करना चाहिये । ऐसा करने वाला मनुष्य हे भारत ! वाजपेय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥१॥ कश्मीर प्रदेश में ही तक्षक नामक नाग का भवन है । उसी को वितस्ता कहते हैं, वह समस्त पापों को दूर करने वाला तीर्थ है ॥२॥ वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य निश्चित रूप से वाजपेय याग का फल प्राप्त करता है और सभी पापों से रहित होकर परम गति को प्राप्त कर लेता है ॥३॥ उसके बाद मलद नामक तीर्थ में जाना चाहिए, वहाँ सायंसन्ध्या के समय विधिपूर्वक आचमन करे ॥४॥ और अपनी शक्ति के अनुसार अग्निदेव को चरु निवेदित करें । मनीषियों का कहना है कि वहाँ पर किया गया दान पितरों को अक्षय तृप्ति प्रदान करता है ॥५॥ एक लाख गोदान करने से, सौ राजसूय यज्ञ करने से तथा एक

मणिमन्तं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः। एकरात्रोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत्॥८॥

अथ गच्छेत राजेन्द्र ! देविकां लोकविश्रुताम् ।
प्रसूतिर्यत्र विप्राणां श्रूयते भरतर्षभ ॥९॥
त्रिशूलपाणेःस्थानं यत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
देविकायां नरः स्नात्वा अभ्यर्च्य च महेश्वरम् ॥१०॥

यथाशक्ति नरस्तत्र निवेद्य भरतर्षभ। सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥११॥
कामाख्यं तत्र रुद्रस्य तीर्थं देवर्षिसम्मतम्। तत्र स्नात्वा नरःक्षिप्रं सिद्धिमाप्नोति भारत ॥१२॥
यजनं याजनं गत्वा तथैव ब्रह्मबालकम्। पुष्पन्यास उपस्पृश्य न शोचेन्मरणं ततः ॥१३॥
अर्द्धयोजनविस्तारां पञ्चयोजनमायताम् । एतावद्देविकामाहुःपुण्यां देवर्षिसंमताम् ॥१४॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! दीर्घसत्रं यथाक्रमम्। यत्र ब्रह्मादयो देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः॥१५॥
दीर्घसत्रमुपासन्ते दीक्षिता नियतव्रताः। गमनादेव राजेन्द्र दीर्घसत्रमरिन्दम !॥१६॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः। ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ॥१७॥
गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती। चमसे च शिवोद्भेदे नागोद्भेदे च दृश्यते॥१८॥

स्नात्वा तु चमसोद्भेदे अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
शिवोद्भेदे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥१९॥

हजार अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल सप्तर्चिष (अग्नि) को प्रदत्त चरु से होता है ॥६॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से रुद्रतीर्थ में जाना चाहिये । वहाँ पर महादेव का दर्शन करने से मनुष्य अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥७॥ ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला मनुष्य सावधानी पूर्वक मणिमान तीर्थ में जाकर एक रात्रि निवास करे, ऐसा करने वाला अग्निष्टोम याग करने का फल प्राप्त करता है ॥८॥ हे राजेन्द्र ! उसके बाद विख्यात देविका तीर्थ में जाय वहीं पर विप्रों की प्रसूति सुनी जाती है ॥९॥ यह त्रैलोक्य में विख्यात त्रिशूलपाणि भगवान् शिव का स्थान है । देविका नदी में स्नान करके तथा शिवजी की पूजा करके ॥१०॥ हे भरत श्रेष्ठ ! अपनी शक्ति के अनुसार वहाँ दान करें, ऐसा करने वाले की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । वह यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥११॥ वहाँ पर देवर्षि सम्मत रुद्र का कामाख्य नामक तीर्थ है, वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य को शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥१२॥ उसके बाद यजनयाजन तीर्थ तथा ब्रह्मबालक तीर्थ में जाकर पुष्पन्यास तीर्थ में आचमन करके मनुष्य को अपनी मृत्यु के विषय में सोचने की आवश्यकता नहीं होती है ॥१३॥ यह तीर्थ आधा योजन विस्तृत और पाँच योजन लम्बा बतलाया गया है । यह तीर्थ देवताओं और ऋषियों को प्रिय है ॥१४॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से दीर्घसत्र नामक तीर्थ में जाय । वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध तथा परमर्षिगण ॥१५॥ नियम पूर्वक दीक्षित होकर दीर्घसत्र की उपासना करते हैं। हे शत्रुओं का दमन करने वाले ! वहाँ पर जाने मात्र से मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध दोनों यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है । वहाँ से विनाश तीर्थ में नियम पूर्वक नियताहार होकर जाय ॥१७॥ वहाँ पर सरस्वती नदी अन्तर्धान होकर मेरु पृष्ठ पर जाती है । वह चमस तीर्थ में, शिवोद्भेद तीर्थ में तथा नागोद्भेद तीर्थ में दिखायी पड़ती है ॥१८॥ चमसोद्भेद तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम याग का

नागोद्भेदे नरःस्नात्वा नागलोकमवाप्नुयात्। शशयानं च राजेन्द्र ! तीर्थमासाद्य दुर्लभम् ॥२०॥
शशरूपप्रतिच्छन्नाःपुष्करा यत्र भारत। सरस्वत्यां महाभाग ! अनुसंवत्सरं हि ते ॥२१॥
स्नायन्ते भरतश्रेष्ठ ! वृत्ता वै कार्त्तिकीं सदा ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! द्योतते शिववत्सदा ॥२२॥
गोसहस्रफलं चैव प्राप्नुयाद्भरतर्षभ। कुमारकोटिमासाद्य नियतःकुरुनन्दन ! ॥२३॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः। गवामयुतमाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥२४॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ रुद्रकोटिं समाहितः। पुरा यत्र महाराज ! ऋषिकोटिः समाहिता ॥२५॥
वर्षेण च समाविष्टा देवदर्शनकाङ्क्षया। अहं पूर्वमहं पूर्वं द्रक्ष्यामि वृषभध्वजम् ॥२६॥
एवं सम्प्रस्थिता राजन्नृषयःकिल भारत। ततो योगीश्वरेणापि योगमास्थाय भूपते ! ॥२७॥
तेषां मन्युप्रशान्त्यर्थमृषीणां भावितात्मनाम्। सृष्टा तु कोटीरुद्राणामृषीणामग्रतःस्थिता ॥२८॥
मया पूर्वं हरोदृष्ट इति ते मनिरे पृथक्। तेषां तुष्टो महादेव ऋषीणामुग्रतेजसाम् ॥२९॥
भक्त्या परमया राजन्वरं तेषां प्रदत्तवान्। अद्यप्रभृति युष्माकं धर्मवृद्धिर्भविष्यति॥३०॥
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! रुद्रकोट्यां नरःशुचिः ।
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥३१॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! सङ्गमं लोकविश्रुतम् ।
सरस्वत्यां महापुण्यमुपासीत जनार्दनम् ॥३२॥

फल प्राप्त करता है । शिवोद्भेद में स्नान करके मनुष्य एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त करता है ॥१९॥ नागोद्भेद तीर्थ में स्नान करने से नागलोक की प्राप्ति होती है । हे राजेन्द्र ! शशयान तीर्थ दुर्लभ है ॥२०॥ वहाँ पर कमल शशक (खरगोश) के आकार वाले हैं । हे महाभाग ! लोग प्रत्येक वर्ष सरस्वती नदी में कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को स्नान करते हैं । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने वाला शिवजी के समान प्रकाशित होता है ॥२१-२२॥ वह एक हजार गोदान करने का भी फल प्राप्त करता है । हे कुरुनंदन ! नियम पूर्वक कुमारकोटि नामक तीर्थ में आकर ॥२३॥ स्नान करे तथा पितरों एवं देवताओं की अर्चना करे । ऐसा करने वाला दश हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है तथा वह अपने वंश का उद्धार कर देता है ॥२४॥ हे धर्मज्ञ उसके पश्चात् रुद्रकोटि नामक तीर्थ में जाय वही पर प्राचीन काल में करोड़ों ऋषि समाधिस्थ थे ॥२५॥ वे एक वर्ष तक शङ्करजी का दर्शन करने की इच्छा से बैठे रहे । वे सब सोचते थे कि सबसे पहले मैं शङ्करजी का दर्शन करूँ॥२६॥ हे राजन् ! इसतरह से मन में सोचकर सभी ऋषि गये थे । हे राजन् ! उसके बाद योगीश्वर भगवान् शिवजी भी योग को अपनाकर ॥२७॥ उन सभी ऋषियों की इच्छा को शान्त करने के लिए उन सबों के समक्ष करोड़ रुद्रों की सृष्टि कर दियें और सबों को एक साथ दर्शन दिये ॥२८॥ इसके बाद वे सभी ऋषि मानने लगे कि मैंने पहले रुद्र का दर्शन किया है । उन उग्र तेजस्वी ऋषियों पर प्रसन्न होकर शङ्करजी ने उन सबों को वरदान दिया । आज से आपलोगों की धर्म बुद्धि हो जायेगी ॥२९-३०॥ हे राजन् ! रुद्र कोटि में स्नान करके मनुष्य अश्वमेघ याग का फल प्राप्त करता है और वह अपने वंश का उद्धार कर देता है ॥३१॥ हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् लोक विख्यात संगम तीर्थ में जाय और सरस्वती

यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषय:सिद्धचारणाः। अभिगच्छन्ति राजेन्द्र चैत्रशुक्लचतुर्दशीम्॥३३॥
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! विन्देद् बहुसुवर्णकम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकं च गच्छति ॥३४॥
ऋषीणां यत्र सत्राणि समाप्तानि नराधिप। तत्रावसानमसाद्य गोसहस्रफलं लभेत्॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे काश्मीरस्थतक्षकनागभवनवितस्तादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्याय: ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कुरुक्षेत्रमभिष्टुतम्। पापेभ्यो विप्रमुच्यन्ते तद्गता:सर्वजन्तव:॥१॥
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्। य एवं सततं ब्रूयात्सर्वपापै:प्रमुच्यते॥२॥
तत्र मासं वसेद्धीर:सरस्वत्यां नराधिप। यत्र ब्रह्मादयो देवा यत्र ब्रह्मर्षिचारणा:॥३॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा:पन्नगाश्च महीपते। ब्रह्मक्षेत्रं महापुण्यमभिगच्छन्ति भारत !॥४॥
मनसाप्यभिकामस्य कुरुक्षेत्रे युधिष्ठिर। पापानि विप्रणश्यन्ति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥५॥
गत्वा हि श्रद्धया युक्त:कुरुक्षेत्रं कुरूद्वह। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानव:॥६॥

नदी में महान् पुण्य प्रदान करने वाले जनार्दन की उपासना करे ॥३२॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता, ऋषिगण, सिद्ध तथा चारणगण चारो ओर से चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तिथि को आते हैं ॥३३॥ हे नरव्याघ्र! वहाँ पर स्नान करने वाला वहुत अधिक सुवर्ण को प्राप्त करता है और सभी पापों से रहित होकर वह शिवलोक में जाता है ॥३४॥ हे राजन् ! वहीं पर ऋषियों के सत्र समाप्त हुए थे । वहीं पर अपनी यात्रा को पूरा करके मनुष्य एक हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥३५॥

इस तरह श्री पद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

कुरुक्षेत्र, मत्तर्णक, पारिप्लव, तथा नैमिष आदि तीर्थों का माहात्म्य

नारदजी ने कहा— हे राजेन्द्र ! वहाँ से अत्यन्त प्रशंसित कुरुक्षेत्र तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ जाने वाले सभी मनुष्य पापों से विमुक्त हो जाते हैं ॥१॥ जो सदा यह कहता रहता है कि मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, मैं कुरुक्षेत्र में निवास करता हूँ वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२॥ हे नराधिप ! वहाँ पर सरस्वती नदी के तट में एक मास तक निवास करे । वहाँ ब्रह्मा आदि देवता ब्रह्मर्षि तथा चारणगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष तथा पन्नग ये सब-के-सब वहाँ पर जाते हैं । यह ब्रह्म क्षेत्र अत्यन्त पुण्यमय हैं ॥३-४॥ जो व्यक्ति मन से भी कुरुक्षेत्र जाने की कामना करता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते

ततो मत्तर्णकं राजन्द्वारपालं महाबलम्। यं वै समभिवाद्यैव गोसहस्रफलं लभेत् ॥७॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ विष्णोःस्थानमनुत्तमम् । सततं नाम राजेन्द्र ! यत्र सन्निहितो हरिः ॥८॥
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च त्रिलोकप्रभवं हरिम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥९॥
ततःपारिप्लवं गच्छेत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥१०॥
पृथिव्यां तीर्थमासाद्य गोसहस्रफलं लभेत्। ततःशाल्विकिनीं गत्वातीर्थसेवी नराधिप !॥११॥
दशाश्वमेधिके स्नात्वा तदेव लभते फलम्। सर्पनीविं समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम्॥१२॥
अग्निष्टोममवाप्नोतिनागलोकं च गच्छति । ततो गच्छेत धर्मज्ञ द्वारपालमतर्णकम् ॥१३॥
तत्रोष्यरजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् । ततःपञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः ॥१४॥
कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत्। अश्विनीतीर्थमागम्य रूपवानभिजायते ॥१५॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! वाराहं तीर्थमुत्तमम्। विष्णुर्वाराहरूपेण पुरा यत्रस्थितोऽभवत् ॥१६॥
तत्र स्थित्वा नरव्याघ्र ! अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
ततोजयिन्यां राजेन्द्र सोमतीर्थं समाविशेत् ॥१७॥
स्नात्वा फलमवाप्नोति राजसूयस्य मानवः। एकहंस नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥१८॥
कृतशौचं समासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह ! । पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेच्च सः ॥१९॥

हैं, और वह ब्रह्माजी के लोक में जाता है ॥५॥ जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक कुरुक्षेत्र में जाता है, वह वाजपेय तथा अश्वमेघ इन दोनों यागों से होने वाले फल को प्राप्त करता है ॥६॥ उसके बाद मतर्णक नामक महाबलवान् द्वारपाल का दर्शन और प्रणाम करके मनुष्य एक हजार गोदान करने के फल को प्राप्त कर लेता है ॥७॥ हे धर्मज्ञ ! वहाँ से भगवान् विष्णु के उत्तम स्थान सूत तीर्थ में जाय वहाँ पर श्रीहरि का सन्निधान बना रहता है ॥८॥ वहा पर स्नान करके तथा त्रैलोक्य के स्रष्टा श्रीहरि का दर्शन करके मनुष्य, अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है, और भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥९॥ वहाँ से त्रैलोक्य में विख्यात पारिप्लव नामक तीर्थ में जाना चाहिए, वहाँ पर जाने वाला अग्निष्टोम तथा अतिरात्र इन दोनों यागों के फल को प्राप्त करता है ॥१०॥ उस तीर्थ में जाकर मनुष्य एक हजार गायों के दान का फल प्राप्त करता है । हे नराधिप ! वहाँ शाल्विकिनी तीर्थ में जाकर तीर्थसेवी ॥११॥ वहाँ से दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नान करके दश अश्वमेध यागों के फल को प्राप्त करता है । उसके बाद सर्पनीवि नामक नागों के तीर्थ में जाकर ॥१२॥ मनुष्य अग्निष्टोम याग के फल को प्राप्त करता है और वह नाग लोक में जाता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ से अतर्णक नामक द्वारपाल का दर्शन करे ॥१३॥ वहाँ पर एक रात निवास करके हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है । वहाँ से नियम पूर्वक निश्चित आहार करने वाला पंचनद तीर्थ में जाकर ॥१४॥ कोटितीर्थ में आचमन करके अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है । अश्विनी तीर्थ में आकर मनुष्य रूपवान् हो जाता है ॥१५॥ हे धर्मज्ञ ! वहाँ से वाराह तीर्थ में जाना चाहिए वहीं पर भगवान् विष्णु वाराह रूप धारण करके स्थित हुए थे ॥१६॥ हे राजन् ! वहाँ रहकर मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है । हे राजेन्द्र ! वहाँ से उज्जयिनी के सोमतीर्थ में जाय ॥१७॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य राजसूय याग करने का फल प्राप्त करता है।

ततो मुञ्जावटं नाम महादेवस्य धीमतः । तत्रोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥२०॥
तत्रैव च महाराज ! जयां लोकपरिश्रुताम् ।
स्नात्वाऽभिगम्य राजेन्द्र सर्वकाममवाप्नुयात् ॥२१॥
कुरुक्षेत्रस्य तद्द्वारं विश्रुतं भरतर्षभ ! । प्रदक्षिणमुपावृत्य तीर्थसेवी समावृतः॥२२॥
संस्मृते पुष्कराणां तु स्नात्वार्च्य पितृदेवताः ।
जामदग्न्येन रामेण आहूते वै महात्मना ॥२३॥
कृतकृत्यो भवेद्राजन्नश्वमेधं च विन्दति। ततो रामह्रदं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप !॥२४॥
तत्र रामेण राजेन्द्र ! तरसादीप्ततेजसा । क्षत्रमुत्सार्य वीर्येण ह्रदाःपञ्चनिषेविताः ॥२५॥
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति नःश्रुतम् । पितरस्तर्पिताःसर्वे तथैव प्रपितामहाः॥२६॥
ततस्ते पितरःप्रीता राममूचुर्महीपते !। रामराम महाभाग ! प्रीताःस्मस्तव भार्गव ॥२७॥
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च तेऽनघ ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते किमिच्छसि महामते ॥२८॥
एवमुक्तःस राजेन्द्र ! रामःप्रवदतांवरः। अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पितॄन्स गगनेस्थितान् ॥२९॥
भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि । पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाप्यायनं पुनः ॥३०॥
यच्चरोषाऽभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया। ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसाह्यहम् ॥३१॥
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुविविश्रुताः । एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं रामस्य पितरस्तदा॥३२॥

एकहंस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त करता है ॥१८॥ हे युधिष्ठिर! वहाँ पर पवित्र होकर मनुष्य पुण्डरीक याग के फल को प्राप्त करके पवित्र हो जाता है ॥१९॥ वहाँ से मूंजावट नामक महादेव का दर्शन करके एक रात्रि को वहाँ निवास करना चाहिए, ऐसा करने वाला गाणपत्य को प्राप्त करता है ॥२०॥ हे महाराज ! वहीं पर लोक विख्यात जयातीर्थ में स्नान करके मनुष्य अपनी सारी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है ॥२१॥ हे भरतर्षभ ! उसी को कुरुक्षेत्र का द्वार बतलाया गया है तीर्थ यात्री को वहाँ पर प्रदक्षिण क्रम से लौटना चाहिए ॥२२॥ यहाँ पर जमदग्नि महर्षि के पुत्र परशुरामजी ने स्मरण करके तीनों पुष्करों को आहूत किया था ॥२३॥ वहाँ पर स्नान करके पितरों और देवताओं की पूजा करके मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है और अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है । वहाँ से तीर्थसेवी को रामह्रद तीर्थ में जाना चाहिए ॥२४॥ वही पर अत्यन्त तेजस्वी परशुरामजी ने क्षत्रियों का विनाश करके पाँच रुद्रों का सेवन किया । उन्होंने उन पाँचों सरोवरों को रक्त से भर दिया था ऐसा सुना जाता है ॥२५॥ उन्होंने अपने पितरों तथा पितामहों का वहाँ तर्पण किया॥२६॥ उसके बाद प्रसन्न होकर उन पितरों ने परशुरामजी से कहा । हे महाभाग राम ! हमलोग तुम पर तुम्हारी पितृभक्ति तथा पराक्रम से प्रसन्न हैं ॥२७॥ हे महामते ! तुम जो चाहो सो वरदान माँग लो इसतरह से कहने पर बोलने वालों में श्रेष्ठ श्रीपरशुरामजी ने ॥२८॥ आकाश में स्थित पितरों से हाथ जोड़कर कहा यदि आप लोग प्रसन्न है और आपलोगों की हम पर कृपा है तो ॥२९॥ अपने पितरों की कृपा से मैं तपस्या से पुष्ट होना चाहता हूँ ॥३०॥ मैंने क्रुद्ध होकर जो क्षत्रियों का विनाश किया है उसके कारण उत्पन्न पाप से मैं आपलोगों के ही तेज से मुक्त हो जाऊँ । मेरे ये ह्रद संसार में विख्यात तीर्थ

प्रत्यूचुः परमप्रीता रामं तोषसमन्विताः। तपस्ते वर्द्धतां भूयः पितृभक्त्याविशेषतः ॥३३॥
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया। ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं निहतास्ते स्वकर्म्मणा ॥३४॥
ह्रदाश्च तवतीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः। ह्रदेष्वेतेषु यः स्नात्वा पितृन्सन्तर्पयिष्यति ॥३५॥
पितरस्तस्य वै प्रीता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम्।
ईप्सितं मनसः कामं स्वर्गलोकं च शाश्वतम् ॥३६॥
एवं दत्त्वा वरं राजन्नामस्य पितरस्तदा। आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तर्दधुस्ततः ॥३७॥
एवं रामह्रदाः पुण्या भार्गवस्य महात्मनः। स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुभव्रतः ॥३८॥
राममभ्यर्च्च्य राजेन्द्र ! लभेद्बहु सुवर्णकम्। वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी कुरुद्वह ! ॥३९॥
स्ववंशमुद्धरेद्राजन्स्नात्वा वै वंशमूलके। कायशोधनमासाद्य तीर्थं भरतसत्तम ! ॥४०॥
शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन्नसंशयः। शुद्धदेहस्तु संयाति शुभांल्लोकाननुत्तमान् ॥४१॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
लोका यत्रोद्धताः पूर्वं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥४२॥
लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
स्नात्वा तीर्थवरे राजँल्लोकानुद्धरते स्वकान् ॥४३॥
श्रीतीर्थं च समासाद्य विन्दते श्रियमुत्तमाम्।
कपिलातीर्थमासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥४४॥
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देवानिह पितृंस्तथा।
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः ॥४५॥

बन जायँ ॥३१॥ परशुरामजी के इस वाक्य को सुनकर उनके पितरों ने अत्यन्त संतुष्ट होकर परशुरामजी से कहा ॥३२॥ तुम्हारी तपस्या पितृभक्ति के कारण समृद्ध हो, क्रुद्ध होकर तुमने क्षत्रियों का विनाश किया है ॥३३॥ तुम तो पाप से मुक्त हो, वे क्षत्रिय तो अपने पाप कर्मों के कारण मरे हैं ॥३४॥ तुम्हारे ये ह्रद तीर्थ बन जायेंगे। इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। इन ह्रदों में स्नान करके जो अपने पितरों का तर्पण करेगा, उसके पितृगण प्रसन्न होकर संसार में दुर्लभ पदार्थों को प्रदान करेंगे॥३५॥ उन सबों की सारी कामनाएँ शाश्वत रूप से पूर्ण होंगी। हे राजन् ! इसतरह से वरदान देकर श्रीपरशुरामजी के पितृगण प्रसन्नता पूर्वक परशुरामजी से विदा लेकर वहीं पर अन्तर्धान हो गये ॥३६-३७॥ इस तरह से ये परशुरामजी के ह्रद अत्यन्त पवित्र हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सुन्दर व्रत वाले तीर्थ यात्री को चाहिए कि वहाँ स्नान करके श्रीपरशुरामजी की पूजा करके बहुत अधिक सुवर्ण को प्राप्त करे। हे कुरुद्वह युधिष्ठिर ! वंशमूल तीर्थ में जाकर ॥३९॥ वहाँ पर स्नान करके अपने वंश का उद्धार करे। उसके बाद कायशोधन तीर्थ में जाकर ॥४०॥ वहाँ स्नान करके शरीर की शुद्धि को प्राप्त कर लेता है। शरीर के शुद्ध हो जाने वे वह शुभ लोकों में जाता है ॥४१॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से लोकोद्धार तीर्थ में जाना चाहिए यह तीर्थ त्रैलोक्य में दुर्लभ है, यहाँ पर प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु ने लोकयात्रा का उद्धार किया था ॥४२॥ इस त्रैलोक्य विख्यात तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अपने लोगों का उद्धार कर लेता है ॥४३॥ श्रीतीर्थ में आकर मनुष्य उत्तम श्री को प्राप्त कर लेता है श्रीतीर्थ में आकर मनुष्य

सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः। अर्चयित्वा पितृन्देवानुपवासपरायणः ॥४६॥
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति। गवां भवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम्॥४७॥
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत्। गङ्गातीर्थं समासाद्य तीर्थसेवी नराधिप !॥४८॥

केव्यास्तीर्थे नरःस्नात्वा लभते वीर्यमुत्तमम् ।
ततोगच्छेत राजेन्द्र द्वारपालं लवर्णकम् ॥४९॥

तस्य तीर्थे सरस्वत्यां यथेन्द्रस्य महात्मनः। तत्र स्नात्वा नरो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५०॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ ब्रह्मावर्तं नराधिप। ब्रह्मावर्ते नरःस्नात्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥५१॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ सुतीर्थकमनुत्तमम्। यत्र सन्निहिता नित्यं पितरोदैवतैःसह ॥५२॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चनेरतः। अश्वमेधमवाप्नोति पितृलोकं च गच्छति॥५३॥

ततोऽन्यतीर्थं धर्मज्ञ ! समासाद्य यथाक्रमम् ।
काशीश्वरस्य तीर्थेषु स्नात्वा भरतसत्तम ॥५४॥

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते। मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य पार्थिव ! ॥५५॥

प्रजा विवर्द्धते राजन् स्वर्गतिं समवाप्नुयात् ।
ततःशीतवनं गच्छेन्नियतोनियताशनः ॥५६॥

तीर्थं तत्र महाराज ! महदन्यत्रदुर्लभम्। पुनाति दर्शनादेव दण्डेनैकं नराधिप ! ॥५७॥
केशानावप्य वै तस्मिन्पूतोभवति भारत। तत्र तीर्थवरं चान्यत्स्नातलोकार्तिहं स्मृतम्॥५८॥

उत्तम श्री को प्राप्त कर लेता है। समाहित ब्रह्मचारी कपिला तीर्थ में जाकर ॥४४॥ वहाँ स्नान करे तथा देवताओं तथा पितरों की पूजा करे। ऐसा करने वाला मनुष्य एक हजार कपिला गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥४५॥ फिर शान्तमन से सूर्यतीर्थ में जाकर स्नान करें और उपवास करते हुए देवता एवं पितरों का पूजन करे ॥४६॥ ऐसा करने वाला अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है और सूर्यलोक में जाता है। उसके बाद मनुष्य गो तीर्थ में जाकर स्नान करके एक हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है। हे नराधिप ! गङ्गातीर्थ में जाकर तीर्थ सेवी मनुष्य ॥४७-४८॥ केव्या तीर्थ में स्नान करके मनुष्य उत्तम पराक्रम को प्राप्त करता है। वहाँ से लवर्णक नामक द्वारपाल का दर्शन करना चाहिए ॥४९॥ वह इन्द्र का तीर्थ है वहाँ पर स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है ॥५०॥ हे नराधिप ! वहाँ से ब्रह्मावर्त तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पर स्नान करने वाला ब्रह्मलोक में जाता है ॥५१॥ उसके बाद उत्तम सुतीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पर देवताओं के साथ पितरों का नित्य ही सन्निधान बना रहता है ॥५२॥ देवताओं तथा पितरों की अर्चना करने वाले को वहाँ पर स्नान करना चाहिए। ऐसा करके वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है तथा पितरों के लोक में जाता है ॥५३॥ हे धर्मज्ञ ! वहाँ से अन्यतीर्थ में क्रमशः जाकर, काशीश्वर महादेव के तीर्थ में जाकर स्नान करे ॥५४॥ ऐसा करने वाला सभी रोगों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में जाता है। वहीं पर विद्यमान मातृतीर्थ में स्नान करने वाले मनुष्य की ॥५५॥ प्रजाओं की वृद्धि होती है और वह स्वर्गलोक में जाता है। वहाँ से निश्चित मन वाला तीर्थवासी शीतवन में जाय ॥५६॥ यह महान् तीर्थ अन्यत्र दुर्लभ है। वहाँ पर एकदण्ड का दर्शन करके पवित्र हो जाता है ॥५७॥ वहाँ पर क्षौरकर्म कराकर मनुष्य

तत्र विप्रा नरव्याघ्र ! विद्वांसस्तत्र तत्पराः ।
गतिं गच्छन्ति परमां स्नात्वा भरतसत्तम ! ॥५९॥
स्वर्णलोमापनयने तीर्थे भरतसत्तम !। प्राणायमैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः ॥६०॥
पूतात्मानश्च राजेन्द्र ! प्रयान्ति परमां गतिम् ।
दशाश्वमेधिके चैव तस्मिंस्तीर्थे महीपते ! ॥६१॥
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! गच्छन्ति परमां गतिम् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! मानुषं लोकविश्रुतम् ॥६२॥
तत्र कृष्णा मृगा राजन्व्याधेन शरपीडिताः ।
विगाह्य तस्मिन्सरसि मानुषत्वमुपागताः ॥६३॥
तस्मिंस्तीर्थे नरःस्नात्वा ब्रह्मचारी समाहितः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥६४॥
मानुषस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रं महीपते !। आपगानाम विख्याता नदी सिद्धनिषेविता॥६५॥
श्यामाकभोजनं तत्र यःप्रयच्छति मानवः। देवान्पितॄन्समुद्दिश्य तस्य धर्मफलं महत्॥६६॥
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितॄंस्तथा ॥६७॥
उषित्वा रजनीमेकामग्निष्टोमफलं लभेत्। ततो गच्छेत धर्म्मज्ञ ब्रह्मणःस्थानमुत्तमम् ॥६८॥
ब्रह्मानुस्वरमित्येवं प्रकाशं भुवि भारत !। तत्र सप्तर्षिकुण्डेषु स्नातस्य भरतर्षभ ! ॥६९॥
केदारे चैव राजेन्द्र ! कपिलस्य महात्मनः ।
ब्रह्माणमभिगम्याथ शुचिःप्रयतमानसः ॥७०॥

पवित्र हो जाता है । वहाँ पर दूसरा भी तीर्थ है । उसमें स्नान करने से सांसारिक कष्ट दूर हो जाता है ॥५८॥ हे राजन् ! वहाँ पर जाने वाले विद्वान विप्र स्नान करके परमागति को प्राप्त कर लेता है॥५९॥ हे भरतश्रेष्ट ! स्वर्ण लोमापनयन तीर्थ में द्विजश्रेष्ठ प्राणायामों के द्वारा लोमों को त्यागते हैं ॥६०॥ हे राजेन्द्र ! ऐसे द्विज पवित्रात्मा होकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं । इसके बाद दशाश्वमेधिक तीर्थ में जाकर वह मनुष्य पूजित होता है ॥६१॥ वहाँ पर स्नान करने वाले परमागति को प्राप्त करते हैं । वहाँ से हे राजेन्द्र ! लोकविख्यात मानुष तीर्थ में जाय ॥६२॥ वहाँ पर हे राजन् ! बहेलिए के बाणों से पीडित काले मृग उस सरोवर में स्नान करके मनुष्यत्व को प्राप्त कर लिए ॥६३॥ उस तीर्थ में समाहित ब्रह्मचारी स्नान करके पवित्र हो जाता है और स्वर्गलोक में जाता है ॥६४॥ मानुष तीर्थ से एक कोश पूर्व दिशा में सिद्धों से सुसेवित आपगा नामकी विख्यात नदी है ॥६५॥ वहाँ पर जो सवाँ के चावल का भोजन देवताओं और पितरों की प्रसन्नता के लिए प्रदान करता है, उसका फल मैं बतलाता हूँ ॥६६॥ वहाँ पर एक ब्राह्मण को भोजन कराने से एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है । वहाँ पर स्नान करके तथा देवताओं एवं पितरों की पूजा करके ॥६७॥ तथा एक रात वहाँ निवास करके मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ से ब्रह्माजी के स्थान में जाना चाहिए।६८॥ उसको ब्रह्मानुस्वर तीर्थ कहते हैं । वहाँ पर सप्तर्षि कुण्ड में स्नान करने वाले मनुष्य ॥६९॥ को पवित्र

सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोकं प्रपद्यते। कपिष्ठलस्य केदारं समासाद्य सुदुर्लभम् ॥७१॥
अन्तर्धानमवाप्नोति तपसा दग्धकिल्बिषः। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! सर्वकं लोकविश्रुतम् ॥७२॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामभिगम्य वृषध्वजम्। लभते सर्वकामान्हि स्वर्गलोकं च गच्छति ॥७३॥
तिस्रःकोट्यश्च तीर्थानां प्रवरं कुरुनन्दन !। रुद्रकोट्यां तथाकूपे ह्रदेषु च समन्तकः ॥७४॥
इलास्पदं च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तमम्। तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितृनपि ॥७५॥
न दुर्गतिमवाप्नोति वाजपेयं च विन्दति। किं दाने च नरःस्नात्वा किं यज्ञे च महीपते ॥७६॥
अप्रमेयमवाप्नोति दानं यज्ञं तथैव च। कलश्यां वार्य्युस्पृश्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥७७॥
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः। सरकस्य तु पूर्वेण नारदस्य महात्मनः ॥७८॥
कुरुश्रेष्ठ शुभं तीर्थं रामजन्मेतिविश्रुतम्। तत्र तीर्थे नरःस्नात्वा प्राणांश्चोत्सृज्य भारत ॥७९॥
नारदेनाभ्यनुज्ञातो लोकानाप्नोति दुर्ल्लभान्। शुक्लपक्षे दशम्यां तु पुण्डरीकं समाविशेत् ॥८०॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्पुण्डरीकफलं लभेत् ।
ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥८१॥

तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी। तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ॥८२॥
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम्। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! फलकीवनमुत्तमम् ॥८३॥
तत्र देवाः सदा राजन्फलकीवनमाश्रिताः। तपश्चरन्ति विपुलं बहुवर्षसहस्रकम् ॥८४॥
दृषत्पाने नरःस्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः। अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः ॥८५॥

मन से द्वारकुण्ड तथा कपिलकुण्ड में स्नान करके ब्रह्माजी का पवित्र मन से दर्शन करना चाहिए ॥७०॥ ऐसा करने वाला पवित्रात्मा ब्रह्मलोक में जाकर पूजित होता है । अत्यन्त दुर्लभ कपिष्ठल के द्वारतीर्थ में जाकर ॥७१॥ मनुष्य तपस्या के द्वारा पापों के विनष्ट हो जाने से अन्तर्धान हो जाते हैं । वहाँ से लोक विख्यात सर्वक तीर्थ में जाना चाहिए ॥७२॥ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को वहाँ पर भगवान् शिव का दर्शन करने वाला अपनी सारी कामनाओं को पूर्ण करके स्वर्ग लोक में जाता है । हे युधिष्ठिर वहीं पर तीन करोड़ श्रेष्ठ तीर्थों में श्रेष्ठ ॥७३॥ रुद्रकोटि तीर्थ हैं यह कूप तथा ह्रदों से युक्त है । वहीं पर इल तीर्थ है ॥७४॥ वहाँ पर स्नान करके तथा देवताओं एवं पितरों की पूजा करके मनुष्य कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है और वह वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है ॥७५॥ वहाँ पर थोड़ा सा भी दान तथा जप करके दान और यज्ञ करने के अप्रमेय फल को वह प्राप्त कर लेता है । श्रद्धापूर्वक जितेन्द्रिय रहकर कलशी तीर्थ में स्नान करके मनुष्य ॥७६॥ अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त कर लेता है । हे राजन् ! सरक तीर्थ की पूर्व दिशा में महात्मा नारद का ॥७७॥ रामजन्म के नाम से विख्यात शुभ तीर्थ है । हे भारत ! वहाँ पर स्नान करके जो मनुष्य अपने प्राणों का परित्याग कर देता है ॥७८॥ नारदजी की आज्ञा को प्राप्त करके दुर्लभ लोकों में जाता है । शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को पुण्डरीक तीर्थ में जाना चाहिए ॥७९-८०॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य पुण्डरीक यज्ञ का फल प्राप्त करता है । उसके बाद त्रैलोक्य में विख्यात त्रिविष्टप तीर्थ में जाना चाहिए ॥८१॥ वहाँ पर पापों को विनष्ट करने वाली वैत्तरणी नदी है । वहाँ पर स्नान करके तथा शूलपाणि शिवजी की पूजा करके ॥८२॥ मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर परमागति को प्राप्त कर लेता है । हे राजेन्द्र ! वहाँ

तीर्थे च सर्वदेवानां स्नात्वा भरतसत्तम !। गोसहस्रस्य राजेन्द्र ! फलमाप्नोतिमानवः ॥८६॥
पाणिख्याते नरःस्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ।
अवाप्नुते राजसूयमृषिलोकं च गच्छति ॥८७॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! मिश्रकं लोकविश्रुतम् ।
तत्र तीर्थानि राजेन्द्र मिश्रितानि महात्मना ॥८८॥
व्यासेन नृपशार्दूल द्विजार्थमिति नःश्रुतम् । सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः॥८९॥
ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः । मनोजवे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥९०॥
गत्वा मधुवनीं चापि देव्याः स्थानं नरः शुचिः ।
तत्र स्नात्वाऽर्चयेद्देवान्पितृंश्चनि यतःशुचिः ॥९१॥
सदेव्या समनुज्ञातो गोसहस्रफलं लभेत् । कौशिक्याःसङ्गमे यस्तु दृषद्वत्याश्च भारत॥९२॥
स्नातो वै नियताहारः सर्वपापैःप्रमुच्यते । ततो व्यासस्थलीनाम यत्र ब्यासेन धीमता ॥९३॥
पुत्रशोकाभितप्तेन देहत्यागाय निश्चयः । कृतो देवैश्च राजेन्द्र पुनरुत्थापितस्तथा ॥९४॥
अभिगम्य स्थलीं तस्य गोसहस्रफलं लभेत् ।
ऋणान्तं कृपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च ॥९५॥
गच्छेत परमां सिद्धिमृणैर्मुक्तो नरेश्वर। वेदतीर्थे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥९६॥
अहश्च सुदिनश्चैव द्वेतीर्थे नृपदुर्लभे। तयोःस्नात्वा नरश्रेष्ठ सूर्यलोकमवाप्नुयात्॥९७॥

से उत्तम फलकी वन में जाना चाहिए ॥८३॥ हे राजन् ! उस फलकी वन में देवताओं का सदैव निवास वना रहता है । वे वहाँ पर अनेक हजार वर्षों तक विपुल मात्रा में तपस्या करते हैं ॥८४॥ दृषत्पान नामक तीर्थ में स्नान करके मनुष्य देवताओं और पितरों का तर्पण करे । ऐसा करके वह अग्निष्टोम तथा अतिरात्र इन दोनों यागों के फल को प्राप्त करता है ॥८५॥ हे राजेन्द्र ! इन सभी देवताओं के तीर्थों में स्नान करके मनुष्य एक हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥८६॥ मनुष्य पाणि नामक तीर्थ में स्नान करके तथा देवताओं का तर्पण करके राजसूय नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है और ऋषियों के लोक में जाता है ॥८७॥ हे धर्मज्ञ ! वहाँ से वह लोक विख्यात मिश्र तीर्थ में जाय । हे राजेन्द्र ! हमने सुना है कि द्विजों का कल्याण करने के लिए महर्षि व्यास ने वहाँ पर सभी तीर्थों का मिश्रण कर दिया है । जो मनुष्य मिश्रक तीर्थ में स्नान कर लेता है, वह सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त कर लेता है ॥८८-८९॥ वहाँ से नियम पूर्वक निश्चित मात्रा में भोजन करने वाला तीर्थ सेवी व्यास वन नामक तीर्थ में जाय । वहाँ पर मनोजव तीर्थ में स्नान करके मनुष्य एक हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥९०॥ मधुवनी नामक देवीं के स्थान में पवित्रता पूर्वक जाकर मनुष्य वहाँ पर देवताओं और ऋषियों का पूजन करें ॥९१॥ वह देवी की आज्ञा प्राप्त करके हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है । हे भारत ! जो मनुष्य कौशिकी तथा दृषद्वती नदी के सङ्गम स्थल में स्नान करता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । उसके बाद व्यास स्थली में जाय, वहाँ पर व्यासजी ने अपने पुत्र के शोक से संतप्त होकर देह त्याग करने का निश्चय किया था, उसके बाद देवताओं ने उनको वहाँ से उठाया ॥९२-९४॥ व्यास स्थली तीर्थ में जाकर मनुष्य एक हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है । वहाँ पर जाकर मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है॥९५॥ वेदी तीर्थ में स्नान करके मनुष्य हजार गौओं का दान करने का फल प्राप्त करता है ॥९६॥ हे राजन्!

मृगधूमं ततो गच्छेत्त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् । तत्र रुद्रपदेस्नात्वा समभ्यर्च्च्य च मानवः ॥९८॥
शूलपाणिं महात्मानमश्वमेधफलं लभेत्। कोटितीर्थे नरःस्नात्वा गोसहस्त्रफलं लभेत्॥९९॥

अथ वामनकं गत्वा त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र विष्णुपदे स्नात्वा समभ्यर्च्च्य च वामनम् ॥१००॥

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात्। कुलम्पुनेनरःस्नात्वा पुनाति स्वकुलंनरः॥१०१॥
पवनस्य हृदं गत्वा मरुतांतीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! वायुलोके महीयते॥१०२॥
अमराणां ह्रदेस्नात्वा समभ्यर्च्यामराधिपम्। अमराणां प्रभावेण स्वर्गलोके महीयते ॥१०३॥

शालिहोत्रस्य राजेन्द्र ! शालिसूर्ये यथाविधि ।
स्नात्वा नरवरश्रेष्ठ गोसहस्त्रफलं लभेत् ॥१०४॥

श्रीकुञ्जं च सरस्वत्यां तीर्थं भरतसत्तम !। तत्र स्नात्वा नरो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत्॥१०५॥
ततो नैमिषिकुञ्जं च समासाद्य सुदुर्लभम् । ऋषयःकिल राजेन्द्र नैमिषेयास्तपोधनाः ॥१०६॥
तीर्थयात्रां पुरस्कृत्य कुरुक्षेत्रे गताःपुरा । ततःकुञ्जःसरस्वत्यां कृतो भरतसत्तम॥१०७॥

ऋषीणामवकाशः स्याद्यथातुष्टिकरो महान् ।
तस्मिन्कुञ्जे नरःस्नात्वा गोसहस्त्रफलं लभेत् ॥१०८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानानदनदीनां माहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

दो तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ हैं अहः तथा सुदिन । हे राजन् ! उन दोनों तीर्थों में स्नान करके मनुष्य सूर्य लोक में जाता है ॥९७॥ वहाँ से त्रैलोक्य विख्यात मृगधूम नामक तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर रुद्रगण में स्नान करके तथा देवताओं की पूजा करके मनुष्य ॥९८॥ शूलपाणि शङ्करजी की पूजा करके मनुष्य अश्वमेघ याग का फल प्राप्त करता है । कोटितीर्थ में स्नान करके मनुष्य हजार गायों के दान का फल प्राप्त करता है ॥९९॥ उसके बाद त्रिलोक में विख्यात वामन तीर्थ में जाकर मनुष्य विष्णुपद में स्नान करके वामन भगवान् की पूजा करे ॥१००॥ सभी पापों से रहित होकर वह विष्णुलोक में जाता है । कुलंकुन नामक तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अपने वंश को पवित्र बना देता है ॥१०१॥ उसके बाद वायुदेव में उत्तमतीर्थ पवनहृद में जाकर मनुष्य वायुलोक में पूजित होता है ॥१०२॥ अमर हृद में स्नान करके मनुष्य इन्द्र की पूजा करे । ऐसा करने से देवताओं के प्रभाव से मनुष्य देवलोक में पूजित होता है ॥१०३॥ हे राजेन्द्र ! शालिहोत्र तीर्थ में शालिसूर्य नामक तीर्थ में विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य एक हजार गोदान के फल को प्राप्त करता है । हे भरतश्रेष्ठ ! सरस्वती नदी के तट पर श्रीकुञ्जतीर्थ हैं वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम याग के फल को प्राप्त करता है ॥१०४-१०५॥ उसके पश्चात् अत्यन्त दुर्लभ, नैमिष कुञ्ज में जाकर नैमिष क्षेत्र के ऋषियों ने प्राचीन काल में कुरुक्षेत्र की यात्रा की, उसी के कारण सरस्वती नदी के तट पर कुञ्ज हो गया ॥१०६-१०७॥ वही ऋषियों को महान् सन्तोष प्रदान करने वाला अवकाश हो गया । उस कुंज में स्नान करने वाला मनुष्य एक हजार गौओं को दान करने का फल प्राप्त करता है ॥१०८॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

सत्ताइसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो गच्छेत धर्मज्ञ कन्यातीर्थमनुत्तमम्। कन्यातीर्थे नरःस्नात्वा अनिष्टोमफलं लभेत्॥१॥
ततो गच्छेन्नरव्याघ्र ! ब्रह्मणःस्थानमुत्तमम्। तत्र वर्णावरःस्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः ॥२॥
ब्राह्मणस्तु विशुद्धात्मागच्छेत परमां गतिम्। ततो गच्छेन्नरव्याघ्र ! सोमतीर्थमनुत्तमम् ॥३॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सोमलोकमवाप्नुयात् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततो गच्छेन्नराधिप ! ॥४॥
यत्र मङ्कणकः सिद्धो ब्रह्मर्षिर्लोकविश्रुतः। पुरामङ्कणको राजन्कुशाग्रेणेति विश्रुतम् ॥५॥
क्षतःकिल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्त्रवत् ।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाऽऽविष्टो महातपाः ॥६॥
ननर्त किलविप्रर्षिर्विस्मयोत्फुल्ललोचनः। ततस्तस्मिन्प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥७॥
प्रनृत्तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम्। ब्रह्मादिभिस्ततो देवैर्ऋषिभिश्च तपोधनैः ॥८॥
विज्ञप्तो वै ऋषेरर्थे महादेवो नराधिप !। नायं नृत्येद्यथा देव ! तथात्वं कर्तुमर्हसि॥९॥
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाऽऽविष्टेन चेतसा ।
नृत्यन्तमब्रवीच्चैनं स्थिराणां हितकाम्यया ॥१०॥
अहो महर्षे ! धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् ।
हर्षस्थानं किमर्थं वा तवाद्य मुनिपुङ्गव ! ॥११॥

ऋषिरुवाच

तपस्विनो धर्म्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ! ।
किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् ! क्षताच्छाकरसं सृतम् ॥१२॥

कन्यातीर्थ, सोमतीर्थ आदि तीर्थों का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे धर्मज्ञ ! वहाँ से श्रेष्ठ कन्यातीर्थ में जाना चाहिए । उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है ॥१॥ हे राजन् ! वहाँ से ब्रह्माजी के स्थान में जाना चाहिए वहाँ पर स्नान करके दूसरे वर्ण के भी लोग ब्रह्मण्य को प्राप्त कर लेते हैं ॥२॥ ब्राह्मण पवित्र होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । हे वरव्याघ्र ! वहाँ से सोमतीर्थ में जाना चाहिए ॥३॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य सोमलोक में जाता है । हे राजन् ! वहाँ से सप्तसारस्वत तीर्थ में जाना चाहिए।॥४॥ वहाँ पर मङ्कणक नामक ब्रह्मर्षि का निवास है । हे राजन् ! प्राचीनकाल में मङ्कणक का हाथ कुश से कट गया ॥५॥ और उससे शाक का रस प्रवाहित होने लगा उस शाक के रस को देखकर वे ब्रह्मर्षि अत्यन्त प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे । उनके नृत्य करते समय सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् उनके तेज से मोहित होकर नृत्य करने लगा । उस समय ब्रह्मा इत्यादि देवता तथा तपस्वी ऋषिगण उसके विषय में शङ्करजी से प्रार्थना किए कि हे देव ! आप ऐसा करें कि ये ब्रह्मर्षि नृत्य न करें ॥६-९॥ उसके बाद मुनि को देखकर प्रसन्नता पूर्वक देखकर स्थिर जीवों का कल्याण करने के लिए शङ्करजी ने मुनि से कहा ॥१०॥ हे धर्मज्ञ महर्षे ! आप क्यों नृत्य कर रहे हैं ? हे मुनिपुङ्गव ! आपकी इस

यं दृष्ट्वा सम्प्रनृत्तोऽहं हर्षेण महताऽऽवृतः ।
तं प्रहस्याब्रवीद्देव ऋषिं रागेण मोहितम् ॥१३॥
अहं तु विस्मयं विप्र न गच्छामीह पश्य माम् ।
एवमुक्त्वा नरश्रेष्ठ महादेवेन वै तदा ॥१४॥
अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र ! स्वाङ्गुष्ठस्ताडितोऽनघ ! ।
तस्य भस्मक्षताद्राजन्निस्सृतं हिमसन्निभम् ॥१५॥
तं दृष्ट्वा व्रीडितो राजन्स मुनिः पादयोर्गतः ।
नान्यं देवमहम्मन्ये रुद्रात्परतरं महत् ॥१६॥
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृक् ! ।
त्वया सृष्टमिदं विश्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१७॥
त्वामेव भगवन्सर्वे प्रविशन्ति युगक्षये । देवैरपि न शक्यस्त्वंपरिज्ञातुं:कुतो मया॥१८॥
त्वयि सर्वेश ! दृश्यन्ते सुराः शक्रादयोऽनघ ! ।
सर्वस्त्वमसि लोकानां कर्ता कारयिताऽन्वहम् ॥१९॥
त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे मोदन्तेऽत्राकुतोभयाः ।
एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽब्रवीत् ॥२०॥
त्वत्प्रसादान्महादेव ! तपो मे न क्षरेत वै। ततो देवः प्रहृष्टात्मा ब्रह्मर्षिमिदमब्रवीत् ॥२१॥
तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा। आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धं महामुने ॥२२॥
सप्तसारस्वते स्नात्वा अर्चयिष्यन्ति ये तु माम् ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चिदिहलोके परत्र वा ॥२३॥

प्रसन्नता का क्या कारण है ?॥११॥ **ऋषि ने कहा**— हे द्विजश्रेष्ट ! आप यह नहीं देख रहे हैं क्या कि तपस्वी तथा धर्ममार्गानुयायी मेरे कटे अङ्ग से शाक का रस प्रवाहित हो रहा है ॥१२॥ इसी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर मैं नृत्य कर रहा हूँ । राग से मोहित मुनि से जोर से हँसकर शङ्करजी ने कहा ॥१३॥ हे मुनि ! इसके कारण मैं तो आश्चर्यित नहीं हूँ । आप मुझको देखें यह कहकर शङ्करजी ने ॥१४॥ अपनी अङ्गुलि के अग्रभाग से अपने अङ्गूठे को ठोका । उसके कारण उनके उस क्षत स्थान से वर्फ के समान श्वेत भस्म निकलने लगा ॥१५॥ हे राजन् ! उसको देखकर मुनि अत्यन्त लज्जित हुए वे शङ्करजी के पैर पर गिरकर प्रणाम किए और कहे कि मैं रुद्र से बढकर किसी देवता को नहीं मानता हूँ ॥१६॥ हे शूलधारिन् ! आप ही देवों तथा दानवों के, एवं सम्पूर्ण जगत् के आश्रय हैं । आपने ही सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् की सृष्टि की है ॥१७॥ हे भगवन् ! प्रलयकाल में सभी जीव आप में ही प्रवेश कर जाते हैं । आपको देवता भी नहीं जान सकते हैं तो मैं कैसे जान सकता हूँ?॥१८॥ आप में ही इन्द्र आदि सभी देवता दिखायी देते हैं । जीव से कराने वाले तथा जीवों को करने वाले सबकुछ आप ही हैं ॥१९॥ आपकी ही कृपा से सभी देवता निर्भय होकर आनन्दानुभव करते हैं । इसतरह से स्तुति करके ऋषि प्रणत होकर शङ्करजी से कहे ॥२०॥ हे देव ! आपकी कृपा से मेरी तपस्या क्षीण न हो । उसके बाद प्रसन्न होकर शङ्करजी ऋषि से कहे ॥२१॥ हे विप्र ! मेरी कृपा से आपकी तपस्या

गच्छेत्सारस्वतं चापि लोकं नास्त्यत्र संशयः ॥२४॥

नारद उवाच

एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवाऽन्तरधीयत। ततस्त्वौशनसं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥२५॥
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्चतपोधनाः। कार्तिकेयश्च भगवांस्त्रिसन्ध्यं किल भारत ॥२६॥
सान्निध्यमकरोत्तत्र भार्गवप्रियकाम्यया। कपालमोचनं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२७॥
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते।
अग्नितीर्थं ततोगच्छेत्स्नात्वा च भरतर्षभ ! ॥२८॥
अग्निलोकमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्। विश्वामित्रस्य तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ! ॥२९॥
तत्र स्नात्वा महाराज ! ब्राह्मण्यमभिजायते।
ब्रह्मयोनिं समासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ॥३०॥
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! ब्रह्मलोकं प्रपद्यते। पुनात्यासप्तमं चैव कुलं नास्त्यत्रसंशयः ॥३१॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम्।
पृथूदकमिति ख्यातं कार्तिकेयस्य वै नृप ! ॥३२॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः। अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा ॥३३॥
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना। तत्सर्वं नश्यते तत्र स्नातमात्रस्य भारत ! ॥३४॥
अश्वमेधफलं चापि लभते स्वर्गमेव च। पुण्यमाहुः कुरुक्षेत्रं कुरुक्षेत्रात्सरस्वतीम् ॥३५॥
सरस्वत्याश्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथूदकम्। उत्तमे सर्वतीर्थानां यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥३६॥

हजारो गुना बढे। हे महामुने ! आपके इस आश्रम में मैं आपके साथ निवास करूँगा ॥२२॥ इस सप्तसारस्वत तीर्थ में स्नान करके जो लोग मेरी पूजा करेंगे, उन लोगों के लिए इसलोक में तथा परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा ॥२३॥ अन्त में वह मनुष्य सारस्वत लोक में जायेगा, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। इसतरह से कहकर शङ्करजी वहीं पर अन्तर्धान हो गये ॥२४॥ वहाँ से त्रिलोक विख्यात उशनातीर्थ में जाना चाहिए वहाँ पर परशुरामजी की प्रसन्नता के लिए ब्रह्मा आदि देवता, तपस्वी, ऋषिगण तथा भगवान् कार्तिकेय तीनों संध्याओं में अपना सान्निध्य बनाये रहते हैं ॥२५-२६॥ उसके बाद सभी पापों को दूर करने वाले कपालमोचन तीर्थ में स्नान करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥२७॥ वहाँ से अग्नितीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए। ऐसा करने वाला अग्निलोक में जाता है और अपने वंश का उद्धार कर देता है ॥२८॥ हे भरतश्रेष्ठ ! वहीं पर महर्षि विश्वामित्र का तीर्थ है, हे महाराज! वहाँ स्नान करने से ब्राह्मण्य की प्रगति होती है ॥२९॥ पवित्र तथा सावधान मन से ब्रह्मयोनि तीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥३०॥ ऐसा करने वाला तीर्थ सेवी अपनी सात पीढी को पवित्र बना देता है। हे राजेन्द्र ! वहाँ से मनुष्य को त्रैलोक्य विख्यात पृथूदक तीर्थ में जाना चाहिए। यह कार्तिकेय का तीर्थ है। वहाँ पर स्नान करके पितरों तथा देवताओं की पूजा करनी चाहिए ॥३१-३२॥ कोई स्त्री हो अथवा पुरुष जीवन में जो कुछ भी जाने बेजाने जो पाप कर्म किए रहते हैं, वे सबके सब वहाँ स्नान करने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं और वे अश्वमेध याग करने के फल को प्राप्त करके स्वर्ग चले जाते हैं ॥३३-३४॥ कुरुक्षेत्र को पवित्र क्षेत्र बतलाया गया है।

पृथूदके जप्यपरो नैव संसरणं लभेत्। गीतं सनत्कुमारेण व्यासेन च महात्मना ॥३७॥
वेदे च नियतं राजन्नभिगच्छेत्पृथूदकम्। पृथूदकात्पुण्यतमं नान्यत्तीर्थं नरोत्तम ! ॥३८॥
एतन्मेध्यं पवित्रं च पावनं च न संशयः। तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति अपि पापकृतो जनाः ॥३९॥
पृथूदके नरश्रेष्ठ ! प्राहुरेवं मनीषिणः। मधुश्रवं च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ॥४०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्। ततो गच्छेन्नरश्रेष्ठ ! तीर्थं देव्या यथाक्रमम ॥४१॥
सरस्वत्यारुणायाश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम्। त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥४२॥
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं चैव समश्नुते। पुनात्याऽऽसप्तमं चैव कुलं नारस्त्यत्र संशयः॥४३॥
अवकीर्णं च तत्रैव तीर्थं कुरुकुलोद्वह !। विप्राणामनुकम्पार्थं दर्भिणा निर्मितं पुरा ॥४४॥
व्रतोपनयनाभ्यां चाऽप्युपवासेन वा द्विजः। क्रियामन्त्रैश्च संयुक्तो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः॥४५॥
क्रियामन्त्रविहीनोऽपि तत्र स्नात्वा नरर्षभ ! ।
चीर्णव्रतो भवेद्विप्रो दृष्टमेतत्पुरातनम् ॥४६॥
समुद्राश्चापि चत्वारः समानीताश्च दर्भिणा। तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! न दुर्गतिमवाप्नुयात्॥४७॥
फलानि गोसहस्राणां चतुर्णां विन्दते च सः ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं शतसहस्रकम् ॥४८॥
साहस्रकं च तत्रैव द्वे तीर्थे लोकविश्रुते। उभयोर्हि नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥४९॥

कुरुक्षेत्र से श्रेष्ठ सरस्वती नदी है, सरस्वती नदी से श्रेष्ठ उसके तीर्थ है । उन तीर्थों में पृथूदकतीर्थ श्रेष्ठ है ॥३५॥ उस तीर्थ में जप करते हुए जो कोई भी अपने शरीर का त्याग करता है वह पुनः इस संसार में नहीं आता है ॥३६॥ हे राजन् ! महर्षि सनत्कुमार व्यासजी तथा वेदों में इस बात को वतलाया गया है कि पृथूदक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए ॥३७॥ हे राजन् ! पृथूदक तीर्थ से बढकर कोई दूसरा पवित्र तीर्थ नहीं है, यही मेध्य, पवित्र तथा पावन तीर्थ है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥३८॥ वहाँ पर स्नान करने वाला पापी पुरुष भी स्वर्गलोक में जाता है । हे राजन् ! मनीषी पुरुष पृथूदक तीर्थ के विषय में बतलाते हैं कि वहीं पर मधुस्रव नामक तीर्थ है, वहाँ पर स्नान करने वाला एक हजार गोदान करने का फल प्राप्त करता है ॥३९-४०॥ हे नरश्रेष्ठ ! वहाँ से सरस्वती तथा अरुणा नदी के सङ्गग में जाय, यह देवी का तीर्थ है ॥४१॥ वहाँ पर तीन रात तक उपवास करके स्नान करने वाला मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है तथा अतिरात्र तथा अग्निष्टाटोम इन दोनों यज्ञों के फल को भी वह प्राप्त करता है ॥४२॥ वह अपनी सात पीढियों के पुरुषों को पवित्र भी बना देता है । हे युधिष्ठिर ! वहीं पर अवकीर्ण तीर्थ है ॥४३॥ ब्राह्मणों पर कृपा करने के लिए दर्भी ने इस तीर्थ को व्रत, उपनयन तथा उपवास करके बनाया है ॥४४॥ ब्राह्मणत्व के लिए सदाचार का पालन और मन्त्र का ज्ञाता होना चाहिए; किन्तु यहाँ पर किया तथा मन्त्र से विहीन भी ब्राह्मण स्नान करके॥४५॥ व्रत का पालन करने वाला ब्राह्मण बन जाता है । यह प्राचीन श्रुति है । यहाँ पर दर्भी ने चारो समुद्रों को भी लाया था ॥४६॥ वहाँ पर स्नान करने वाला दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है और वह चार हजार गायों के दान करने के फल को प्राप्त करता है ॥४७॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से शत सहस्रक तीर्थ में जाना चाहिए वहीं पर सहस्रक तीर्थ है । ये दोनों तीर्थ लोक विख्यात हैं ॥४८॥ उन दोनों तीर्थों में

दानं वाप्युपवासो वा सहस्रगुणितो भवेत्। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! रेणुक्रातीर्थमुत्तमम् ॥५०॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः। सर्वपापविशुद्धात्मा अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५१॥
विमोचन उपस्पृश्य जितमन्युर्जितेन्द्रियः। प्रतिग्रहकृतैः पापैः सर्वैः सम्परिमुच्यते ॥५२॥
ततः पञ्चवटं गत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। पुण्येन महता युक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥५३॥
यत्र योगीश्वरः स्थाणुः स्वयमेव वृषध्वजः।
तमचर्यायित्वा देवेशं गमनादेवसिध्यति ॥५४॥
तैजसं वारुणं तीर्थं दीप्यते स्वेन तेजसा। यत्र ब्रह्मादिभिर्देवैर्ऋषिभिश्च तपोधनैः ॥५५॥
सैनापत्ये च देवानामभिषिक्तो गुहस्तदा। तैजसस्य तु पूर्वेण कुरुतीर्थं कुरूद्वह ! ॥५६॥
कुरुतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं प्रपद्यते ॥५७॥
स्वर्गद्वारं ततो गच्छेन्नियतो नियताशनः। अग्निष्टोममवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥५८॥
ततो गच्छेदनरकं तीर्थसेवी नराधिप !। तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाऽऽप्नुयात्॥५९॥
तत्र ब्रह्मा स्वयं नित्यं देवैस्सह महीयते। अध्यास्ते पुरुषव्याघ्र ! नारायणपुरोगमैः ॥६०॥
सान्निध्यं चैव राजेन्द्र ! रुद्रवेद्यां कुरूद्वह ! ।
अभिगम्य महादेवं मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥६१॥
तत्रैव च महाराज विश्वेश्वरमुमापतिम्। अभिगम्य महादेवं मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥६२॥

स्नान करके मनुष्य एक हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है । वहाँ पर किया गया दान तथा उपवास हजार गुना फल देने वाला होता है ॥४९॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से रेणुका तीर्थ में जाना चाहिए, वहाँ पर स्नान करके देवताओं और पितरों की पूजा करनी चाहिए ॥५०॥ ऐसा करने वाला अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है अपने क्रोध के वश में रखने वाला जितेन्द्रिय पुरुष विमोचन तीर्थ में आचमन करके ॥५१॥ दान लेने से उत्पन्न सभी पापों से मुक्त हो जाता है । उसके बाद ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चवटी तीर्थ में जाकर ॥५२॥ अत्यधिक पुण्य को प्राप्त करके स्वर्गलोक में पूजित होता है । वहाँ पर भगवान् शिव स्वयं योगीश्वर रूप से विराजते हैं ॥५३॥ वहाँ पर शङ्करजी की पूजा करे । उसके बाद तीर्थ यात्री को वरुण देवता के तेजस्वी तथा देदीप्यमान तीर्थ में जाना चाहिए । वह वहाँ जाने मात्र से ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥५४॥ वहीं पर ब्रह्मा आदि देवताओं तथा तपस्वी ऋषियों ने कार्तिकेय को देवताओं के सेनापति पद पर अभिषिक्त किया था ॥५५॥ उस तैजस तीर्थ में पूर्व में कुरुतीर्थ है । उस कुरुतीर्थ में ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय मनुष्य स्नान करके ॥५६॥ सभी पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है । वहाँ से नियमित भोजन करने वाला तीर्थ यात्री स्वर्गद्वार तीर्थ में जाय॥५७॥ वह अग्निष्टोम याग करने का फल प्राप्त करता है और ब्रह्माजी के लोक में जाता है । हे नराधिप ! वहाँ से अनरक तीर्थ में जाय ॥५८॥ हे राजन् ! वहाँ स्नान करने वाले मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है । वहाँ पर स्वयं ब्रह्माजी देवताओं के साथ पूजित होते हैं ॥५९॥ हे राजन् ! नारायण प्रतिपादक आगमों के द्वारा रुद्र वेदी पर विराजमान हैं, और वहाँ उनका सान्निध्य बना रहता है ॥६०॥ उस वेदीतीर्थ में जाने वाले की दुर्गति नहीं होती है । वहीं पर उमापति विश्वेश्वर ॥६१॥ का दर्शन करने वाला मनुष्य

नारायणं चाभिगम्य पद्मनाभमरिन्दम ! । शोभमानो महाराज ! विष्णुलोकं प्रपद्यते ॥६३॥
तीर्थेषु सर्वदेवानां स्नातमात्रो नराधिप !। सर्वदु:खपरित्यक्तो द्योतते शिववत्सदा॥६४॥
ततस्त्वस्थिपुरं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप । पावनं तीर्थमासाद्य तर्पयेत्पितृदेवता: ॥६५॥
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति भारत। गङ्गाह्रदश्च तत्रैव कूपश्च भरतर्षभ ! ॥६६॥

तिस्र:कोट्यस्तु तीर्थानां तस्मिन्कूपे महीपते ! ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ॥६७॥
आपगायां नर: स्नात्वा अर्चयित्वा महेश्वरम् ।
गतिं परामवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥६८॥
तत: स्थाणुवटं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा स्थितो रात्रिं रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥६९॥

बदरीणां वनं गच्छेद्वसिष्ठस्याश्रमं तत: । बदरी भक्ष्यते यत्र त्रिरात्रोपोषितो नर: ॥७०॥
सम्यग्द्वादशवर्षाणि बदरीं भक्षयेत्तु य:। त्रिरात्रोपोषितश्चैव भवेत्तुल्यो नराधिप !॥७१॥
इन्द्रमार्गं समासाद्य तीर्थसेवी नराधिप ! । अहोरात्रोपवासेन स्वर्गलोके महीयते॥७२॥
एकरात्रं समासाद्य एकरात्रोषितो नर: । नियत: सत्यवादी च ब्रह्मलोके महीयते ॥७३॥

तथा गच्छेच्च राजेन्द्र ! तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
आदित्यस्याश्रमो यत्र तेजोराशेर्महात्मन: ॥७४॥

सभी पापों से मुक्त हो जाता है । हे शत्रुओं ! का मर्दन करने वाले युधिष्ठिर ! उसके बाद पद्मनाभ भगवान् का दर्शन करके ॥६२॥ मनुष्य सुशोभित विष्णुलोक में जाता है । सभी देवताओं के तीर्थों में केवल स्नान ही कर लेने वाला मनुष्य सभी दु:खों से मुक्त होकर भगवान् शिव के समान प्रकाशित होता है । हे नराधिप ! वहाँ से अस्थिपुर नामक तीर्थ में जाय ॥६३-६४॥ और उस पवित्र तीर्थ में जाकर पितरों एवं देवताओं का तर्पण करे । ऐसा करने वाला अग्निष्टोम याग करने का फल प्राप्त करता है ॥६५॥ हे भरतश्रेष्ठ ! वहाँ पर गङ्गाह्रद तथा गङ्गाकूप नामक दो तीर्थ हैं । उस कूप में तीन करोड़ तीर्थों की पूजा होती है ॥६६॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने वाला ब्रह्मलोक में जाता है । वहाँ नदी में स्नान करके तथा महेश्वर की पूजा करके ॥६७॥ मनुष्य श्रेष्ठ गति को प्राप्त करत है और अपने वंश का उद्धार कर देता है । वहाँ से त्रैलोक्य में विख्यात स्थाणुवट नामक तीर्थ में जाना चाहिए ॥६८॥ वहाँ पर स्नान कर रात्रि में निवास करने मनुष्य रुद्र लोक में जाता है । वहाँ से महर्षि वसिष्ठ के आश्रम बदरीवन में जाना चाहिए ॥६९॥ वहाँ पर मनुष्य को तीन रात्रियों तक उपवास करके बेर का फल खाना चाहिए । जो मनुष्य बारह वर्षों तक केवल बेर के ही फलों को खाता है ॥७०॥ उससे प्राप्त होने वाले फल के ही समान तीन रात्रियों तक उपवास करके बदरी फल खाने वाले को होता है । हे राजन् ! इन्द्रमार्ग नामक तीर्थ में आकर ॥७१॥ एक दिन और एक रात उपवास करने वाला स्वर्गलोक में पूजित होता है । उसके बाद एक रात्रतीर्थ में आकर एक रात्रि को उपवास करने वाला तथा ॥७२॥ नियम पूर्वक सत्य बोलने वाला मनुष्य ब्रह्मलोक में जाता है । हे राजेन्द्र ! फिर त्रैलोक्य विख्यात तीर्थ में जाय॥७३॥ वहाँ तेजोराशि आदित्य का आश्रम है । उस तीर्थ में स्नान करके तथा अग्नि की पूजा करके मनुष्य॥७४॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयित्वा विभावसुम् ।
आदित्यलोकं व्रजति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥७५॥
सोमतीर्थे नरः स्नात्वा तीर्थसेवी कुरूद्वह । सोमलोकमवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥७६॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! दधीचस्य नराधिप । तीर्थं पुण्यतमं राजन्पावनं लोकविश्रुतम् ॥७७॥
यत्र सारस्वतो यातः सिद्धिं स तपसो निधिः ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥७८॥
सारस्वतीं मतिं चैव लभते नात्र संशयः । ततः कन्याश्रमं गत्वा नियतो ब्रह्मचर्यया ॥७९॥
त्रिरात्रमुषितो राजन्नुपवासपरायणः । लभेत्कन्याशतं दिव्यं ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥८०॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ तीर्थं सन्निहितीमपि । यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥८१॥
मासि मासि समेष्यन्ति पुण्येन महताऽन्विताः ।
सन्निहित्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥८२॥
अश्वमेधशतं तेन इष्टं भवति शाश्वतम् । पृथिव्यां यानि तीर्थानि अन्तरिक्षचराणि च ॥८३॥
उदपानाश्च विप्राश्च पुण्यान्यायतनानि च । निस्संशयममायां वै समेष्यन्ति नराधिप ! ॥८४॥
मासि मासि नरव्याघ्रसन्निहित्यांजनेश्वर । तीर्थसन्नयनादेव सन्निहिती भुवि श्रुता ॥८५॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च स्वर्गलोके महीयते ।
आमावास्यां तथा चैव राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥८६॥
यः श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
अश्वमेधसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ॥८७॥

आदित्य लोक में जाता है और अपने वंश का उद्धार कर देता है । तीर्थ सेवी सोमतीर्थ में स्नान करके॥७५॥ सोमलोक को प्राप्त करता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं हैं । हे धर्मज्ञ ! वहाँ से महर्षि दधीच के आश्रम में जाना चाहिए ॥७६॥ वह लोक विख्यात पवित्र तीर्थ है । वहीं पर तपोनिधि सारस्वत ने सिद्धि प्राप्त की थी ॥७७॥ उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। और वह सारस्वती बुद्धि को प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥७८॥ वहाँ से नियमित रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मनुष कन्याश्रम में जाय वहाँ तीन रात तक रहकर उपवास करे ॥७९॥ ऐसा करने वाले सौ दिव्य कन्याओं को प्राप्त करता है और ब्रह्मलोक में जाता है । वहाँ से सन्निकट में ही विद्यमान तीर्थ जें जाय ॥८०॥ वहाँ पर प्रत्येक मास में अत्यन्त पुण्य से युक्त ब्रह्मा आदि देवता और ऋषिगण आते हैं ॥८१॥ उस सन्निहिती तीर्थ में सूर्यग्रहण के समय आचमन करके अपने शाश्वत अभिप्रेत सौ अश्वमेध यज्ञों को करने के फल को प्राप्त करता है ॥८२॥ पृथिवी पर तथा अन्तरीक्ष में जितने तीर्थ हैं, जितने जलाशय, ब्राह्मण तथा पवित्र मन्दिर हैं ॥८३॥ हे जनेश्वर वे सबके सब प्रत्येक मास में सन्निहिती तीर्थ में आमावस्या के दिन आते हैं ; वहाँ पर स्नान करके तथा उस तीर्थ के जल को पीकर मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥८५॥ आमावस्या तथा सूर्यग्रहण के दिन जो मनुष्य उस तीर्थ में श्राद्ध करता है उस का फल मैं बतलाता हूँ ॥८६॥ एक हजार अश्वमेध यज्ञ का जो फल होता है उस फल को मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करके तथा श्राद्ध करके प्राप्त कर लेता है ॥८७॥ कोई स्त्री

स्नात एव तदाप्नोति श्राद्धं कृत्वा च मानवः ।
यत्किञ्चिद्दुष्कृतं कर्म्म स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥८८॥
स्नातमात्रस्य तत्सर्वं नश्यते नात्र संशयः । पद्मवर्णेन यानेन ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥८९॥
अभिवाद्य ततो नाम्ना द्वारपालं मचक्रुकम्। गङ्गाह्रदश्च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ! ॥९०॥
तत्र स्नायीत धर्मज्ञ ! ब्रह्मचारी समाहितः। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं विन्दति मानवः ॥९१॥
पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्। त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ॥९२॥
पांसवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुनाऽतिसमीरिताः । अपि दुष्कृतकर्म्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥९३॥
दक्षिणेन सरस्वत्यामुत्तरेण सरस्वतीम् । ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ॥९४॥
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्। अप्येवं वाचमुत्सृज्य स्वर्गलोके महीयते॥९५॥
ब्रह्मवेद्यां कुरुक्षेत्रं पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम् । तस्मिन्वसन्ति ये राजन्न ते शोच्याः कथञ्चन॥९६॥
तरण्डकारण्डकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां चमचक्रुमस्य च ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥९७॥

इति श्रीपद्मपुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे कन्यातीर्थसोमतीर्थादितीर्थानां माहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२७॥

अथवा पुरुष अपने जीवन में जो कुछ भी पाप किए रहता है, उन समस्त पापों का नाश स्नान करने मात्र से हो जाता है ॥८८॥ वह कमल के समान वर्ण वाले विमान से ब्रह्मलोक में जाता है । वहाँ पर मचक्रु नामक द्वारपाल को नमस्कार करके तीर्थसेवी वहीं पर विद्यमान गङ्गाह्रद नामक तीर्थ में जाय। वहाँ पर सावधानी पूर्वक ब्रह्मचारी रहकर स्नान करे ॥८९-९०॥ ऐसा करने वाला राजसूय तथा अश्वमेध इन दोनों यज्ञों के फल को प्राप्त करता है । पृथिवी पर नैमिषतीर्थ और अन्तरिक्ष में पुष्करतीर्थ श्रेष्ठ है ॥९१॥ तीनों लोक में कुरुक्षेत्र तीर्थ प्रधान है । वहाँ पर वायु के द्वारा उड़ायी गयी धूलि भी ॥९२॥ पापियों को परमा गति प्राप्त कर देती है । वहाँ पर दक्षिण तथा उत्तर दोनो ओर से सरस्वती नदी आयी है ॥९३॥ जो लोग कुरुक्षेत्र में निवास करते हैं वे लोग स्वर्ग में भी निवास करते हैं । मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा मैं कुरुक्षेत्र में निवास करता हूँ ॥९४॥ इसतरह से एक बार भी कहने वाला मनुष्य स्वर्गलोक में जाता है । पवित्र कुरुक्षेत्र ब्रह्मवेदी पर स्थित है, वहाँ पर ब्रह्मर्षियों का निवास है ॥९५॥ हे राजन् ! जो लोग उस कुरुक्षेत्र में निवास करते हैं उनको किसी भी प्रकार से अपनी गति के विषय में सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है । तरण्ड तथा कारंड उन दोनों के बीच में विद्यमान रामह्रद तथा मचक्रुक तथा कुरुक्षेत्र ये पाँचों समन्त ब्रह्माजी की उत्तरवेदी कहे जाते हैं ॥९६-९७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

अठाइसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो गच्छेत धर्म्मज्ञ ! धर्म्मतीर्थं पुरातनम् ।
यत्र धर्मो महाभागस्तप्तवानुत्तमं तपः ॥१॥
तेन तीर्थं कृतं पुण्यं स्वेन नाम्ना हि चिह्नितम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्धर्मशील: समाहितः ॥२॥
आसप्तमं कुलं चैव पुनीते नाऽत्रसंशयः । ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! कलापवनमुत्तमम् ॥३॥
कृच्छ्रेण महता गत्वा तत्र स्नात्वा समाहितः ।
अग्निष्टोममवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥४॥
सौगन्धिकं वनं राजंस्ततो गच्छेत मानवः। यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥५॥
सिद्धचारणगन्धर्वाः किन्नराः समहोरगाः । तद्वनं प्रविशन्नेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६॥
ततो हि सा सरिच्छ्रेष्ठा नदीनामुत्तमा नदी ।
प्लक्षादेवी स्मृता राजन्महापुण्या सरस्वती ॥७॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निस्सृते जले । अर्चयित्वा पितृन्देवानश्वमेधफलं लभेत्॥८॥
ईशानाध्युषितं नाम तत्र तीर्थं सुदुर्लभम्। षड्गुणं सन्निपातेषु वाल्मीकादिति निश्चयः ॥९॥
कपिलानां सहस्रं च वाजिमेधं च विन्दति ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! दृष्टमेतत्पुरातनैः ॥१०॥

धर्मतीर्थ तथा कलापवन आदि तीर्थों का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे धर्मज्ञ ! उसके बाद प्राचीन धर्मतीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर धर्म ने उत्तम कोटि की तपस्या की थी ॥१॥ उन्होंने उस तीर्थ को तीर्थ बनाकर अपने नाम से चिह्नित कर दिया वहाँ धर्मात्मा तथा समाहित मनुष्य स्नान करके ॥२॥ अपनी सातवीं पीढ़ी तक के पूर्वजों को पवित्र बना देता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ से उत्तम कलापवन में जाना चाहिए ॥३॥ अत्यधिक कष्ट उठाकर वहाँ जाकर वहाँ पर स्नान करके वह समाहित पुरुष अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है और वह विष्णुलोक में जाता है ॥४॥ हे राजन् ! वहाँ से मनुष्य को सौगन्धिक वन में जाना चाहिए । वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवताओं, ऋषियों, तपस्वियों ॥५॥ सिद्धों, चारणों, गन्धर्वों किन्नरों और महोरगों का निवास है । उस वन में प्रवेश करते ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥६॥ वहाँ से नदियों में श्रेष्ठ प्लक्षा देवी नामक नदी में जाय । वहाँ पर अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदी है ॥७॥ वहाँ पर वल्मीक से निकले हुए जल में स्नान करना चाहिए । वहाँ पर पितरों तथा देवताओं की अर्चना करके तीर्थसेवी अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥८॥ वहीं पर दुर्लभ ईशान तीर्थ हैं । वहाँ पर शङ्करजी का निवास है। वहाँ पर वल्मीक में षडगुणों का समूह विद्यमान है ॥९॥ प्राचीनों ने इस बात का साक्षात्कार किया है कि वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य एक हजार कपिला गौओं के दान करने का फल तथा अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥१०॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुगन्धा, शतकुम्भा तथा पञ्चयज्ञ तीर्थ में जाकर मनुष्य

सुगन्धां शतकुम्भां च पञ्चयज्ञं च भारत। अभिगम्य नरश्रेष्ठ ! स्वर्गलोके महीयते ॥११॥
त्रिशूलपात्रं तत्रैव तीर्थमासाद्य दुर्लभम्। तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ॥१२॥
गाणपत्यं च लभते देहं त्यक्त्वा न संशयः ।
ततो राजगृहं गच्छेद्देव्याः स्थानं सुदुर्लभम् ॥१३॥
शाकम्भरीति विख्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
दिव्यं वर्षसहस्रं च शाकेन किल भारत ॥१४॥
आहारं सा कृतवती मासि मासि नराधिप ! ।
ऋषयोऽभ्यागतास्तत्र देव्या भक्तास्तपोधनाः ॥१५॥
आतिथ्यं च कृतं तेषां शाकेन किल भारत ।
ततः शाकम्भरीत्येवं नाम तस्याः प्रतिष्ठितम् ॥१६॥
शाकम्भरीं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः। त्रिरात्रमुषितः शाकं भक्षयेन्नियतः शुचिः ॥१७॥
शाकाहारस्य यत्सम्यग्वर्षैर्द्वादशभिः फलम्। तत्फलं तस्य भवति देव्याश्छन्देन भारत ! ॥१८॥
ततो गच्छेत्सुवर्णाख्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
यत्र कृष्णः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा ॥१९॥
वरांश्च सुबहूँल्लेभे देवैरपि सदुर्लभान्। उक्तश्च त्रिपुरघ्नेन परितुष्टेन भारत ! ॥२०॥
अपि चात्माप्रियतरो लोके कृष्ण ! भविष्यसि ।
त्वन्मुखं च जगत्कृत्स्नं भविष्यति न संशयः ॥२१॥
तत्राभिगम्य राजेन्द्र ! पूजयित्वा वृषध्वजम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति गाणपत्यं च विन्दति ॥२२॥
धूमावतीं ततो गच्छेत्त्रिरात्रमुषितो नरः। मनसा प्रार्थितान्कामाँल्लभते नात्र संशयः॥२३॥

स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥११॥ वहीं पर विद्यमान त्रिशूलपात्र नामक दुर्लभ तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए तथा देवताओं की पूजा करनी चाहिए ॥१२॥ ऐसा करने वाला शरीर त्याग के बाद गाणपत्य को प्राप्त करता हे, इसमें काई भी संशय नहीं है । उसके बाद देवी के उत्तम स्थान राजगृह तीर्थ में जाना चाहिए ॥१३॥ वहाँ त्रैलोक्य में विख्यात शाकम्भरी देवी ने देवताओं के एक हजार वर्ष तक शाक का ॥१४॥ आहार प्रत्येक मास में किया । वहाँ पर देवी के भक्त तपस्वी ऋषिगण आये ॥१५॥ उन सबों का शाक से आतिथ्य सत्कार किया गया । उसी समय से उस तीर्थ का नाम शाकम्भरी तीर्थ हो गया ॥१६॥ ब्रह्मचारी तथा समाहित तीर्थवासी को चाहिए कि वह शाकम्भरी तीर्थ में तीन रात्रियों तक शाक खाकर उपवास करे और पावित्र्य का पालन करे ॥१७॥ बारह वर्षो तक शाक खाकर व्रत करने का जो फल होता है, उस फल को वह मनुष्य देवी की कृपा से तीन दिन में ही प्राप्त कर लेता है॥१८॥ वहाँ से सुवर्ण तीर्थ में जाना चाहिए, वहाँ पर रुद्र की कृपा प्राप्त करने के लिए श्रीकृष्ण ने उनकी आराधना की थी ॥१९॥ वहाँ पर उन्होंने देवताओं से अत्यन्त दुर्लभ बहुत से वरदानों को प्राप्त किया। हे भारत ! प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा ॥२०॥ हे कृष्ण ! आप लोक में आत्मा से भी अधिक प्रिय होंगे । सम्पूर्ण जगत् आपका मुख होगा । इसमें कोई संशय नहीं है ॥२१॥ हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में जाकर मनुष्य शङ्करजी की पूजा करके अश्वमेध यज्ञ के फल को तथा गाणपत्य को प्राप्त करता है॥२२॥ वहाँ से धूमवती देवी के तीर्थ में तीन रात्रियों तक निवास करके मनुष्य अपनी सारी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है ॥२३॥ देवी के दाहिने पार्श्व में रथावर्त नामक तीर्थ है, वहाँ जितेन्द्रिय रहकर श्रद्धापूर्वक

देव्यास्तु दक्षिणार्थेन रथावर्त्तो नराधिप !। तत्रागत्य तु धर्मज्ञ ! श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥२४॥
महादेवप्रसादेन गच्छेत परमां गतिम्। प्रदक्षिणमुपावृत्य गच्छेत भरतर्षभ ! ॥२५॥
धरां नाम महाप्राज्ञ ! सर्वपापप्रणाशिनीम्। तत्रस्नात्वा नरव्याघ्र ! न शोचति नराधिप !॥२६॥
ततो गच्छेन्नरव्याघ्र ! नमस्कृत्य महागिरिम् ।
स्वर्गद्वारेण तत्तुल्यं गङ्गाद्वारं न संशयः ॥२७॥
तत्राऽभिषेकं कुर्वीत कोटितीर्थे समाहितः। लभते पुण्डरीकं तु कुलं चैव समुद्धरेत्॥२८॥
उष्यैकां रजनीं तत्र गोसहस्रफलं लभेत्। सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च शक्रावर्त्ते च तर्पयेत्॥२९॥
देवान्पितृंश्च विधिवत्पुण्यलोके महीयते। ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥३०॥
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति । कपिलावटं तु गच्छेत तीर्थसेवी नराधिप ! ॥३१॥
उष्यैकां रजनी तत्र गोसहस्रफलं लभेत्। नागराजस्य राजेन्द्र ! कपिलस्य महात्मनः॥३२॥
तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ ! सर्वलोकेषु विश्रुतम्। तत्राभिषेकं कुर्वीत नागतीर्थे नराधिप ! ॥३३॥
कपिलानां सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
ततो ललितकां गच्छेच्छन्तनोस्तीर्थमुत्तमम् ॥३४॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे धर्मतीर्थकलापवनादितीर्थानां माहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

आने वाला मनुष्य ॥२४॥ महादेव की कृपा से परमगति को प्राप्त कर लेता है । हे भरतश्रेष्ठ ! वहाँ से प्रदक्षिण क्रम से लौटकर मनुष्य सभी पापों को विनष्ट करने वाली धरा नाम की देवी का दर्शन करे। हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने वाले मनुष्य को कभी शोक नहीं होता है ॥२६॥ हे नरव्याघ्र ! वहाँ से महागिरि को नमस्कार करके स्वर्ग द्वार के समान गङ्गाद्वार नामक तीर्थ में जाना चाहिए ॥२७॥ वहाँ पर समाहित होकर कोटि तीर्थ में स्नान करना चाहिए । ऐसा करके वह पुण्डरीक याग के फल को प्राप्त करके अपने वंश का उद्धार कर देता है ॥२८॥ वहाँ पर एक रात्रि निवास करके वह हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है । उसके बाद सप्तगङ्गा, त्रिगङ्गा तथा शक्रावर्त नामक तीर्थ में जाकर देवताओं और पितरों का तर्पण करना चाहिए । ऐसा करके वह पुण्यलोकों में पूजित होता है। उसके बाद कनखल में स्नान करके तीन रात्रियों तक उपवास करे ॥२९-३०॥ ऐसा करने वाला अश्वमेध याग करने के फल को प्राप्त करता है और वह स्वर्गलोक में जाता है । हे राजन् ! तीर्थसेवी को वहाँ से कपिलावट जाना चाहिए ॥३१॥ वहाँ पर एक रात्रि निवास करके वह हजार गायों के दान का फल प्राप्त करता है । हे कुरुओं में श्रेष्ठ ! वहाँ से नागराज तथा महात्मा कपिल के तीर्थ में जाना चाहिए॥३२॥ ये तीर्थ लोक विख्यात हैं । वहाँ पर नागतीर्थ में स्नान करे । ऐसा करने वाला एक हजार कपिला गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥३३॥ वहाँ से शन्तनु के ललिता तीर्थ में जाना चाहिए । हे राजन् ! वहाँ स्नान करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है ॥३४-३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

उनतीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कालिन्दीतीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥१॥

पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे ब्रह्मावर्त्ते पृथूदके। अविमुक्ते सुवर्णाख्ये यत्फलं लभते नरः॥२॥
तत्फलं समवाप्नोति यमुनायां नरोत्तम। स्वर्गभोगेऽतिरागो वै येषां मनसि वर्तते ॥३॥
यमुनायां विशेषेणे स्नानदानेन सत्तम !। आयुरारोग्यसम्पत्तौ रूपयौवनतागुणे ॥४॥
येषां मनोरथस्तैस्तु न त्याज्यं यमुनाजलम्। ये बिभ्यति नरकादेर्दारिद्र्याद्येऽत्र सन्ति च॥५॥
सर्वथा तैः प्रयत्नेन तत्र कार्यं निमज्जनम्। दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपङ्कप्रक्षालनाय वै ॥६॥

ऋते वै यामुनं तोयं न चान्योऽस्ति युधिष्ठिर ! ।
श्रद्धाहीनानि कर्माणि मतान्यर्धफलानि वै ॥७॥

फलं ददाति सम्पूर्णं यामुनं स्नानमात्रतः । अकामो वा सकामो वा यामुने सलिले नृप॥८॥
इहामुत्र च दुःखानि मज्जनान्नैव पश्यति । पक्षद्वये यथा चन्द्रः क्षीयते वर्द्धते तथा ॥९॥
पातकं नश्यते तत्र स्नानात्पुण्यं विवर्द्धते । यथाब्धौ सुखमायान्ति रत्नानि विविधानि च॥१०॥

आयुर्वितं कलत्राणि सम्पदः सम्भवन्ति च ।
कामधेनुर्यथाकामं चिन्तामणिर्विचिन्तितम् ॥११॥

यमुनातीर्थ और यमुनातीर्थ में स्नान का माहात्म्य वर्णन

नारदजी ने कहा— हे राजेन्द्र ! उसके बाद कालिन्दी तीर्थ में जाना चाहिए । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है ॥१॥ पुष्करक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, अविमुक्त क्षेत्र और सुवर्णक क्षेत्र इन सबों में जिस फल की प्राप्ति होती है ॥२॥ उस फल को मनुष्य यमुना नदी में स्नान करके प्राप्त कर लेता है । जिसके मन में स्वर्ग का भोग करने की अत्यन्त इच्छा हो॥३॥ यमुना में विशेष रूप से स्नान तथा दान करने से, आयु, आरोग्य, सम्पत्ति, रूप तथा यौवन इन सभी गुणों को प्राप्त करने की इच्छा हो उसको कभी भी यमुना के जल का त्याग नहीं करना चाहिए । जो लोग नरक तथा दारिद्रय से डरते हैं उन लोगों को ॥५॥ प्रयास पूर्वक यमुना में स्नान करना चाहिए। हे युधिष्ठिर ! यमुना के जल को छोड़कर दूसरा कोई भी तीर्थ दारिद्रय, पाप तथा दुर्भाय रूपी कीचड़ को धोने में समर्थ नहीं है । जो कर्म श्रद्धा पूर्वक नहीं किए जाते हैं, उनका आधा ही फल मिलता है । किन्तु यमुना में तो स्नान करने मात्र से सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती हैं ॥६-७॥ हे राजन्! सकाम रूप से अथवा निष्काम रूप से यमुना के जल में स्नान करने वाला मनुष्य इस लोक में अथवा परलोक में दुःख को नहीं प्राप्त करता है ॥८॥ जिस तरह दोनों पक्षों में चन्द्रमा क्रमशः क्षीण होते हैं, और फिर बढ़ते हैं, उसी तरह यमुना जल में स्नान करने से मनुष्य का पाप क्षीण होता है और पुण्य बढता है ॥९॥ जिस तरह समुद्र में सभी रत्न सुखपूर्वक रहते हैं, उसी तरह यमुना में स्नान करने से, आपु, वित्त, कलत्र (पत्नी) तथा सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है ॥१०॥ जिस तरह कामधेनु सभी कामना

ददाति यमुनास्नानं तद्वत्सर्वं मनोरथम् । कृते तपः परं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा ॥१२॥
द्वापरे च कलौ दानं कालिन्दी सर्वदा शुभा ।
सर्वेषां सर्ववर्णानामाश्रमाणाञ्च भूपते ! ॥१३॥
यामुने मज्जनं धर्मं धाराभिः खलु वर्षति ।
अस्मिन्वै भारते वर्षे कर्मभूमौ विशेषतः ॥१४॥
कालिन्द्यस्नायिनां नृणां निष्फलं जन्म कीर्त्तितम् ।
नैश्वर्यं गगने यद्वच्चान्द्रेऽमायां तु मण्डले ॥१५॥
तद्वन्न भाति सत्कर्म यमुनामज्जनं विना । व्रतैदनैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः ॥१६॥
तत्र मज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः । न समं विद्यते किञ्चित्तेजः सौरेण तेजसा ॥१७॥
तद्वन्न यमुनास्नानसमानाः क्रतुजाः क्रियाः । प्रीयते वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये ॥१८॥
कालिन्द्यां मज्जनं कुर्यात्स्वर्गलाभाय मानवः ।
किं रक्षितेन देहेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥१९॥
अध्रुवेण सुदेहेन यमुनामज्जनं विना । अस्थिस्तम्भं स्नायुबन्धं मांसक्षतजलेपनम् ॥२०॥
चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः । जराशोकविपद्व्याप्तं रोगमन्दिरमातुरम् ॥२१॥
रागमूलमनित्यं च सर्वदोषसमाश्रयम् । परोपकारपापार्तिपरद्रोहपरेर्षिकम् ॥२२॥
लोलुपं पिशुनं क्रूरं कृतघ्नं क्षणिकं तथा। निष्ठुरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयविदूषितम् ॥२३॥

को पूर्ण करती है, और चिन्तामणि सभी चिन्तित पदार्थों को देती है, उसी तरह यमुना का स्थान सभी मनोरथों को पूर्ण करता है ॥११॥ यमुना नदी में स्नान करने से सत्ययुग में तपस्या तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है, त्रेता में यज्ञ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, द्वापर में तथा कलियुग में दान करने से यमुना नदी सदा कल्याण देने वाली होती है ॥१२॥ हे राजन् ! यमुना में स्नान करने से सभी वर्णों एवं आश्रमों के धर्म की समृद्धि होती है ॥१३॥ इस भारतवर्ष नामक कर्मभूमि में विशेष रूप से जो लोग यमुना में स्नान नहीं करते हैं उनका जन्म व्यर्थ बतलाया गया है ॥१४॥ जिस तरह आमावास्या तिथि के चन्द्रमण्डल में ऐश्वर्य (शोभा) नहीं रहता है, उसी तरह यमुना में स्नान किए बिना सत्कर्म की शोभा नहीं होती हैं ॥१५॥ व्रत, दान तथा तपस्या से श्रीहरि उतना प्रसन्न नहीं होते हैं, जितना कि वे यमुना में स्नान करने मात्र से प्रसन्न होते हैं ॥१६॥ जिस तरह सूर्य के तेज के समान दूसरा कोई भी तेज नहीं है । उसी तरह यमुना में स्नान करने के समान दूसरी कोई भी याज्ञिकी क्रिया नहीं है ॥१७॥ मनुष्यों को भगवान् वासुदेव की प्रसन्नता के लिए, सभी पापों का विनाश करने के लिए तथा स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिए यमुना में स्नान करना चाहिए ॥१८॥ यमुना में स्नान किए बिाा पुष्ट, बलवान्, अनित्य, शरीर की रक्षा करने से क्या लाभ है ?॥१९॥ इस शरीर में अस्थियाँ ही स्तम्भ का काम करती है, यह नाड़ी रूपी रस्सी से बन्धा है, इसमें मांस तथा खून का लेप लगा है, यह चमड़े से ढँका है, इससे दुर्गन्धि निकलती रहती है, तथा यह मल तथा मूत्र से भरा हुआ है ॥२०॥ यह बुढापा, शोक तथा विपत्तियों से व्याप्त है सदा आतुर रहने वाला शरीर रोग का घर है । राग (किसी से भी लगाव)
को पूर्ण करती है, और चिन्तामणि सभी चिन्तित पदार्थों को देती है, उसी तरह यमुना का स्नान सभी
का यह कारण है, अनित्य तथा समस्त रोगों का आश्रय है । यमुना में स्नान किए बिना यह शरीर,

अशुचि तापि दुर्गन्धितापत्रयविमोहितम्। निसर्गतोऽधर्मरतं तृष्णाशतसमाकुलम् ॥२४॥
कामक्रोधमहालोभनरकद्वारसंस्थितम् । कृमिवर्चस्तु भस्मादिपरिणामगुणावहम्॥२५॥
ईदृक्छरीरं व्यर्थं हि यमुनामज्जनं विना। बुद्बुदा इव तोयेषु प्रत्यण्डा इव पक्षिषु॥२६॥
जायन्ते मरणायैव यमुनास्नानवर्जिताः । अवैष्णवो हतो विप्रो हतं श्राद्धमपिण्डकम्॥२७॥
अब्रह्मण्यं हतं क्षत्रमनाचारहतं कुलम् । सदम्भश्च हतो धर्म्मः क्रोधेनैव हतं तपः॥२८॥
अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् । परभक्तया हता नारी ब्रह्मचारी स्त्रिया हतः॥२९॥

अदीप्तेऽग्नौ हतो होमो हता भक्तिः समायिका ।
उपजीव्या हता कन्या स्वार्थे पापक्रिया हता ॥३०॥
शूद्रभक्षो हतो योगः कृपणस्य हतं धनम् ।
अनभ्यासहता विद्या हतो बोधो विरोधकृत् ॥३१॥

जीवितार्थं हतं तीर्थं जीवनार्थं हतं व्रतम् । असत्या च हता वाणी तथा पैशुन्यवादिनी ॥३२॥

षट्कर्णगो हतो मन्त्रो व्यग्राचतो हतो जपः ।
हतमश्रोत्रिये दानं हतो लोकश्च नास्तिकः ॥३३॥

अश्रद्धया हतं सर्वं यत्कृतं पारलौकिकम्। इह लोके हतो नृणां दरिद्राणां यथा नृप ॥३४॥

परोपकारी के प्रति पाप करने वाला, इर्ष्यावशात् दूसरे से द्रोह करने वाला, लोलुप, चुगुली करने वाला, क्रूर, कृतघ्न, क्षणिक, निष्ठुर, दुर्धर, दुष्ट, तीनों प्रकार के दोषों से दूषित, अपवित्रता, दुर्गन्धि तापत्रय (दैहिक, दैविक और भौतिक) से विशेष रूप से मोहित, स्वभावतः अधर्म परायण, अनेक प्रकार की तृष्णाओं से व्याकुल, काम, क्रोध तथा महालोभ रूप नरक के द्वार पर स्थित, कृमि, से भरा हुआ अथवा भस्म के रूप में परिणत होने वाला होने के कारण व्यर्थ ही है ॥२२-२५॥ जल में विद्यमान बुलबुले के समान तथा पक्षियों के अण्डों के समान ये सभी यमुना में स्नान नहीं करने वाले लोग केवल मरने के लिए ही उत्पन्न होते हैं ॥२६॥ जो वैष्णव नहीं है; ऐसा ब्राह्मण विनष्टप्राय है, जिसमें पिण्डदान नहीं किया जाता है वह श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है । जिसमें ब्राह्मणों की भक्ति नहीं है, वह क्षत्रिय विनष्ट प्राय है; दुराचार से वंश विनष्ट हो जाता है ॥२७॥ दम्भ से धर्म नष्ट हो जाता है । जो ज्ञान सुदृढ नहीं हो पाया है, वह ज्ञान भी व्यर्थ है तथा प्रमाद के द्वारा श्रवण व्यर्थ हो जाता है ॥२८॥ पति से भिन्न की सेवा करने वाली नारी विनष्ट प्राय है, स्त्रियों के सङ्ग में रहने वाला ब्रह्मचारी विनष्ट हो जाता है। नहीं जलने वाली अग्नि में किया जाने वाला होम व्यर्थ है, तथा छल प्रपञ्च पूर्वक की जाने वाली भक्ति व्यर्थ हो जाती है ॥२९॥ नौकरी करने वाली कन्या विनष्ट हो जाती है, अपने लिए बनाये जाने वाला पाक व्यर्थ है । शूद्र का अन्न खाकर किया जाने वाला योग व्यर्थ होता है, कृपण की सम्पत्ति व्यर्थ होती है ॥३०॥ अभ्यास के बिना विद्या नष्ट हो जाती है, जिससे विरोध होता है, वह ज्ञान व्यर्थ है, जीने के लिए तीर्थ यात्रा करना व्यर्थ है तथा जीवन के लिए व्रत करना व्यर्थ है ॥३१॥ मिथ्या वाणी व्यर्थ है तथा चुगुली करने वाली भी वाणी व्यर्थ है । छह कानों में गया हुआ मन्त्र और व्यग्र चित्त से किया जाने वाला जप व्यर्थ है ॥३२॥ अश्रोत्रिय को दिया गया दान व्यर्थ है, नास्तिकों का लोक व्यर्थ है । श्रद्धा विहीन किया गया पारलौकिक कर्म व्यर्थ होता है ॥३३॥ हे राजन् ! इस लोक में

मनुष्याणां हतं जन्म कालिन्दीमज्जनं विना। उपपातकसर्वाणि पातकानि महान्ति च ॥३५॥
भस्मीभवन्ति सर्वाणि यमुनामज्जनान्नृप। वेपन्ते सर्वपापानि यमुनायां गते नरे ॥३६॥
नाशके सर्वपापानां यदि स्नास्यन्ति वारिणि ।
पावका इव दीप्यन्ते यमुनायां नरोत्तमाः ॥३७॥
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः ।
आर्द्रशुष्कलघुस्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ॥३८॥
तत्र स्नानं दहेत्पापं पावकः समिधो यथा ।
प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ॥३९॥
स्नानमात्रेण नश्येत यमुनायां नृपोत्तम !। निष्पापास्त्रिदिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम्॥४०॥
सन्देहो नात्र कर्त्तव्यः स्नाने वै यमुनाजले ।
सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ तथा नृप ! ॥४१॥
सर्वेषां सर्वदा देवी यमुना पापनाशिका। एष एव परो मन्त्र एतच्च परमं तपः ॥४२॥
प्रायश्चित्तं परं चैव यमुनास्नानमुत्तमम् । नृणां जन्मान्तराभ्यासात्कालिन्दीमज्जने मतिः ॥४३॥
अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप ! ।
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदम् ॥४४॥
पावनं पावनानां च यमुनास्नानमुत्तमम्। स्नातास्तत्र च ये राजन्सर्वकामफलप्रदे ॥४५॥

जैसे दरिद्र मनुष्यों का जन्म व्यर्थ होता है, उसी तरह यमुना में स्नान के बिना जन्म व्यर्थ है ॥३४॥ हे नृप ! यमुना में स्नान करने से सभी उपपातक तथा बड़े-बड़े पाप भस्म हो जाते हैं ॥३५॥ मनुष्य को यमुना जाते देखकर सभी पाप काँपने लगते है कि यह कहीं सभी पापों को विनष्ट करने वाले यमुना जल से स्नान न करे ॥३६॥ हे नरोत्तम ! सभी पाप उसीतरह से यमुना जल से जल जाते हैं जैसे अग्नि से इन्धन जल जाते हैं । वे मनुष्य उसीतरह सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं जिसतरह मेघों से चन्द्रमा मुक्त हो जाता है ॥३७॥ वाणी, मन तथा कर्म के द्वारा किए गये आर्द्र, शुष्क, छोटे, बड़े सभी पाप यमुना में स्नान करने से उसीतरह से जल जाते हैं जैसे अग्नि में इन्धन जल जाता है ॥३८॥ प्रमादवशात् किये गये तथा जानकर अथवा अज्ञानवशात् किए गये समस्त पाप यमुना में स्नान करने मात्र से ही विनष्ट हो जाते है ॥३९॥ अत्यन्त पापी जीव भी शुद्ध हो जाते हैं और पाप रहित होकर वे स्वर्गलोक में जाते हैं इसमें कोई भी संदेह नहीं करना चाहिए ॥४०॥ यमुना में जाकर सभी लोग विष्णुभक्ति के अधिकारी हो जाते हैं । यमुना देवी सदैव सबों के पापों का नाश करने का काम करती हैं ॥४१॥ यमुना में स्नान करना ही सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, यही परमतप है तथा यह सर्वोत्कृष्ट प्रायश्चित है ॥४२॥ हे राजन् ! जिसतरह जन्मान्तर के अभ्यास के कारण मनुष्य को अध्यात्मज्ञान में कुशलता प्राप्त होती है, उसीतरह पूर्वजन्म के संस्कार वशात् ही यमुना में स्नान करने की बुद्धि उत्पन्न होती है॥४३॥ यमुना में किया जाने वाला स्नान उत्तम है । यह संसार रूपी कीचड़ के लेप को धो डालने में समर्थ है तथा सर्वाधिक पवित्र कर है ॥४४॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली यमुना में जो स्नान करता है, वह सूर्य तथा चन्द्रमा के समान समस्त शुभ फलों को भोगता है ॥४५॥ मथुरा में यमुना नदी मोक्ष

शुभांश्च भुञ्जते भोगांश्चन्द्र सूर्यग्रहोपमान्। यमुना मोक्षदा प्रोक्ता मथुरासङ्गता यदि ॥४६॥

मथुरायां च कालिन्दी पुण्याधिकविवर्द्धिनी ।

अन्यत्र यमुना पुण्या महापातकहारिणी ॥४७॥

विष्णुभक्तिप्रदा देवी मथुरासङ्गता भवेत्। भक्तिभावेन संयुक्तः कालिन्द्यां यदि मज्जयेत्॥४८॥

कल्पकोटिसहस्राणि वसते सन्निधौ हरेः । मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नूनं साङ्ख्येन वर्जिताः ॥४९॥

पितरस्तस्य तृप्यन्ति तृप्ताः कल्पशतैर्दिवि। ये पिबन्ति नरा राजन्यमुनासलिलं शुभम् ॥५०॥

पञ्चगव्यसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम्। कोटितीर्थसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम् ॥५१॥

तत्र दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥५२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे यमुनातीर्थस्नानमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

तीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। पुरा कृतयुगे राजन्निषधे नगरे वरे ॥१॥

आसीद्वैश्यः कुबेराभो नामतो हेमकुण्डलः ।

कुलीनः सत्क्रियो देवद्विजपावकपूजकः ॥२॥

रूपी फल को प्रदान करती है । मथुरा की यमुना नदी स्नान करने वालों के पुण्यों को अत्यधिक बढ़ाती है ॥४६॥ दूसरे स्थान में महापवित्र यमुना नदी महापातकों का विनाश करती है, किन्तु मथुरा में आकर वह भगवान् विष्णु की भक्ति को प्रदान करती है ॥४७॥ यदि कोई भक्ति-भाव पूर्वक यमुना में स्नान करता है वह एक करोड़ कल्पों तक श्रीहरि के सन्निकट निवास करता है ॥४८॥ वहाँ पर स्नान करने वाले अज्ञानी जीव भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं । उसके पितृगण तृप्त हो जाते हैं और वे स्वर्गलोक में सैकड़ों कल्प तक तृप्त रहते हैं ॥४९॥ हे राजन् ! जो लोग यमुना के जल को पीते हैं, उनको हजारो बार पञ्चगव्य पान करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥५०॥ उन लोगों को हजारो करोड़ तीर्थों में जाने से कोई लाभ नहीं है । मथुरा के यमुना में किया गया दान और होम, सबकुछ करोड़ों गुना फल प्रद होता है ॥५१-५२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२९॥

हेमकुण्डल वैश्य के दो पुत्रों का इतिहास

नारदजी ने कहा— इस विषय में आपको मैं एक पुराना इतिहास बतलाता हूँ । हे राजन् ! पहले के सत्ययुग में श्रेष्ठ निषध नगर में ॥१॥ एक कुबेर के समान हेमकुण्डल नामक वैश्य रहते थे। सद्वंश में उत्पन्न वे देवता, ब्राह्मण और अग्नि की पूजा करते थे ॥२॥ वे कृषि तथा वाणिज्य एवं अनेक

कृषिवाणिज्यकर्त्ताऽसौ विविधक्रयविक्रयी । गोघोटकमहिष्यादिपशुपोषणतत्परः ॥३॥
पयोदधीनि तक्राणि गोमयानि तृणानि च। काष्ठानि फलमूलानि लवणार्द्रादिपिप्पली ॥४॥
धान्यानि शाकतैलानि वस्त्राणि विविधानि च ।
धातूनीक्षुविकारांश्च विक्रीणीते स सर्वदा ॥५॥
इत्थं नानाविधैर्वैश्य उपायैरपरैस्तथा । उपार्जयामास सदा अष्टौ हाटककोटयः ॥६॥
एवं महाधनः सोऽथ ह्याकर्णपलितोऽभवत् ।
पश्चाद्विचार्य संसारक्षणिकत्वं स्वचेतसि ॥७॥
तद्धनस्य षडंशेन धर्मकार्यं चकार सः । विष्णोरायतनं चक्रे गृहं चक्रे शिवस्य च ॥८॥
तडागं खानयामास विपुलं सागरोपमम् । वाप्यश्च पुष्करिण्यश्च बहुधा तेन कारिताः ॥९॥
वटाश्वत्थाम्रकङ्कोलजम्बूनिम्बादिकाननम् । स्वसत्त्वेन तदा चक्रे तथा पुष्पवनं शुभम् ॥१०॥
उदयास्तमनं यावदन्नदानं चकार सः । पुराद्बहिश्चतुर्दिक्षु प्रपां चक्रेऽतिशोभनाम् ॥११॥
पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि दानानि भूपते !। ददौ तानि स धर्म्मात्मा नित्यं दानपरस्तदा ॥१२॥
यावज्जीवकृते पापे प्रायश्चित्तमथाऽकरोत् । देवपूजापरो नित्यं नित्यं चाऽतिथिपूजकः ॥१३॥
तस्येत्थं वर्त्तमानस्य सञ्जातौ द्वौ सुतौ नृप ! ।
तौ सुप्रसिद्धनामानौ श्रीकुण्डलविकुण्डलौ ॥१४॥
तयोर्मूर्ध्नि गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम् ।
तत्राराध्य परं देवं गोविन्दं वरदं प्रभुम् ॥१५॥
तपःक्लिष्टशरीरोऽसौ वासुदेवमनाः सदा । प्राप्तः स वैष्णवं लोकं यत्र गत्वा न शोचति ॥१६॥

प्रकार के क्रय विक्रय करते थे । वे गौ, अश्व, भैंस आदि का पालन करने वाले ॥३॥ दूध, दही, छाँछ, गोमय तथा घास, काठ, फेन, मूल, नमक, अर्द्रक, पिप्पली ॥४॥ धान, शाक, तेल आदि अनेक प्रकार के वस्त्र, धातु तथा गुड आदि बेचने का काम करते थे ॥५॥ इसी तरह से अनेक प्रकार के दूसरे भी उपायों से वे वैश्य आठ करोड सुवर्ण मुद्राओं को कमाये ॥६॥ इस तरह से उन महाधनि के कानों के सन्निकट के केश पकने लगे । उसके बाद संसार की क्षणिकता का विचार करके उस धन के छठे अंश से उन्होंने धार्मिक कार्यो को किया । उन्होंने श्रीभगवान् तथा भगवान् शिव के मन्दिर को बनवाया॥८॥ उन्होंने सागर के समान विस्तृत जलाशय को खनवाया । उन्होंने अनेक वावलियों और पुष्करिणियों को बनवाया ॥९॥ बड़ पिप्पल, आम, कंकोल, जामुन, निम्ब, आदि का वन लगाया । उन्होंने पुष्पों का उद्यान भी लगाया ॥१०॥ सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक अन्न तथा जल का दान किया। नगर के बाहर चारो दिशाओं में सुन्दर प्रपा (प्याऊ) बनवाया ॥११॥ हे राजन् ! उन्होंने पुराणों में प्रसिद्ध दानों को किया । वे धर्मात्मा प्रतिदिन उन सभी वस्तुओं का दान करते थे ॥१२॥ उन्होंने आजीवन किए गये पापों का प्रायश्चित भी किया । वे नित्य ही देवताओं और अतिथियों की पूजा करते थे ॥१३॥ इसतरह के आचरण करने वाले उन वैश्य के दो पुत्र उत्पन्न हुए, उन दोनों के नाम थे श्रीकुण्डल और विकुण्डल ॥१४॥ उन दोनों पर गृह का भार सौंप कर वे तपस्या करने के लिए वन में चले गये । वहाँ पर उन्होंने श्रीभगवान् गोविन्द की आराधना की ॥१५॥ निरन्तर भगवान् वासुदेव में मन लगाकर

अथ तस्य सुतौ राजन्महामानसमन्वितौ । तरुणौ रूपसम्पन्नौ धनगर्वेण गर्वितौ ॥१७॥
दुःशीलौ व्यसनासक्तौ धर्मकर्माद्यदर्शकौ। न वाक्यं चागतौ मातुर्वृद्धानां वचनं तथा ॥१८॥
कुमार्गगौ दुरात्मानौ पितृमित्रनिषेधकौ । अधर्मनिरतौ दुष्टौ परदाराभिगामिनौ ॥१९॥
गीतवादित्रनिरतौ वीणावेणुविनोदिनौ । वारस्त्रीशतसंयुक्तौ गायन्तौ चेरतुस्तदा ॥२०॥
चाटुकारजनैर्युक्तौ बिम्बोष्ठीषु विशारदौ । सुवेषौ चारुवसनौ चारुचन्दनरूषितौ ॥२१॥
तथा सुगन्धिमालाढ्यौ कस्तूरीलक्ष्मलक्षितौ ।
नानालङ्कारशोभाढ्यौ मौक्तिकाहारहारिणौ ॥२२॥
गजवाजिरथौघेन क्रीडन्तौ तावितस्ततः। मधुपानसमायुक्तौ परस्त्रीरतिमोहितौ ॥२३॥
नाशयन्तौ पितृद्रव्यं सहस्रं ददतुः शतम्। तस्थतुः स्वगृहे रम्ये नित्यं भोगपरायणौ॥२४॥
इत्थं तु तद्धनं ताभ्यां विनियुक्तमसद्व्ययैः। वारस्त्रीविटशैलूषमल्लचारणबन्दिषु ॥२५॥
अपात्रे तद्धनं दत्तं क्षिप्तं बीजमिवोषरे। न सत्पात्रे च तद्दत्तं न ब्राह्मणमुखे हुतम्॥२६॥
नार्चितो भूतभृद्विष्णुः सर्वपापप्रणाशनः। उभयोरेव तद्द्रव्यमचिरेण क्षयं ययौ ॥२७॥
ततस्तौ दुःखमापन्नौ कार्पण्यं परमं गतौ । शोचमानौ तु मुह्यन्तौ क्षुत्पीडादुःखपीडितौ ॥२८॥
तयोस्तु तिष्ठतोर्गेहे नास्ति यद्भुज्यते तदा। स्वजनैर्बान्धवैस्सर्वैः सेवकैरुपजीविभिः ॥२९॥

तपस्या करते हुए उनका शरीर सूख गया । उसके बाद वे उस विष्णुलोक में गये जहाँ पर जाकर जीव शोक नहीं करता है ॥१६॥ हे राजन् ! उन वैश्य के दोनों पुत्र युवा होकर धन के मद से मदान्ध हो गये, वे देखने में सुन्दर तथा घमण्डी हो गये थे ॥१७॥ वे दुःशील, व्यसनी न तो धर्म कर्म से रहित अपनी माता की बात मानते थे और न तो बृद्धों की बातों को मानते थे ॥१८॥ वे कुमार्गगामी, दुरात्मा तथा पिता तथा मित्रों का निषेध करने वाले हो गये । सदा अधर्म करने वाले तथा दूसरों की पत्नी का सेवन करने वाले ॥१९॥ गीत, वाद्य, वीणा और वेणु से अपना मनोविनोद करने वाले हो गये । वे दोनों सैकड़ों वेश्याओं के साथ गीत गाते हुए संचरण करते थे ॥२०॥ उन दोनों के साथ चाटुकार लोग रहते थे, तथा वे युवती स्त्रियों का सेवन करते थे । उनका वेष सुन्दर था वस्त्र सुन्दर थे और वे सुन्दर चन्दन लगाये रहते थे ॥२१॥ वे सुगन्धित मालायें और कस्तूरी के चिह्न से चिह्नित रहते थे । अनेक प्रकार के अलङ्कारों से अंलकृत वे मोतियों के हार पहने रहते थे ॥२२॥ वे हाथी, घोड़े तथा रथ के समूह से इधर-उधर क्रीड़ा करते रहते थे । मदिरापान करने वाले वे परस्त्रियों से प्रेम करते थे ॥२३॥ वे अपने पिता की सम्पत्ति का नाश कर रहे थे और हजारो मुद्राएँ फेंक दिए । सदा भोग परायण वे अपने सुन्दर भवन में रहते थे ॥२४॥ इस तरह से उन दोनों ने उस धन को बुरे कामों में खर्च कर दिया । वेश्या, विट, नर्तक, पहलवानों तथा वन्दीजन ॥२५॥ इत्यादि अपात्रों को उसी प्रकार से उस धन को दे दिये जैसे कोई उषर खेत में बीज बो दे । उन दोनों ने उस धन को न तो सत्पात्रों को दान दिया और न ब्राह्मणों को भोजन कराया ॥२६॥ उन दोनों ने सभी पापों का विनाश करने वाले भगवान् विष्णु का कभी पूजन भी नहीं किया । इसतरह से उन दोनों का वह द्रव्य शीघ्र ही विनष्ट हो गया ॥२७॥ उसके बाद वे दोनों दुःखी होकर अत्यन्त कृपण बन गये । वे अब केवल शोचते तथा भूख-प्यास से दुःखी होकर मोहित हो जाते थे ॥२८॥ अब उन दोनों के घर में खाने-

द्रव्याभावे परित्यक्तौ चिन्तमानौ ततः पुरे। पश्चाच्चौर्य्यं समारब्धं ताभ्यां च नगरे नृप॥३०॥
राजतो लोकतो भीतौ स्वपुरान्निस्सृतौ तदा ।
चक्रतुर्वनवासं तौ सर्वेषामुपपीडितौ ॥३१॥
जघ्नतुः सततं मूढौ शितैर्बाणैर्विषार्पितैः। नानापक्षिवराहांश्च हरिणान्रोहितांस्तथा ॥३२॥
शशकाञ्छल्लकान्गोधाञ्छ्वापदांश्चेतरान्बहून् ।
महाबलौ भिल्लसङ्गावाखेटकभुजौ सदा ॥३३॥
एवं मांसमयाहारौ पापहारौ परन्तप !। कदाचिद्भूधरं प्राप्तो ह्येकोऽन्यश्च वनं गतः ॥३४॥
शार्दूलेन हतो ज्येष्ठः कनिष्ठः सर्पदंशितः ।
एकस्मिन्दिवसे राजन्यापिष्ठौ निधनं गतौ ॥३५॥
यमदूतैस्ततो बद्ध्वापाशैर्नीतौ यमालयम्। गत्वाभिजगदुः सर्वे ते दूताः पापिनावुभौ ॥३६॥
धर्मराज ! नरावेतावानीतौ तव शासनात्। आज्ञां देहि स्वभृत्येषु प्रसीद करवाम किम्॥३७॥
आलोच्य चित्रगुप्तेन तदा दूताञ्जगौ यमः। एकस्तु नीयतां वीर ! निरयं तीव्रवेदनम्॥३८॥
अपरः स्थाप्यतां स्वर्गे यत्र भोगा ह्यनुत्तमाः ।
कृतान्ताज्ञां ततः श्रुत्वा दूतैश्च क्षिप्रकारिभिः ॥३९॥
निक्षिप्तो रौरवे घोरे यो ज्येष्ठो हि नराधिप ! ।
तेषां दूतवरः कश्चिदुवाच मधुरं वचः ॥४०॥

पीने की कोई वस्तु भी नहीं रह गयी थी; जिससे कि उनके स्वजन, बांधव, सेवक आदि उपजीवी वर्ग खा पी सकें ॥२९॥ द्रव्य के अभाव में उन दोनों को सबलोगों ने त्याग दिया । हे राजन् ! उसके बाद उन दोनों ने नगर में चोरी करना शुरु कर दिया ॥३०॥ राजा तथा अन्य लोगों से भयभीत होकर वे दोनों अपने नगर से निकल गये । सबों को दुःख देने वाले वे दोनों वन में निवास करने लगे ॥३१॥ वे दोनो मूर्ख सदा अपने तीक्ष्ण और विषैले बाणों से अनेक पक्षियों, शूकरों तथा रोहित मृगों को मारते थे ॥३२॥ खरगोश, साहिल, गोह तथा दूसरे बहुत से जीवों को मारते थे । वे महाबलवान् थे तथा भिल्लों के साथ रहते थे तथा आखेट करते थे ॥३३॥ हे परंतप ! इस तरह से पापमय आहार करने वाले उन दोनों का भोजन मांसमय हो गया था । एक बार पर्वत पर रहने वाले उन दोनों एक वन में गये ॥३४॥ उनमें से बड़े को सिंह ने मार दिया और छोटे को सर्प ने काट लिया । हे राजन् ! वे दोनों एक ही दिन मर गये ॥३५॥ उन दोनों को पाश में बाँधकर यमदूत यम के घर ले गये । उन दूतों ने जाकर धर्मराज से कहा कि ये दोनों पापी हैं ॥३६॥ हे धर्मराज ! हमलोग इन दोनों को आपकी आज्ञा के अनुसार लाये हैं । आप अपने भृत्यों को आज्ञा दें और बतलायें कि हमलोग क्या करें ?॥३७॥ चित्रगुप्त के साथ विचार करके धर्मराज ने कहा कि इनमें से एक को तो तुमलोग घोर नरक में डाल दो ॥३८॥ और दूसरे को सर्वोत्तम भोग से युक्त स्वर्ग में स्थापित कर दो । यमराज की आज्ञा सुनकर शीघ्रता करने वाले दूतों ने ॥३९॥ बड़े को घोर रौरव नरक में डाल दिया उन दूतों

विकुण्डल ! मया सार्द्धमेहि स्वर्गं ददामि ते ।
भुङ्क्ष्व भोगान्सुदिव्यांस्त्वमर्जितान्स्वेन कर्मणा ॥४१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे हेमकुण्डलवैश्यपुत्रयोरितिहासवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो हृष्टमनाः सोऽथ दूतं पप्रच्छ तं पथि ।
सन्देहं हृदि कृत्वा तु विस्मयं परमं गतः ॥
विचारयन्हृदि स्वर्गः कस्य हेतोः फलं मम ॥१॥

विकुण्डल उवाच

हे दूतवर ! पृच्छामि संशयं त्वामहं परम् ।
आवां जातौ कुले तुल्ये तुल्यं कर्म तथा कृतम् ॥२॥
दुर्मृत्युरपि तुल्योऽभूत्तुल्यो दृष्टो यमस्तथा ।
कथं स नरके क्षिप्तस्तुल्यकर्म्मा ममाग्रजः ॥३॥
ममाऽभवत्कथं नाकमिति मे छिन्धि संशयम् ।
देवदूत ! न पश्यामि मम स्वर्गस्य कारणम् ॥४॥

में से एक दूत ने मधुर वाणी से कहा ॥४०॥ हे विकुण्डल तुम मेरे साथ आओ और तुम्हें मैं स्वर्ग प्रदान करता हूँ । अपने कर्मों के द्वारा अर्जित दिव्य भोगों का तुम उपयोग करो ॥४१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

विकुण्डल के पूर्वजन्म का वृत्तान्त, देवदूत विकुण्डल संवाद, नरक प्रद कर्मों का वर्णन, और विकुण्डल की नरक से मुक्ति का वर्णन

नारदजी ने कहा— उसके बाद अत्यन्त प्रसन्न मन से विकुण्डल ने रास्ते में यमदूत से पूछा, क्योंकि वह आश्चर्यित था और उसके मन में आश्चर्य बना था । वह अपने हृदय में विचार करता था कि किस कर्म के चलते मुझे स्वर्ग मिला है ?॥१॥ **विकुण्डल ने कहा—** हे दूतश्रेष्ठ ! मुझे बहुत अधिक संदेह है मैं आप से पूछता हूँ कि हमदोनों एक ही वंश में उत्पन्न हुए और एक ही प्रकार का कर्म भी किए ॥२॥ हमदोनों की दुर्मृत्यु भी हुयी और हमदोनों ने एक समान यमराज का दर्शन भी किया । अतएव मेरा बड़ा भाई नरक में क्यों डाल दिया गया ?॥२-३॥ और मुझको स्वर्ग क्यों मिला आप मेरे इस संदेह को दूर करें । हे देवदूत ! मैं अपने स्वर्ग की प्राप्ति का कोई भी कारण नहीं देखता

देवदूत उवाच

माता पिता सुतो जाया स्वसा भ्राता विकुण्डल ! ।
जन्महेतोरियं संज्ञा जन्तोः कर्म्मोपभुक्तये ॥५॥
एकस्मिन्पादपे यद्वच्छकुनानां समागमः। यद्यत्समीहितं कर्म कुरुते पूर्वभावितः ॥६॥
तस्य तस्य फलं भुङ्क्ते कर्म्मणः पुरुषः सदा ।
सत्यं वदामि ते प्रीत्या नरैः कर्म शुभाशुभम् ॥७॥
स्वकृतं भुज्यते वैश्य ! काले काले पुनःपुनः ।
एकः करोति कर्माणि एकस्तत्फलमश्नुते ॥८॥
अन्यो न लिप्यतेवैश्य ! कर्मणाऽन्यस्य कुत्रचित् ।
अपतन्नरके पापैस्तवभ्राता सुदारुणैः ॥
त्वं च धर्मेण धर्मज्ञ स्वर्गं प्राप्नोसि शाश्वतम् ॥९॥

विकुण्डल उवाच

आबाल्यान्मम पापेषु न पुण्येषु रतं मनः। अस्मिञ्जन्मनि हे दूत ! दुष्कृतं हि कृतं मया॥१०॥
देवदूत ! न जानामि सुकृतं कर्म चात्मनः ।
यदि जानासि मत्पुण्यं तन्मे त्वं कृपया वद ॥११॥

देवदूत उवाच

श्रृणु वैश्य ! प्रवक्ष्यामि यत्त्वया पुण्यमर्जितम् ।
जानामि तदहं सर्वं न त्वं वेत्सि सुनिश्चितम् ॥१२॥
हरिमित्रसुतो विप्रः सुमित्रो वेदपारगः। आसीत्तस्याश्रमः पुण्यो यमुनादक्षिणे तटे ॥१३॥

हूँ ॥४॥ **देवदूत ने कहा—** हे विकुण्डल ! माता, पिता, पुत्र, पत्नी बहन, भाई ये सबके सब जीव के जन्म के हेतु भूत कर्मों का भोग करने के लिए होते हैं ॥५॥ जिस तरह एक ही वृक्ष पर पक्षियों का समागम होता है, उनमें से जिसके जो मन में आता है, वह अपनी पूर्ववासना के अनुसार उसी कर्म को करता है ॥६॥ जीव अपने विभिन्न कर्मों का फल भोगता है । आपको मैं सत्य बतलाता हूँ कि मनुष्य अपने पूर्वकृत पुण्य तथा पाप कर्मों का फल भोगता है ॥७॥ हे वैश्य ! यह समय-समय से बार-बार उन कर्मों का फल भोगता हे । वह अकेले ही विभिन्न कर्मों को करता है और अकेले ही उन कर्मों का फल भोगता है ॥८॥ कोई भी दूसरे के द्वारा किए गये कर्म का फल नहीं भोगता है। तुम्हारे भाई भयङ्कर नरकों में अपने भयङ्कर पाप कर्मों के कारण गिर पड़े । हे धर्मज्ञ ! तुम अपने पुण्य के कारण शाश्वत स्वर्ग को प्राप्त कर रहे हो ॥९॥ **विकुण्डल ने कहा—** बचपन से ही मेरा मन पापों में लगा रहा मैंने कभी पुण्य नहीं किया । हे दूत ! इस जन्म में तो मैंने कोई भी पुण्य नहीं किया है ॥१०॥ हे देवदूत ! मैं अपने किसी भी पुण्य कर्म को नहीं जानता हूँ । यदि आप मेरे पुण्य को जानते है तो कृपा करके मुझे बतलायें ॥११॥ **देवदूत ने कहा—** हे वैश्य ! आप अपने उस पुण्य को सुनें जिसे आपने किया है । मैं उसे जानता हूँ तुम उसे नहीं जानते हो । हरिमित्र नामक विप्र के पुत्र वेद पारंगत सुमित्र का आश्रम यमुना नदी के दक्षिण तट पर था ॥१२-१३॥ हे वैश्य ! आपकी

तेन सख्यं वने तस्मिंस्तव जातं विशांवर ! ।
तत्सङ्गेन त्वया स्नातं माघमासद्वयं तथा ॥१४॥
कालिन्दीपुण्यपानीये सर्वपापहरे वरे। तत्तीर्थे लोकविख्याते नाम्ना पापप्रणाशने॥१५॥
एकेन सर्वपापेभ्यो विमुक्तस्त्वं विशांपते ! ।
द्वितीयमाघपुण्येन प्राप्तः स्वर्गस्त्वयाऽनघ ॥१६॥
त्वं तत्पुण्यप्रभावेण मोदस्व सततं दिवि । नरकेषु तव भ्राता महतीं पापयातनाम् ॥१७॥
छिद्यमानोऽसिपत्रैश्च भिद्यमानस्तु मुद्गरैः। चूर्ण्यमानः शिलापृष्ठे तप्ताङ्गारेषु भार्जितः ॥१८॥
इति दूतवचः श्रुत्वा भ्रातृदुःखेन दुःखितः ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो दीनोऽसौ विनयान्वितः ॥१९॥
उवाच तं देवदूतं मधुरं निपुणं वचः । मैत्री सप्तपदी साधो सतां भवति सत्फला ॥२०॥
मित्रभावं विचिन्त्य त्वं मामुपाकर्तुमर्हसि। ततो हि श्रोतुमिच्छामि सर्वज्ञस्त्वं मतो मम ॥२१॥
यमलोकं न पश्यन्ति कर्मणा केन मानवाः ।
गच्छन्ति निरयं येन तन्मे त्वं कृपया वद ॥२२॥

देवदूत उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया वैश्य ! नष्टपापोऽसि साम्प्रतम् ।
विशुद्धे हृदये पुंसां बुद्धिः श्रेयसि जायते ॥२३॥
यद्यप्यवसरो नास्ति मम सेवापरस्य वै । तथापि च तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि यथामति॥२४॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। परपीडां न कुर्वन्ति न ते यान्ति यमालयम् ॥२५॥

उसके साथ मित्रता हो गयी । उनकी सङ्गति के कारण तुमने दो माघ के महिनों में ॥१४॥ सर्वपाप विनाशक यमुना के पवित्र जल में स्नान किया । नाम लेने मात्र से पापों का नाश करने वाले उस लोक विख्यात तीर्थ में तुमने स्नान किया ॥१५॥ एक माघ महीने के स्नान से तुम सभी पापों से मुक्त हो गये और दूसरे माघ के स्नान के कारण तुम स्वर्ग को प्राप्त किए ॥१६॥ उस पुण्य के प्रभाव से तुम स्वर्गलोक में आनन्दानुभव करो और तुम्हारे भाई नरकों में अत्यधिक यातना भोगें ॥१७॥ असि पत्रों से काटा जाता हुआ, मुद्‌गरों से पीटा जाता हुआ शिला के ऊपर चूर-चूर किया जाता हुआ, जलते हुए अङ्गारे में भूंजा जाता हुआ वह नरक भोगे ॥१८॥ इस तरह से दूत की वाणी सुनकर अपने भाई के दुःख से दुःखी विकुण्डल के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया । दीन होकर उसने नम्रता पूर्वक ॥१९॥ देवदूत से अत्यन्त मधुर शब्दों में कहा— हे सत्पुरुष ! सात डेग तक एक साथ चलने वाले की भी मित्रता सुन्दर फलवाली होती है ॥२०॥ मेरी मित्रता का विचार करके आप मेरा उपकार करें । आप तो सर्वज्ञ है, आप से मैं सुनना चाहता हूँ कि ॥२१॥ किन कर्मों को करने वाले पुरुषों को यमलोक में नहीं जाना पड़ता है । और जिन कर्मों के करने से मनुष्य नरकों में जाते हैं, उन कर्मों को आप मुझे बतलाएँ॥२२॥ **देवदूत ने कहा—** तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । तुम्हारे पाप नष्ट हो गये है, विशुद्ध हृदय में कल्याण विषयिणी बुद्धि उत्पन्न होती है ॥२३॥ यद्यपि मेरे पास समय नहीं है, मैं तो सेवक हूँ, फिर भी तुम्हारे स्नेह के कारण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ ॥२४॥ जो लोग मन, वाणी और कर्म

न वेदैर्न च दानैश्च न तपोभिर्न चाध्वरैः। कथञ्चित्स्वर्गतिं यान्ति पुरुषाः प्राणिहिंसकाः॥२६॥
अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसैव परं तपः। अहिंसा परमं दानमित्याहुर्मुनयः सदा॥२७॥
मशकान्सरीसृपान्दंशान्यूकाद्यान्मानवांस्तथा। आत्मौपम्येन पश्यन्ति मानवा ये दयालवः॥२८॥
तप्ताङ्गारमयस्कीलं मादं प्रेततरङ्गिणीम्। दुर्गतिं नैव गच्छन्ति कृतान्तस्य च ते नराः॥२९॥
भूतानि येऽत्र हिंसन्ति जलस्थलचराणि च ।
जीवानार्थं च ते यान्ति कालसूत्रं च दुर्गतिम् ॥३०॥
श्वमांसभोजनास्तत्र पूयशोणितपायिनः। मज्जन्तश्च वसापङ्के दष्टाः कीटैरधोमुखैः ॥३१॥
परस्परं च खादन्तो ध्वान्ते चान्योन्यघातिनः ।
वसन्ति कल्पानेकांस्ते रुदन्तो दारुणं रवम् ॥३२॥
कृमियोनिशतं गत्वा स्थावराः स्युश्चिरं तु ते ।
ततो गच्छन्ति ते क्रूरास्तिर्यग्योनिशतेषु च ॥३३॥
पश्चाद्भवति जातान्धाः काणाः कुब्जाश्च पङ्गवः ।
दरिद्राश्चाङ्गहीनाश्च मानुषा प्राणिहिंसकाः ॥३४॥
तस्माद्वैश्य परत्रेह कर्मणा मनसा गिरा। लोकद्वयसुखप्रेप्सुर्धर्मज्ञो न तदाचरेत्॥३५॥
लोकद्वयेन विन्दन्ति सुखानि प्राणिहिंसकाः ।
ये न हिंसन्ति भूतानि न ते बिभ्यति कुत्रचित् ॥३६॥

से किसी भी अवस्था में और कभी भी किसी को भी दुःख नहीं देते हैं, वे लोग यमलोक में नहीं जाते हैं ॥२५॥ हिंसक प्राणी वेदाध्ययन, दान, तपस्या तथा यज्ञ के बल पर कभी भी स्वर्ग मे नहीं जा सकते हैं ॥२६॥ अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, वह सबसे बड़ी तपस्या है, तथा अहिंसा ही सबसे बड़ा दान है, यह मुनिजन कहते हैं ॥२७॥ जो लोग मच्छर, सर्प, दंश यूका आदि जीवों तथा मनुष्यों को अपने ही समान मानते हैं, वे मनुष्य दयालु हैं ॥२८॥ दयालु मनुष्य जलते हुए अङ्गारे, लोहे के कील से निर्मित स्थान और यमराज की प्रेत नदी (वैतरणी नदी) में होने वाली दुर्गति का अनुभव नहीं करते हैं ॥२९॥ इस लोक में जल तथा पृथिवी पर रहने वाले जीवों का अपनी जीविका के लिए जो मारने का काम करते हैं वे जीव कालसूत्र नामक नरक में जाते हैं ॥३०॥ वहाँ पर वे कुतों का मांस खाते हैं और पीब तथा खून पीते हैं, नीचे मुंह करके वसा के पंक में गाड़े गये उन लोगों को कीड़े काटते रहते हैं ॥३१॥ अन्धकार में पड़े हुए वे एक दूसरे को मार कर खाते रहते हैं, इस तरह से जोर-जोर से वे अनेक कल्पों तक रोते रहते हैं ॥३२॥ कीड़ों की सैकड़ों योनियों में जाकर वे बाद में दीर्घकाल तक स्थावर योनि में चले जाते हैं । उसके बाद वे क्रूर जीव सैकड़ों पशुओं तथा पक्षियो की योनि में जाते हैं ॥३३॥ उसके बाद वे जन्मांध, काने, कुबड़े, तथा लंगड़े मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं। वे प्राणिहिंसक जीव उसके बाद दरिद्र तथा अङ्गहीन उत्पन्न होते हैं ॥३४॥ अतएव हे वैश्य ! लोक तथा परलोक में सुख चाहने वाले को चाहिए कि वे मन, वाणी और कर्म के द्वारा किसी की हिंसा न करे ॥३५॥ प्राणि हिंसक जीवों को लोक तथा परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलता है । जो किसी की भी हिंसा नहीं करते हैं, वे कहीं भी भयभीत नहीं होते हैं ॥३६॥ जिस तरह सीधी, टेढ़ी सभी नदियाँ

प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रमृजुवक्रगाः । सर्वे धर्मा अहिंसायां प्रविशन्ति तथा दृढम् ॥३७॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। अभयं येन भूतेभ्यो दत्तमत्र विशांवर॥३८॥
ये नियोगांश्च शास्त्रोक्तान्धर्माधर्मविमिश्रितान् ।
पालयन्तीह ये वैश्य ! न ते यान्ति यमालयम् ॥३९॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा। स्वधर्मनरिताः सर्वे नाकपृष्ठे वसन्ति ते ॥४०॥
यथोक्तवारिणः सर्वे वर्णाश्रमसमन्विताः । नराःजितेन्द्रिया यान्ति ब्रह्मलोकं तु शाश्वतम्॥४१॥
इष्टापूर्तरता ये च पञ्चयज्ञरताश्च ये । दयान्विताश्च ये नित्यं नेक्षन्ते ते यमालयम्॥४२॥
इन्द्रियार्थनिवृत्ता ये समर्था वेदवादिनः। अग्निपूजारता नित्यं ते विप्राः स्वर्गगामिनः॥४३॥
अदीनवदनाः शूराः शत्रुभिः परिवेष्टिताः। आहवेषु विपन्ना ये तेषां मार्गो दिवाकरः ॥४४॥
अनाथस्त्रीद्विजार्थे च शरणागतपालने ।
प्राणांस्त्यजन्ति ये वैश्य ! न च्यवन्ति दिवस्तु ते ॥४५॥
पङ्ग्वन्धबालबृद्धांश्च रोग्यनाथदरिद्रितान् ।
ये पुष्णन्ति सदा वैश्य ! ते मोदन्ते सदा दिवि ॥४६॥
गां दृष्ट्वा पङ्कनिर्मग्नां रोगमग्नं द्विजं तथा ।
उद्धरन्ति नरा ये च तेषां लोकोऽश्वमेधिनाम् ॥४७॥
गोग्रासं ये प्रयच्छन्ति ये शुश्रूषन्ति गाः सदा ।
ये नारोहन्ति गोपृष्ठे ते स्वर्लोकनिवासिनः ॥४८॥
गर्तमात्रं तु ये चक्रुर्यत्र गौरतृषा भवेत् । यमलोकमदृष्ट्वैव ते यान्ति स्वर्गतिं नराः ॥४९॥

समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं, उसी तरह सभी धर्म अहिंसा के अन्तर्गत आ जाते हैं ॥३७॥ हे वैश्यश्रेष्ठ! इस लोक में सभी जीवों को अभय प्रदान करने वाले जीवों को सभी तीर्थों में स्नान करने का तथा सभी यज्ञों को करने का फल प्राप्त होता है ॥३८॥ जो लोग शास्त्रों की धर्म एवं अधर्म मिश्रित आज्ञाओं का पालन करते हैं वे यमलोक में नहीं जाते हैं ॥३९॥ अपने-अपने धर्म का पालन करने वाले ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बानप्रस्थी और संन्यासी स्वर्गलोक में निवास करते हैं ॥४०॥ सभी वर्णों एवं आश्रमों वाले, मनुष्य अपने आश्रम तथा वर्ण के धर्मों का पालन करके तथा जितेन्द्रियपुरुष; ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं ॥४१॥ जो लोग इष्टापूर्त कर्मों को करते हैं तथा जो पञ्च यज्ञों का पालन करते हैं एवं जो दयालु हैं, वे जीव यमलोक में नहीं जाते हैं ॥४२॥ जो ब्राह्मण इन्द्रियों के विषयों से अनासक्त रहते है जो वेदज्ञ होते हैं, तथा जो अग्निहोत्र करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं ॥४३॥ जो युद्ध में शत्रुओं के द्वारा घिर जाने पर भी कभी दीनता का प्रदर्शन नहीं करते हैं वे सूर्यमार्ग से उत्क्रमण करते हैं ॥४४॥ अनाथ स्त्री, ब्राह्मण तथा शरणागत जीवों के पालन में जो अपने प्राणों का परित्याग करते हैं वे कभी भी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होते हैं ॥४५॥ लङ्गड़े, अन्धे, बालक, वृद्ध, रोगी, अनाथ तथा दरिद्रों का पोषण करने वाले मनुष्य सदा स्वर्गलोक में जाते हैं ॥४६॥ जो कीचड़ में फंसी हुयी गौ को देखकर तथा ब्राह्मण को रुग्ण हुए देखकर उन सबों का उद्धार करते हैं वे अश्वमेध याग करने वालों के लोक में जाते हैं ॥४७॥ जो ग्रोग्रास प्रदान करते हैं तथा सदा गायों की सेवा करते हैं, तथा जो कभी भी गौ

अग्निपूजादेवपूजागुरुपूजारताश्च ये । द्विजपूजारता नित्यं ते विप्राः स्वर्गगामिनः ॥५०॥
वापीकूपतडागादौ धर्मस्यान्तो न विद्यते । पिबन्ति स्वेच्छया यत्र जलस्थलचरास्तदा ॥५१॥
नित्यं दानपरः सोऽत्र कथ्यते विबुधैरपि । यथा यथा च पानीयं पिबन्ति प्राणिनो भृशम् ॥५२॥
तथा तथाऽक्षयः स्वर्गो धर्मबुद्ध्या विशांवर ! ।
प्राणिनां जीवनं वारि प्राणा वारिणि संस्थिताः ॥५३॥
नित्यं स्नानेन पूयन्ते येऽपि पातकिनो नराः ।
प्रातःस्नानं हरेद्वैश्य बाह्याभ्यन्तरजं मलम् ॥५४॥
प्रातःस्नानेन निष्पापो नरो न निरयं व्रजेत् ।
स्नानं विना तु यो भुङ्क्ते मलाशी स सदा नरः ॥५५॥
अस्नायी यो नरस्तस्य विमुखाः पितृदेवताः ।
स्नानहीनो नरः पापः स्नानहीनो नरोऽशुचिः ॥५६॥
अस्नायी नरकं भुङ्क्ते पुंस्कीटादिषु जायते। ये पुनः स्रोतसि स्नानमाचरन्तीह पर्वणि ॥५७॥
ते नैव नरकं यान्ति न जायन्ते कुयोनिषु। दुःस्वप्ना दुष्टचिन्ताश्च बन्ध्या भवन्ति सर्वदा ॥५८॥
प्रातःस्नानेन शुद्धानां पुरुषाणां विशांवर! । तिलांश्च तिलपात्रांश्च तिलप्रस्थं यथाविधि ॥५९॥
दत्त्वा प्रेतपतेर्भूमौ न व्रजन्ति नराःक्वचित् ।
पृथिवीं काञ्चनं गां च दत्त्वा दानानि षोडश ॥६०॥

के पीठ पर नहीं बैठते हैं, वे सदा स्वर्ग लोक में निवास करते हैं ॥४८॥ जहाँ पर गायें पानी पीती हैं, वहाँ पर जो लोग पानी एकत्रित होने के लिए गढा बना देते हैं, वे यमलोक में गये बिना ही स्वर्गलोक में चले जाते हैं ॥४९॥ अग्नि की पूजा, देवता की पूजा तथा गुरुजनों की पूजा तथा ब्राह्मणों की पूजा करने वाले मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं ॥५०॥ वापी, कूप तथा तड़ाग से होने वाले पुण्य का कोई भी अन्त नहीं है, क्योंकि इन सबों में सभी जलचर तथा स्थलचर जीव पानी पीते हैं ॥५१॥ जैसे-जैसे ये जीव उस जल को पीते हैं, वैसे ही वैसे उन सबों के निर्माताओं को देवता भी धार्मिक कहते हैं॥५२॥ हे वैश्य श्रेष्ठ ! उसी प्रकार से वे जीव धर्म की बुद्धि के कारण स्वर्ग जाते हैं; क्योंकि प्राणियों का जीवन जल है और जीवन पानी पर टिका है ॥५३॥ जो पापी भी मनुष्य प्रतिदिन स्नान करके पवित्र होते है, वे भी यमलोक नहीं जाते हैं । हे वैश्य ! प्रातःकाल का स्नान बाह्य और अभ्यान्तर मल को विनष्ट कर देता है ॥५४॥ प्रातःस्नान से पवित्र बना हुआ मनुष्य नरक में नहीं जाता है । जो मनुष्य स्नान किए बिना ही भोज़न करता है वह सदा मल खाता है ॥५५॥ जो मनुष्य स्नान नहीं करता है, देवता और पितृगण उसके प्रतिकूल हो जाते हैं । स्नान से हीन मनुष्य पापी है तथा स्नानहीन अपवित्र मनुष्य है ॥५६॥ स्नान नहीं करने वाला नरक में जाता है, और पुरुष जाति का कीड़ा होता है । जो मनुष्य पर्व के दिन नदी में स्नान करते है ॥५७॥ वे न तो नरक में जाते हैं और न तो निंदित योनियों में जाते हैं । उसको न तो दुःस्वप्न होते हैं और न दुश्चिंता होती हैं ॥५८॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! स्नान से शुद्ध बने हुए मनुष्य तिल, तिल से भरे हुए पात्र तथा एक पसर तिल का विधिपूर्वक दान करके यमलोक में नहीं जाते हैं । वे पृथिवी, गौ तथा सुवर्ण आदि सोलह दानों को करके स्वर्गलोक में चले जाते हैं

गत्वा न विनिवर्तन्ते स्वर्गलोकाद्विकुण्डल। पुण्यासु तिथिषु प्राज्ञो व्यतीपाते च सङ्क्रमे॥६१॥
स्नात्वा दत्त्वा च यत्किञ्चिन्नैव मज्जति दुर्गतौ ।
नैवाक्रामन्ति दातारो दारुणं गौरवं पथम् ॥६२॥
इह लोके न जायन्ते कुले धनविवर्जिते । सत्यवादी सदा मौनी प्रियवादी च यो नरः॥६३॥
अक्रोधनः समाचारो नातिवाद्यनसूयकः । सदा दाक्षिण्यसम्पन्नः सदा भूतदयान्वितः ॥६४॥
परस्य मर्मणां गोप्ता वक्ता परगुणस्य च ।
परस्वं तृणमात्रं च मनसापि न यो हरेत् ॥६५॥
न पश्यन्ति विशांश्रेष्ठ ! ह्येते नरकयातनाम् ।
परापवादी पाखण्डः पापेभ्योऽपि मतोऽधिकः ॥६६॥
पच्यते नरके तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् । वक्ता परुषवाक्यानां मन्तव्यो नरकागतः ॥६७॥
सन्देहो न विशांश्रेष्ठ ! पुनर्याति च दुर्गतिम् ।
न तीर्थैर्न तपोभिश्च कृतघ्नस्यास्ति निष्कृतिः ॥६८॥
सहते यातनां घोरां स नरो नरके चिरम्। पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेषु मज्जति यो नरः॥६९॥
जितेन्द्रियो जिताहारो न स याति यमालयम् ।
न तीर्थे पातकं कुर्यान्न च तीर्थोपजीवनम् ॥७०॥
तीर्थे प्रतिग्रहस्त्याज्यस्त्याज्यो धर्मस्य विक्रयः ।
दुर्जरं पातकं तीर्थे दुर्जरश्च प्रतिग्रहः ॥७१॥
तीर्थे च दुर्जरं सर्वमेतत्किन्नरकं व्रजेत्। सकृद्गङ्गाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा ॥७२॥

और फिर कभी वे संसार में नहीं आते हैं । प्राज्ञपुरुष पवित्र तिथियों, व्यतीपात योग तथा संक्रान्ति के अवसर पर ॥६०-६१॥ स्नान करके तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान करके, दुर्गतिग्रस्त नहीं होता है । दान देने वाले कभी रौरव नरक में नहीं जाते हैं । ऐसे लोग निर्धनों के वंश में भी जन्म नहीं लते हैं ॥६२॥ जो सत्यवादी तथा मौन रहने वाला तथा प्रिय बोलने वाला क्रोध नहीं करने वाला, सदाचारी, वहुत अधिक नहीं बोलने वाला तथा किसी से असूया नहीं रखने वाला ॥६३॥ दाक्षिण्यगुण सम्पन्न, सदैव जीवों पर दया करने वाला, दूसरे के रहस्य को नहीं खोलने वाला, तथा दूसरे के गुणों का वर्णन करने वाला ॥६४॥ जो दूसरो की सम्पत्ति का तृण भी मन से भी नहीं लेता है ॥६५॥ हे वैश्यवर्य! ऐसे लोग कभी यमयातना को नहीं सहते हैं । दूसरे की निन्दा करने वाला, पाखण्ड करने वाला, पापियों को प्रिय ॥६६॥ ये सब महाप्रलय काल तक नरकों में पकाये जाते हैं । कठोर वाणी बोलने वाले को समझना चाहिए कि यह नरक से आया है ॥६७॥ और वह इस जन्म के बाद फिर नरक में जायेगा यह जानना चाहिए । जो कृतघ्न होता है उसका प्रायश्चित तीर्थ में जाने अथवा तपस्या करने से नहीं होता है ॥६८॥ कृतघ्न मनुष्य नरक में दीर्घकाल तक नारकीय यातना को सहता है । जितेन्द्रिय तथा अपने आहार को संयमित रखने वाला मनुष्य पृथिवी के समस्त तीर्थों में स्नान करके यमलोक में कभी नहीं जाता है तीर्थ में न तो कोई पाप करे और न तो तीर्थ को अपने जीवन का साधन बनाये ॥६९-७०॥ तीर्थ में जाकर दान भी नहीं लेना चाहिए तीर्थ में धर्म को भी नहीं बेचना चाहिए । तीर्थ में किया

न नरो नरकं याति अपि पातकराशिकृत् ।
व्रतदानतपोयज्ञाः पवित्राणीतराणि च ॥७३॥
गङ्गाबिन्द्वभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम् ।
अन्यतीर्थसमां गङ्गां यो ब्रवीति नराधमः ॥७४॥
स याति नरकं वैश्य ! दारुणं रौरवं महत् ।
धर्मद्रवं ह्यपां बीजं वैकुण्ठचरणच्युतम् ॥७५॥
धृतं मूर्ध्नि महेशेन यद्गाङ्गममलं जलम्। तद्ब्रह्मेव न सन्देहो निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥७६॥
तेन किं समतां गच्छेदपिब्रह्माण्डगोचरे। गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि॥७७॥
नरो न नरकं याति किं तया सदृशं भवेत् ।
नान्येन दह्यते सद्यः क्रिया नरकदायिनी ॥७८॥
गङ्गाम्भसि प्रयत्नेन स्नातव्यं तेन मानवैः । प्रतिग्रहनिवृत्तो यः प्रतिग्रहक्षमोऽपि सन्॥७९॥
स द्विजो द्योतते वैश्य ! तारारूपश्चिरं दिवि ।
गामुद्धरन्ति ये पङ्काद्ये रक्षन्ति च रोगिणः ॥८०॥
म्रियन्ते गोग्रहे ये च तेषां नभसि तारकाः ।
यमलोकं न पश्यन्ति प्राणायामपरायणाः ॥८१॥
अपि दुष्कृतकर्माणस्तैरेव हतकिल्बिषाः । दिवसे दिवसे वैश्य प्राणायामास्तु षोडश ॥८२॥

गया पाप कभी समाप्त नहीं होता है ॥७१॥ तीर्थ में लिया गया दान भी दुर्जर होता है तीर्थ में इन दर्जुरों को करके मनुष्य नरक में जाता है एक बार गङ्गा जल में स्नान करके गङ्गा के जल से पवित्र बना हुआ महापापी मनुष्य भी नरक में नहीं जाता है । व्रत, दान, तपस्या, यज्ञ तथा दूसरे भी पवित्र कार्य का फल गङ्गा में स्नान करने के फल के एक बूंद के समान नहीं होता है । जो नराधम दूसरे तीर्थ के समान ही गङ्गा को बतलाता है ॥७२-७४॥ हे वैश्य ! वह भयङ्कर रौरव नरक में जाता है। गङ्गाजी का जल धर्म द्रव है जलों का मूल कारण है, भगवान् नारायण के चरण से गिरा है ॥७५॥ उस निर्मल जल को भगवान् शिव ने अपने शिर पर धारण किया, इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि ब्रह्म स्वरूप है वह प्राकृतिक दोषों से रहित होने के कारण निगुण हैं ॥७६॥ वह प्रकृति से श्रेष्ठ है, उसके समान ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु नहीं हो सकती है । जो मनुष्य सैकड़ों योजन दूर से भी गङ्गा का नामोच्चारण करता है ॥७७॥ वह कभी नरक में नहीं जाता है, अतः उस गङ्गा के समान कुछ भी नहीं हो सकता है । नरक देने वाली क्रियाओं का नाश दूसरे साधन से नहीं हो सकता है अतएव मनुष्यों को चाहिए कि वे प्रयास करके गङ्गा के जल में स्नान करें । दान लेने में समर्थ व्यक्ति यदि दान लेना छोड़ देता है ॥७८-७९॥ हे वैश्य ! वह ब्राह्मण स्वर्गलोक में तारा के रूप में चमकता है जो मनुष्य कीचड़ में फंसी हुयी गाय को निकालता है जो रोगियों की रक्षा करते हैं ॥८०॥ जिनकी मृत्यु गोशाला में हो जाती है, वे सब आकाश में तारे हो जाते हैं । प्राणायाम करने वाले कभी यमलोक में नहीं जाते हैं॥८१॥ हे वैश्य वे लोग अपने सम्पूर्ण पापों का नाश कर देते हैं जो प्रतिदिन सोलह प्रणायाम करते हैं॥८२॥ तपस्यायें की जाती हैं तथा जो व्रत किए जाते हैं, तथा जो नियमों का पालन किये जाते हैं । तथा

अपि ब्रह्महणं साक्षात्पुनन्त्यहरहः कृताः। तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ॥८३॥
गोसहस्रप्रदानं च प्राणायामस्तु तत्समः । अब्बिन्दु यः कुशाग्रेण मासे मासे नरः पिबेत् ॥८४॥
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामस्तु तत्समः । पातकं तु महद्यच्च तथा क्षुद्रोपपातकम् ॥८५॥
प्राणायामैः क्षणात्सर्वं भस्मसात्कुरुते नरः। मातृवत्परदारान्ये मन्यन्ते वै नरोत्तमाः ॥८६॥

न ते यान्ति नरश्रेष्ठ ! कदाचिद्यमयातनाम् ।
मनसाऽपि परेषां यः कलत्राणि न सेवते ॥८७॥
स ह लोकद्वयेनास्ति तेन वैश्य ! धरा धृता ।
तस्माद्धर्म्मान्वितैस्त्याज्यं परदारोपसेवनम् ॥८८॥

नयन्ति परदारास्तु नरकानेकविंशतिम् । लोभो न जायते येषां परदारेषु मानसे ॥८९॥

ते यान्ति देवलोकं तु न यमं वैश्यसत्तम ! ।
शश्वत्क्रोधनिदानेषु यः क्रोधेन न जीर्यते ॥९०॥
जितस्वर्गः स मन्तव्यः पुरुषोऽक्रोधनो भुवि ।
मातरं पितरं पुत्र आराधयति देववत् ॥९१॥
अप्राप्ते वार्द्धके काले न याति च यमालयम् ।
पितुश्चाधिकभावेन येऽर्चयन्ति गुरुं नराः ॥९२॥
भवन्त्यतिथयो लोके ब्रह्मणस्ते विशांवर ! ।
इह चैव स्त्रियो धन्याः शीलस्य परिरक्षणात् ॥९३॥

हजारों गायों का दान इन सबों का फल प्राणायाम के समान होता है यदि कोई व्यक्ति कुश के अग्रभाग से प्रत्येक मास में एक बार जल की बूंद पीकर सौ वर्षों से भी अधिक समय रहे तो उससे प्राप्त होने वाला पुण्य प्राणायाम के फल के समान होता है ॥८३-८५॥ जितने भी महान् पातक उससे छोटे उपपातक हैं । उन सबों को मनुष्य प्राणायामों के द्वारा क्षणभर में भस्म कर देता है । जो श्रेष्ठ पुरुष दूसरों की पत्नियों को माता के समान पूज्य दृष्टि से देखते हैं ॥८६॥ हे नरश्रेष्ठ ! वे कभी भी यमयातना में नहीं जाते हैं । जो लोग मन से भी दूसरे की स्त्री को नहीं प्राप्त करना चाहते हैं ॥८७॥ हे वैश्य! उनके समान कोई नहीं है, ऐसे ही लोगों के बल पर पृथिवी टिकी हुयी हैं अतएव धार्मिक पुरुषों को परस्त्री का सेवन त्याग देना चाहिए ॥८८॥ परस्त्री गमन नहीं करते हैं वे इक्कीस नरकों में जाते हैं। जिनके मन में परस्त्री के विषय में लोभ नहीं होता है ॥८९॥ हे वैश्य श्रेष्ठ ! वे लोग यमलोक में नहीं जाकर स्वर्गलोक में जाते हैं । सदा-सदा के लिए क्रोध का निदान करने के कारण जिन लोगों को क्रोध नहीं जित पाता है ॥९०॥ उस पृथिवी पर रहने वाले क्रोध रहित के विषय में जानना चाहिए कि उसने स्वर्ग को जित लिया है । जो पुत्र अपने माता-पिता की सेवा देवता के समान करता है ॥९१॥ वह वृद्ध हुए बिना नहीं मरता है जो मनुष्य अपने गुरु को पिता से भी अधिक मानते हैं ॥९२॥ हे वैश्यवर्य वे ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं । संसार में अपने शील की रक्षा करने वाली स्त्रियाँ धन्य है। जिन नारियों का शील भङ्ग हो जाता है, वे यमलोक में जाती हैं । नारियों को चाहिए कि वे दुष्टों की सङ्गति का त्याग करके अपने शील की रक्षा करें ॥९३-९४॥ शील से ही स्त्रियों को स्वर्ग की

शीलभङ्गे च नारीणां यमलोकः सुदारुणः ।
शीलं रक्ष्यं सदा स्त्रीभिर्दुष्टसङ्गविवर्जनात् ॥९४॥
शीलेन हि परः स्वर्गः स्त्रीणां वैश्य ! न संशयः ।
शूद्रस्य पाकयज्ञेन निषिद्धाचरणेन च ॥९५॥
दुर्गतिर्विहता वैश्य ! तस्य सा नारकी गतिः ।
विचारयन्ति ये शास्त्रं वेदाभ्यासरताश्च ये ॥९६॥
पुराणं संहितां ये च श्रावयन्ति पठन्ति च ।
व्याकुर्वन्ति स्मृतीर्ये च ये धर्मप्रतिबोधकाः ॥९७॥
वेदान्तेषु निषण्णा ये तैरियं जगती धृता । तत्तदभ्यासमाहात्म्यैः सर्वे ते हतकिल्विषाः ॥९८॥
गच्छन्ति ब्रह्मणो लोकं यत्र मोहो न विद्यते ।
ज्ञानमज्ञाय यो दद्याद्वेदशास्त्रसमुद्भवम् ॥९९॥
अपि वेदास्तमर्चन्ति भवबन्धविदारणम् । श्रूयतामद्भुतं ह्येतद्रहस्यं वैश्यसत्तम ! ॥१००॥
सम्मतं धर्मराजस्य सर्वलोकामृतप्रदम् । न यमं यमलोकं च न भूतान्घोरदर्शनान् ॥१०१॥
पश्यन्ति वैष्णवा नूनं सत्यं सत्यं मयोदितम् ।
प्राहास्मान्यमुनाभ्राता सदैव हि पुनः पुनः ॥१०२॥
भवद्भिर्वैष्णवास्त्याज्या न ते स्युर्मम गोचराः ।
स्मरन्ति ये सकृद्भूताः प्रसङ्गेनापि केशवम् ॥१०३॥
ते विध्वस्ताखिलाघौघा यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
दुराचारो दुष्कृतोऽपि सदाचाररतोऽपि यः ॥१०४॥

प्राप्ति होती है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । निषिद्ध आचरण करने वाले तथा पाकयज्ञ करने वाले शूद्र की दुर्गति तथा नारकीय गति अवश्य होती है ॥९५॥ वेदाभ्यास करने वाले जो लोग शास्त्र का विचार करते रहते हैं तथा जो पुराण संहिता को सुनाते हैं और स्वयं पढ़ते हैं । जो स्मृतियों की व्याख्या करते है तथा जो धर्म का उपदेश करते हैं तथा जो वेदान्त निष्ठ हैं, ऐसे ही लोगों के बल पर पृथिवी टिकी है । विभिन्न अभ्यासों के माहात्म्य के द्वारा वे लोग निष्पाप हो जाते हैं ॥९६-९८॥ वे उस ब्रह्मलोक में जाते हैं जहाँ मोह होता ही नहीं है । जो ज्ञान को प्राप्त करके वेद शास्त्र जन्य ज्ञान का उपदेश करते हैं । उस संसार के बंधन को काटने वाले की पूजा वेद भी करते हैं । हे वैश्य श्रेष्ठ ! आप इस अद्भुत रहस्य को सुनिए ॥९९-१००॥ यह रहस्य धर्मराज को संमत है तथा सभी जीवों को मुक्ति प्रदान करने वाला है । मैं यह सत्य कहता हूँ कि वैष्णव पुरुष, यम, यायम लोक या भयङ्कर दिखने वाले भूतों को नहीं देखते हैं । हमलोगों को यमुना के भाई यमराज ने इस बात को बार-बार कहा है ॥१०१-१०२॥ कि तुमलोगों को वैष्णवों के पास नहीं जाना चाहिए वे हमारे विषय नहीं हैं । जो मनुष्य प्रसङ्गवशात् एक बार भी भगवान केशव का स्मरण करते हैं उनके समस्त पाप समूह विनष्ट हो जाते हैं ॥१०३॥ और वे भगवान् विष्णु के परमपद में जाते हैं । यदि कोई पापी और दुराचारी भी भगवान् विष्णु की सेवा करने लगता है तथा सदाचारी हो जाता है उसके पास आपलोगों

भवद्भिः स सदा त्याज्यो विष्णुं चयो भजते नरः ।
वैष्णवो यद्गृहे भुङ्क्ते येषां वैष्णवसङ्गतिः ॥१०५॥
तेऽपि वः परिवार्याः स्युस्तत्सङ्गहतकिल्बिषाः ।
इत्थं वैश्यानुशास्त्यस्मान्देवो दण्डधरः सदा ॥१०६॥
अतो नो वैष्णवा यान्ति राजधानीं यमस्य तु ।
विष्णुभक्तिं बिना नृणां पापिष्ठानां विशांवर ! ॥१०७॥
उपायो नास्ति नास्त्यन्यः सन्तर्तुं नरकाम्बुधिम् ।
श्वपाकमपि नेक्षेत लोकेष्टं वैश्य ! वैष्णवम् ॥१०८॥
वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम् ॥१०९॥
एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥११०॥
नरके तु चिरं मग्नाः पूर्वे ये च कुलद्वये । तदैव यान्ति ते स्वर्गं यदार्चन्ति मुदा हरिम्॥१११॥
विष्णुभक्तस्य ये दासा वैष्णवान्नभुजश्च ये ।
ते तु क्रतुभुजां वैश्य गतिं यान्ति निराकुलाः ॥११२॥
प्रार्थयेद्वैष्णवस्यान्नं प्रयत्नेन विचक्षणः । सर्वपापविशुद्ध्यर्थं तदभावे जलं पिबेत् ॥११३॥
गोविन्देति जपन्मन्त्रं कुत्रचिन्म्रियते यदि । स नरो न यमं पश्येत्तं च नेक्षामहे वयम्॥११४॥
साङ्गं समुद्रं सध्यानं सऋषिच्छन्ददैवतम् । दीक्षया विधिवन्मन्त्रं जपेद्वै द्वादशाक्षरम् ॥११५॥

को कभी नहीं जाना चाहिए ॥१०४॥ जिसके घर में वैष्णव भोजन करते हैं, जो वैष्णवों की संगति में रहते हैं, वैष्णवों की सङ्गति के कारण उनके पाप नष्ट हो गये होते हैं, अतएव उन सबों को भी आपलोग त्याग दें ॥१०५॥ इस तरह से दण्डधारी यमराज हमलोगों को उपदेश देते रहते हैं, इसीलिए वैष्णव पुरुष यमराज की राजधानी में नहीं जाते हैं ॥१०६॥ हे वैश्यवर्य ! भगवान् विष्णु की भक्ति को छोड़कर पापियों को इस नरक सागर को पाप करने का कोई भी दूसरा उपाय नहीं हैं ॥१०७॥ हे वैश्य ! संसार को प्रिय चाण्डाल भी वैष्णव को नहीं देखना चाहिए क्योंकि वर्णवाह्य भी वैष्णव त्रैलोक्य को पवित्र बना देता है ॥१०८॥ मनुष्यों के पापों को विनष्ट करने के लिए केवल इतना ही पूर्ण है कि श्रीभवगान् के गुणों, कर्मों तथा नामों का कीर्तन किया जाय । पापी अजामिल अपनी मृत्यु के समय अपने पुत्र नारायण को बुलाकर मुक्ति प्राप्त कर लिया ॥१०९-११०॥ मनुष्य जिस समय प्रसन्नता पूर्वक श्रीहरि की पूजा करता है, उसी समय उसके अपने तथा मातामह के वंश के पूर्वज नरक से स्वर्ग में चले जाते हैं ॥१११॥ जो भगवान् विष्णु के भक्तों के दास हैं तथा जो वैष्णवों के अन्न को खाते हैं वे बिना किसी व्याकुलता के देवताओं के लोक में चले जाते हैं ॥११२॥ चतुर पुरुष को चाहिए कि वह वैष्णव के यहाँ का अन्न प्रार्थना करके प्राप्त करे जिससे कि उसकी आत्मा की शुद्धि हो जाय और वैष्णव का अन्न नहीं मिलने पर पानी ही पीकर रह जाय ॥११३॥ गोविन्द नाम रूप मन्त्र का जप करता हुआ मनुष्य जहाँ कहीं भी मर जाय वह मनुष्य यम के लोक में नहीं जाता है, क्योंकि उसको देखने में हमलोग (यमदूत) समर्थ नहीं हैं ॥११४॥ अङ्ग, मुद्रा, ध्यान, ऋषि, छन्द तथा देवता के साथ दीक्षा

अष्टाक्षरं च मन्त्रेशं ये जपन्ति नरोत्तमाः ।
तान्दृष्ट्वा ब्रह्महा शुद्ध्येद् भ्राजते विष्णुवत्स्वयम् ॥११६॥
शङ्खिनश्चक्रिणो भूत्वा बाह्याभ्यन्तरगामिनः ।
वसन्ति वैष्णवे लोके विष्णुरूपेण ते नराः ॥११७॥
हृदि सूर्ये जले वाथ प्रतिमा स्थण्डिलेऽपि च ।
समभ्यर्च्य हरिं यान्ति नरासद्वैष्णवं पदम् ॥११८॥
अथवा सर्वदा पूज्यो वासुदेवो मुमुक्षुभिः। शालग्रामे मणौ चक्रे वज्रकीटविनिर्मिते॥११९॥
अधिष्ठानं हि तद्विष्णोः सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वपुण्यप्रदं वैश्य ! सर्वेषामपि मुक्तिदम् ॥१२०॥
यः पूजयेद्धरिं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे। राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरे ॥१२१॥
सदामनन्तिवेदान्ता ब्रह्मनिर्वाणमच्युतम्। तत्प्रसादो भवेन्नृणां शालग्रामशिलार्चनात् ॥१२२॥
महाकाष्ठस्थितो वह्निर्मखस्थाने प्रकाशते । यथा तथा हरिर्व्यापी शालग्रामे प्रकाशते ॥१२३॥
अपि पापसमाचाराः कर्म्मण्यनधिकारिणः। शालग्रामार्चका वैश्य ! नैव यान्ति यमालयम्॥१२४॥
न तथा रमते लक्ष्म्यां न तथा स्वपुरे हरिः ।
शालग्रामशिलाचक्रे यथा स रमते सदा ॥१२५॥
अग्निहोत्रं कृतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा। येनार्चितो हरिश्चके शालग्रामशिलोद्भवे ॥१२६॥
शिला द्वादश भो वैश्य ! शालग्रामशिलोद्भवाः ।
विधिवत्पूजिता येन तस्य पुण्यं वदामि ते ॥१२७॥

विधि के अनुसार द्वादशाक्षर मंत्र का जप करना चाहिए ॥११५॥ जो नरश्रेष्ठ अष्टाक्षर मंत्र का जप करते हैं, उसका दर्शन करने से ब्रह्मघाती भी शुद्ध हो जाता है और यह भगवान् विष्णु के समान सुशोभित होता है ॥११६॥ वे मनुष्य शंङ्ख चक्र धारण करके बाह्य एवं आभ्यान्तर पावित्र्य को प्राप्त करके भगवान् विष्णु के लोक में विष्णु रूप से निवास करते हैं ॥११७॥ हृदय में, सूर्य मण्डल में, जल में, प्रतिमा में तथा वेदी पर श्रीहरि की पूजा करके मनुष्य श्रीविष्णु भगवान् के लोक में जाते हैं ॥११८॥ अथवा सदैव भगवान् वासुदेव की पूजा वज्रकीट के द्वारा निर्मित शालग्राम शिला में या मणिचक्र में करनी चाहिए॥११९॥ भगवान् विष्णु का लोक सर्वपाप विनाशक स्थान है । वह समस्त पुण्यों को प्रदान करने वाला तथा सबों को मुक्ति प्रदान करने वाला अधिष्ठान है ॥१२०॥ जो व्यक्ति शालग्राम शिला में उद्भूत चक्र में श्रीहरि की पूजा करता है, वह हजारों राजसूय यज्ञों के करने के फल को प्रतिदिन प्राप्त करता है ॥१२१॥ वेदान्त शास्त्र सदैव ब्रह्म निर्वाण अच्युत को बतलाते हैं । शालग्राम शिला की अर्चना करने से उन भगवान् अच्युत की कृपा होती है ॥१२२॥ जिस तरह महाकाष्ठ (अरणी) में रहने वाली अग्नि यज्ञस्थल में प्रकाशित होती है, उसी तरह सर्वत्र व्यापक श्रीहरि शालग्राम शिला में प्रकाशित होते हैं ॥१२३॥ हे वैश्य ! सर्वदा पाप कर्म करते रहने वाले तथा कर्मों को करने के अनधिकारी भी यदि शालग्राम शिला की अर्चना करता हे तो वह यमलोक में नहीं जाता है ॥१२४॥ श्रीहरि जिस तरह शालग्राम शिला में रमण करते है, उस तरह वे न तो लक्ष्मीजी से प्रसन्न रहते है और न श्रीवैकुण्ठ में ही उतना प्रसन्न रहते हैं ॥१२५॥ शालग्राम शिला में उद्भूत चक्र में भगवान् श्रीहरि की पूजा करने वाले को अग्निहोत्र करने तथा सागर

कोटिद्वादशलिङ्गैस्तु पूजितैः स्वर्गपङ्कजैः। यत्स्याद्द्वादशकालेषु दिनेनैकेन तद्भवेत्॥१२८॥
यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम् ।
उषित्वा स हरेर्लोके चक्रवर्त्तीह जायते ॥१२९॥
कामैः क्रोधैः प्रलोभैश्च व्याप्तो यत्र नराधमः ।
सोऽपि याति हरेर्लोकं शालग्रामशिलार्चनात् ॥१३०॥
यः पूजयेच्च गोविन्दं शालग्रामे मुदा नरः ।
आभूतसम्प्लवं यावन्न स प्रच्यवते दिवः ॥१३१॥
विना तीर्थैर्विनादानैर्विनायज्ञैर्विना मतिम्। मुक्तिं यान्ति नरा वैश्य शालग्रामशिलार्चनात्॥१३२॥
नरकं गर्भवासं च निर्यक्त्वं कृमियोनिताम् ।
न याति वैश्य ! पापोऽपि शालग्रामशिलार्चकः ॥१३३॥
दीक्षाविधानमन्त्रज्ञो यश्चक्रे बलिमाहरेत्। गङ्गागोदावरीरेवानद्यो मुक्तिप्रदाश्च याः ॥१३४॥
निवसन्ति हि ताः सर्वाः शालग्रामशिलाजले ।
नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैर्धूपदीपैर्विलेपनैः ॥१३५॥
गीतवादित्रस्तोत्राद्यैः शालग्रामशिलार्चनम्। कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः ॥१३६॥
कल्पकोटिसहस्राणि रमते सन्निधौ हरेः। लिङ्गैस्तु कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैस्तु तैः ॥१३७॥
शालग्रामशिलायास्तु ह्येकेनाह्ना हि तत्फलम् ।
सकृदभ्यर्चिते लिङ्गे शालग्रामशिलोद्भवे ॥१३८॥

समेत सम्पूर्ण पृथिवी का दान करने का फल प्राप्त होता है ॥१२६॥ हे वैश्य ! शालग्राम शिला से उद्भूत बारह शिलाओं की पूजा करने वाले को जिस गुण की प्राप्ति होती है, मैं उसे बतलाता हूँ ॥१२७॥ बारह करोड़ शिवलिङ्गों की स्वर्णिम कमल से बार-बार पूजा करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति बारह शालग्राम शिला की पूजा करने से एक दिन में ही हो जाती है ॥१२८॥ जो एक सौ शालग्राम शिला का पूजन करता है, वह श्रीहरि के लोक में निवास करने के बाद लोक में चक्रवर्ती राजा होता है ॥१२९॥ जो नराधम, काम, क्रोध तथा लोभ से व्याप्त है वह भी शालग्राम शिला की अर्चना करके श्रीहरि के लोक में जाता है ॥१३०॥ जो मनुष्य शालग्राम शिला में भगवान् गोविन्द की पूजा प्रसन्नता पूर्वक करता है, उसका महाप्रलय काल पर्यन्त स्वर्गलोक से पतन नहीं होता है ॥१३१॥ हे वैश्य ! तीर्थ, यात्रा, दान, यज्ञ तथा ज्ञान के बिना भी शालग्राम शिला की पूजा करने वाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१३२॥ हे वैश्य ! शालग्राम शिला की पूजा करने वाला महापापी भी, न तो नरक में जाता है, न गर्भ में जाता है, न तो पशु-पक्षी की योनि में जाता है और न कृमि योनि में जाता है ॥१३३॥ जो मंत्रज्ञ मनुष्य शालग्राम शिला के चक्र में दीक्षा का विधान करे तथा उसकी पूजा करे । गङ्गा, गोदावरी, रेवा आदि मुक्तिपद नदियों का शालग्राम शिला के जल (तीर्थ) में निवास होता है । नैवेद्य, अनेक प्रकार के पुष्प, धूप, द्वीप, चन्दन के द्वारा गीत, वाद्य, तथा स्तोत्र आदि से कलियुग में भक्ति भाव पूर्वक शालग्राम शिला की पूजा करने वाला मनुष्य ॥१३४-१३६॥ हजार करोड़ कल्पों तक श्रीहरि के सन्निकट में निवास करता है । करोड़ों लिङ्गों की अर्चना करने का

मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नूनं साङ्ख्येन वर्जिताः ।
शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥१३९॥
तत्र देवाः सुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश। शालग्रामशिलायां तु यः श्राद्धं कुरुते नरः॥१४०॥
पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ताः कल्पशतं दिवि ।
ये पिबन्ति नरा नित्यं शालग्रामशिलाजलम् ॥१४१॥
पञ्चगव्यसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम् । कोटितीर्थसहस्रैस्तु सेवितैः किंप्रयोजनम् ॥१४२॥
तोयं यदि पिबेत्पुण्यं शालग्रामशिलाङ्गजम्। शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम्॥१४३॥
तत्र दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।
शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुनासमम् ॥१४४॥
मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेद्विष्णुभाङ्नरः ।
शालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः ॥१४५॥
कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं परम् ।
शालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्दानुत्तमम् ॥१४६॥
भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्सशैलवनकाननम् । शालग्रामशिलाया यो मूल्यमुत्पादयेन्नरः॥१४७॥
विक्रेता चानुमन्ता यः परीक्षासु च मोदते। ते सर्वे नरकं यान्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥१४८॥
ततः संवर्जयेद्वैश्य चक्रस्य क्रयविक्रयम्। बहुनोक्तेन किं वैश्य कर्तव्यं पापभीरुणा ॥१४९॥

जो फल बतलाया गया है ॥१३७॥ उस फल की प्राप्ति एक दिन के शालग्राम शिला की अर्चना से हो जाती है । शालग्राम शिला पर उत्पन्न लिङ्ग की एक बार पूजा करने से हो जाती है ॥१३८॥ जहाँ शालग्राम शिला रूपी भगवान् केशव का निवास हैं, वहाँ पर अज्ञानी जीव भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥१३९॥ जो मनुष्य शालग्राम शिला पर श्राद्ध करता है, वहाँ देवता, यक्ष तथा चौदहों भुवनों का सन्निधान रहता है ॥१४०॥ उस मनुष्य के पितृगण तृप्त होकर सौ कल्पों तक स्वर्गलोक में निवास करते हैं । जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्राम शिला के जल का पान करते हैं ॥१४१॥ उनको हजारों बार पञ्चगव्य पीने से कोई लाभ नहीं होता है । उन मनुष्यों को हजारों करोड़ तीर्थों में भी जाने से कोई मतलब नहीं है ॥१४२॥ शालग्राम शिला के स्नान करने के जल को जो पीता है । जहाँ पर शालग्राम शिला रहती है, वहाँ की तीन योजन पर्यन्त की भूमि तीर्थ मयी होती है ॥१४३॥ वहाँ पर किया गया दान और होम करोड़ों गुणा फल प्रदान करने वाला होता है । जो शालग्राम शिला के जल का एक बून्द भी पीता है ॥१४४॥ वह मनुष्य पुनः माता के स्तन का दूध नहीं पीता है, वह भगवान् विष्णु को प्राप्त कर लेता है । शालग्राम के समीप में एक कोश के अन्दर मरने वाले कीड़े भी वैकुण्ठ लोक में जाते हैं । जो चक्रांकित शालग्राम शिला का दान करता है ॥१४५-१४६॥ उसको पर्वत और वनों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी का दान करने का फल प्राप्त है । जो मनुष्य शालग्राम शिला को बेंचता है॥१४७॥ उसको बेचने वाले, उसका अनुमोदन करने वाला तथा उसकी परीक्षा करने वाले ये सबके सब महाप्रलय काल पर्यन्त नरक में निवास करते हैं ॥१४८॥ अतएव हे वैश्य ! शालग्राम शिला को बेचने और खरीदने का काम नहीं करना चाहिए । हे वैश्य ! बहुत कहना क्या है ? मनुष्य को पाप से डरना

स्मरणं वासुदेवस्य सर्वपापहरं हरेः । तपस्तप्त्वा नरो घोरमरण्ये नियतेन्द्रियः ॥१५०॥
यत्फलं समवाप्नोति तन्नत्वागरुड़ध्वजम् । कृत्वाऽपि बहुशःपापं नरो मोहसमन्वितः ॥१५१॥
न याति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम् ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥१५२॥
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ।
देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्नाः परायणाः ॥१५३॥
न तेषां यमसालोक्यं न ते स्युर्नरकौकसः ।
वैष्णवः पुरुषो वैश्य ! शिवनिन्दां करोति यः ॥१५४॥
न विन्देद्वैष्णवं लोकं स याति नरकं महत् ।
उपोष्यैकादशीमेकं प्रसङ्गेनापि मानवः ॥१५५॥
न याति यातनां यामीमिति लोमशतः श्रुतम् ।
नेदृशं पावनं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१५६॥
उभयं पद्मनाभस्य दिनं पातकनाशनम् । तावत्पापानि देहेऽस्मिन्वसन्तीह विशांवर !॥१५७॥
यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम्। अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च॥१५८॥
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं वैश्य ! मानवैः ॥१५९॥
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् । एकादशीसमं किञ्चित् पुण्यं लोके न विद्यते॥१६०॥

चाहिए ॥१४९॥ श्रीभगवान् वासुदेव का स्मरण सभी पापों को नष्ट कर देता है । घोर वन में तपस्या करने वाला मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है । उस फल की प्राप्ति अत्यन्त पापी भी मनुष्य को भगवान् विष्णु को नमस्कार से हो जाती है ॥१५०-१५१॥ समस्त पापों का विनाश करने वाले श्रीहरि का दर्शन करने वाला मनुष्य कभी नरक में नहीं जाते हैं । पृथिवी पर जितने तीर्थ और पवित्र मन्दिर हैं उन सबों में जाने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसकी प्राप्ति भगवान् विष्णु के नाम संकर्तन से हो जाती है । दिव्य गुण सम्पन्न तथा शार्ङ्गधनुर्धारी भगवान् विष्णु की शरणागति करने वाले जीव। न तो यमलोक में जाते हैं और न तो वे नरक में जाते हैं । हे वैश्य ! जो वैष्णव पुरुष भगवान् शिव की निन्दा करता है ॥१५२-१५४॥ वह भगवान् विष्णु के लोक में नहीं जाकर नरक में जाता है । जो मनुष्य प्रसङ्गवशात् भी किसी एक एकादशी को उपवास कर लेता है ॥१५५॥ वह यातना को नहीं प्राप्त करता है, यह लोमश महर्षि ने कहा है । एकादशी के समान पवित्र त्रैलोक्य में कुछ भी नहीं है ॥१५६॥ दोनो एकादशी भगवान् पद्मनाभ के दिन हैं उस दिन उपवास करने से पापों का विनाश होता है । हे वैश्य श्रेष्ठ! शीरर में तब तक पाप रहते हैं ॥१५७॥ जब तक कि मनुष्य एकादशी का व्रत नहीं करता है। हजारो अश्वमेध याग तथा सैकड़ों राजसूय याग का फल एकादशी व्रत के फल के सोहलवें भाग के बराबर भी नहीं होता है । हे वैश्य ! मनुष्य अपनी ग्यारहो इन्द्रियों से जो पाप करते हैं ॥१५८-१५९॥ एकादशी का

व्याजेनापि कृता यैस्तु वशं यान्ति न भास्करेः ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषः शरीरारोग्यदायिनी ॥१६१॥
सुकलत्रप्रदा ह्येषा जीवत्पुत्रप्रदायिनी ।
न गङ्गा न गया वैश्य ! न काशी न च पुष्करम् ॥१६२॥
न चापि वैष्णवं क्षेत्रं तुल्यं हरिदिनेन तु । यमुना चन्द्रभागा न तुल्या हरिदिनेन तु ॥१६३॥
अनायासेन येनात्र प्राप्यते वैष्णवं पदम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिने॥१६४॥
दश वै पैतृके पक्षे मातृके दशपूर्वजाः । प्रियाया दश ये वैश्य ! तानुद्धरति निश्चितम्॥१६५॥
द्वन्द्वसङ्गपरित्यक्ता नागारिकृतकेतनाः । स्रग्विणः पीतवसनाः प्रयान्ति हरिमन्दिरम्॥१६६॥
बालत्वे यौवने वापि वार्द्धके वा विशांवर ! ।
उपोष्यैकादशीं नूनं नैति पापोऽतिदुर्गतिम् ॥१६७॥
उपोष्येह त्रिरात्राणि कृत्वा वा तीर्थमज्जनम् ।
दत्त्वा हेमतिलान्गाश्च स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥१६८॥
तीर्थे स्नान्ति न ये वैश्य ! न दत्तं काञ्चनं च यैः ।
नैव तप्तं तपः किञ्चिते स्युः सर्वत्र दुःखिताः ॥१६९॥
संक्षिप्य कथितं धर्म्मं नरकस्य निरूपणम् ।
अद्रोहः सर्वभूतेषु वाङ्मन कायकर्म्मभिः ॥१७०॥
इन्द्रियाणां निरोधश्च दानं च हरिसेवनम् । वर्णाश्रमक्रियाणां च पालनं विधितः सदा॥१७१॥

व्रत करने से उन समस्त पापों का नाश हो जाता है । संसार में एकादशी के समान कुछ भी पुण्यप्रद नहीं है ॥१६०॥ जो किसी व्याज से भी एकादशी व्रत कर लेता है वह यम के वश में नहीं होता है । एकादशी शरीर को नीरोग बनाकर स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है ॥१६१॥ यह सुन्दर पत्नी तथा दीर्घायु पुत्र प्रदान करती है । हे वैश्य ! एकादशी के समान गङ्गा स्नान, गया तीर्थ, काशी, पुष्कर तथा कोई वैष्णव क्षेत्र भी पुण्य प्रदान करने वाला नहीं है । एकादशी के समान यमुना और चन्द्रभागा नदियाँ भी पुण्यप्रद नहीं है ॥१६२-१६३॥ एकादशी व्रत करने वाला विना प्रयास के ही विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है । एकादशी के दिन उपवास करके तथा रात्रि में जागरण करके मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है ॥१६४॥ हे वैश्य ! पिता के दश पीढी के, माता के दश पीढी के तथा पत्नी के दश पीढी के पूर्वजों का उद्धार एकादशी व्रत करने वाला कर लेता है ॥१६५॥ वे सब द्वन्द्व के संग से रहित होकर गरुड़ध्वज धारण करके तथा माला तथा पीताम्वरधारी होकर श्रीहरि के लोक में चले जाते हैं ॥१६६॥ बालावस्था में, युवावस्था अथवा वृद्धावस्था में जिसने एकादशी व्रत किया है, वह पापी भी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है ॥१६७॥ इस लोक में तीन रात्रियों तक उपवास करके, अथवा तीर्थों में स्नान करके तथा सुवर्ण, तिल एवं गौ का दान करके मनुष्य स्वर्ग में चले जाते हैं ॥१६८॥ हे वैश्य ! जो लोग न तो तीर्थ में स्नान करते हैं न सुवर्ण दान करते हैं, और न तपस्या करते हैं, वे लोग सदा दुःखी ही बने रहते हैं ॥१६९॥ मैंने तुम्हें संक्षेप में धर्म का वर्णन किया और नरकों का निरूपण भी किया । हे वैश्य ! स्वर्ग प्राप्त करना चाहने वाले को चाहिए कि वह किसी भी जीव

स्वर्गार्थी सर्वदा वैश्य ! तपोदानं न कीर्तयेत् ।
यथाशक्ति तथादद्यादात्मनो हितकाम्यया ॥१७२॥
उपानद्वस्त्रमन्नानि पत्रं मूलं फलं जलम् । अवन्ध्यं दिवसं कार्य्यं दरिद्रेणापि वैश्यक॥१७३॥
इह लोके परे चैव न दत्तं नोपतिष्ठते। दातारो नैव पश्यन्ति तां तां वै यमयातनाम्॥१७४॥
दीर्घायुषो धनाढ्याश्च भवन्तीह पुनः पुनः। किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम् ॥१७५॥
आरोहन्ति दिवं धर्म्मैर्नराः सर्वत्र सर्वदा। तेन बालत्वमारभ्य कर्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः ॥१७६॥
इति ते कथितं सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१७७॥

विकुण्डल उवाच

श्रुत्वा त्वद्वचनं सौम्य ! प्रसन्नं चित्तमेव मे ।
गङ्गोदं पापहं सद्यः पापहारि सतां वचः ॥१७८॥
उपकर्तुं प्रियं वक्तुं गुणो नैसर्गिकः सताम् ।
शीतांशुः क्रियते केन शीतलोऽमृतमण्डलः ॥१७९॥
देवदूत ! ततो ब्रूहि कारुण्यान्मम पृच्छतः ।
नरकान्निष्कृतिः सद्यो भ्रातुर्मे जायते कथम् ॥१८०॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदूतो जगाद ह ।
ध्यानं दृष्ट्वा क्षणं ध्यात्वा तन्मैत्रीरज्जुबन्धनः ॥१८१॥
यत्ते वैश्याष्टमे पुण्यं त्वया जन्मनि सञ्चितम् ।
तद्भ्रात्रे दीयतां सर्वं स्वर्गं तस्य यदीच्छसि ॥१८२॥

से मन, वाणी तथा कर्म से द्रोह न करे ॥१७०॥ इन्द्रियों को अपने वश में रखे, दान करे, श्रीहरि की पूजा करे, अपने वर्ण और आश्रम के लिए विहित कर्मों का सविधि पालन करे ॥१७१॥ वह अपने द्वारा दिए गये दान तथा की गयी तपस्या का वर्णन न करे । आत्म कल्याण की इच्छा से अपनी शक्ति के अनुसार दान करे ॥१७२॥ हे वैश्य ! दरिद्र व्यक्ति को भी चाहिए कि वह प्रतिदिन जूता, वस्त्र, अन्न, पत्र, मूल, फल, जल इनमें से कुछ-न-कुछ दान अवश्य करें ॥१७३॥ जो जिस वस्तु का दान नहीं किए रहता है, उसको इस लोक अथवा परलोक में वह वस्तु नहीं मिलती है । दान देने वाले यम यातना को नहीं वर्दास्त करते हैं ॥१७४॥ वे बार-बार इस लोक में दीर्घायु तथा धनिक होते हैं। बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है, संक्षेप में अधर्म करने वाले दुर्गति को भोगते हैं ॥१७५॥ धामिक पुरुष सदा स्वर्ग में जाते हैं ॥१७६॥ इसलिए बचपन से ही धर्म करना चाहिए । इसतरह से मैंने तुम्हें सारी बातें बता दी अब क्या सुनना चाहते हो ?॥१७७॥ **विकुण्डल ने कहा—** हे सौम्य! आपकी बातों को सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हो गया है । गङ्गाजल और सज्जनों की वाणी ये दोनों शीघ्र ही पाप को विनष्ट कर देते हैं ॥१७८॥ सज्जनों का स्वभाव होता है कि वे किसी का भी उपकार करते हैं और प्रिय बोलते हैं । अमृत मण्डल वाले चन्द्रमा को कौन शीतल बनाता है ॥१७९॥ हे देवदूत आप मुझ पर कृपा करके बतलायें कि मेरे भाई की शीघ्र ही नरक से मुक्ति कैसे मिल सकती हैं ?॥१८०॥ इस तरह से उसकी वाणी को सुनकर क्षणभर ध्यान करके तथा ध्यान के द्वारा उसको देखकर

विकुण्डल उवाच

किं तत्पुण्यं कथं जातं किं जन्म च पुरातनम् ।
तत्सर्वं कथ्यतां दूत ततो दास्यामि सत्वरम् ॥१८३॥

देवदूत उवाच

शृणु वैश्य ! प्रवक्ष्यामि तत्पुण्यं च सहेतुकम् ।
पुरा मधुवने पुण्ये ऋषिरासीच्च शाकुनिः ॥१८४॥
तपोऽध्ययनसम्पन्नस्तेजसा ब्रह्मणा समः । जज्ञिरे तस्य रेवत्यां नवपुत्रा ग्रहा इव ॥१८५॥
ध्रुवः शीलो बुधस्तारो ज्योतिस्मानुतपञ्चमः ।
अग्निहोत्ररता ह्येते गृहधर्मेषु रेमिरे ॥१८६॥
निर्मोहो जितकामश्च ध्यानकोशो गुणाधिकः ।
एते गृहविरक्ताश्च चत्वारो द्विजसूनवः ॥१८७॥
चतुर्थाश्रममापन्नाः सर्वकामविनिस्पृहाः । ग्रामैकवासिनः सर्वे निसङ्गा निष्परिग्रहाः ॥१८८॥
निराशा निष्प्रयत्नाश्च समलोष्टाश्मकाञ्चनाः। येन केनचिदाच्छन्ना येन केनचिदाशिताः ॥१८९॥
सायं ग्रहास्तथां नित्यं विष्णुध्यानपरायणः ।
जितनिद्रा जिताहारा वातशीतसहिष्णवः ॥१९०॥
पश्यन्तो विष्णुरूपेण जगत्सर्वं चराचरम् ।
चरन्ति लीलया पृथ्वीं तेऽन्योन्यं मौनमास्थिताः ॥१९१॥
न कुर्वन्ति क्रियां काञ्चिदर्थमात्रं हि योगिनः ।
दृष्टज्ञाना असन्देहाश्चिद्विकारविशारदाः ॥१९२॥

मैत्री रूपी रस्सी के बन्धन में बँधे हुए देवदूत ने कहा ॥१८१॥ हे वैश्य ! तुमने जो पुण्य अर्जित किया है, उसके आठवें भाग को अपने भाई को दे दो, ऐसा करने से उसको स्वर्ग की प्राप्ति होगी॥१८२॥ **विकुण्डल ने कहा—** मेरा पूर्वजन्म में किया हुआ कौन सा पुण्य है ? हे दूत उसे आप बतलायें उसके बाद मैं शीघ्र ही उसे दे दूँगा ॥१८३॥ **देवदूत ने कहा—** हे वैश्य ! सुनों मैं तुम्हारे उस पुण्य को सहेतुक बतलाता हूँ । प्राचीन काल में शकुनि नामक ऋषि रहते थे ॥१८४॥ वे तपस्या तथा अध्ययन के तेज से ब्रह्माजी के समान थे । उनके रेवती नामक पत्नी के गर्भ से ग्रह के समान नव पुत्र उत्पन्न हुए ॥१८५॥ उनके नाम थे- ध्रुव, शील, बुध, तार, ज्योतिष्मान । ये सभी अग्निहोत्र करने वाले गृहस्थ थे ॥१८६॥ निर्मोह, जितकाम, ध्यानकोश और गुणाधिक ये चारो पुत्र घर से विरक्त थे ॥१८७॥ ये सन्यास ग्रहण करके सभी कामनाओं से रहित हो गये थे । वे एक ही ग्राम में रहते थे तथा सङ्ग तथा परिग्रह से रहित थे ॥१८८॥ वे किसी से कोई आशा नहीं रखते थे तथा कोई प्रयत्न भी नहीं करते थे । वे सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले को एक समान देखते थे जिस किसी भी वस्तु को पहने रहते थे और किसी से भी भोजन प्राप्त कर लेते थे ॥१८९॥ वे सायंकाल कुछ लेते थे तथा सदा भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहते थे । उन लोगों ने निद्रा और आहार पर विजय प्राप्त कर लिया था । वायु तथा शीत को सहते रहते थे ॥१९०॥ वे सम्पूर्ण चराचर जगत् को विष्णु स्वरूप मानते थे । वे लीला पूर्वक

एवं ते तव विप्रस्य पूर्वमष्टमजन्मनि। तिष्ठतो मध्यदेशेषु पुत्रदारकुटुम्बिनः ॥१९३॥
गेहं तावकमाजग्मुर्मध्याह्ने क्षुत्पिपासिताः। वैश्वदेवान्तरे काले त्वया दृष्टा गृहाङ्गणे ॥१९४॥
सगद्गदं साश्रुनेत्रं सहर्षं च ससम्भ्रमम्। दण्डवत्प्रणिपातेन बहुमानपुरःसरम्॥१९५॥

प्रणम्य चरणौ मूर्ध्ना कृत्वा पाणियुगाञ्जलिम् ।
तदाभिनन्दिताः सर्वे तया सूनृतया गिरा ॥१९६॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं तथा ।
अद्य विष्णुः प्रसन्नो मे सनाथोऽद्यास्मि पावनः ॥१९७॥
धन्योऽस्म्यद्य गृहं धन्यं धन्या अद्य कुटुम्बिनः ।
ममाद्य पितरो धन्या धन्या गावः श्रुतं धनम् ॥१९८॥

अदृष्टौ भवतां पादौ तापत्रयहरौ मया। भवतां दर्शनं यस्माद्धन्यस्यैव हरेरिव ॥१९९॥
एवं सम्पूज्य कृत्वा तु पादप्रक्षालनं तथा। धृतं मूर्ध्नि विशांश्रेष्ठ ! श्रद्धया परया तदा ॥२००॥

यत्र पादोदकं वैश्य ! श्रद्धया शिरसा धृतम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्भावपुरःसरम् ॥२०१॥

सम्पूज्य सुन्दरान्नेन भोजिता यतयस्तथा। तृप्ता परमहंसास्ते विश्रान्तामन्दिरे निशि ॥२०२॥

ध्यायन्तश्च परं ब्रह्म यज्ज्योतिर्ज्योतिषां मतम् ।
तेषामातिथ्यजं पुण्यं जातं यत्ते विशांवर ! ॥२०३॥

पृथवी पर संचरण करते थे तथा परस्पर में मौन रहते थे ॥१९१॥ वे धन प्राप्ति के लिए कोई भी काम नहीं करते थे, वे योगी थे । ज्ञानी, संदेह रहित था चेतनों के विकार के विषय में चतुर थे ॥१९२॥ इससे पहले आठवें जन्म में तुम उनके प्रिय मित्र थे । तुम मध्य देश में अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ रहते थे ॥१९३॥ वे सब दोपहर की बेला में भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर तुम्हारे द्वार पर आये। उस समय तुम बलि वैश्य देव कर रहे थे । उन सबों को तुमने अपने आंगन में देखा ॥१९४॥ तुमने गद्गद होकर अपनी आँखों में आँसू भरकर शीघ्रता से पृथिवी पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया । उसके बाद उनके चरणों पर शिर रखकर प्रणाम करके तथा हाथ जोड़ा । तुम्हारी मधुर वाणी से वे सब प्रसन्न हो गये ॥१९५-१९६॥ तुमने कहा आज मेरा जन्म ओर जीवन दोनीं सफल हो गये । आज मेरे ऊपर भगवान् विष्णु प्रसन्न है । आज मैं सनाथ और पवित्र हो गया ॥१९७॥ तुमने कहा— आज मैं धन्य हो गया, मेरा घर और मरे कुटुम्बी धन्य हो गये । आज मेरे पितृगण धन्य हो गये, गायें, वेद ज्ञान तथा धन सबकुछ धन्य हो गया ॥१९८॥ क्योंकि मैंने तापत्रय विनाशक आपलोगों के चरणों का दर्शन किया है । जिस तरह से श्रीहरि का दर्शन धन्य पुरुष को मिलता है, उसी तरह आपलोगों का दर्शन भी धन्य पुरुष को ही प्राप्त होता है ॥१९९॥ इस तरह उन महर्षियों का पैर धोकर तथा उनकी पूजा करके, श्रद्धा पूर्वक उनके चरणोदक को शिर पर धारण किया ॥२००॥ हे वैश्य ! जहाँ पर चरणोदक था उसको शिरपर धारण करके आपने उन ऋषियों की गन्ध, पुष्प, धूप, द्वीप आदि से पूजा की ॥२०१॥ उसके बाद उन संन्यासियों को अपने सुन्दर अन्न से भोजन कराया । तृप्त होकर उन परमहंसों ने तुम्हारे घर में ही रात्रि में समस्त ज्योतियों के ज्योति स्वरूप परब्रह्म का ध्यान करते हुए विश्राम किया । हे वैश्य श्रेष्ठ ! उन संन्यासियों के आतिथ्य से आपका जो पुण्य उत्पन्न हुआ ॥२०२-२०३॥ उस पुण्य का वर्णन

न तद्वक्त्रसहस्रेण वक्तुं शक्नोम्यहं खलु। भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिनां मतिजीविनः॥२०४॥
मतिमत्सु सुराः श्रेष्ठा नरेषु ब्रह्मजातयः। ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः॥२०५॥
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः। अतएव सुपूज्यास्ते तस्माच्छ्रेष्ठा जगत्त्रये॥२०६॥
तत्सङ्गतिर्विशांश्रेष्ठ ! महापातकनाशिनी। विश्रान्ता गृहिणो गेहे सन्तुष्टा ब्रह्मवेदिनः॥२०७॥
आजन्मसञ्चितं पापं नाशयन्तीक्षणेन वै। सञ्चितं यद्गृहस्थस्य पापमामरणन्तिकम्॥२०८॥
विनिर्दहति तत्सर्वमेकरात्रोषितो यतिः। स्वभ्रात्रे देहि तत्पुण्यं नरकाद्येन मुच्यते॥२०९॥

इति दूतवचः श्रुत्वा ददौ पुण्यं स सत्वरम्।
हृष्टेन चेतसा भ्राता निरयात्सोऽपि निर्गतः॥२१०॥

देवैस्तु पुष्पवर्षेण पूजितौ च दिवंगतौ। ताभ्यां सम्पूजितः सम्यग्गतो दूतो यथागतः॥२११॥

अखिलभुवनबोधं देवदूतस्य वाक्यं निगमवचनतुल्यं वैश्यपुत्रो निशम्य।
स्वकृतसुकृतदानाद्भ्रातरं तारयित्वा सुरपतिवरलोकं तेन सार्द्धं जगाम॥२१२॥

इतिहासमिमं राजन्यः पठेच्छृणुयादपि। स गोसहस्रदानस्य विशोको लभते फलम्॥२१३॥

इति श्रीपद्म महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विकुण्डलश्रीकुण्डलयोःस्वर्गप्राप्तिवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

हजारो मुख से भी नहीं किया जा सकता है। उत्पन्न होने वाले पदार्थों प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। प्राणधारियों में बुद्धिमान जीव श्रेष्ठ हैं। बुद्धिमानों में देवता श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों में भी विद्वान् श्रेष्ठ हैं। विद्वानों में ज्ञानी श्रेष्ठ हैं॥२०४-२०५॥ ज्ञानियों में भी अनुष्ठान परायण श्रेष्ठ हैं। उन सबों में ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। अतएव त्रैलोक्य में सबसे श्रेष्ठ होने के कारण वे पूजनीय हैं॥२०६॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! उन ब्रह्मज्ञानियों की सङ्गति समस्त पापों का विनाश करने वाली होती है। गृहस्थों के घर में संतुष्ट होकर विश्राम करने वाले ब्रह्मज्ञानी पुरुष॥२०७॥ जीवन भर में किये गये समस्त पापों को क्षणभर में विनष्ट कर देते हैं। मरणकाल पार्यन्त के गृहस्थों के जो पाप संचित रहते हैं, उन सबों को एक रात्रि तक विश्राम करने वाले संन्यासी भस्म कर देते हैं। आप उस पुण्य के आठवें भाग को दें दें जिससे कि आपका भाई नरक से छूटकर स्वर्ग लोक को प्राप्त कर ले॥२०८-२०९॥ इस तरह से देवदूत की बातों को सुनकर उस वैश्य ने शीघ्र ही उस पुण्य को प्रदान कर दिया। उसके फलस्वरूप उसका भाई प्रसन्नता पूर्वक नरक से बाहर निकल गया। देवताओं ने उन दोनों के स्वर्ग में जाने पर फूल की वर्षा करके उन दोनों की पूजा की। उन दोनों ने उस देवदूत की पूजा की और वह देवदूत भी चला गया॥२१०-२११॥ सम्पूर्ण जगत् को ज्ञान प्रदान करने वाले देवदूत की वाणी जो वेद वाणी के समान थी, उसको सुनकर वैश्य अपने द्वारा किए गये पुण्य से अपने भाई को तारकर उसी के साथ इन्द्र के श्रेष्ठ लोक में चला गया॥२१२॥ हे राजन् ! जो इस इतिहास को सुनता अथवा पढ़ता है। वह शोक रहित होकर एक हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है॥२१३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण् के तृतीय स्वर्गखण्ड के एकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र सुगन्धं लोकविश्रुतम्। सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥१॥
रुद्रावर्तं ततो गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप !। तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्गलोके महीयते॥२॥
गङ्गायाश्च नर:श्रेष्ठ सरस्वत्याश्च सङ्गमे। स्नातोऽश्वमेधमाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥३॥
तत्र कर्णह्रदे स्नात्वा देवमभ्यर्च्य शङ्करम्। न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति॥४॥
ततःकुब्जाम्रकं गच्छेत्तीर्थसेवी यथाक्रमम्। गोसहस्रमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥५॥
अरुन्धतीवटं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप !। सामुद्रकमुपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥६॥
गोसहस्रफलं विन्देत्स्वर्गलोकं च गच्छति। ब्रह्मावर्त्तं ततो गच्छेद्ब्रह्मचारी समाहितः ॥७॥
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति। यमुनाप्रभवं गच्छेत्समुपस्पृश्य यामुनम् ॥८॥
अश्वमेधफलं लब्ध्वा ब्रह्मलोके महीयते। देवींसङ्क्रमणं प्राप्य तीर्थं त्रैलाक्यविश्रुतम्॥९॥
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति। सिन्धोश्च प्रभवं गत्वा सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥१०॥
तत्रोष्य रजनीः पञ्च दद्याद्बहुसुवर्णकम्। अथ देवीं समासाद्य नरः परमदुर्गमाम्॥११॥
अश्वमेधमवाप्नोति गच्छेच्चौशनसीं गतिम्। ऋषिकुल्यां समासाद्य वसिष्ठं चैव भारत ॥१२॥
वसिष्ठं समतिक्रम्य सर्वे वर्णा द्विजातयः। ऋषिकुल्यां नरः स्नात्वा ऋषिलोकं प्रपद्यते॥१३॥

सुगन्ध तीर्थ तथा रुद्रावर्त आदि तीर्थों का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् तीर्थसेवी को लोकविख्यात सुगन्ध तीर्थ में जाना चाहिए। ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्म लोक में पूजित होता है ॥१॥ हे राजन् ! वहाँ से तीर्थसेवी रुद्रावर्त तीर्थ में जाय। राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥२॥ राजन् गङ्गा और सरस्वती नदी के सङ्गमस्थल में स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक में जाता है ॥३॥ वहाँ कर्णह्रद नामक तीर्थ में स्नान करके तथा शिवजी की पूजा करके मनुष्य कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है वह स्वर्ग लोक में जाता है ॥४॥ उसके बाद तीर्थसेवी क्रमशः कुब्जाम्रक नामक तीर्थ में जाय। ऐसा करके वह एक हजार गायों के दान का फल प्राप्त करके स्वर्गलोक में जाता है॥५॥ हे राजन् ! वहाँ से तीर्थसेवी अरुन्धतीवट नामक तीर्थ में जाय। वहाँ पर समुद्र के जल से आचमन करके तीन रात्रियों तक उपवास करे ॥६॥ ऐसा करने वाला एक हजार गौओं का दान करने का फल प्राप्त करके स्वर्गलोक में जाता है। उसके बाद समाहित तथा ब्रह्मचारी ब्रह्मावर्त तीर्थ में जाय; ऐसा करने वाला तीर्थ सेवी ॥७॥ अश्वमेध याग का फल प्राप्त करके स्वर्गलोक में जाता है। वहाँ से यमुनोत्तरी तीर्थ में जाकर यमुना के जल से आचमन करे ॥८॥ ऐसा करने वाला अश्वमेध याग का फल प्राप्त करके ब्रह्मलोक में जाता है। त्रैलोक्य विख्यात देवीं संक्रमणतीर्थ में जाकर मनुष्य ॥९॥ अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में जाता है। सिद्धों एवं गन्धर्वो से सेवित सिन्धु के उत्पत्तिस्थान में जाकर ॥१०॥ वहाँ पाँच रात्रियों तक निवास करके विपुल मात्रा में सुवर्ण दान करे। उसके बाद परम दुर्गा देवी का जाकर दर्शन करे ॥११॥ ऐसा करने वाला अश्वमेधयाग का फल प्राप्त करके उशना

यदि तत्र वसेन्मासं शाकाहारो नराधिप। भृगुतुङ्गं समासाद्य वाजिमेधफलं लभेत्॥१४॥
गत्वा वीरप्रमोक्षं च सर्वपापैः प्रमुच्यते। कार्त्तिकमाघयोश्चैव तीर्थमासाद्य दुर्लभम्॥१५॥
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति पुण्यकृत्।
ततः सन्ध्यां समासाद्य विद्यातीर्थमनुत्तमम्॥१६॥
उपस्पृशेत्स विद्यानां सर्वासां पारगो भवेत्।
महाश्रमे वसेद्रात्रिं सर्वपापप्रमोचने॥१७॥
एककालं निराहारो लोकान्संवसते शुभान्।
षष्ठकालोपवासेन मासमुष्य महालये॥१८॥
तीर्णस्तारयते जन्तून्दशपूर्वान्दशापरान्। दृष्ट्वा माहेश्वरं पुण्यं परं सुरनमस्कृतम्॥१९॥
कृतार्थः सर्वकृत्येषु न शोचेन्मरणं क्वचित्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विन्देद्बहुसुवर्णकम्॥२०॥
अथ वेतसिकां गच्छेत्पितामहनिषेविताम्। अश्वमेधमवाप्नोति गतिं च परमां व्रजेत्॥२१॥
अथसुन्दरिकां तीर्थं प्राप्य सिद्धनिषेविताम्। रूपस्य भागी भवति दृष्टमेतत्पुरातनैः॥२२॥
ततो ब्राह्मणिकां गत्वा ब्रह्मचारी समाहितः।
पद्मवर्णेन यानेन ब्रह्मलोकं प्रपद्यते॥२३॥
ततश्च नैमिषं गच्छेत्पुण्यं द्विजनिषेवितम्। तत्र नित्यं निवसति ब्रह्मदेवगणैः सह॥२४॥

(शुक्राचार्य) के लोक में जाता है। वहाँ से ऋषि कुल्या तथा वसिष्ठ तीर्थ में जाय ॥१२॥ वसिष्ठ से आगे सभी वर्ण द्विजाति ही हैं ऋषिकुल्या में स्नान करने वाला मनुष्य ऋषि लोक में जाता है ॥१३॥ हे नराधिप ! वहाँ पर एक मास तक शाक का आहार करके निवास करे। फिर भृगुतुङ्ग पर आकर अश्वमेधयाग का फल प्राप्त करे ॥१४॥ वीरप्रमोक्ष तीर्थ में जाकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इस दुर्लभ तीर्थ में कार्तिक तथा माध इन दोनों मासों में जाकर तीर्थ सेवी ॥१५॥ अग्निष्टोम तथा अतिरात्र इन दोनों यागों का फल प्राप्त करता है। उसके बाद सायंकाल विद्या तीर्थ में जाय ॥१६॥ वहाँ पर आचमन करे ऐसा करने वाला मनुष्य समस्त विद्याओं में पारंगत विद्वान् होता है। समस्त पापों का विनाश करने वाले महाश्रम में रात्रि में एक समय निराहार रहकर निवास करे; ऐसा करने वाला पुण्य लोकों में जाता है। वहाँ पर छह कालों में उपवास करके महालय की वेला में एक मास तक निवास करें ॥१८॥ ऐसा करने वाला संसार को पाप करके अपने से पहले के दश पीढ़ी के पूर्वजों तथा बाद के दश पीढ़ियों के पूर्वजों को तार देता है। अत्यन्त पवित्र तथा देवताओं के प्रणम्य माहेश्वर तीर्थ का दर्शन करके ॥१९॥ वह सभी कार्यों के विषय में कृतार्थ हो जाता है। उसे अपनी मृत्यु के विषय में सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह सभी पापों से मुक्त होकर बहुत अधिक सुवर्ण प्राप्त करता है ॥२०॥ उसके बाद ब्रह्मा जी से सेवित वेतसिका तीर्थ में जाय। वहाँ जाने वाला अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है तथा परमागति को प्राप्त करता है ॥२२॥ वहाँ से समाहित ब्रह्मचारी रहकर वह ब्राह्मणिका तीर्थ में जाय। ऐसा करने वाले कमल के समान वर्ण वाले विमान से ब्रह्मलोक में जाता हैं ॥२३॥ वहाँ से ब्राह्मणों के द्वारा सेवित नैमिष तीर्थ में जाय वहाँ पर देवताओं के साथ ब्रह्माजी

नैमिषं प्रार्थयानस्य पापस्यार्द्धं प्रणश्यति। प्रविष्टमात्रस्तु नरः सर्वपापात्प्रमुच्यते॥२५॥
तत्र मासं वसेद्धीरो नैमिषे तीर्थतत्परः। पृथिव्यां यानि तीर्थानि नैमिषे तानि भारत ॥२६॥
अभिषेकं तत्र कृत्वा नियतो नियताशनः। राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥२७॥
पुनात्यासप्तमं चैव कुलं भरतसत्तम !। यस्त्यजेन्नैमिषे प्राणानुपवासपरायणः ॥२८॥
स मोदेत्स्वर्गलोकस्य एवमाहुर्मनीषिणः। नित्यं मेध्यं च पुण्यं च नैमिषं नृपसत्तम॥२९॥
गङ्गोद्भेदं समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः। वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत्सदा ॥३०॥
सरस्वतीं समासाद्य तर्पयेत्पितृदेवताः। सारस्वतेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः ॥३१॥
ततश्च बाहुदां गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप। तत्रोष्य रजनीमेकां स्वर्गलोके महीयते ॥३२॥
देवसत्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः। ततश्च रजनीं गच्छेत्पुण्यां पुण्यजनैर्वृताम् ॥३३॥
पितृदेवार्चनरतो वाजपेयमवाप्नुयात्। विमलाशोकमासाद्य विराजति यथा शशी ॥३४॥
तत्रोष्य रजनीमेकां स्वर्गलोके महीयते। गोप्रतारं ततो गच्छेत्सरयूतीर्थमुत्तमम्॥३५॥
यत्र रामो गतः स्वर्गं सभृत्यबलवाहनः। गेहं त्यक्त्वा पुरा राजंस्तस्य तीर्थस्य तेजसा॥३६॥
रामस्य च प्रसादेन व्यवसायाच्च भारत!। तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा गोप्रतारे नराधिप॥३७॥
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते। रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोमत्यां कुरुनन्दन! ॥३८॥

सदैव निवास करते हैं ॥२४॥ जो नैमिष तीर्थ की प्रार्थना करता है, उसके आधे पाप विनष्ट हो जाते हैं। नैमिष तीर्थ में प्रवेश करते ही समस्त पापों का नाश हो जाता है ॥२५॥ धीर पुरुष वहाँ पर एक मास तक निवास करे। पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं वे सब नैमिषतीर्थ में रहते हैं। वहाँ पर निश्चित मात्रा में भोजन करते हुए स्नान करे। ऐसा करने वाला मनुष्य राजसूय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥२७॥ वह अपनी सात पीढ़ी के वंशजों को पवित्र बना देता है। जो मनुष्य उपवास करते हुए नैमिष क्षेत्र में अपने प्राणों का परित्याग कर देता है ॥२८॥ वह स्वर्गलोक में जाकर आनन्दानुभव करता है, ऐसा मनीषियों ने कहा है। हे राजश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! नैमिष क्षेत्र सदैव पुण्यमय और मेध्य क्षेत्र रहता है ॥२९॥ उसके पश्चात् गङ्गोदूभेद नामक तीर्थ में जाकर मनुष्य तीन रात्रि तक उपवास करे ऐसा करने वाला वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है और वह सदा ब्रह्म स्वरूा बना रहता है ॥३०॥ सरस्वती तीर्थ में जाकर मनुष्य को अपने पितरों का तर्पण करना चाहिए। ऐसा करने वाला सारस्वत लोकों में जाकर आनन्दानुभव करता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥३१॥ हे राजन् ! वहाँ से तीर्थसेवी बाहुदा नदी में जाय, वहाँ पर एक रात्रि निवास करने वाला स्वर्गलोक में पूजित होता है। वहाँ जाने वाला मनुष्य देवसत्र करने का फल प्राप्त करता है। उसके बाद पवित्र पुरुषों से युक्त रजनीतीर्थ में जाना चाहिए ॥३३॥ वहाँ पर पितरों और देवताओं की पूजा करने वाला वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। विमलाशोक नामक तीर्थ में जाकर मनुष्य चन्द्रमा के समान सुशोभित होता है ॥३४॥ वहाँ पर एकरात्रि निवास करने वाला स्वर्गलोक में पूजित होता है। वहाँ पर विद्यमान उत्तम गोप्रतार तीर्थ में जाय ॥३५॥ वहीं पर भगवान् श्रीराम अपने भृत्यों, सेना और वाहनों के साथ स्वर्ग चले गये। हे राजन् ! उस तीर्थ में गृह का त्याग करके तथा भगवान् श्रीराम की कृपा से एक रात्रि निवास करके तथा गोप्रतार तीर्थ में स्नान करके मनुष्य ॥३६-३७॥ स्वर्ग लोक में पूजित होता है। हे कुरुनन्दन !

अश्वमेधमवाप्नोति पुनाति स्वकुलं नरः । शतसाहस्रकं तत्र तीर्थं भरतसत्तम॥३९॥
तत्रोपस्पर्शनं कृत्वा नियतो नियताशनः । गोसहस्रफलं पुण्यमाप्नोति भरतर्षभ !॥४०॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ ऊर्ध्वस्थानमनुत्तमम्। कोटितीर्थे नरः स्नात्वा अर्चयित्वा गुहं नृप॥४१॥
गोसहस्रफलं विन्देत्तेजस्वी चापि जायते। ततो वाराणसीं गत्वा पूजयित्वा वृषध्वजम् ॥४२॥
कपिलानां ह्रदे स्नात्वा राजसूयफलं लभेत् ।
मार्कण्डेयस्य राजेन्द्र ! तीर्थमासाद्य दुर्लभम् ॥४३॥
गोमतीगङ्गयोश्चैव सङ्गमे लोकविश्रुते। अग्निष्टोममवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्॥४४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे सुगन्धतीर्थरुद्रावर्तादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

वाराणस्याश्च माहात्म्यं संक्षेपात्कथितं त्वया ।
विस्तरेण मुने ! ब्रूहि तदा प्रीणाति मे मनः ॥१॥

नारद उवाच

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि वाराणस्या गुणाश्रयम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२॥

गोमती नदी के रामतीर्थ में स्नान करके ॥३८॥ मनुष्य अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है । ऐसा करने वाला वह अपने वंश को पवित्र बना देता है । हे भरतश्रेष्ठ ! वहाँ पर एक लाख तीर्थ हैं ॥३९॥ वहाँ पर नियमपूर्वक नियत भोजन करने वाला आचमन करके एक हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥४०॥ वहाँ से सर्वोत्तम ऊर्ध्व स्थान में जाना चाहिए । वहाँ पर कोटितीर्थ में स्नान करके तथा कार्तिकेय की पूजा करके ॥४१॥ तीर्थ सेवी एक हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है तथा तेजस्वी होता है । वहाँ से वाराणसी जाकर तथा वहाँ पर शङ्करजी की पूजा करके ॥४२॥ कपिला ह्रद में स्नान करके मनुष्य राजसूय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है । हे राजेन्द्र! दुर्लभ मार्कण्डेय तीर्थ में जाकर ॥४३॥ गोमती तथा गङ्गा के लोक विख्यात सङ्गम स्थल पर स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है ॥४४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३२॥

वाराणसी की महिमा

युधिष्ठिर ने कहा— आपने मुझे वाराणसी का माहात्म्य संक्षेप में बतलाया है, हे मुने ! उसे आप मुझे विस्तार से बतलायें जिससे मेरा मन प्रसन्न हो ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** मैं वाराणसी के

मेरुशृङ्गे पुरा देवमीशानं त्रिपुरद्विषम्। देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत॥३॥

देव्युवाच

देवदेव ! महादेव ! भक्तनामार्तिनाशन !। कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति ॥४॥

साङ्ख्ययोगस्तथा ध्यानं कर्मयोगोऽथ वैदिकः ।
आयासबहुला लोके यानि चान्यानि शङ्कर ! ॥५॥

येन विश्रान्तचित्तानां योगिनां कर्मिणामपि। दृश्यो हि भगवान्सूक्ष्मः सर्वेषामथ देहिनाम् ॥६॥

एतद्गुह्यतमं ज्ञानं गूढं शक्रादिसेवितम् । हिताय सर्वभूतानां ब्रूहि कामाग्निनाशनम् ॥७॥

ईश्वर उवाच

अवाच्यमत्रविज्ञानं ज्ञानमज्ञैर्बहिष्कृतम् । वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभिः ॥८॥

परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी। सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी॥९॥

तत्र भक्त्या महादेवि ! मदीयं व्रतमास्थिताः ।
निवसन्ति महात्मानः परं नियममास्थिताः ॥१०॥

उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च यत् । ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम ॥११॥

स्थानान्तरपवित्राणि तीर्थान्यायतानि च। श्मशानसंस्थितान्येव दिव्यभूमिगतानि च ॥१२॥

भूलोके नैव संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम्। अमुक्तास्तत्र पश्यन्ति मुक्ताः पश्यन्ति चेतसा॥१३॥

श्मशानमेतद्विख्यातमविमुक्तमिति श्रुतम्। कालो भूत्वा जगदिदं संहराम्यत्र सुन्दरि॥१४॥

गुण से संबद्ध आपको इतिहास बतलाता हूँ । उसका श्रवण करने मात्र से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥२॥ प्राचीन काल में सुमेरु पर्वत के शिखर पर त्रिपुर के शत्रु भगवान् शिव बैठे थे । उस समय देवासन पर आकर देवी ने महादेवजी से पूछा ॥३॥ **देवी ने कहा—** हे देवाराध्य भक्तों के कष्ट को विनष्ट करने वाले महादेव ! कोई भी आराधक आपका शीघ्र दर्शन कैसे प्राप्त करता है ?॥४॥ हे शङ्कर ! सांख्य, योग, ध्यान, कर्मयोग, वैदिकसाधन तथा लोक में विद्यमान दूसरे साधन ये सबको सब तो अत्यन्त प्रयास साध्य हैं ॥५॥ जिसके द्वारा विश्रान्तचित्त वाले योगियों तथा कर्मयोगियों तथा सभी शरीर धारियों को आपका सूक्ष्म दर्शन हो ॥६॥ उस अत्यन्त रहस्यमय तथा इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा अनुष्ठित; सभी जीवों का कल्याण करने वाले तथा उनकी कामाग्नि का नाश करने वाले ज्ञान को आप बतलाये ॥७॥ **ईश्वर ने कहा—** अज्ञानियों के द्वारा वहिष्कृत ज्ञान-विज्ञान को यद्यपि नहीं कहना चाहिए फिर भी महर्षियों के द्वारा उक्त उस ज्ञान को मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥८॥ वाराणसी पुरी अत्यन्त रहस्यमय क्षेत्र है; वह सभी जीवों को संसार सागर से पार उतारने वाली है ॥९॥ हे महादेवि ! वहाँ पर भक्तिपूर्वक मेरे व्रत को धारण करने वाले महात्मागण निवास करते हैं । वे श्रेष्ठ ! नियमों का पालन करते हैं ॥१०॥ वह वाराणसी सभी तीर्थों में तथा स्थानों में उत्तम है सभी ज्ञानों में मेरा अविमुक्त ज्ञान उत्तम है ॥११॥ दूसरे स्थानों में पवित्र तीर्थ तथा मन्दिर भी हैं, वे श्मसान में स्थित तथा दिव्य भूमि में विद्यमान भी हैं ॥१२॥ किन्तु अंतरिक्ष में विद्यमान मेरा गृह भूलोक से लगा हुआ है । जो मुक्त नहीं हुए है वे उसका दर्शन करते हैं मुक्त जीव उसको अपने अन्तःकरण में देखते हैं ॥१३॥ यह श्मशान अविमुक्त के नाम से विख्यात है । हे सुन्दरि ! मैं काल का रूप धारण करके जगत् का संहार करता

देवीदं सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतरं मम। मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति च ॥१५॥
दत्तं जप्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राक्षयं भवेत् ॥१६॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम्। अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥१७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च वर्णसङ्कराः ।
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः ॥१८॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते वरानने ॥१९॥
चन्द्रार्द्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहनाः। शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवः॥२०॥
नाविमुक्ते मृतःकश्चिन्नरकं याति किल्विषी। ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥२१॥
मोक्षं सुदुर्ल्लभं मत्वा संसारं चातिभीषणम् ।
अर्चनाचरणे मुक्त्वा वाराणस्यां वसेन्नरः ॥२२॥
दुर्ल्लभा तपसा चापि मृतस्य परमेश्वरि!। यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षणी॥२३॥
प्रसादाज्जायते सम्यङ् मम शैलेन्द्रनन्दिनि ! ।
अप्रवृद्धा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः ॥२४॥
विण्मूत्ररेतसां मध्ये ते वसन्ति पुनःपुनः। हन्यमानोऽपि यो विद्वान्वसेद्विघ्नशतैरपि ॥२५॥
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ।
जन्ममृत्युजरामुक्तं परं यान्ति शिवालयम् ॥२६॥

हूँ ॥१४॥ हे देवि ! यह स्थान सभी गुह्य स्थानों में मुझको अधिक प्रिय है । यहाँ पर मेरे भक्त ही जाते हैं, और मृत्यु के पश्चात् वे मुझमें प्रवेश कर जाते हैं ॥१५॥ वहाँ पर दिये गये दान, किये गये जप, तपस्या, ध्यान, तथा वेदाध्ययन तथा ज्ञान ये सबके सब अक्षय फलप्रद होते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में जाता है उसके हजारों जन्मों में किए हुए सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१७॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसङ्कर, स्त्रियाँ म्लेक्ष तथा दूसरे सङ्कीर्ण पापयोनियों के जीव ॥१८॥ कीड़े, चींटी तथा दूसरे पशु-पक्षी, समयानुसार अविमुक्त क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त करके ॥१९॥ शङ्कर स्वरूप हो जाते हैं उनके तीन नेत्र हो जाते हैं, तथा महावृषभ पर सवार होकर मङ्गलमय मेरे लोक में चले जाते हैं ॥२०॥ अविमुक्त क्षेत्र में मरने वाला पापी भी नरक में नहीं जाता है । शङ्करजी की कृपा प्राप्त करके सबके सब परमगति को प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥ मनुष्य को चाहिए कि मोक्ष को दुर्लभ मानकर तथा संसार को अत्यन्त भयङ्कर मानकर किसी भी तरह वाराणसी में निवास करे ॥२२॥ हे देवि! विपन्न व्यक्ति की तपस्या के द्वारा भी दुर्लभ संसार से मुक्ति लाने वाली गति दुर्लभ है ॥२३॥ पार्वति! उन जीवों को परमागति की प्राप्ति मेरी कृपा से ही प्राप्त होती है; किन्तु जिन सबों का ज्ञान समृद्ध नहीं हुआ है, वे जीव मेरी माया से मोहित होने के कारण उस वाराणसी का दर्शन नहीं करते हैं ॥२४॥ वे जीव बार-बार मल, मूत्र में निवास करते हैं । जो विद्वान् अनेक प्रकार के विघ्नों से विघ्नित होकर भी वाराणसी में निवास करते हैं ॥२५॥ वे उस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करते हैं जहाँ जाकर शोक करने

अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम् ।
यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्यन्ति पण्डिताः ।।२७।।
न दानैर्न तपोभिश्च यज्ञैर्नापि विद्यया। प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा याऽविमुक्ते तु लभ्यते।।२८।।
नानावर्णा विवर्णाश्च चाण्डालाद्या जुगुप्सिताः ।
किल्बिषैः पूर्णदेहाश्च विशिष्टैः पातकैस्तथा ।।२९।।
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः। अविमुक्तं परं ज्ञानमविमुक्तं परं पदम् ।।३०।।
अविमुक्तं परं तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम्। कृत्वा वै नैष्ठिकीं दीक्षामविमुक्ते वसन्ति ये।।३१।।
तेषां तत्परमं ज्ञानं ददाम्यन्ते परं पदम् । प्रयागं नैमिषारण्यं श्रीशैलोऽथ महाबलम् ।।३२।।
केदारं भद्रकर्णं तु गयापुष्करमेव च । कुरुक्षेत्रं भद्रकोटिर्नर्मदाऽऽम्रातकेश्वरी ।।३३।।
शालग्रामं च कुब्जाम्रं कोकामुखमनुत्तमम्। प्रभासं विजयेशानं गोकर्णं भद्रकर्णकम् ।।३४।।
एतानि पुण्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि ह ।
न यास्यन्ति परं तत्त्वं वाराणस्यां यथा मृताः ।।३५।।
वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी । प्रविष्टा नाशयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृतम्।।३६।।
अन्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्धं दानं तपो जपः ।
व्रतानि सर्वमेवैतद्वाराणस्यां सुदुर्ल्लभम् ।।३७।।
जपेच्च जुहुयान्नित्यं ददात्यर्चयतेऽमरान् । वायुभक्षश्च सततं वाराणस्यां स्थितो नरः ।।३८।।

की आवश्यकता नहीं होती है । वे जन्म, मृत्यु तथा जरा से रहित होकर मेरे शिवालय में चले जाते हैं ।।२६।। जिनको फिर मरना नहीं पड़ता है, वही मोक्ष चाहने वालों की गति होती है । उसको प्राप्त करके मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है, यह पण्डितों का मानना है ।।२७।। जो गति अविमुक्त क्षेत्र में प्राप्त होती है, उसकी प्राप्ति दान, तपस्या, यज्ञ तथा विद्या के द्वारा नहीं होती है ।।२८।। अनेक वर्णों वाले तथा वर्ण रहित चाण्डाल आदि निन्दित गति के जीव जो पूर्वजन्म के पापों से पाप विशिष्ट रहते हैं।।२९।। उन सबों के लिए सर्वोत्तम औषध अविमुक्त क्षेत्र है यह विद्वानों का मानना है । अविमुक्त ही परम ज्ञान है, वही परमपद है ।।३०।। अविमुक्त क्षेत्र ही परंतत्त्व है तथा परम कल्याणकारी हैं । जो मनुष्य नैष्ठिकी दीक्षा को प्राप्त करके अविमुक्त क्षेत्र में निवास करते हैं ।।३१।। उन जीवों को मैं उस परम ज्ञान को प्रदान करके परमपद प्रदान कर देता हूँ । प्रयाग, नैमिषारण्य, श्रीशैल तथा महाबल ।।३२।। केदार तीर्थ, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, भद्रकोटि, भद्रा नदी, अम्रातकेश्वरी तीर्थ ।।३३।। शालग्राम क्षेत्र, कुब्जाम्रातक क्षेत्र, सर्वोत्तम तीर्थ कोकामुख प्रभास क्षेत्र, विजयेश तीर्थ, गोकर्ण तीर्थ तथा भद्रकर्णक तीर्थ ।।३४।। ये सभी तीर्थ त्रैलोक्य में पुण्य युक्त रूप से प्रख्यात हैं । किन्तु इन तीर्थों में भी जाने वाले जीव उस परंतत्त्व को उस तरह से नहीं प्राप्त करते हैं जिसतरह से वाराणसी में मरने वाले प्राप्त करते हैं ।।३५।। विशेष रूप से त्रिपथगामिनी गङ्गा वाराणसी में जाने मात्र से सैकड़ों जन्मों के पापों को विनष्ट कर देती है ।।३६।। दूसरे स्थान में गङ्गा हैं किन्तु वाराणसी में गङ्गा में श्राद्ध, दान जप, तप ये सबके सब अत्यन्त दुर्लभ हैं ।।३७।। अतएव वाराणसी में सदा जप होम तथा दान एवं देवपूजन करते रहना चाहिए । वाराणसी में वायु पीकर रहने वाला मनुष्य ।।३८।। चाहे अधार्मिक हो, शठ हो या पापी हो, वह वाराणसी

यदि पापो यदि शठो यदि वाऽधार्मिको नरः ।
वाराणसीं समासाद्य पुनाति सकलं कुलम् ॥३९॥
वाराणस्यां येऽर्चयन्ति महादेवं स्तुवन्ति वै ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते विज्ञेया गणेश्वराः ॥४०॥
अन्यत्र योगज्ञानाभ्यां संन्यासादथवाऽन्यतः। प्राप्यते तत्परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मनाम् ॥४१॥
ये भक्ता देवदेवेशि ! वाराणस्यां वसन्ति वै ।
ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना ॥४२॥
यत्र योगस्तथाज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना। अविमुक्तं तदासाद्य नान्यदिच्छेत्तपोवनम् ॥४३॥
यतो मयाऽविमुक्तं तदविमुक्तं ततः स्मृतम् ।
तदेव गुह्यं गुह्यानामेतद्विज्ञानमुच्यते ॥४४॥
ज्ञानाज्ञानाभिनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम् । या गतिर्विदिता सुभ्रूः ! साऽविमुक्ते मृतस्य तु॥४५॥
यानि चैवाविमुक्तस्य देहे दृष्टानि कृत्स्नशः ।
पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्योऽप्यधिका शुभा ॥४६॥
यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः । व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तये ॥४७॥
यत्तत्परतरं तत्त्वमविमुक्तमिति श्रुतम् । एकेन जन्मना देवि ! वाराणस्यां तदाप्नुयात् ॥४८॥
भ्रूमध्ये नाभिमध्ये च हृदये चैव मूर्धनि। यथाऽविमुक्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम् ॥४९॥
वरणायास्तथाचास्या मध्ये वाराणसी पुरी। तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवं विमुक्तकम् ॥५०॥
वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति ।
यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवीश्वरः ॥५१॥

के संयोग के कारण अपने सम्पूर्ण वंश को पवित्र बना देता है ॥३९॥ वाराणसी में जो लोग महादेव की पूजा तथा स्तुति करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर गणेश्वर हो जाते हैं ॥४०॥ दूसरे स्थानों में योग तथा ज्ञान अथवा संन्यास के द्वारा हजारों जन्मों के द्वारा उस श्रेष्ठ स्थान की प्राप्ति होती है॥४१॥ हे देवेशि ! जो भक्त वाराणसी में निवास करते हैं वे एक ही जन्म में परं मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ॥४२॥ जहाँ पर एक ही जन्म में योग, ज्ञान तथा मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, उस अविमुक्त क्षेत्र को प्राप्त करके दूसरे तपोवन की कामना नहीं करनी चाहिए ॥४३॥ चूकि मैं कभी भी वाराणसी का त्याग नहीं करता हूँ, इसीलिए उसको अविमुक्त क्षेत्र कहा जाता है । वह सभी गोपनीयों में अधिक गोपनीय है, इसी को विज्ञान कहते हैं ॥४४॥ ज्ञाननिष्ठ या अज्ञान निष्ठों को परमानन्द प्रदान करने की इच्छा से जो गति बतलायी गयी है उस गति की प्राप्ति अविमुक्त क्षेत्र में मरने वालों को हो जाती है ॥४५॥ अविमुक्त के शरीर में जो लक्षण पूर्णरूप से देखे जाते हैं, उन सबों से अधिक कल्याण करने वाली वाराणसी पुरी है ॥४६॥ जिस वाराणसी में मृत्यु हो जाने पर अविमुक्त प्राणी को साक्षात् महादेव तारका मन्त्र का उपदेश देते हैं ॥४७॥ वही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व अविमुक्त कहा जाता है । हे देवि ! उस तत्त्व को मनुष्य वाराणसी में प्राप्त कर लेता है ॥४८॥ भौहों के बीच में, नाभिमण्डल में, हृदय प्रदेश में, मूर्धा प्रदेश में तथा आदित्य में जिस तरह से विमुक्त रहता है, उसीतरह वाराणसी में भी वह रहता है ॥४९॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। उपासते यं सततं देवदेवः पितामहः ॥५२॥
महापातकिनो देवि ! ये तेभ्यः पापकृत्तमाः ।
वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥५३॥
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद्वै मरणान्तकम्। वाराणस्यां महादेवाज्ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते॥५४॥
किं तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसः। ततो नैवाचरेत्पापं कायेन मनसा गिरा ॥५५॥
एतद्रहस्यं देवानां पुराणानां च सुव्रते। अविमुक्ताश्रयं ज्ञानं न कश्चिद्वेत्ति तत्त्वतः ॥५६॥

नारद उवाच

देवतानामृषीणां च शृण्वतां परमेष्ठिनाम्। देवदेवेन कथितं सर्वपापविनाशनम् ॥५७॥
यथानारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः। यथेश्वराणां गिरिशः स्थानानामेतदुत्तमम्॥५८॥
यैः समाराधितो रुद्रः पूर्वस्मिन्नेकजन्मनि । ते विन्दन्ति परं क्षेत्रमविमुक्तं शिवालयम्॥५९॥
कलिकल्मषसम्भूता येषामपहता मतिः । न तेषां वेदितुं शक्यं स्थानं तत्परमेष्ठिनः॥६०॥
ये स्मरन्ति सदा कालं बदन्ति च पुरीमिमाम् ।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम् ॥६१॥
यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः ।
नाशयेत्तानि सर्वाणि देवःकालतनुःशिवः ॥६२॥
आगच्छेत्तदिदंस्थानं सेवितं मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
मृतानां च पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे ॥६३॥

वरुणा तथा अस्सी के बीच में वाराणसी पुरी विद्यमान हैं वहीं पर सदैव विमुक्त तत्त्व स्थित रहता है।॥५०॥ वाराणसी से श्रेष्ठ कोई स्थान न तो हुआ और न होगा । वहाँ पर भगवान् नारायण, महादेव, इन्द्र, सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस तथा देवाराध्य ब्रह्माजी वाराणसी की उपासना करते हैं ॥५२॥ हे देवि ! जो महापातकी तथा पातकी जीवों से भी अधिक पाप करने वाले हैं वे भी जीव वाराणसी में आकर परमागति को प्राप्त कर लेते हैं ॥५३॥ इसीलिए मुमुक्षु जीवों को मृत्युकाल पर्यन्त वाराणसी में निवास करते रहना चाहिए । वाराणसी में भगवान् शिव से ज्ञान प्राप्त करके वह मुक्त हो जाता है।॥५४॥ किन्तु पाप के कारण वाराणसी में रहने में विघ्न होते हैं । अतएव मुमुक्षु जीवों को शरीर, वाणी और मन से भी पाप नहीं करना चाहिए ॥५५॥ हे सुन्दर व्रतवाली देबि ! यह देवताओं तथा पुराणों का रहस्य हैं, अविमुक्त में रहने वाले ज्ञान को कोई भी ठीक से नहीं जानता है ॥५६॥ **नारदजी ने कहा—** इस बात को देवाराध्य शिवजी ने देवताओं, ऋषियों, तथा ब्रह्माजी के समक्ष कहा है । यह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है ॥५७॥ जिसतरह से सभी देवताओं में पुरुषोत्तम भगवान् नारायण श्रेष्ठ हैं तथा जैसे ईश्वरों में शङ्करजी श्रेष्ठ हैं, उसीतरह स्थानों में वाराणसी श्रेष्ठ है ॥५८॥ जिसने अनेक पूर्व जन्मों में शङ्करजी की आराधना की है, वे ही लोग भगवान् शिव के निवास स्थान अविमुक्त क्षेत्र में आते हैं ॥५९॥ कलि के पापों से जिनकी मति मारी गयी है, वे लोग इस परमेष्ठी के स्थान को नहीं जान सकते हैं ॥६०॥ जो लोग इस पुरी को सदा स्मरण करते हैं तथा इसकी चर्चा करते हैं, उन लोगों के लोक तथा परलोक में शीघ्र ही समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥६१॥ वाराणसी में रहकर जो लोग

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः । योगी वाप्यथवाऽयोगी पापी वा पुण्यकृत्तमः ॥६४॥
न लोकवचनात्पित्रोर्न चैव गुरुवादतः । मर्तिर्न क्रमणीयास्यादविमुक्तगतिं प्रति ॥६५॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विस्तरेण वाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

तत्रेदं विमलंलिङ्गमोङ्कारं नाम शोभनम् । यस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥१॥
एतत्परतरं ज्ञानं पञ्चायतनमुत्तमम् । सेवितं मुनिभिर्नित्यं वाराणस्यां विमोक्षणम् ॥२॥
तत्र साक्षान्महादेवःपञ्चायतनविग्रहः । रमते भगवान्रुद्रो जन्तूनामपवर्गदः ॥३॥
एतत्पाशुपतंज्ञानं पञ्चायतनमुच्यते । तदेतद्विमलं लिङ्गमोङ्कारं समुपस्थितम् ॥४॥
शान्त्यतीता तथा शान्तिर्विद्याचैवापरावरा । प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चात्मं लिङ्गमैश्वरम् ॥५॥
पञ्चानामपि लिङ्गानां ब्रह्मादीनां समाश्रयम् । ॐकारबोधकंलिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते ॥६॥
संस्मरेदीश्वरंलिङ्गं पञ्चायतनमव्यम् । देहान्ते परमं ज्योतिरानन्दं विशते बुधः ॥७॥
तत्र देवर्षयःपूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा । उपास्य देवमीशानमापुरन्ते परंपदम् ॥८॥

पाप करते हैं, उनके सारे पापों को काल शरीरक भगवान् शिव विनष्ट कर देते हैं ॥६२॥ अतएव मोक्ष चाहने वाले को इस वाराणसी पुरी में आना चाहिए । वाराणसी में मरने वालों को पुनःसंसार में जन्म नहीं होता है ॥६३॥ अतएव योगी, अयोगी, पापी तथा पुण्यवान् सभी लोगों को सारा प्रयास करके वाराणसी में निवास करना चाहिए ॥६४॥ अविमुक्त क्षेत्र में प्राप्त होने वाली गति के विषय में माता, पिता तथा गुरु के वचन का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए ॥६५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के तैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३३।।

वाराणसी के कृत्तिवासेश्वर तीर्थ का वर्णन

नारदजी ने कहा— वाराणसी में अत्यन्त पवित्र ओंकारेश्वर नामक शिवलिङ्ग हैं उसका स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ वाराणसी में इस पंचायतन नामक श्रेष्ठ ज्ञान जो मुक्ति प्रदान करने वाला है, उसका मुनिजन सदैव सेवन करते हैं ॥२॥ वहाँ पर साक्षात् महादेव का पञ्चायतन विग्रह है । जीवों को मोक्ष देने वाले वे सदा वहाँ पर रमण करते हैं ॥३॥ यहाँ पाशुपत ज्ञान ही पञ्चायतन कहलाता है । वही वहाँ पर निर्मल ओङ्कारेश्वर के रूप में विद्यमान है ॥४॥ शान्त्यति, शान्ति, परा तथा अपराविद्या प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति यह ईश्वर का पञ्चायतन लिङ्ग हैं ॥५॥ पाञ्चों लिङ्गों तथा ब्रह्मा आदि का आश्रय भूत ओङ्कार का बोधक लिङ्ग पञ्चायतन कहा जाता है ॥६॥ शङ्करजी के

मत्स्योदर्यास्तटेपुण्ये स्थानं गुह्यतमं शुभम्। गोचर्ममात्रं राजेन्द्रॐकारेश्वरमुत्तमम् ॥९॥
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं मध्यमेश्वरमुत्तमम्। विश्वेश्वरं तथोङ्कारं कन्दर्पेश्वरमेव च ॥१०॥

एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्यां युधिष्ठिर ! ।
न कश्चिदिह जानति बिना शम्भोरनुग्रहात् ॥११॥
कृत्तिवासेश्वरस्यैव माहात्म्यं शृणु पार्थिव ।
तस्मिन्स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा शिवान्तिकम् ॥१२॥

ब्राह्मणान्हन्तुमायतो यत्र नित्यमुपासते। तेषांलिङ्गान्महादेवः प्रादुरासीत्त्रिलोचनः ॥१३॥
रक्षणार्थं महादेवो भक्तानां भक्तवत्सलः। हत्वा गजाकृतिं दैत्यं शूलेनावज्ञया हरः ॥१४॥
वासस्तस्याकरोत्कृत्तिं कृत्तिवासेश्वरस्ततः। तत्र सिंद्धि परां प्राप्ता मुनयो हि युधिष्ठिर ॥१५॥
तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत्परमं पदम्। विद्या विद्येश्वरा रुद्राःशिवा ये च प्रकीर्तिताः॥१६॥
कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गं नित्यमाश्रित्य संस्थिताः। ज्ञात्वा कलियुगं घोरमधर्मबहुलं जनाः ॥१७॥
कृत्तिवासं न मुञ्चन्ति कृतार्थस्तेन संशयः। जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षो यच्चाप्यते न वा ॥१८॥
एकेन जन्मना मोक्षःकृत्तिवासेऽत्र लभ्यते। आलयं सर्वसिद्धानामेतत्स्थानं वदन्ति हि ॥१९॥
गोपितं देवेदेवेन महादेवेनशम्भुना। युगे युगे ह्यत्रदान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥२०॥
उपासते महात्मानं जपन्ति शतरुद्रियम्। स्तुवन्ति सततं देवं त्र्यम्बकं कृत्तिवाससम् ॥
ध्यायन्ति हृदये देवं स्थाणुं सर्वान्तरं शिवम् ॥२१॥

निर्विकार लिङ्ग पञ्चयातन का स्मरण करने वाला पुरुष मृत्यु के पश्चात् परमानन्द ज्योति में प्रवेश कर जाता है ॥७॥ वहाँ पर पूर्वकाल में देवर्षिगण तथा ब्रह्मर्षिगण सिद्ध हो गये । यहाँ पर वे शङ्करजी की आराधना करके परमपद को प्राप्त कर लिए ॥८॥ हे राजन् ! मत्स्योदरी के तट पर अत्यन्त गोपनीय शुभ स्थान है । वहाँ पर ओङ्कारेश्वर गोचर्म स्वरूप है ॥९॥ हे युधिष्ठिर ! वाराणसी में कृवि वासेश्वर लिङ्ग मध्यमेश्वर लिङ्ग, विश्वेश्वर लिङ्ग, ओङ्कारेश्वर तथा कन्दर्पेश्वर ये पाञ्चलिङ्ग अत्यन्त गोपनीय हैं । इन लिङ्गों को भगवानृ शिव की कृपा के बिना कोई भी नहीं जान सकता है ॥१०-११॥ हे राजन् ! कृतिवासेश्वर के माहात्म्य को आप सुनें । पूर्वकाल में वहाँ पर एक दैत्य हाथी का रूप धारण करके शिवजी के सन्निकट ॥१२॥ बाह्मणों को मारने के लिए जहाँ पर वे ब्राह्मण उपासना करते थे वहाँ पर आया उस समय उन लिङ्गों से भक्तवत्सल त्रिलोचन भगवान् अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए प्रकट हो गये। उन्होंने लीला पूर्वक अपने त्रिशूल से उस दैत्य को मार दिया ॥१४॥ और उस असुर के चमड़े को अपना वस्त्र बना लिया इसीलिए वे कृतिवासेश्वर कहलाते हैं । हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर मुनियों ने परमासिद्धि को प्राप्त किया है ॥१५॥ वे मुनिगण अपने उसी शरीर से परम् पद को प्राप्त कर लिए । वे विद्या, विद्येश्वर, रुद्र, शिव कहे जाते हैं ॥१६॥ पहले वे कृतिवासेश्वर लिङ्ग के ही सन्निकट में सदा रहते थे। भयङ्कर कलियुग तथा अधार्मिक लोगों को जानकर ॥१७॥ वे कभी भी कृतिवास को नहीं छोड़ते हैं, अतएव वे कृतार्थ हैं । जहाँ हजारो जन्म में कोई प्राणी मोक्ष प्राप्त कर लेता है कि नहीं यह संशय बना रहता है ॥१८॥ कृतिवास शिव के सन्निकट एक ही जन्म में मोक्ष मिल जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है । इस स्थान को सभी सिद्धों का आश्रय बतलाया गया है ॥१९॥ यहाँ पर भगवान् शिव के

गायन्ति सिद्धा किल गीतकानि वाराणसीं ये निवसन्ति विप्राः ।
तेषामथैकेन भवेद्विमुक्तिर्ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः ॥२२॥
सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्टं सुदुर्लभं विप्रकुलेषु जन्म ।
ध्याने समाधाय जपन्ति रुद्रं ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम् ॥२३॥
आराधयन्ति प्रभुमीक्षितारं वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्राः ।
यजन्ति यज्ञैरभिसन्धिहीना स्तुवन्ति रुद्रं प्रणमन्ति शम्भुम् ॥२४॥
नमो भवायामलयोगधाम्ने स्थाणुं प्रपद्येगिरिशं पुराणम् ।
स्मरामि रुद्रं हृदये निविष्टं जाने महादेवमनेकरूपम् ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वाराणसीस्थकृत्तिवासेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पैंतिसवाँ अध्याय

नारद उवाच

अथान्यत्तत्र वै लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम् । स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितॄन्नृप ! ॥१॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो भक्तिं मुक्तिं च विन्दति ।
पिशाचमोचनं नाम तीर्थमन्यत्ततः स्थितम् ॥२॥

द्वारा रक्षित होकर प्रत्येक युग में जितेन्द्रिय वेद पारंगत ब्राह्मण ॥२०॥ शङ्करजी की उपासना करते हैं और शतरुद्रिय सूक्त का पाठ करते हैं । वे सदा कृत्तिवास शिवजी की स्तुति करते हैं और अपने हृदय में सबों की अन्तरात्मा शिवजी का ध्यान करते हैं ॥२१॥ सिद्ध पुरुष यह गीत गाते हैं कि वाराणसी में रहने वाले ब्राह्मण जो कृत्तिवास शिव की उपासना करते हैं; वे एक ही जन्म में मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥२२॥ संसारी जीवों के लिए अभीष्ट ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर ध्यान में समाहित होकर वे रुद्र का ध्यान करते हैं ॥२३॥ वाराणसी में रहने वाले बड़े-बड़े मुनिजन भगवान् शिव की आराधना करते हैं । वे निष्काम होकर रुद्र की पूजा करते हैं तथा शिवजी को प्रणाम करते हैं ॥२४॥ वे कहते हैं-निर्मल योग के आश्रय स्वरूप शिवजी को नमस्कार है, तथा पुराण पुरुष शम्भु की हम शरणागति करते हैं और अनेक रूप वाले गिरिश जो सबों के हृदय में प्रविष्ट हैं, उनका हम स्मरण करते हैं ॥२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के चौंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३४।।

वाराणसी के कपर्दीश्वर और पिशाचमोचन तीर्थ का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे राजन् ! वहाँ पर दूसरा कपर्दीश्वर नामक शिवलिङ्ग है वहाँ पर विधिपूर्वक स्नान करके तथा पितरों का तर्पण करके ॥१॥ मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर भोग तथा मोक्ष को

तत्राश्चर्यमयो देवो मुक्तिदः सर्वदोषहा। कश्चिद्दैत्यो जगामेदं शार्दूलो घोररूपधृक् ॥३॥
मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरमुत्तमम्। तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४॥

धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता ।
तां विदार्य नखैस्तीक्ष्णैः शार्दूलः स महाबलः ॥५॥
जगाम चान्यं विजनं देशं दृष्ट्वा मुनीश्वरान् ।
मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी ॥६॥

अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा। त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितमूर्द्धजा ॥७॥
वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव संवृता। पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति खेचरास्तत्समन्ततः ॥८॥

गणेश्वरी स्वयं भूत्वा न दृष्टा तत्क्षणात्ततः ।
दृष्ट्वा तदाश्चर्यवरं प्रशशंसुः सुरादयः ॥९॥

तन्महेशस्य वै लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम्। स्मृत्वैवाशेषपापौघात्क्षिप्रमेव विमुच्यते ॥१०॥

कामक्रोधादयो दोषा वाराणसीनिवासिनाम् ।
विघ्नाः सर्वे विनश्यन्ति कपर्दीश्वरपूजनात् ॥११॥

तस्मात्सदैव द्रष्टव्यः कपर्दीश्वर उत्तमः। पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैःस्तवैः ॥१२॥

ध्यायतां चात्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम् ।
जायते योगसिद्धिः सा षण्मासेन न संशयः ॥१३॥
ब्रह्महत्यादयः पापा विनश्यन्त्यस्य पूजनात् ।
पिशाचमोचने कुण्डे स्नातः स्यात्प्रशमो यतः ॥१४॥

प्राप्त करता है । उसके बाद पिशाचमोचन नामक वहाँ तीर्थ है ॥२॥ वहाँ पर शङ्करजी आश्चर्यमय हैं। वे सभी दोषों के विनाशक हैं कोई भयङ्कर दैत्य सिंह का रूप बनाकर वहाँ पर गया ॥३॥ वह कपर्दीश्वर के पास किसी मृगी को खाने के लिए गया था । उसके बाद उस व्याघ्र से भयभीत होकर दौड़ती हुयी उस मृगी ने कपर्दीश्वर की बार-बार प्रदक्षिणा की, और अन्त में उसको उस व्याघ्र ने पकड़ लिया । उस महाबलवान् व्याघ्र ने मृगी को नखों से फाड़ दिया ॥४-५॥ उसके बाद वह दूसरे एकान्त स्थान में मुनीश्वरों को देखकर चला गया । कपर्दीश्वर के सामने मरने मात्र से वह मृगी ॥६॥ आकाश में महा ज्वाला के समान दिखायी पड़ी । उसकी कान्ति सूर्य के समान थी । उसके तीन नेत्र, नीलवर्ण का कण्ठ और तथा केशों में चन्द्रमा दिख रहे थे ॥७॥ वह वृषभ पर सवार थी और अपने ही समान पुरुषों से घिरी थी । उसके चारो ओर आकाशचारी जीव पुष्पों की वृष्टि कर रहे थे ॥८॥ वह उसी समय गणेश्वरी हो गयी और उसके बाद पुनः नहीं दिखायी पड़ी । उस आश्चर्यमय वरदान को देखकर देवताओं ने उसकी प्रशंसा की ॥९॥ उस उत्तम कपर्दीश्वर का स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य समस्त पाप समूह से मुक्त हो जाता है ॥१०॥ वाराणसी में निवास करने वालों के काम क्रोध आदि सभी दोष कपर्दीश्वर की पूजा करने मात्र से ही विनष्ट हो जाते हैं ॥११॥ अतएव कपर्दीश्वर का सदा दर्शन, पूजन तथा प्रयत्न पूर्वक वैदिक स्तोत्रों से स्तुति करना चाहिए ॥१२॥ यहाँ पर जो योगिजन शान्त मन से शङ्करजी का ध्यान करते हैं, उनको छह मास में ही सिद्धि मिल जाती है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥१३॥

तस्मिन्क्षेत्रे पुरा विप्रस्तपस्वी संशितव्रतः। शङ्कुकर्ण इतिख्यातः पूजयामास शङ्करम् ॥१५॥
जजाप रुद्रमनिशं प्रणवं ब्रह्मरूपिणाम्। पुष्पधूपादिभिः स्तोत्रैर्नमस्कारैः प्रदक्षिणैः ॥१६॥
उपासीतात्र योगात्मा कृत्वा दीक्षां तु नैष्ठिकीम् ।
कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुधान्वितम् ॥१७॥
अस्थिचर्मपिनद्धाङ्गं विश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः कृपया परया युतः॥१८॥
प्रोवाच को भवान्कस्माद्देशाद्देशमिमं श्रितः ।
तस्मै पिशाचः क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद्वचः ॥१९॥
पूर्वजन्मन्यहं विप्रो धनधान्यसमन्वितः । पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः कुटुम्बभरणोत्सुकः ॥२०॥
न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा ।
न कदाचित्कृतं पुण्यमल्पं वानल्पमेव च ॥२१॥
एकदा भगवान्देवो वृषभेश्वरवाहनः। विश्वेश्वरो वाराणास्यां दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः॥२२॥
तदा चिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागतः । न दृष्टं तन्महाघोरं यमस्य सदनं मुने ॥२३॥
पिपासयाऽधुनाऽऽक्रान्तो न जानामि हिताहितम् ।
यदि कञ्चित्समुद्धर्तुमुपायं पश्यसि प्रभो ! ॥२४॥
कुरुष्व तं नमस्तुभ्यं त्वामहं शरणं गतः। इत्युक्तः शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत् ॥२५॥
त्वादृशो नहि लोकेऽस्मिन्विद्यते पुण्यकृत्तमः ।
यत्त्वया भगवान्पूर्वं दृष्टो विश्वेश्वरः शिवः ॥२६॥

पिशाचमोचन कुण्ड में स्नान करके कपर्दीश्वर की पूजा करने से ब्रह्महत्या आदि के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१४॥ उस क्षेत्र में शंकुकर्ण नामक एक तपस्वी ब्राह्मण ने शङ्करजी की पूजा की ॥१५॥ वह वहाँ पर प्राणवस्वरूप रुद्र का निरन्तर जप करता था । नैष्ठिकी दीक्षा स्वीकार करके वह योगात्मा ब्राह्मण धूप, दीप, स्तोत्र नमस्कार तथा प्रदक्षिणा आदि उपचारों से शङ्करजी की पूजा करता था । उसने एक बार वहाँ पर आये हुए एक भूखे प्रेत को देखा ॥१६-१७॥ उस प्रेत के सारे अङ्ग हड्डी तथा चमड़े से सारे अङ्ग बधें थे । वह बार-बार लम्बी श्वास ले रहा था । उसको देखकर वे मुनि कृपा से परिपूर्ण हो गये ॥१८॥ उन्होंने प्रेत से पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ पर कहाँ से आये हो ? भूख से व्याकुल प्रेत ने उन ब्राह्मण से कहा ॥१९॥ मैं पूर्वजन्म में धनी ब्राह्मण था । मेरे पुत्र, पौत्र भी थे मैं सदा अपने परिवार के पालन में लगा रहथा था ॥२०॥ मैंने कभी भी शिवजी, गायों तथा अतिथियों की पूजा नहीं की । मैंने कभी भी कोई छोटा अथवा बड़ा पुण्य कर्म नहीं किया ॥२१॥ एक बार मैं बैल पर सवार भगवान् शिव का वाराणसी में दर्शन किया उनका स्पर्श करके मैंने नमस्कार किया ॥२२॥ उसके बहुत समय बाद मेरी मृत्यु हो गयी । हे मुने ! उसके कारण मुझे यमलोक में नहीं जाना पड़ा॥२३॥ इस समय मैं प्यास से व्याकुल हूँ; मुझे अपने कल्याण तथा अकल्याण का पता नहीं है। हे प्रभों ! आप यदि मेरे उद्धार का कोई उपाय जानते हों तो ॥२४॥ उस उपाय को आप कर दें मैं आपके शरण में आया हूँ । इस तरह से कहने पर शंकुकर्ण ने उस पिशाच से कहा ॥२५॥ इस लोक में ऐसा कोई भी श्रेष्ठ उपाय नहीं है, जैसा कि तुमने शिवजी का दर्शन किया ॥२६॥ तुमने उनका

संस्पृष्टो वन्दितो भूयः कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि ।
तेन कर्मविपाकेन देशमेतं समागतः ॥२७॥
स्नानं कुरुष्व शीघ्रं त्वमस्मिन्कुण्डे समाहितः ।
येनेमां कुत्सितां योनिं क्षिप्रमेव प्रहास्यसि ॥२८॥
स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो दयालुना देववरं त्रिनेत्रम् ।
स्मृत्वा कपर्दीश्वरमीशितारं चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम् ॥२९॥
तदावगाढो मुनिसन्निधाने ममार दिव्याभरणोपपन्नः ।
अदृश्यतार्कप्रतिमो विमाने शशाङ्कचिह्नीकृतचारुमौलिः ॥३०॥
विभाति रुद्रैः सहितो दिविष्ठैः समाभृतो योगिभिरप्रमेयैः ।
सबालखिल्यादिभिरेष देवो यथोदये भानुरशेषदेवः ॥३१॥
स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसङ्घा नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः ।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमाम्बुमिश्रा गन्धर्वविद्याधरकिन्नराद्याः ॥३२॥
संस्तूयमानोऽथ मुनीन्द्रसङ्घैरवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात् ।
समाविशन्मण्डलमेतदग्र्यं त्रयीमयं यत्र विभाति रुद्रः ॥३३॥
दृष्ट्वा विमुक्तं स पिशाचभूतं मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम् ।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेकमग्निं प्रणम्य तुष्टाव कपर्दिनं तम् ॥३४॥

शङ्कुकर्ण उवाच

कपर्दिनं त्वां परतः परस्ताद्गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम् ।
व्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम् ॥३५॥

स्पर्श भी किया और उनकी वन्दना भी की। तुम जैसा पृथिवी पर कौन पुण्यवान् है ? उसी के परिणाम स्वरूप तुम यहाँ पर आ पाये हो ॥२७॥ तुम सावधान होकर इस कुण्ड में स्नान करो, उससे तुम्हारी यह निन्दित योनि शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगी ॥२८॥ उस दयालु मुनि के द्वारा इसतरह से कहे जाने पर वह पिशाच देवश्रेष्ठ भगवान् कपर्दीश्वर शिव का स्मरण करके समाहित होकर स्नान किया ॥२९॥ उसके बाद स्नान करके वह मुनि के सन्निकट ही मर गया और दिव्याभरणों से भूषित वह सूर्य के समान देदीप्यमान विमान पर दिखायी दिया, उसके सुन्दर शिर पर चन्द्रमा दिखायी दे रहे थे ॥३०॥ वह स्वर्गलोक में स्थित रुद्रों से सुशोभित था और महान् योगियों से घिरा था। बालखिल्य आदि महर्षिगणों से युक्त उदय कालीन सूर्य के समान वह सुशोभित होता था ॥३१॥ स्वर्गलोक में सिद्ध तथा देवगण उसकी स्तुति कर रहे थे, उसके समक्ष अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर उसके ऊपर पुष्पमिश्रित जल की वृष्टि कर रहे थे ॥३२॥ मुनीन्द्र समूह के द्वारा स्तुति किए जाते हुए वह भगवान् शिव की कृपा से ज्ञान को प्राप्त करके उस श्रेष्ठ मण्डल में प्रवेश किया था, जहाँ पर भगवान् शिव त्रयीरूप से सुशोभित होते हैं ॥३३॥ उस पिशाच को मुक्त हुए देखकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और महेश का ध्यान करके अग्निरूपी प्रधान कवि को प्रणाम करके कपर्दीश्वर की स्तुति किए ॥३४॥ **शंकुकर्ण ने कहा—** मैं सर्वोत्कृष्ट देव कपर्दीश्वर की शरणागति करता हूँ। वे प्रधान, पुराणपुरुषरक्षक, योगेश्वर,

त्वां ब्रह्मसारं हृदि संनिविष्टं हिरणमयं योगिनमादिमं तम् ।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविष्ठं महामुनिं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥३६॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्ररूपं तमसः परस्तात् ।
तं ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम् ॥३७॥
यत्र प्रसूतिर्जगतो विनाशो येनावृत्तं सर्वमिदं शिवेन ।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥३८॥
अलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयम्प्रभुं चित्पतिमेकरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति ॥३९॥
यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः ।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तं ब्रह्मपारं परमस्वरूपम् ॥४०॥
न यत्र नामादिविशेषक्लृप्तिर्न सन्दृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयम्भुवं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४१॥
यद्वेदवादाभिरता विदेहं सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम् ।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥४२॥
यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो बिभर्ति तेजः प्रणमन्ति देवाः ।
नमामि तं ज्योतिषि सन्निविष्टं कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम् ॥४३॥

अभिप्रेत अर्थ को प्रदान करने वाले आदित्य स्वरूप, अग्नि स्वरूप तथा वृषभ वाहन हैं ॥३५॥ वेदों के सार स्वरूप हृदय में प्रविष्ट, हिरण्यमय स्वरूप, योगी तथा जगत् की सृष्टि और संहार करने वाले, द्युलोक में स्थित महामुनि, वेदमय परम पवित्र आपकी मैं शरणागति करता हूँ ॥३६॥ मैं उन तीन नेत्रों वालें परब्रह्म शम्भु को प्रणाम करता हूँ जो अनन्त पैरों, अनन्त नेत्रों तथा अनन्त शिरों वाले हैं । जो अनन्त रूप वाले, प्रकृति मण्डल के ऊपर तथा हिरण्यमय ब्रह्माजी के अधिपति हैं ॥३७॥ जिनसे जगत् की उत्पत्ति होती है, जो जगत् का संहार करते है, जिन शिव के द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उन्हीं परब्रह्म भगवान् शिव को सदा प्रणाम करके मैं उनकी शरणागति करता हूँ ॥३८॥ जिनका रूप लिङ्ग तथा प्रकाश से रहित है, जो सबों के स्वामी हैं, जीवों के स्वामी तथा एक समान रूप वाले हैं एवं जिनसे भिन्न कुछ है ही नहीं इस प्रकार के परमेश्वर आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ योगिजन अपनी सबीज समाधि योग (सम्प्रज्ञात समाधि) का परित्याग करके असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति में पहुँच कर परमात्म स्वरूप हो जाते हैं और आपका साक्षात्कार करते हैं मैं उन परब्रह्म परमात्म स्वरूप शिव को सदा प्रणाम करता हूँ ॥४०॥ जिनका किसी नाम आदि विशेषणों से सम्बन्ध नहीं है अर्थात् जिनको किसी नाम विशेष से अभिहित नहीं किया जा सकता है, जिनके रूप का दर्शन इन प्राकृतिक इन्द्रियों से नहीं किया जा सकता है उन परब्रह्म स्वयम्भु स्वरूप शिव को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥४१॥ जिनको वेदज्ञ पुरुष देह विशेष से रहित, ब्रह्म विज्ञान स्वरूप भेद रहित एक मात्र देखते हैं, ऐसे आपके अनेक रूप हैं, उन परब्रह्म स्वरूप शिव को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥४२॥ जिनसे प्रधान (प्रकृति) तथा पुराण पुरुष तेज को धारण करते हैं, जिनको सभी देवता नमस्कार करते हैं, मैं उन प्रकाश के भी अन्तर्यामी

व्रजामि नित्यं शरणं गुहेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम् ।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि ॥४४॥

स्तुत्वैवं शङ्कुकर्णोऽपि भगवन्तं कपर्दिनम्। पपातदण्डवद्भूमौ प्रोच्चरन्प्रणवं परम् ॥४५॥

तत्क्षणात्परमं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्। ज्ञानमानन्दमत्यन्तकोटिज्वालाग्निसन्निभम् ॥४६॥

शङ्कुकर्णोऽथ मुक्तात्मा तदात्मा सर्वगोऽमलः ।
निलिल्ये विमले लिङ्गे तद्दभुतमिवाभवत् ॥४७॥

एतद्रहस्यमाख्यातं माहात्म्यं ते कपर्द्दिनः। न कश्चिद्वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति ॥४८॥

य इमां शृणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम् ।
त्यक्तपापो विशुद्धात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥४९॥

पठेच्च सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम्। प्रातर्मध्याह्नसमये स योगं प्राप्नुयात्परम्॥५०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वाराणसीमाहात्म्ये कपर्दीश्वरपिशाचमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

को प्रणाम करता है । महान् काल स्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४३॥ हृदय रूपी गुफा के स्वामी स्थाणु, पुराण पुरुष, गिरिश की मैं सदा शरणागति करता हूँ । पापों का विनाश करने वाले चन्द्रमौलि, पिनाकधारी शिव की मैं सदा शरणागति करता हूँ ॥४४॥ इस तरह से भगवान् कपर्दि की स्तुति करके शंकुकर्ण भी पृथिवी पर दण्ड के समान गिरकर शिवजी को प्रणव का उच्चारण करते हुए प्रणाम किए॥४५॥ उस समय वहाँ पर शिवात्मक श्रेष्ठलिङ्ग प्रकट हो गया वह लिङ्ग ज्ञान स्वरूप, आनन्द स्वरूप, तथा करोड़ों अग्नि की ज्वाला के समान देदीप्यमान था ॥४६॥ उसके बाद मुक्तात्मा, सभी दोषों से रहित निर्मल शंकुकर्ण भी उस लिङ्ग में ही विलीन हो गये जो अत्यन्त आश्चर्यमय था ॥४७॥ इस तरह से मैंने आपको कपर्दि शिव के गुप्त रहस्य को बतलाया । इस बात को कोई भी अज्ञानी पुरुष नहीं जान पाता है ॥४८॥ जो मनुष्य पापों का विनाश करने वाली इस कथा को प्रतिदिन सुनता है वह समस्त पापों से रहित होकर शिव के सामीप्य को प्राप्त करता है ॥४९॥ जो इस पारब्रह्म के माहात्म्य को सदा शुद्ध होकर प्रात:काल एवं सायंकाल पारमहास्तव को पढता है वह योग का ज्ञाता हो जाता है ॥५०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय ब्रह्मखण्ड के पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३५।।

छत्तीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

वाराणस्यां महाराज मध्यमेशः परात्परः । तस्मिन्स्थाने महादेवो देव्या सह महेश्वरः ॥१॥
रमते भगवान्नित्यं रुद्रैश्च परिवारितः। तत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः ॥२॥
उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुपतैर्युतः । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राध्ययनतत्परः ॥३॥
आराधयन्हरिः शम्भुं कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ।
तस्य ते बहवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥४॥
लब्ध्वा तद्वदनाज्ज्ञानं दृष्टवन्तो महेश्वरम् । तस्य देवो महादेवः प्रत्यक्षं नीललोहितः ॥५॥
ददौ कृष्णस्य भगवान्वरदो वरमुत्तमम्। येऽर्चयन्ति च गोविन्दं मद्भक्ता विधिपूर्वकम् ॥६॥
तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मयम्। नमस्योऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनैः ॥७॥
भविष्यन्ति न सन्देहो मत्प्रसादाद् द्विजातयः ।
येऽत्र द्रक्ष्यन्ति देवेशं स्नात्वा देवं पिनाकिनम् ॥८॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषामाशु विनश्यति । प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति ये मर्त्याः पापकर्मरता अपि ॥९॥
ते यान्ति तत्परं स्थानं नात्र कार्या विचारणा ।
धन्यास्तु खलु ते विज्ञा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः ॥१०॥
अर्चयित्वा महादेवं मध्यमेश्वरमीश्वरम्। ज्ञानं दानं तपः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणं त्विह ॥११॥

वाराणसी के मध्यमेश्वर तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

नारदजी ने कहा— हे महाराज ! वाराणसी में परात्पर महाराज मध्यमेश हैं । वहाँ पर महादेव देवी पार्वती के साथा सदा विहार करते हैं ॥१॥ वहाँ उनके साथ रुद्र परिवार रहता है । प्राचीन काल में वहाँ सम्पूर्ण जगत् की आत्मा देवकी माता के पुत्र हृषीकेश ॥२॥ पाशुपतों के साथ एक वर्ष तक निवास किए वे उस समय अपने सम्पूर्ण शरीर में भस्म मलते थे और रुद्राध्याय का पाठ करते थे ॥३॥ श्रीहरि भगवान् शिव की आराधना करते हुए पाशुपत व्रत किए । वहाँ पर उनके बहुत से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले शिष्य थे ॥४॥ भगवान् के मुख से ज्ञान को प्राप्त करके उन लोगों ने शङ्करजी का साक्षात्कार किया । भगवान् हृषीकेश ने नीललोहित महेश्वर का साक्षात्कार किया था ॥५॥ वरदान देने वाले भगवान् शिव ने भगवान् कृष्ण को उत्तम वर प्रदान किया था । शङ्करजी ने वरदान दिया था कि जो मेरे भक्त विधिपूर्वक गोविन्द की अर्चना करते हैं ॥६॥ उन सबों को उनका ऐश्वर ज्ञान हो जायेगा। अतएव मेरे भक्तों को चाहिए कि वे श्रीहरि को नमस्कार करें और उनकी अर्चना करें तथा उनका ध्यान करें ॥७॥ ऐसा करने वाले ब्राह्मण मेरे कृपा के पात्र होंगे । जो लोग यहाँ पर स्नान करके भगवान् शिव का दर्शन करेंगे ॥८॥ उन लोगों के ब्रह्महत्या आदि पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जायेंगे । यहाँ पर यदि कोई पापी जीव भी अपने प्राणों का परित्याग करेगा ॥९॥ वह परम पद को प्राप्त करेगा, इसके विषय में संदेह नहीं करना चाहिए । वे विज्ञ पुरुष धन्य हैं जो गङ्गा में स्नान करके गङ्गा जल से मध्यमेश्वर की पूजा करेंगे तथा ज्ञान दान तथा अपने पितरों को पिण्डदान करेंगे ॥१०-११॥ यहाँ पर किया गया

एकैकशः कृतं कर्म पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
सन्निहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥१२॥
यत्फलं लभते मर्त्त्यस्तस्माद्दशगुणं त्विह। एवमुक्तं महाराज ! माहात्म्यं मध्यमेश्वरे ॥१३॥

इति श्रीपद्मपुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे वाराणसीमाहात्म्ये मध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

अन्यानि च महाराज ! तीर्थानि पावनानि तु ।
वाराणस्यां स्थितानीह संश्रृणुष्व युधिष्ठिर ! ॥१॥
प्रयागादधिकं तीर्थं प्रयागं परमं शुभम्। विश्वरूपं तथा तीर्थं तालतीर्थमनुत्तमम्॥२॥
आकाशाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैवार्षभं परम् ।
सुनिलं च महातीर्थं गौरीतीर्थमनुत्तमम् ॥३॥
प्राजापत्यं तथा तीर्थं स्वर्गद्वारं तथैव च। जम्बुकेश्वरमित्युक्तं धर्माख्यं तीर्थमुत्तमम् ॥४॥
गयातीर्थं परं तीर्थं तीर्थं चैव महानदी। नारायणपरं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम्॥५॥
ज्ञानतीर्थं प्रदं गुह्यं वाराहं तीर्थमुत्तमम्। यमतीर्थं महापुण्यं तीर्थं सम्मूर्तिकं शुभम् ॥६॥
अग्नितीर्थं महाराज ! कलशेश्वरमुत्तमम्। नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च॥७॥

एक-एक भी कर्म उनके सात पीढ़ी के पूर्वजों को पवित्र बना देता है । उन कर्मों का यहाँ पर दश गुना फल प्राप्त होता है जो सूर्यग्रहण के समय सन्निहत्या में आचमन करके यहाँ पर किए जाते हैं । हे महाराज ! इस प्रकार से मध्यमेश्वर की महिमा को मैंने आपको बतलया । जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता है, वह परमपद को प्राप्त करता है ॥१२-१३॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३६।।

वाराणसी के तीर्थों का माहात्म्य वर्णन

नारदजी ने कहा— हे महाराज् युधिष्ठिर ! वाराणसी में दूसरे भी पवित्र तीर्थ हैं । उन सबों का माहात्म्य आप सुनें ॥१॥ प्रयागतीर्थ प्रयाग से अधिक शुभ हैं । वे तीर्थ हैं विश्वरूपतीर्थ तथा श्रेष्ठ ताल तीर्थ ॥२॥ महातीर्थ आकाश तथा आर्षभ तीर्थ । सुनील तीर्थ तथा गौरीतीर्थ ॥३॥ प्राजापत्य तीर्थ तथा स्वर्गद्वार तीर्थ । जम्बुकेश्वर तीर्थ और उत्तम धर्मतीर्थ ॥४॥ गया तीर्थ और महानदी तीर्थ । नारायण तीर्थ और वायु तीर्थ ॥५॥ ज्ञान तीर्थ और तथा परम गुह्य वाराहतीर्थ । यमतीर्थ तथा पवित्र संमूर्तिक तीर्थ ॥६॥ हे महाराज ! अग्नि तीर्थ और उत्तम कलशेश्वरतीर्थ । नागतीर्थ, सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ ॥७॥ अत्यन्त गोपनीय पर्वततीर्थ तथा मणिकर्ण्य तीर्थ । घटोत्कचतीर्थ, श्रीतीर्थ, पितामहतीर्थ ॥८॥ गङ्गातीर्थ,

पर्वताख्यं महागुह्यं मणिकर्ण्यमनुत्तमम्। घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थं च पितामहम् ॥८॥
गङ्गातीर्थं तु देवेशं ययातेस्तीर्थमुत्तमम्। कापिलं चैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥९॥
तत्र लिङ्गं पुराणीयं स्थातुं ब्रह्मा यथागतः।
तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तल्लिङ्गमैश्वरम् ॥१०॥
तत्र स्नात्वा समागम्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम्।
मयाऽऽनीतमिदं लिङ्गं कस्मात्स्थापितवानसि ॥११॥
तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा मम।
तस्मात्प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तव भविष्यति ॥१२॥
भूतेश्वरं तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम्। गन्धर्वतीर्थं सुशुभं वाह्नेयं तीर्थमुत्तमम्॥१३॥
दौर्वासिकं व्योमतीर्थं चन्द्रतीर्थं युधिष्ठिर। चिन्ताङ्गदेश्वरं तीर्थं पुण्यं विद्यापरेश्वरम् ॥१४॥
केदारतीर्थमुग्राख्यं कालञ्जरमनुत्तमम्। सारस्वतं प्रभासं च रुद्रकर्णह्रदं शुभम्॥१५॥
कोकिलाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैव महालयम्।
हिरण्यगर्भं गोप्रेक्षं तीर्थं चैवमनुत्तमम् ॥१६॥
उपशान्तं शिवं चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम्। त्रिलोचनं महातीर्थं लोकार्कं चोत्तराह्वयम्॥१७॥
कपालमोचनं तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशनम्। शुक्रेश्वरं महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम् ॥१८॥
एवमादीनि तीर्थानि वाराणस्यां स्थितानि वै।
न शक्यं विस्तराद्वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥१९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वाराणसीमाहात्म्ये प्रयागतीर्थाद्यनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

देवेश तीर्थ तथा उत्तम ययाति तीर्थ। कापिल तीर्थ, सोमेश तीर्थ तथा श्रेष्ठ ब्रह्मतीर्थ ॥९॥ वहाँ पर पुराना लिङ्ग है उसकी स्थापना करने के लिए उसे ब्रह्माजी लाये थे। उस समय भगवान् विष्णु ने शङ्करजी के उस लिङ्ग की स्थापना कर दी ॥१०॥ वहाँ पर स्नान करके ब्रह्माजी ने श्रीहरि से कहा कि मेरे द्वारा लाये गये इस लिङ्ग की स्थापना आपने क्यों की ?॥११॥ विष्णु भगवान् ने कहा कि आपकी अपेक्षा मुझमें शङ्करजी की भक्ति अधिक सुदृढ़ है। इसलिए मैंने इसकी स्थापना की यह आपके नाम से विख्यात होगा ॥१२॥ भूतेश्वरतीर्थ तथा धर्मसमुद्भवतीर्थ। गंधर्वतीर्थ तथा उत्तम अग्नितीर्थ। दुर्वासातीर्थ, व्योमतीर्थ तथा चन्द्र तीर्थ। चिताङ्गदेश्वर तीर्थ तथा पवित्र विद्याधरेश्वर तीर्थ ॥१४॥ केदारतीर्थ, उग्रतीर्थ, कालञ्जर तीर्थ सारस्वततीर्थ, प्रभासतीर्थ तथा शुभ रुद्रकर्णह्रद ॥१५॥ कोकिलमहातीर्थ तथा महालयतीर्थ। हिरण्यगर्भ तीर्थ, गोप्रेक्ष तीर्थ ॥१६॥ उपशान्त तीर्थ, शिवतीर्थ तथा श्रेष्ठ व्याघ्रेश्वरतीर्थ, महातीर्थ त्रिलोचन, लोकार्क तीर्थ और उत्तर तीर्थ ॥१७॥ कपालमोचन तीर्थ, ब्रह्महत्या बिनाशन तीर्थ, महापुण्य शुक्रेश्वर तीर्थ तथा उत्तम आनन्दपुर तीर्थ ॥१८॥ इस प्रकार से वाराणसी में तीर्थ विद्यमान हैं। उन सबों का विस्तार पूर्वक सैकड़ों कल्प में भी वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तीसरे स्वर्गखण्ड के वाराणसीमाहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में सैतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

वाराणस्याश्च माहात्म्यं तस्यां तीर्थानि च प्रभो ! ।
कथितानि समासेन तीर्थान्यन्यानि संशृणु ॥१॥

ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः । अश्वमेधमवाप्नोति गमनादेव भारत ! ॥२॥
यत्राक्षय्यवटो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । पितृणां तत्र वै दत्तमक्षयं भवति प्रभो ! ॥३॥
महानद्यामुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः । अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥४॥
ततो ब्रह्मसरो गच्छेद्ब्रह्मारण्योपसेवितम् । पुण्डरीकमवाप्नोति प्रभातमिव शर्वरी ॥५॥
सरसि ब्रह्मणा तत्र यूपश्रेष्ठः समुच्छ्रितः । यूपप्रदक्षिणं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! धेनुकं लोकविश्रुतम् ।
एकरात्रोषितो राजन्प्रयच्छेत्तिलधेनुकाम् ॥७॥

सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं व्रजेद्ध्रुवम् । तत्र चिह्नं महाराज ! अद्यापि हि न संशयः ॥८॥
कपिला सहवत्सा वै पर्वते विचरत्युत। सवत्सायाः पदान्यस्य दृश्यन्तेऽद्यापि भारत ! ॥९॥
तेषूपस्पृश्य राजेन्द्र ! पदेषु नृपसत्तम । यत्किञ्चिदशुभं पापं तत्प्रणश्यति भारत !॥१०॥
ततो गृध्रवटं गच्छेत्स्थानं देवस्य शूलिनः। स्नायात्तु भस्मना तत्र सङ्गम्य वृषभध्वजम् ॥११॥
ब्राह्मणेन भवेच्चीर्णं व्रतं द्वादशवार्षिकम्। इतरेषां तु वर्णानां सर्वपापं प्रणश्यति॥१२॥

वाराणसी तथा प्रयाग के अनेक तीर्थों का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे प्रभों ! वाराणसी के तीर्थों और उनके माहात्म्यों का मैंने संक्षेप में वर्णन किया अब अन्य तीर्थों को आप सुनें ॥१॥ उसके बाद समाहित तथा ब्रह्मचर्य पालन करने वाला तीर्थवासी गया जाय । वहाँ जाने मात्र से उसको अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है ॥२॥ वहाँ पर त्रैलोक्य विश्रुत अक्षयवट हैं वहाँ पर पितरों के लिए किया गया दान अक्षय होता है ॥३॥ वहाँ पर महानदी में आचमन करके पितरों और देवताओं का तर्पण करे । ऐसा करने वाला अक्षय लोकों में जाता है तथा अपने वंश का उद्धार कर देता है ॥४॥ वहाँ से ब्राह्मारण्य में विद्यमान ब्रह्मसरोवर में जाय वहाँ जाने मात्र से उसको पुण्डरीक याग का फल उसी तरह से प्राप्त होता है जिस तरह रात्रि के बाद सबेरा होता है ॥५॥ वहाँ पर सरोवर में ब्रह्माजी ने यूप स्थापित किया है उस यूप की प्रदक्षिणा करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥६॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से धेनुक तीर्थ में जाय वल लोकविख्यात तीर्थ है । वहाँ पर एक रात निवास करे और तिलधेनु का दान करे ॥७॥ ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर सोमलोक में अवश्य जाता है । हे महाराज ! वहाँ पर आज भी चिह्न विद्यमान हैं ॥८॥ वहाँ पर पर्वत पर कपिला गौ अपने बछड़े के साथ पर्वत पर विचरण करती है । हे भारत ! वहाँ पर आज भी बछड़े के साथ कपिला गौं के पैरों का चिह्न दिखायी देता है ॥९॥ हे भारत ! उन पदचिह्नों का स्पर्श करने से मनुष्य के जितने भी पाप रहते हैं वे उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं ॥१०॥ वहाँ से शङ्करजी के स्थान गृध्रवट तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर भगवान् शिव का दर्शन करके भस्म स्नान

गच्छेत तत उद्यन्तं पर्वतं गीतनादितम्। सावित्रं तु पदं तत्र दृश्यते भरतर्षभ !॥१३॥
तत्र सन्ध्यामुपासीत ब्राह्मणः संशितव्रतः । उपास्ता हि भवेत्सन्ध्या तेन द्वादशवार्षिकी॥१४॥
योनिद्वारं च तत्रैव विश्रुतं भरतर्षभ !। तत्राभिगम्य मुच्येत पुरुषो योनिसङ्कटात्॥१५॥

शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः ।
पुनात्यासप्तं राजन्कुलं नास्त्यत्र संशयः ॥१६॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ।
यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥१७॥
ततः फल्गुं व्रजेद्राजंस्तीर्थसेवी नराधिप ! ।
अश्वमेधमवाप्नोति सिद्धिं च परमां व्रजेत् ॥१८॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! धर्मपृष्ठं समाहितः ।
यत्र धर्मो महाराज ! नित्यमास्ते युधिष्ठिरः ! ॥१९॥

धर्मं तत्राभिसङ्गम्य वाजिमेधफलं लभेत्। तनो गच्छेत राजेन्द्र ! ब्रह्मणस्तीर्थमुत्तमम् ॥२०॥
तत्राभिगम्य ब्रह्माणमर्चयेन्नियतव्रतः । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति भारत !॥२१॥
ततो राजगृहं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप !। उपस्पृश्य ततस्तत्र कक्षीवानिव मोदते॥२२॥

यक्षिण्या नैत्यकं तत्र प्रागग्निं पुरुषः शुचिः ।
यक्षिण्यास्तु प्रसादेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२३॥

करना चाहिए ॥११॥ ऐसा करने वाले ब्राह्मण को वारह वर्ष तक व्रत करने का फल प्राप्त होता है। दूसरे वर्ण वाले मनुष्यों के समस्त पापों का नाश हो जाता है ॥१२॥ वहाँ से गीतों की ध्वनि से ध्वनित उदय पर्वत पर जाना चाहिए वहाँ पर सावित्री देवी के चरणों का चिह्न दिखायी देता है ॥१३॥ वहाँ पर उत्कृष्ट व्रत वाले ब्राह्मण को सन्ध्योपासन करना चाहिए । वहाँ पर सन्ध्या करने से बारह वर्षों तक संध्या करने का फल प्राप्त होता है ॥१४॥ हे भरत श्रेष्ठ ! वहीं पर प्रख्यात योनिद्वार तीर्थ है । वहाँ पर जाने वाला पुरुष योनि सङ्कट से मुक्त हो जाता है ॥१५॥ जो मनुष्य शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष दोनों में गया में निवास करता है, हे राजन् ! वह अपने सात पीढी के वंशजों को पवित्र बना देता है ॥१६॥ अनेक पुत्रों की कामना इसलिए करना चाहिए कि हो सकता है कि उनमें से कोई गया जाय। अथवा अश्वमेधयाग करके काले सांड का त्याग करे ॥१७॥ हे राजन् ! वहाँ से तीर्थसेवी को फल्गुतीर्थ में जाना चाहिए । ऐसा करने वाला अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है तथा परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥१८॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से समाहित पुरुष धर्मपृष्ठ तीर्थ में जाय वहाँ पर नित्य ही धर्म निवास करते हैं ॥१९॥ वहाँ पर धर्म का दर्शन करने से अश्मेधयाग का फल प्राप्त होता है। वहाँ से ब्रह्माजी के उत्तम तीर्थ में जाना चाहिए ॥२०॥ वहाँ पर जाकर व्रत करते हुए ब्रह्माजी की पूजा करे । ऐसा करके मनुष्य अश्वमेध तथा राजसूय दोनों यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है ॥२१॥ हे नराधिप ! वहाँ से तीर्थ यात्री राजगृह जाय वहाँ पर आचमन करने मात्र से मनुष्य को कक्षीवान् ऋषि के समान सुख प्राप्त होता है ॥२२॥ वहाँ पर नित्य ही यक्षिणी का निवास रहता है । तथा पवित्र अग्नि पुरुष का निवास रहता है । यक्षिणी की कृपा से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥२३॥

मणिनागं ततो गच्छेद्गोसहस्रफलं लभेत्। नैत्यकं भुञ्जते यस्तु मणिनागस्य मानवः ॥२४॥
दष्टस्याशीविषेणास्य न विषं क्रमते नृप !। तत्रोष्य रजनीमेकां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२५॥
ततो गच्छेत ब्रह्मर्षे ! गौतमस्य वनं नृप। अहल्याया ह्रदे स्नात्वा व्रजेत परमां गतिम् ॥२६॥
अभिगम्य श्रियं राजन्विन्दते श्रियमुत्तमाम्। तत्रोदपानो धर्म्मज्ञ ! त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२७॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत वाजिमेधमवाप्नुयात् । जनकस्य तु राजेर्षेः कूपस्त्रिदशपूजितः ॥२८॥
तत्राभिषेकं कृत्वा च विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।
ततो विनशनं गच्छेत्सर्वपापप्रमोचनम् ॥२९॥
वाजिमेधमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति। गण्डकीं च समासाद्य सर्वतीर्थजलोद्भवाम् ॥३०॥
वाजपेयमवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति। ततो ध्रुवस्य धर्मज्ञ ! समाविश्य तपोवनम्॥३१॥
गुह्यकेषु महाभाग ! मोदते नात्र संशयः। कर्मदां तु समासाद्य नदी सिद्धनिषेविताम् ॥३२॥
पुण्डरीकमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति। ततो विशालामासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम् ॥३३॥
अग्निष्टोममवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति। अथ माहेश्वरीं धारां समासाद्य नराधिप ! ॥३४॥
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्। दिवौकसां पुष्करिणीं समासाद्य नरः शुचिः ॥३५॥
न दुर्गतिमवाप्नोति वाजपेयं च विन्दति। माहेश्वरपदं गच्छेद्ब्रह्मचारी समाहितः ॥३६॥
माहेश्वरपदे स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत्। तत्र कोटिस्तु तीर्थानां विश्रुता भरतर्षभ ! ॥३७॥

वहाँ से मणि नाग तीर्थ में जाकर मनुष्य एक हजार गायों का दान करने का फल प्राप्त करता है । वहाँ पर जो मनुष्य मणिनाग के नैत्यक का भोग करता है, वह सर्प के द्वारा काट लिए जाने पर भी सर्पविष से युक्त नहीं होता है । हे राजन् ! वहाँ पर एक रात निवास करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२४-२५॥ वहाँ से मनुष्य महर्षि गौतम के तपोवन में जाय वहाँ पर अहल्या ह्रद में स्नान करके वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥२६॥ हे राजन् लक्ष्मी तीर्थ में जाने वाले यात्री को उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ पर उदपान तीर्थ त्रैलोक्य विख्यात है ॥२७॥ वहाँ पर स्नान करने से अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है । राजर्षि जनक का कूप देवताओं द्वारा पूजित है ॥२८॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है । वहाँ से सभी पापों से छुड़ाने वाले विनशन तीर्थ में जाना चाहिए ॥२९॥ वहाँ जाने वाला अश्वमेध याग का फल प्राप्त करके सोमलोक में जाता है । सभी तीर्थों के जल से उत्पन्न होने वाली गण्डकी नदी में जाकर ॥३०॥ मनुष्य वाजपेय याग का फल प्राप्त करता है और सूर्यलोक में जाता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ से ध्रुव के तपोवन में जाकर ॥३१॥ मनुष्य गुह्यकों के लोक में जाकर आनन्दित होता है । सिद्ध पुरुषों से सेवित कर्मदा नदी में जाकर ॥३२॥ मनुष्य पुण्डरीक याग करने के फल को प्राप्त करता है और वह सोमलोक में जाता है वहाँ से त्रैलोक्य विख्यात विशाला नदी में आकर ॥३३॥ अग्निष्टोम याग करने का फल वह प्राप्त करता है तथा वह स्वर्गलोक में जाता है । हे नराधिप ! उसके बाद माहेश्वरी धारा में जाकर ॥३४॥ मनुष्य अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है और अपने वंश का उद्धार कर देता है । मनुष्य पवित्रता पूर्वक देव पुष्करिणी में आकर ॥३५॥ वाजपेय याग का फल प्राप्त करता है, उसकी कभी भी दुर्गति नहीं होती है । उसके बाद समाहित ब्रह्मचारी माहेश्वर पद में जाय ॥३६॥ माहेश्वर पद में स्नान करने वाला अश्वमेध याग

कूर्मरूपेण राजेन्द्र ! असुरेण दुरात्मना। ह्रियमाणाऽऽहृता राजन्विष्णुनाप्रभविष्णुना॥३८॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत तीर्थकोट्यां नराधिप! । पुण्डरीकमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति॥३९॥
ततो गच्छेन्नरश्रेष्ठ स्थानं नारायणस्य च । सदा सन्निहितो यत्र हरिर्वसति भारत !॥४०॥
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः । आदित्या वसवो रुद्र जनार्दनमुपासते॥४१॥
शालग्राम इति ख्यातो विष्णोरद्भुतकर्मणः। अभिगम्य त्रिलोकेशं वरदं विष्णुमच्युतम्॥४२॥
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति। तत्रोदपानो धर्मज्ञ ! सर्वपापप्रमोचनः॥४३॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः कूपेसन्निहिताः सदा। तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र ! न दुर्गतिवाप्नुयात्॥४४॥
अभिगम्य महादेवं वरदं विष्णुमव्ययम् । विराजते यथा सोमं ऋणैर्मुक्तो युधिष्ठिर॥४५॥
जातिस्मर उपस्पृश्य शुचिः प्रयतमानसः। जातिस्मरत्वं प्राप्नोति स्नात्वा तत्र न संशयः॥४६॥
वटेश्वरपुरं गत्वा अर्चयित्वा च केशवम्। ईप्सितांल्लभते लोकानुपवासान्न संशयः॥४७॥
ततस्तु वामनं गत्वा सर्वपापप्रणाशनम्। अभिवाद्य हरिं देवं न दुर्गतिमवाप्नुयात्॥४८॥
भरतस्याश्रमं गत्वा सर्वपापप्रमोचनम्। कौशिकीं तत्र सेवेत महापातकनाशिनीम्॥४९॥
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः। ततो गच्छेत धर्मज्ञ चम्पकारण्यमुत्तमम्॥५०॥
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत्। अथ गोविन्दमासाद्य तीर्थं परमसम्मतम्॥५१॥

का फल प्राप्त करता है । हे भारतर्षभ ! वहाँ पर तीर्थकोटि विख्यात है ॥३७॥ उस तीर्थ को कूर्मरूप धारी असुर हरण कर लिया था, उसको भगवान् विष्णु उससे लौटा लाये ॥३८॥ हे नराधिप ! उस तीर्थकोटि में स्नान करना चाहिए । ऐसा करके मनुष्य पुण्डरीक याग का फल प्राप्त करता है और भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥३९॥ हे नरश्रेष्ठ ! वहाँ से भगवान् नारायण के स्थान में जाय । वहाँ पर सदैव भगवान् श्रीहरि का निवास रहता है ॥४०॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता तथा तपस्वी ऋषिगण, आदित्यगण, वसुगण तथा रुद्रगण भगवान् जनार्दन की उपासना करते हैं ॥४१॥ अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् विष्णु का शालग्राम तीर्थ विख्यात है । वहाँ पर त्रैलोक्य के स्वामी वरदान देने वाले तथा अच्युत भगवान् विष्णु का दर्शन करके ॥४२॥ मनुष्य अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है और वह विष्णुलोक में जाता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ पर जल पीने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाते हैं ॥४३॥ वहाँ के कूप में चारो समुद्रों का सन्निधान रहता है । हे राजेन्द्र ! वहाँ पर आचमन करने वाले मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं होती है ॥४४॥ वरदान देने वाले निर्विकार महान् देवता भगवान् विष्णु का दर्शन करके; हे युधिष्ठिर ! मनुष्य सोम के समान सुशोभित होता है ॥४५॥ शान्त मन से पवित्र मनुष्य जातिस्मर तीर्थ में आचमन करके तथा स्नान करके जातिस्मर (पूर्व जन्म की घटनाओं का स्मरण रखने वाला) हो जाता है ॥४६॥ बटेश्वरपुर में जाकर तथा भगवान् केशव की अर्चना करके उपवास करने वाला मनुष्य अपने अभिप्रेत लोकों में जाता है ॥४७॥ वहाँ सर्व पाप विनाशक वामन तीर्थ में जाकर मनुष्य श्रीभगवान् को प्रणाम करके कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है ॥४८॥ सभी पापों को छुड़ाने वाले भरताश्रम में जाकर वहाँ पर महापातकों को विनष्ट करने वाली कौशिकी नदी में जाना चाहिए ॥४९॥ ऐसा करने वाला राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँ से चम्पकारण्य तीर्थ में जाना चाहिए॥५०॥ वहाँ पर एक रात निवास करने से एक हजार गोदान का फल प्राप्त होता है । उसके बाद अत्यन्त

उपोष्य रजनीमेकामग्निष्टोमफलं लभेत्। तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा देव्या सह महाद्युतिम् ॥५२॥
मित्रावरुणयोर्लोकान्प्राप्नुयाद्भरतर्षभ । त्रिरात्रोपोषितस्तत्र अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५३॥
कन्यावसथमासाद्य नियतो नियताशनः। मनोः प्रजापतेर्लोकानाप्नोति भरतर्षभ ! ॥५४॥
कन्यायां ये प्रयच्छन्ति दानमण्वपि भारत। तदक्षयमिति प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥५५॥

निष्ठावासं समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥५६॥
ये तु दानं प्रयच्छन्ति निष्ठायाः सङ्गमे नराः ।
ते यान्ति नरशार्दूल ! ब्रह्मलोकमनामयम् ॥५७॥

तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। तत्राभिषेकं कुर्वाणो वाजपेयमवाप्नुयात् ॥५८॥
देवकूटं समासाद्य देवर्षिगणसेवितम्। अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥५९॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कौशिकस्य मुनेर्ह्रदम् ।
यत्र सिद्धिं परां प्राप विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥६०॥

तत्र मासं वसेद्धीरः कौशिक्यां भरतर्षभ। अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तन्मासेनाधिगच्छति ॥६१॥
सर्वतीर्थवरं चैव यो वसेत महाह्रदम्। न दुर्गतिमवाप्नोति विन्देद्बहुसुवर्णकम् ॥६२॥
कुमारमभिगम्याथ वीराश्रमनिवासिनम्। अश्वमेधमवाप्नोति शक्रलोकं च गच्छति॥६३॥
नन्दिन्यां च समासाद्य कूपं त्रिदशसेवितम्। नरमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति कुरूद्वह॥६४॥

पवित्र गोविन्द तीर्थ में जाय ॥५१॥ वहाँ पर एक रात्रि निवास करने से अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त होता है। वहाँ पर महादेवी पार्वती के साथ महाकान्ति सम्पन्न शिवजी का दर्शन करके ॥५२॥ हे भरतश्रेष्ठ! मनुष्य मित्रावरुण लोक में जाता है। वहाँ पर तीन रात्रि तक उपवास करने से मनुष्य को अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त होता है ॥५३॥ उसके बाद तीर्थवासी नियम पूर्वक कन्याओं के तीर्थ में जाय ऐसा करके वह मनु प्रजापति के लोक में जाता हैं ॥५४॥ हे युधिष्ठिर ! उस कन्या तीर्थ में जो थोड़ा सा भी दान करता है, तो उसका वह दान अक्षय होता है। इस प्रकार से उत्तम व्रत वाले ऋषियों ने कहा है ॥५५॥ त्रैलोक्य विख्यात निष्ठावास तीर्थ में जाकर मनुष्य अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है और विष्णु लोक में जाता है ॥५६॥ जो मनुष्य निष्ठा सङ्गम पर दान देते हैं, वे मनुष्य निर्दोष ब्रह्मलोक में जाते हैं ॥५७॥ वहीं पर विद्यमान त्रैलोक्य विख्यात वसिष्ठ आश्रम में जाकर जो स्नान करता है उसको वाजपेय याग करने का फल प्राप्त होता है ॥५८॥ देवताओं और ऋषियों द्वारा सेवित देवकूट नामक तीर्थ में जाकर मनुष्य अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है और वह अपने वंश का उद्धार कर देता है ॥५९॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से कौशिक मुनि के ह्रद में जाय वहाँ पर महर्षि विश्वामित्र ने परमासिद्धि को प्राप्त किया था ॥६०॥ हे भरतश्रेष्ठ ! वहाँ पर धीर पुरुष कौशिकी नदी के तट पर एक मास निवास करे। वह एक मास में अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है ॥६१॥ जो मनुष्य सभी तीर्थों में श्रेष्ठ महाह्रद में निवास करता है वह कभी भी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है और वह वहुत अधिक सुवर्ण प्राप्त करता है ॥६२॥ उसके बाद वीराश्रम में रहने वाले कुमार का दर्शन करके मनुष्य अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है और वह इन्द्र के लोक में जाता है ॥६३॥ उसके बाद नन्दिनी तीर्थ में

कालिकासङ्गमे स्नात्वा कौशिक्यारूणयोर्यतः ।
त्रिरात्रोपोषितो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६५॥
उर्वशीतीर्थमासाद्य तथा सोमाश्रमं बुधः । कुम्भकर्णाश्रमे स्नात्वा पूज्यते भुवि मानवः ॥६६॥
तथा कोकामुखे स्नात्वा ब्रह्मचारी समाहितः ।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति दृष्टमेतत्पुरातनैः ॥६७॥
सकृन्नदीं समासाद्य कृतार्थो भवति द्विजः। सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकं च गच्छति॥६८॥
ऋषभद्वीपमासाद्य सेव्यक्रौञ्चनिषूदनम्। सरस्वत्यामुपस्पृश्य विमानस्थो विराजते॥६९॥
औद्यानकं महाराज ! तीर्थं मुनिनिषेवितम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७०॥
ब्रह्मतीर्थं समासाद्य पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवतिम्। वाजपेयमवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः॥७१॥
ततश्चम्पां समासाद्य भागीरथ्यां कृतोदकः। दण्डार्पणं समासाद्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥७२॥
लाविढिकां ततो गच्छेत्पुण्यां पुण्यनिषेविताम् ।
वाजपेयमवाप्नोति विमानस्थश्च पूज्यते ॥७३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे गयादितीर्थमाहात्म्यकथनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

देवताओं से सेवित कूप का दर्शन करके मनुष्य नरमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥६४॥ कालिक सङ्गम पर कौशिकी तथा अरुणा नदी के सङ्गम पर तीन रात्रि तक उपवास करने वाला विज्ञ पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥६५॥ फिर उर्वशी तीर्थ में आकर जो सोम महर्षि का आश्रम है, वहाँ पर कुम्भ कर्णाश्रम में स्नान करके, पृथिवी पर पूजित होता है ॥६६॥ इसी तरह कोकामुख तीर्थ में स्नान करके समाहित ब्रह्मचारी जातिस्मरत्व को प्राप्त करता है, इस बात को प्राचीन ऋषियों ने कहा है ॥६७॥ सकृत नदी में जाकर ब्राह्मण कृतार्थ हो जाता है, वह सभी पापों से रहित होकर स्वर्गलोक में जाता है ॥६८॥ ऋषभ द्वीप में जाकर क्रौञ्च निषूदन का दर्शन करके जो मनुष्य सरस्वती नदी में आचमन करता है, वह विमान पर सुशोभित होता है ॥६९॥ हे महाराज ! मुनि से सेवित औद्यानक तीर्थ में जाकर जो स्नान करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥७०॥ ब्रह्मर्षियों के द्वारा सेवित पवित्र ब्रह्मतीर्थ में जाकर मनुष्य वाजपेय याग के फल को प्राप्त करता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥७१॥ वहाँ से चम्पा तीर्थ में जाकर भागीरथी में स्नानदि करे । फिर दण्डार्पण तीर्थ में जाकर मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है ॥७२॥ वहाँ से पवित्र लाविढिका तीर्थ, जो पवित्र पुरुषों से सेवित है; से जाकर मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है तथा विमान पर पूजित होता है ॥७३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३८॥

उनतालिसवाँ अध्याय

नारद उवाच

अथ सन्ध्यां समासाद्य सद्विद्यां तीर्थमुत्तमम् ।
उपस्पृश्य नरो विद्वान्भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥१॥
रामस्य च प्रसादेन तीर्थराजं कृतं पुरा। तल्लौहित्यं समासाद्य विन्द्याद्बहुसुवर्णकम् ॥२॥
करतोयां समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः। अश्वमेधमवाप्नोति शक्रलोकं च गच्छति॥३॥
गङ्गायास्त्वथा राजेन्द्र सागरस्य च सङ्गमे। अश्वमेधं दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥४॥
गङ्गायास्तु परं द्वीपं प्राप्य यः स्नाति भारत ! ।
त्रिरात्रोपोषितो राजन्सर्वकाममवाप्नुयात् ॥५॥
ततो वैतरणीं गत्वा नदीं पापप्रमोचनीम्। विरजं तीर्थमासाद्य विराजति यथा शशी॥६॥
प्रभावे च कुलं पूत्वा सर्वपापं व्यपोहति। गोसहस्रफलं लब्ध्वा पुनाति स्वकुलं नरः ॥७॥
शोणस्य ज्योतिरथ्याश्च सङ्गमे निवसञ्छुचिः ।
तर्पयित्वा पितृन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥८॥
शोणस्य नर्मदायाश्च प्रभवे कुरुपुङ्गव !। वंशगुल्ममुपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत् ॥९॥
ऋषभं तीर्थमासाद्य कोशलायां नराधिप! । वाजिमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः॥१०॥
कोशलायां समासाद्य कालतीर्थमुपस्पृशेत्। वृषभैकादशगुणं लभते नात्र संशयः ॥११॥

सन्ध्यातीर्थ आदि अनेक तीर्थों का वर्णन

नारदजी ने कहा— उसके बाद विद्या से युक्त उत्तम संध्यातीर्थ में जाकर जो मनुष्य आचमन करता है, वह विद्वान् होता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥१॥ जिसको श्रीपरशुरामजी ने कृपा करके तीर्थराज बना दिया उस लौहित्यतीर्थ में जाकर मनुष्य बहुत अधिक सुवर्ण को प्राप्त करता है ॥२॥ करतोया नदी में जाकर जो तीन रात तक उपवास करता है, वह अश्वमेध याग का फल पाता है और इन्द्र के लोक में जाता है ॥३॥ हे राजेन्द्र ! गङ्गासागर सङ्गम पर अश्वमेध के दश गुना फल प्राप्त होता है, यह मनीषियों ने कहा है ॥४॥ हे युधिष्ठिर ! गङ्गा के पार वाले द्वीप में जाकर जो मनुष्य स्नान करके तीन रात तक उपवास करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥५॥ वहाँ से सभी पापों से मुक्त करने वाली वैतरणी नदी के विरज तीर्थ में जाकर मनुष्य चन्द्रमा के समान सुशोभित होता है ॥६॥ प्रभाव तीर्थ में अपने वंश को पवित्र बनाकर मनुष्य सभी पापों को विनष्ट कर देता है । वह एक हजार गोदान के फल को प्राप्त करके अपने वंश को पवित्र बना देता है ॥७॥ जो मनुष्य पवित्रता पूर्वक निवास करते हुए शोण तथा ज्योतिरथ्या नदी के सङ्गम पर देवताओं और पितरों का तर्पण करता है वह अग्निष्टोम याग के फल को प्राप्त करता है ॥८॥ शोण तथा नर्मदा के उत्पत्ति स्थान पर वंश गुल्म का जो स्पर्श करता है, वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥९॥ हे नराधिप ! कोशला नदी के ऋषभ तीर्थ में जाकर जो मनुष्य तीन रात्रियों तक उपवास करके रहता है वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥१०॥ कोशला नदी के काल तीर्थ में जाकर जो आचमन करता है वह ग्यारह साड़ों को छोड़ने

पुष्पवत्यामुपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितो नरः। गोसहस्रफलं विन्देत्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥१२॥
ततो बदरिकातीर्थे स्नात्वा प्रयतमानसः। दीर्घायुष्यमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति॥१३॥
ततो महेन्द्रमासाद्य जामदग्न्यनिषेवितम्। रामतीर्थे नरः स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत् ॥१४॥
मतङ्गस्य तु केदारं तत्रैव भरतर्षभ !। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ॥१५॥
श्रीपर्वतं समासाद्य नदीतीरमुपस्पृशेत्। अश्वमेधमवाप्नोति परां सिद्धिं च गच्छति ॥१६॥
श्रीपर्वते महादेवो देव्या सह महाद्युतिः। न्यवसत्परमप्रीतो ब्रह्मा च त्रिदशैर्वृतः ॥१७॥
तत्र देवह्रदे स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः। अश्वमेधमवाप्नोति परां सिद्धिं च गच्छति॥१८॥
ऋषभं पर्वतं गत्वा भाण्डेषु सुरपूजितम्। वाजपेयमवाप्नोति नाकपृष्टे च मोदते ॥१९॥
ततो गच्छेत कावेरीं वृतामप्सरसां गणैः। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥२०॥
तत्र तीर्थे समुद्रस्य कन्यातीर्थमुपस्पृशेत्। तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२१॥
अथ गोकर्णमासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
समुद्रमध्ये राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृतम् ॥२२॥
यत्र ब्रह्मादयो देवा मनुष्याश्च तपोधनाः। भूतयक्षाः पिशाचाश्च किन्नराः समहोरगाः ॥२३॥
सिद्धचारणगन्धर्वा मानुषाः पन्नगास्तथा। सरितः सागराः शैला उपासत उमापतिम् ॥२४॥

का फल प्रापत करता है ॥११॥ पुष्पवती नदी में अचामन करके तथा तीन रात्रियों तक वहाँ उपवास करके मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है और वह अपने वंश का उद्धार कर देता है॥१२॥ उसके बाद बदरिका तीर्थ में शान्त मन से स्नान करने वाला मनुष्य दीर्घायुष्ट्व को प्राप्त करके स्वर्गलोक में जाता है ॥१३॥ उसके बाद श्रीपरशुरामजी से सेवित महेन्द्र पर्वत पर आकर मनुष्य को रामतीर्थ में स्नान करना चाहिए ऐसा करके वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥१४॥ हे भरतश्रेष्ठ ! वहीं मतङ्ग ऋषि का केदारतीर्थ है, वहाँ पर स्नान करके मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है॥१५॥ श्रीपर्वत पर जाकर नदी के तट में जाय और आचमन करे, ऐसा करने वाला अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करके परमासिद्धि को प्राप्त करता है ॥१६॥ श्रीपर्वत पर महाकान्ति सम्पन्न भगवान् शङ्कर ने देवी पार्वती के साथ प्रेम पूर्वक निवास किया और देवताओं के साथ ब्रह्माजी ने भी निवास किया ॥१७॥ वहाँ पर देवह्रद में पवित्र मन से स्नान करने वाला मनुष्य अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है और वह परमासिद्धि को प्राप्त करता है ॥१८॥ ऋषभ पर्वत पर जाकर देवताओं से पूजित भाण्डेषु तीर्थ में स्नान करके मनुष्य वाजपेय याग का फल प्राप्त करके स्वर्ग में आनन्दित होता है ॥१९॥ वहाँ से अप्सरा समूह से घिरे हुए काबेरी तीर्थ में जाय; हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य को एक हजार गोदान करने का फल मिलता है ॥२०॥ वहाँ पर समुद्र के कन्यातीर्थ में जाकर आचमन करे। हे राजेन्द्र ! वहाँ पर आचमन आदि करके वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२१॥ उसके पश्चात् त्रैलोक्य विख्यात गोकर्ण तीर्थ में जाय वह समुद्र में विद्यमान है तथा सभी लोग उस तीर्थ को नमस्कार करते है ॥२२॥ उस तीर्थ में ब्रह्मा आदि देवता, मुनिगण तथा तपस्वी गण, भूत, यक्ष, पिशाच, किन्नर, महोरग, सिद्धचारण, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग, नदियाँ, सागर और पर्वत उमापति शिवजी की उपासना करते हैं ॥२३-२४॥ वहाँ पर भगवान् शिव की पूजा करके तीन रात्रियों तक उपवास करे । ऐसा करने वाला

तत्रेशानं समभ्यर्च्य त्रिरात्रोपोषितो नरः । दशाश्वमेधमाप्नोति गाणपत्यं च विन्दति ॥२५॥
उपोष्य द्वादशरात्रं कृतार्थो जायते नरः । तस्मिन्नेव तु गायत्र्याः स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥२६॥
त्रिरात्रमुषितस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्। निदर्शनं च प्रत्यक्षं ब्राह्मणानां नराधिप ! ॥२७॥
गायत्रीं पठते यस्तु योनिसङ्करजो द्विजः। गाथा वा गीतिका वाणी तस्य सम्पद्यते नृप॥२८॥
अब्राह्मणस्य पठतः सावित्री तूपनश्यति। संवर्तस्य तु विप्रर्षेर्वापीमासाद्य दुर्ल्लभाम् ॥२९॥
रूपस्य भागी भवति सुभगश्चाभिजायते। ततो वेणां समासाद्य तर्पयेत्पितृदेवताः ॥३०॥
मयूरहंससंयुक्तं विमानं लभते नरः। ततो गोदावरीं प्राप्य नित्यसिद्धनिषेविताम्॥३१॥
गवामयुतमाप्नोति वायुलोकं च गच्छति। वेणायाः सङ्गमे स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥३२॥
वरदासङ्गमे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्। ब्रह्मस्थूणां समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥३३॥
गोसहस्रफलं विन्देत्स्वर्गलोकं च गच्छति। कुब्जावनं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥३४॥
त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
ततो देवह्रदे स्नात्वा कृष्णवेणाजलोद्भवे ॥३५॥
ज्योतिर्मात्रह्रदे चैव तथा कन्याश्रमे नृप !। यत्र क्रतुशतैरिष्ट्वा देवराजो दिवङ्गतः ॥३६॥
अग्निष्टोमशतंविन्देद्गमनादेव तत्र तु। सर्वदेवह्रदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥३७॥
जातिमात्रह्रदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः ।
ततो वापीं महापुण्यां पयोष्णीं सरितां वराम् ॥३८॥

तीर्थयात्री दश अश्वमेध यागों का फल तथा गाणपत्य को प्राप्त करता है ॥२५॥ वहाँ पर बारह रात्रियों तक निवास करके मनुष्य कृतार्थ हो जाता है । वहीं पर त्रैलोक्य विख्यात गायत्री देवी का स्थान है ॥२६॥ वहाँ पर तीन रात्रियों तक निवास करने वाला मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है । हे राजन् ! यह ब्राह्मणों के लिए प्रत्यक्ष उदाहरण है कि ॥२७॥ यदि कोई वर्ण सङ्कर भी ब्राह्मण गायत्री का जप करता है, उसकी वाणी, गाथा, या गीतिका हो जाती है ॥२८॥ यदि कोई अब्राह्मण गायत्री का पाठ करता है तो उसकी सावित्री विनष्ट हो जाती है । हे विप्रर्षे ! संवर्त की दुलर्भ वावली में जाकर॥२९॥ मनुष्य रूपवान और सौभाग्य सम्पन्न हो जाता है । वहाँ से वेणा नदी में जाकर पितरों और देवताओं का तर्पण करना चाहिए ॥३०॥ ऐसा करने वाला मनुष्य मृत्यु के पश्चात् मयूर तथा हंस से युक्त विमान को प्राप्त करता है । वहाँ से सिद्ध पुरुषों के द्वारा सदैव सेवित गोदावरी नदी में जाकर मनुष्य गोतीर्थ को प्राप्त करता है वहाँ स्नान करने वाला वायुलोक में जाता है । वेणानदी के संगम स्थल पर स्नान करके मनुष्य वाजपेय याग करने का फल प्राप्त करता है ॥३१-३३॥ वरदा के सङ्गम पर स्नान करके मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है । ब्रह्मस्थूणा तीर्थ में जाकर तीन रात्रि तक उपवास करने वाला तीर्थसेवी ॥३३॥ एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में जाता है। समाहित ब्रह्मचारी, मनुष्य कुब्जावन में जाकर ॥३४॥ यदि स्नान करके तीन रात्रियों तक उपवास करता है तो उसे एक हजार गोदान करने का फल मिलता है । उसके बाद देवह्रद में कृष्णवेणा के जल में स्नान करके ॥३५॥ फिर ज्योति ह्रद तथा कन्याश्रम में मनुष्य जाय । वहाँ पर सौ क्रतुओं को करके इन्द्र स्वर्गलोक को प्राप्त किए थे ॥३६॥ वहाँ पर जाने मात्र से सौ ज्योतिष्टोम यागों का फल प्राप्त

पितृदेवार्चनरतो गोसहस्रफलं लभेत् । दण्डकारण्यमासाद्य महाराज ! उपस्पृशेत् ॥३९॥
शरभङ्गाश्रमं गत्वा शुकस्य च महात्मनः । न दुर्गतिमवाप्नोति पुनाति स्वकुलं नरः ॥४०॥
ततः सूर्यारकं गच्छेज्जमदग्निनिषेवितम् । रामतीर्थे नरः स्नात्वाविन्देद्बहुसुवर्णकम् ॥४१॥
सप्तगोदावरीं स्नात्वा नियतो नियताशनः । महापुण्यमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ॥४२॥
ततो देवपथं गच्छेन्नियतो नियताशनः । देवसत्रस्य यत्पुण्यं तदवाप्नोति मानवः ॥४३॥
तुङ्गकारण्यमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । वेदानध्यापयत्तत्र मुनीन्सारस्वतः पुरा ॥४४॥
तत्र वेदान्प्रनष्टांस्तु मुनेराङ्गिरसः सुतः । उपविष्टो महर्षीणामुत्तरीयेषु भारत !॥४५॥
ॐकारेण यथान्यायं सम्यगुच्चारितेन ह । येन यत्पूर्वमभ्यस्तं तस्य तत्समुपस्थितम् ॥४६॥
ऋषयस्तत्र देवाश्च वरुणोऽग्निः प्रजापतिः । हरिर्नारायणो देवो महादेवस्तथैव च ॥४७॥
पितामहश्च भगवान्देवैस्सह महाद्युतिः । भृगुं नियोजयामास याजनार्थे महाद्युतिम् ॥४८॥
ततः स चक्रे भगवानृषीणां विधिवत्तदा । सर्वेषां पुनराधानं देवदृष्टेन कर्मणा॥४९॥
आज्यभागेन वै तत्र तर्पितास्तु यथाविधि । देवास्त्रिभुवनं याता ऋषयश्च यथासुखम् ॥५०॥
तदरण्यं प्रविष्टस्य तुङ्गकं राजसत्तम !। पापं विनश्यते सद्यः स्त्रिया वै पुरुषस्य वा॥५१॥
तत्र मासं वसेद्धीरो नियतो नियताशनः । ब्रह्मलोकं व्रजेद्राजन्पुनीते च कुलं पुनः॥५२॥

हो जाता है । सर्वदेव ह्रद में स्नान करके मनुष्य को एक हजार गोदान का फल मिलता है ॥३७॥ जातिह्रद में स्नान करने मात्र से मनुष्य जातिस्मर हो जाता है । वहाँ से अत्यन्त पवित्र तथा नदियों में श्रेष्ठ पयोष्णी ॥३८॥ नदी में पितरों देवताओं की पूजा करने वाला मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है । हे महाराज ! दण्डकारण्य में जाकर आचमन करना चाहिए ॥३९॥ वहाँ शरभङ्ग आश्रम तथा शुकाश्रम में जाने वाले मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं होती है । वह मनुष्य अपने वंश का उद्धार कर देता है ॥४०॥ उसके पश्चात् महर्षि जमदग्नि से सेवित सूर्यारक तीर्थ में जाय वहाँ पर रामतीर्थ में स्नान करके मनुष्य बहुत अधिक सुवर्ण को प्राप्त करता है ॥४१॥ नियमपूर्वक भोजन करने वाला मनुष्य सप्त गोदावरी तीर्थ में स्नान करके महान् पुण्य को प्राप्त करता है, और देवलोक में जाता है॥४२॥ उसके बाद नियम पूर्वक भोजन करने वाले मनुष्य को देवपथ में जाना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य देवसत्र के पुण्य को प्राप्त करता है ॥४३॥ ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय प्राचीन काल में सारस्वत ब्राह्मण ने तुङ्गकारण्य में जाकर मुनीयों को वेदों को पढ़ाया ॥४४॥ वहाँ पर विनष्ट हुए वेदों को मुनियों के उत्तरीय पर बैठकर अङ्गिरा महर्षि के पुत्र ने पढ़ाया जिस मुनि के द्वारा विधिपूर्वक ओङ्कारोंच्चारण पूर्वक जिस वेद का उच्चारण किया गया वह वेद उसी मुनि को उपस्थित हो गया ॥४५-४६॥ वहाँ पर ऋषिगण, देवगण, वरुण, अग्नि, प्रजापति, श्रीहरि नारायण, शङ्करजी ॥४७॥ तथा देवताओं के साथा महाकान्ति सम्पन्न ब्रह्माजी ने महान् कान्ति से युक्त भृगु महर्षि को यज्ञ करने के लिए नियुक्त किया ॥४८॥ उसके पश्चात् महर्षि भृगु ने विधिपूर्वक सभी ऋषियों का पुनः आधान (प्रतिष्ठिा) देवदृष्ट विधि से किया ॥४९॥ वहाँ पर विधि पूर्वक आज्य भाग से तृप्त हुए देवता और ऋषिगण त्रैलोक्य मे चले गये ॥५०॥ इस तुङ्गकारण्य में जाने वाले पुरुषों तथा स्त्रियों के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥५१॥ धैर्य सम्पन्न व्यक्ति को नियम पूर्वक भोजन करते हुए वहाँ पर एक मास निवास करना चाहिए । ऐसा करने वाला तीर्थ

मेधावनं समासाद्य पितृदेवांश्च तर्पयेत् । अग्निष्टोममवाप्नोति स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥५३॥
तत्रकालञ्जरे गत्वा गोसहस्रफल लभेत् । आत्मानं साधयेत्तत्र गिरौ कालञ्जरे नृप ! ॥५४॥
स्वर्गलोके महीयेत नरो नास्यत्र संशयः । ततो गिरिवरश्रेष्ठे चित्रकूटे विशांपते !॥५५॥
मन्दाकिनीं समासाद्य नदीं पापविमोचनीम् । अत्राभिषेकं कुर्वाणः पितृदेवार्चने रतः ॥५६॥
अश्वमेधमवाप्नोति गतिं च परमां व्रजेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गुहस्थानमनुत्तमम् ॥५७॥
यत्र देवो महासेनो नित्यं सन्निहितो नृप । पुमांस्तत्र नरश्रेष्ठ ! गमनादेव सिद्ध्यति ॥५८॥

कोटितीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य शिवस्थानं व्रजेन्नरः ॥५९॥

अभिगम्य महादेवं विराजति यथा शशी । तत्र कूपो महाराज ! विश्रुतो भरतर्षभ !॥६०॥
समुद्रा यत्र चत्वारो निवसन्ति युधिष्ठिर । तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥६१॥

नियतात्मा नरः पूतो गच्छेत परमां गतिम् ।
ततो गच्छेत्कुरुश्रेष्ठ ! शृङ्गवेरपुरं महत् ॥६२॥
यत्र तीर्णो महाप्राज्ञो रामो दाशरथिः पुरा ।
गङ्गायां तु नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥६३॥

विधूतपाप्मा भवति वाजपेयं च विन्दति । ततो मुञ्जवटं गच्छेत्स्थानं देवस्य धीमतः ॥६४॥
अभिगम्य महादेवमभ्यर्च्य च नराधिप ! । प्रदक्षिणमुपावृत्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥६५॥

सेवी ब्रह्मलोक में जाता है, और अपने वंश को पवित्र बना देता है ॥५२॥ फिर मेधावन में जाकर पितरों तथा देवताओं का तर्पण करना चाहिए । ऐसा करने वाला अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है और मेधा को प्राप्त करता है ॥५३॥ वहाँ पर कालञ्जर पर्वत पर जाकर मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है । उस कालञ्जर पर्वत अपने शरीर की भी साधना करनी चाहिए ॥५४॥ ऐसा करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है, इसमें कोई संशय नहीं हे । हे राजन् ! वहाँ से श्रेष्ठ पर्वत चित्रकूट पर ॥५५॥ पापों से मुक्त करने वाली मन्दाकिनी नदी में स्नान करके; पितरों तथा देवताओं की पूजा करे ॥५६॥ ऐसा करने वाला अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है और परमागति को प्राप्त करता है । हे राजेन्द्र ! वहाँ से कार्तिकेय के उत्तम स्थान में जाना चाहिए ॥५७॥ उस तीर्थ में महासेन (कार्तिकेय का) सदैव सन्निधान बना रहता है । वहाँ पर जाने मात्र से वह श्रेष्ठ पुरुष सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥५८॥ कोटितीर्थ में स्नान करके मनुष्य एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है । वहाँ से प्रदक्षिण क्रम से लौटकर मनुष्य को यशःस्थान पर जाना चाहिए ॥५९॥ वहाँ माहादेव का दर्शन करके वह चन्द्रमा के समान सुशोभित होता है । हे भरतश्रेष्ठ ! वहाँ का कूप विख्यात है ॥६०॥ हे युधिष्ठिर! उस समुद्रकूप में चारों समुद्रों का निवास है । हे राजेन्द्र ! वहाँ पर आचमन करके तथा उस कूप की प्रदक्षिणा करके ॥६१॥ नियम का पालन करने वाला मनुष्य पवित्र होकर परमागति को प्राप्त करता है। हे कुरुश्रेष्ठ ! उसके पश्चात् शृङ्गवेरपुर जाना चाहिए ॥६२॥ महाप्राज्ञ श्रीराम ने वहीं पर गङ्गा को पार किया था । वहाँ जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी मनुष्य गङ्गा में स्नान करके ॥६३॥ पाप रहित हो जाता है, और वह वाजपेय याग का फल प्राप्त करता है । वहाँ से भगवान् शिव के स्थान मूञ्जावट में जाना

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! प्रयागमृषिसंस्तुतम्। यत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः ॥६६॥
लोकपालाश्च सिद्धाश्च निरताः पितरस्तथा ।
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव च महर्षयः ॥६७॥
तथा नागाः सुवर्णाश्च सिद्धाः शुक्रधरास्तथा ।
सरितः सागराश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥६८॥
हरिश्चभगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः। तत्र त्रीण्यपि कुण्डानि तयोर्मध्येन जाह्नवी ॥६९॥
प्रयागात्समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥७०॥
यमुना गङ्गया सार्द्धं सङ्गता लोकभाविनी। गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम् ॥७१॥
प्रयागं जघनस्यान्तमुपस्थमृषयो विदुः। प्रयागं सुप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ ॥७२॥
तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ।
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्त्तिमन्तो युधिष्ठिर ! ॥७३॥
प्रजापतिमुपासन्त ऋषयश्च महानघाः। यजन्ते क्रतुभिर्देवांस्तथा चक्रधरा नृप ! ॥७४॥
ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत। प्रयागं सर्वतीर्थेभ्यः प्रभावेणाधिकं प्रभो !॥७५॥
श्रवणात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि । मूर्धकानमनाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७६॥
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्सङ्गमे संशितव्रतः। पुण्यं सुमहदाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥७७॥

चाहिए ॥६४॥ हे राजन् ! वहाँ शङ्करजी का दर्शन करके तथा उनकी पूजा करके पुनः उनकी प्रदक्षिणा करके मनुष्य गाणपत्य को प्राप्त करता है ॥६५॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ से ऋषियों के द्वारा वर्णित प्रयागतीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता, दिशाएँ, दिशाओं के स्वामी ॥६६॥ लोकपाल, सिद्धगण, पितृगण, सनत्कुमार आदि महर्षिगण ॥६७॥ नाग, सुपर्ण (पक्षीगण) शुक्र को धारण करने वाले सिद्धगण, नदियाँ, सागर, गन्धर्व, अप्सरायें ॥६८॥ भगवान् श्रीहरि तथा ब्रह्माजी का निवास है । वहाँ पर तीन कुण्ड हैं, उनमें से दो के बीच से सभी तीर्थों से पुरस्कृत होकर गङ्गाजी प्रयाग से निकलती हैं । वहाँ सूर्य की पुत्री तथा तीनों लोकों में विख्यात यमुना नदी है ॥७०॥ गङ्गा नदी के साथ लोक कल्याण करने वाली यमुना नदी से मिली है । गङ्गा और यमुना के बीच में पृथिवी की जांघ बतलायी गयी है । ऋषियों ने प्रयाग को जांघ के अन्त और पृथिवी की योनि बतलाया है । प्रयाग और प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) ये दोनों कम्बल तथा अश्वतर नामक सर्पो के तीर्थ भोगवती तथा प्रजापति के यज्ञ की वेदी ये सब पवित्र स्थान हैं । हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर वेद तथा यज्ञ मूर्तिमान रूप से रहते हैं ॥७१-७३॥ वहाँ पर निष्पाप ऋषिगण प्रजापति की उपासना करते हैं । हे राजन् ! वे चक्र को धारण करने वाले देवताओं की आराधना करते हैं ॥७४॥ हे भारत ! प्रयाग से बढकर कोई तीर्थ नहीं है । प्रयाग का सभी तीर्थों से अधिक प्रभाव है ॥७५॥ उस तीर्थ का श्रवण करने उसके नाम का संकीर्तन करने तथा शिर झुकाकर उसको प्रणाम करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥७६॥ जो व्रती उस तीर्थ में सङ्गम में स्नान करता है । वह राजसूय तथा अश्वमेध इन दोनों यागों के महान् पुण्य को प्राप्त करता है ॥७७॥ यह देवताओं की यज्ञभूमि है । वहाँ की थोड़ी सी भी चर्चा तथा वहाँ पर किया गया थोड़ा सा भी दान महान् फल देने वाला होता है ॥७८॥ हे तात ! देवताओं अथवा संसारी जीवों के कहने से भी

एषा यजनभूमिर्हि देवानामपि तत्कथा। दत्तं तत्र स्वल्पमति महद्भवति भारत ! ॥७८॥
न देववचनात्तात न लोकवचनादपि। मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥७९॥
दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः। येषां सान्निध्यमत्रैव कीर्त्तितं कुरुनन्दन॥८०॥
चतुर्विद्ये च यत्पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत्।
स्नात एव तदाप्नोति गङ्गायामुनसङ्गमे ॥८१॥
ततो भोगवती नाम वासुकेस्तीर्थमुत्तमम्। तत्राभिषेकं यः कुर्यात्सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ॥८२॥
तत्र हंसप्रपतनं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। दशश्वमेधिकं चैव गङ्गायां कुरुनन्दन !॥८३॥
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्रतत्रावगाहिता। विशेषो वै कनखले प्रयागं परमं महत् ॥८४॥
यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गङ्गावसेवनम्। सर्वंतत्तस्यगङ्गापो दहन्त्यग्निरिवेन्धनम् ॥८५॥
सर्वं दहन्ति गङ्गापस्तूलराशिमिवानलः। सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ॥८६॥
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं गङ्गाकलियुगे स्मृता। पुष्करे तु तपस्तप्येद्दानं दद्यान्महालये ॥८७॥
मलये त्वग्निमारोहेद्भृगुतुङ्गे त्वनाशनम्। पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे गङ्गापोमध्यगेषु च॥८८॥
सद्यस्तारयते जन्तुः सप्तसप्तावरांस्तथा। पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा पुण्यं प्रयच्छति॥८९॥
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम् ॥९०॥
तावत्स पुरुषो राजन्स्वर्गलोके महीयते। यथा पुण्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥९१॥

तुम्हारी प्रयाग में मृत्यु के विषय में अनास्था नहीं होनी चाहिए ॥७९॥ प्रयाग में ही दूसरे साठ करोड़ तथा दश हजार तीर्थों का सान्निध्य सदा बना रहता है। चारों विद्याओं के ज्ञाता तथा सत्यवादियों को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है। उस पुण्य की प्राप्ति यहाँ गङ्गा यमुना सङ्गम में स्नान करने मात्र से ही हो जाती है ॥८०-८१॥ वहाँ से वासुकि के भोगवती नामक उत्तमतीर्थ में जाय। वहाँ पर जो स्नान करता है, वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥८२॥ हे कुरुनन्दन ! वहाँ पर हंसप्रपतन नामक उत्तम तीर्थ है तथा गङ्गा में दशाश्वमेधिक तीर्थ है ॥८३॥ जहाँ कहीं गङ्गा में स्नान किया जाय वहाँ कुरुक्षेत्र के फल के समान गङ्गा में स्नान का फल होता है, किन्तु कनखल में गङ्गा का विशेष महत्त्व है और प्रयाग में अत्यधिक महत्त्व है ॥८४॥ सैकड़ों पाप कर्म को करके यदि कोई गङ्गा में स्नान करता है तो गङ्गा उसके पापों को उसी तरह जला देती है, जिसतरह अग्नि इन्धन को जलाकर भस्म कर देती है ॥८५॥ जिस तरह आग रुई के ढेर को जला देती है, उसी तरह गङ्गा सम्पूर्ण पापों को भस्म कर देती है। सत्य युग में सभी तीर्थ पुण्यमय होते हैं। त्रेता में पुष्कर तीर्थ पुण्य कहा गया है ॥८६॥ द्वापर में कुरुक्षेत्र को पुण्यमय बतलाया गया है और कलियुग में गङ्गा को पुण्यमयी कहा गया है। पुष्कर में तपस्या करनी चाहिए, महालय में दान देना चाहिए ॥८७॥ मलयाचल पर अग्नि में प्रवेश करना चाहिए, और भृगुशिखर पर उपवास करना चाहिए। पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा गङ्गा के जल में स्नान करने वाला पुरुष अपने सात पीढी पहले के तथा सात पीढी बाद के पुरुषों को शीघ्र ही तार देता है। गङ्गा नाम लेने से ही पापरहित बना देती है, और दर्शन करने से गङ्गा पुण्य प्रदान करती हैं ॥८८-८९॥ गङ्गा में स्नान करने तथा गङ्गा का जल पीने से गङ्गा उसके वंश के सात पीढ़ी के पूर्वजों को पवित्र

उपास्य पुण्यं लब्ध्वा च भवति परलोकभाक् ।
न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥९२॥
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः। यत्र गङ्गा महाराज ! सदेशस्तत्र योजनम् ॥९३॥
सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमागतम्। इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनां मानसेषु च॥९४॥
मुक्तिंचैव जपेत्कर्णे शिष्टस्यानुगतस्य च। इदं धर्म्ममिदं मेध्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सुखम् ॥९५॥
इदं पुण्यतमं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम्। महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम् ॥९६॥
अधीत्य द्विजमध्ये च निर्मलत्वमवाप्नुयात्। श्रीमत्स्वर्ग्यं महापुण्यं सपत्नशमनं शिवम्॥९७॥
मेधाजननमग्रयं वै तीर्थवंशानुकीर्त्तनम् । अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ॥९८॥
महीं विजयते राजा वैश्यो धनमवाप्नुयात्। शूद्रो यातीप्सितान्कामान्ब्राह्मणः पारगः पठन्॥९९॥
यश्चेदं श्रृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं सदा शुचि। जातिस्मरत्वमाप्नोति नाकपृष्ठे च मोदते॥१००॥
गम्यान्यपि च तीर्थानि कीर्तितान्यगमान्यपि ।
मनसाप्यभिगच्छेत सर्वतीर्थमनीषया ॥१०१॥
एतानि वसुभिः साध्यैरादित्यैर्मरुदश्विभिः। ऋषिभिर्देवकल्पैश्च कृतानि सुकृतैषिभिः ॥१०२॥
एवं त्वमपि कौरव्य ! विधिनाऽनेन सुव्रत ! ।
व्रज तीर्थानिनियतः पुण्यं पुण्येन वर्द्धते ॥१०३॥

बना देती है । मनुष्य की हड्डी का जब तक गङ्गा के जल से स्पर्श होता रहता है ॥९०॥ हे राजन्! वह पुरुष उतने समय तक स्वर्गलोक में पूजित होता है । पवित्र तीर्थों तथा पवित्र मन्दिरों की उपासना करके तथा पुण्य प्राप्त करके मनुष्य स्वर्गलोक का अधिकारी होता है । गङ्गा से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है और भगवान् केशव से बढ़कर कोई देवता भी नहीं है ॥९२॥ ब्रह्माजी ने कहा है कि ब्राह्मणों से बड़ा कोई नहीं है । हे महाराज ! जहाँ पर गङ्गाजी हैं, वहाँ के योजन पर्यन्त का तटस्थित क्षेत्र सिद्धक्षेत्र जानना चाहिए । यह ब्राह्मणों तथा साधु पुरुषों के मन में सत्य बात है ॥९३-९४॥ इस प्रसङ्ग को सुनने मात्र से भी मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, यह प्रसङ्ग शिष्टपुरुषों को अभिप्रेत है । यह प्रसङ्ग धार्मिक, मेध्य, स्वर्ग तथा सुख प्रदान करने वाला है ॥९५॥ यह प्रसङ्ग अत्यन्त मनोहर पवित्र, पवित्र बनाने वाला तथा उत्तम धर्म स्वरूप है । यह गोपनीय पृथिवी का शिरोभाग है तथा सभी पापों से छुड़ाने वाला है॥९६॥ ब्राह्मणों के बीच में इसका अध्ययन करने वाला मनुष्य निर्मल (निष्पाप) हो जाता है । यह स्वर्ग प्रदान करने वाला महापुण्यप्रद, शत्रुओं को शान्त करने वाला तथा कल्याणकारी प्रसङ्ग है ॥९७॥ यह तीर्थ के वंश का वर्णन मेधा को बढ़ाने का श्रेष्ठ साधन है । इसको पढ़ने वाला पुत्र रहित पुरुष पुत्र प्राप्त कर लेता है, निर्धन धन को प्राप्त कर लेता हे ॥९८॥ राजा पृथिवी को जीत लेता है, वैश्य धन प्राप्त कर लेता है । शूद्र अपनी कामनओं को पूर्ण कर लेता है और ब्राह्मण वेद पारङ्गत हो जाता है ॥९९॥ जो मनुष्य इस तीर्थ प्रसङ्ग का पवित्रता पूर्वक श्रवण करता है वह जातिस्मर हो जाता है तथा स्वर्गलोक में आनन्दानुभव करता है ॥१००॥ इस प्रसङ्ग में तीर्थ यात्रा करने योग्य तथा नहीं जाने योग्य भी तीर्थों का वर्णन किया गया है । अतएव जहाँ जाना सम्भव नहीं है, उन तीर्थों का मन से स्मरण करना चाहिए॥१०१॥ इन तीर्थों की यात्रा पुण्य चाहने वाले वसुओं, साध्यगणों, आदित्यों, मरुद्गणों, अश्विनी कुमारों तथा देव

भावितैः कारणैः पूर्वमास्तिक्याच्छुतिदर्शनात् ।
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः ॥१०४॥
नाकृतो नाकृतात्मा च नाशुचिर्न च तस्करः ।
स्नाति तीर्थेह कौरव्य ! न च वक्रमतिर्नरः ॥१०५॥
त्वया तु सम्यग्वृत्तेन नित्यं धर्मार्थदर्शिना । पितरस्तर्पितास्तात सर्वे च प्रपितामहाः ॥१०६॥
पितामहपुरोगाश्च देवाःसर्षिगणास्तथा। त्वं च धर्मेण धर्मज्ञ ! नित्यमेवाभितोषितः॥१०७॥
दिलीपकीर्तिं महतीं प्राप्स्यसे भुवि शाश्वतीम् ।
एवमुक्त्वाऽभ्यनुज्ञाप्य वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१०८॥
प्रीतः प्रीतेन मनसा तत्रैवान्तरधीयत । दिलीपः कुरुशार्दूल ! शास्त्रतत्त्वार्थदर्शनात्॥१०९॥
वसिष्ठवचनाच्चैव पृथिवीमनुचक्रमे। एवमेषा महाभाग ! प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता॥११०॥
तीर्थयात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचनी। अनेन विधिना यस्तु पृथिवीं पर्यटिष्यति ॥१११॥
अश्वमेधशतं साग्रं फलं प्रत्यैष भोक्ष्यते । ततश्चाष्टगुणं पार्थ ! प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम् ॥११२॥
दिलीपः पार्थनृपतिर्यथा पूर्वमवाप्तवान्। नेता च त्वमृषीन्यस्मात्तस्मात्तेऽष्टगुणं फलम्॥११३॥
रक्षोगणविकीर्णानि तीर्थान्येतानि भारत!। न गतिर्विद्यतेऽन्यस्य त्वामृते कुरुनन्दन ! ॥११४॥
इदं देवर्षिचरितं सर्वतीर्थानुसंश्रितम्। यः पठेत्कल्यमुत्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥११५॥

कल्प महर्षियों ने की है ॥१०२॥ हे युधिष्ठिर ! तुम भी नियम पूर्वक इतने तीर्थों की यात्रा करो क्योंकि पुण्य कर्मों को करने से पुण्य बढ़ता है ॥१०३॥ शिष्ट पुरुषों को उन तीर्थों की प्राप्ति पहले से इन्द्रियों के द्वारा चिन्तन करने से आस्तिकता से तथा श्रुतियों के देखने से होती है ॥१०४॥ हे युधिष्ठिर ! पापी, अपुण्यवान्, अपवित्र रहने वाले, चोरी करने वाले, तथा टेढ़ी बुद्धि वाले लोग तीर्थों में स्नान नहीं कर पाते हैं ॥१०५॥ तुम तो अच्छे चरित्र वाले हो, नित्य ही धर्म का पालन करते हो, तुमने अपने पितृगणों और पितामहों को तृप्त किया है । ब्रह्मा आदि देवताओं तथा ऋषियों को भी तुमने तृप्त किया है ॥१०६॥ **वसिष्ठ महर्षि ने राजा दिलीप से कहा**— हे धर्मज्ञ ! दिलीप ! तुमने सदैव धर्मपूर्वक देवों तथा पितरों को सन्तुष्ट किया है अतएव तुम पृथिवी पर शाश्वत विशद तथा महान् यश को प्राप्त करोगे ॥१०७॥ **नारदजी ने कहा**— उस प्रकार से ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि वसिष्ठ राजा दिलीप को प्रसन्नता पूर्ण मन से कहकर वहीं पर अन्तर्धान हो गये ॥१०८॥ हे युधिष्ठिर ! शास्त्र के तत्त्वों के ज्ञाता राजा दिलीप महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा के अनुसार पृथिवी पर भ्रमण करने लगे ॥१०९॥ हे महाभाग ! इसी प्रकार से आप की प्रतिष्ठित हैं । तीर्थों की यात्रा अत्यन्त पुण्यमयी तथा सभी पापों से मुक्त करने वाली होती है ॥११०॥ इस विधि से जो पृथिवी पर तीर्थ यात्रा करेगा वह मृत्यु के पश्चात् सौ अश्वमेध से होने वाले फल से भी अधिक फल का भोग करेगा ॥१११॥ हे पार्थ (युधिष्ठिर) आप उनसे (दिलीप से) आठ गुना उत्तम धर्म को प्राप्त करोगे । हे पार्थ ! राजा दिलीप पूर्वोक्त प्रकार से तीर्थों में गये ॥११२॥ तुम तो समस्त ऋषियों को लेकर जाने वाले हो इसलिए तुमको आठ गुना फल प्राप्त होगा । हे भारत! इन तीर्थों में राक्षसों का भी निवास है ॥११३॥ अतएव तुमको छोड़कर कोई दूसरा इन तीर्थों में नहीं जा सकता है । देवर्षि का यह चरित सभी तीर्थों से संबद्ध है ॥११४॥ जो प्रात:काल उठकर इसको

ऋषिमुख्याः सदा यत्र वाल्मीकिस्त्वथ कश्यपः ।
आत्रेयस्त्वथ कौण्डिन्यो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥११६॥
असितो देवलश्चैव मार्कण्डेयोऽथ गालवः ।
भरद्वाजस्य शिष्यश्च मुनिरुद्दालकस्तथा ॥११७॥
शौनकः सह पुत्रेण व्यासश्च तपतांवरः। दुर्वासाश्च मुनिश्रेष्ठो जाबालिश्च महातपाः ॥११८॥
एते ऋषिवराः सर्वे त्वत्प्रतीक्षास्तपोधनाः। एभिः सह महाभाग ! तीर्थान्येतान्यनुव्रज ॥११९॥
प्राप्स्यसे महतीं कीर्तिं यथा राजा महाभिषः ।
यथा ययातिर्धर्मात्मा यथा राजा पुरूरवाः ॥१२०॥
तथा त्वं कुरुशार्दूल ! स्वेन धर्मेण शोभसे ।
यथा भागीरथो राजा यथा रामश्च विश्रुतः ॥१२१॥
यथा वै वृत्रहा सर्वान्सपत्नानदहत्पुरा। त्रैलोक्यं पालयामास देवराड्विगतज्वरः ॥१२२॥
तथा शत्रुक्षयं कृत्वा त्वं प्रजाः पालयिष्यसि ।
स्वधर्मेणार्जितामुर्वीं प्राप्य राजीवलोचन ! ॥
ख्यातिं यास्यसि वीर्येण कार्त्तवीर्यार्जुनो यथा ॥१२३॥

सूत उवाच

एवमाभाष्य राजानं नारदो भगवानृषिः। अनुज्ञाप्य महाराजं तत्रैवान्तरधीयत ॥१२४॥
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा ऋषिभिः सह सुव्रतः ।
जगामाखिलतीर्थानि सादरः पृथिवीपतिः ॥१२५॥
मयोक्तामृषयः सर्वे तीर्थयात्राश्रयां कथाम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स मुक्तः सर्वपातकैः॥१२६॥

पढ़ता है उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं । वहाँ पर ऋषियों में मुख्य वाल्मीकि, कश्यप ॥११५॥ आत्रेय, कौण्डिन्य, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कण्डेय, गालव ॥११६॥ भरद्वाज मुनि के शिष्य उद्दालक मुनि, शौनक महर्षि, अपने तपस्वियों में श्रेष्ठ अपने पुत्र के साथ व्यासजी ॥११७॥ मुनिश्रेष्ठ, दुर्वासा तथा महातपस्वी जाबालि, ये सभी ऋषिगण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।११८॥ हे महाभाग ! आप इन सभी ऋषियों के साथ इन तीर्थों में जायँ । ऐसा करके आप महाभिष के समान महान् यश को प्राप्त करेंगे ॥११९॥ धर्मा राज ययाति तथा राजा पुरुरवा के समान ही आप कार्य करें । ऐसा करके आप धर्म से सुशोभित होंगे ॥१२०॥ विख्यात राजा भगीरथ तथा श्रीरामचन्द्रजी तथा वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र अपने समस्त शत्रुओं का नाश किये ॥१२१॥ और निश्चिन्त होकर त्रैलोक्य का पालन किए। उसी तरह आप भी अपने शत्रुओं का विनाश करके प्रजाओं का पालन करेंगे ॥१२२॥ अपने धर्म के द्वारा पृथिवी को प्राप्त करके हे राजीवलोचन ! आप अपने पराक्रम के द्वारा कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन के समान विख्यात होंगे ॥१२३॥ इस तरह से युधिष्ठिर को कहकर तथा उनसे विदा लेकर नारदजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥१२४॥ सुन्दर व्रत वाले धर्मात्मा युधिष्ठिर भी सभी ऋषियों के साथ पृथिवी के सभी तीर्थों में आदर पूर्वक गये ॥१२५॥ हे ऋषियों ! मैंने समस्त तीर्थों से संबद्ध कथा को कहा । जो कोई भी

मयोक्तमखिलं तत्त्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ।
ऋषीणां पुण्यकीर्तीनां नावक्तव्यं ममास्ति वै ॥१२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानाविधतीर्थकथनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चालीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

एवमुक्तानि तीर्थानि विष्णुदेहानि सुव्रताः । एषामन्यतमासङ्गान्मुक्तो भवति मानवः ॥१॥
तीर्थानुश्रवणं धन्यं धन्यं तीर्थनिषेवणम् । पापराशिनिपाताय नान्योपायः कलौ युगे ॥२॥
वासं कुर्य्यामहं तीर्थे तीर्थस्पर्शमहं तथा। एवं योऽनुदिनं ब्रूते स याति परमं महत्॥३॥
पापानि तस्य नश्यन्ति तीर्थालापनमात्रतः । तीर्थानि खलु धन्यानि धन्यसेव्यानि सुव्रताः ॥४॥
तीर्थानां सेवनादेव सेवितो भवति प्रभुः। नारायणो जगत्कर्ता नास्ति तीर्थात्परं पदम्॥५॥
ब्राह्मणस्तुलसी चैव अश्वत्थस्तीर्थसञ्चयः। विष्णुश्च परमेशानः सेव्य एव सदा नृभिः॥६॥
ब्राह्मणानां विशेषेण सेवनं मुनिपुङ्गवाः । सर्वतीर्थावगाहादेरधिकं विदुरग्रजाः॥७॥
तस्माद् द्विजपदं साक्षात्सर्वतीर्थमयं शुभम्। भजेतानुदिनं विद्वांस्तत्र तीर्थाधिकं भवेत् ॥८॥

इसे पढ़ेगा या सुनेगा वह समस्त पातकों से मुक्त हो जायेगा ॥१२६॥ मैंने सारी बात बता दी अब आपलोग क्या सुनना चाहते हैं ? पवित्र यश वाले ऋषियों को मैं सारी बातें सुना सकता हूँ ॥१२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के अनेक तीर्थों के वर्णन नामक उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

शैनक आदि महर्षियों की प्रयाग तीर्थ के विषय में विशेष जिज्ञासा मार्कण्डेय युधिष्ठिर सम्वाद

सूतजी ने कहा— हे सुन्दर व्रत वाले ऋषियों मैंने आपलोगों को भगवान् विष्णु के शरीर भूत तीर्थों का वर्णन सुनाया । इन सबों में से किसी भी तीर्थ का सेवन करके मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥१॥ तीर्थों का श्रवण तथा तीर्थों का सेवन धन्य है । कलियुग में पाप समुहों के विनाश का दूसरा कोई साधन नहीं है ॥२॥ जो व्यक्ति प्रतिदिन यह कहता रहता है कि मैं तीर्थ में निवास करूँ, मैं तीर्थों में आचमन करूँ । वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥३॥ तीर्थो का नाम लेने मात्र से उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । हे सुन्दर व्रत वाले ऋषियों ! तीर्थ धन्य हैं, तथा धन्य पुरुषों के द्वारा सेवनीय हैं ॥४॥ तीर्थों की सेवा करने मात्र से ही जगत् कर्ता भगवान् नारायण की सेवा सम्पन्न हो जाती है॥५॥ ब्राह्मण, तुलसी, अश्वत्थवृक्ष (पिप्पल का वृक्ष) तीर्थ समूह, भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिव ये सभी मनुष्यों के द्वारा सदा सेवनीय है ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठों ! विशेष रूप से ब्राह्मणों की सेवा सभी तीर्थों की सेवा से अधिक फलप्रद होती है ॥७॥ अतएव ब्राह्मणों का चरण साक्षात् तीर्थ स्वरूप होता है । मनुष्यों

अश्वत्थस्य तुलस्याश्च गवां कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।
सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥९॥

तस्माद्दुष्कृतकर्माणि नाशयेत्तीर्थसेवनात् । अन्यथा नरकं याति कर्म्मभोगाद्धि शाम्यति ॥१०॥
पापिनां नरके वासः सुकृती स्वर्गमश्नुते । तस्मात्पुण्यं निषेवेत तीर्थं खलु विचक्षणः ॥११॥

ऋषय ऊचुः

श्रुतानि किल तीर्थानि समाहात्म्यानि सुव्रत ! ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामः प्रयागस्य विशेषकम् ॥१२॥
प्रयागं तु पुरा प्रोक्तं संक्षेपात्सूत ! यत्त्वया ।
विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामः सूत ! नः कथ्यतामिति ॥१३॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं महाभागाः प्रयागं प्रति सुव्रताः ।
हन्ताहं तत्प्रवक्ष्यामि प्रयागस्योपवर्णनम् ॥१४॥

मार्कण्डेयेन कथितं यत्पुरा पाण्डुसूनवे । भारते तु तदा वृत्ते प्राप्तराज्ये पृथासुते ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । भ्रातृशोकेन सन्तप्तश्चिन्तयंस्तु पुनः पुनः ॥१६॥
आसीद्दुर्योधनो राजा एकादशचमूपतिः । अस्मान्सन्ताप्य बहुशः सर्वे ते निधनं गताः ॥१७॥
वासुदेवं समाश्रित्य पञ्चशेषास्तु पाण्डवाः । कथं द्रोणं च भीष्मं च कर्णं चैव महाबलम् ॥१८॥
दुर्योधनं च राजानं भ्रातृपुत्रसमन्वितम् । राजानो निहताः सर्वे ये चान्ये शूरमानिनः ॥१९॥

को ब्राह्मणों की सेवा प्रतिदिन करनी चाहिए वह तीर्थ से भी अधिक पुण्य प्रद है ॥८॥ पिप्पल का पेड़ तुलसी तथा गौ की प्रतिदिन प्रदक्षिणा करनी चाहिए । ऐसा करने वाला व्यक्ति सभी तीर्थों के फल को प्राप्त करके विष्णु लोक में जाता है ॥९॥ अतएव तीर्थों का सेवन करके अपने पाप कर्मो का नाश करना चाहिए । अन्यथा अपने कर्मो का फल भोगने के लिए नरकों में जाना पड़ता है उसी से कर्मों का भोग समाप्त होता है ॥१०॥ पापियों का नरक में निवास होता है और पुण्यवानों का स्वर्ग में निवास होता है । अतएव चतुर पुरुष को चाहिए कि वह सदा तीर्थों का सेवन करे ॥११॥ **ऋषियों ने कहा—** हे सुव्रत ! हमलोगों ने माहात्म्य के साथ तीर्थों का श्रवण किया है । इस समय हमलोग विशेष रूप से प्रयाग का माहात्म्य सुनना चाहते हैं ॥१२॥ हे सूतजी ! आपने पहले प्रयाग का संक्षेप में वर्णन किया है, अब हमलोग उसके विषय में विशेष रूप से जानना चाहते हैं, उसे आप बतलायें ॥१३॥ **सूतजी ने कहा—** हे सुव्रतों ! आपलोगों ने प्रयाग के विषय में बहुत अच्छी बात को पूछा है, अतएव मैं प्रयाग का विशेष रूप से वर्णन करूँगा । जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया तथा युधिष्ठिर राजा हो गये । उस समय मार्कण्डेय महर्षि ने जो उन्हें उपदेश दिया; उसे ही मैं कहता हूँ ॥१४-१५॥ युद्ध के बाद कुन्ती के पुत्र महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के शोक से सन्तप्त होकर बार-बार चिन्ता करते थे ॥१६॥ कि राजा दुर्योधन ग्यारह सेनाओं के सेनापति था, किन्तु वह हम लोग को अनेक प्रकार से दुःख देकर विनष्ट हो गया ॥१७॥ भगवान् वासुदेव की शरणागति करके पाँच पाण्डव बचे रहे । आचार्य द्रोण, भीष्म, महाबलवान् कर्ण, भाइयों तथा पुत्रों से युक्त राजा दुर्योधन तथा दूसरे राजागण जो

किं नो राज्येन कर्तव्यं किं भोगैर्जीवितेन वा ।
धिक्कष्टमिति सञ्चिन्त्य राजा विह्वलतां गतः ॥२०॥
निश्चेष्टोऽथ निरुत्साहः किञ्चित्तिष्ठत्यधोमुखः ।
लब्धसंज्ञो यदा राजा चिन्तमानः पुनः पुनः ॥२१॥
कं चरे विधिना योगं नियमं तीर्थमेव वा। येनाहं शीघ्रमामुच्ये महापातककिल्बिषात् ॥२२॥
यत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ।
कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदं कारितं महत् ॥२३॥
धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं महत्। व्यासं कथमहं पृच्छे यस्य गात्रक्षयः कृतः ॥२४॥
एवं वैक्लव्यमापन्नो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः। रुदन्तः पाण्डवाः सर्वे भ्रातृशोकपरिप्लुताः॥२५॥
ये च तत्र महात्मानः समेताः पाण्डवाश्रिताः ।
कुन्ती च द्रौपदी चैव ये च तत्र समागताः ॥२६॥
भूमौ निपषतिताः सर्वे रोदमानाः समन्ततः ।
वाराणस्यां तु मार्कण्डस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः ॥२७॥
यथा विक्लवमापन्नो रोदमानः सुदुखितः। अचिरेणैव कालेन मार्कण्डस्तु महातपाः ॥२८॥
हस्तिनापुरमायातो राजद्वारे स तिष्ठति। द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम्॥२९॥
त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारे तिष्ठत्यसौ मुनिः ।
त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमेत्याह तत्परः ॥३०॥

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं ते महाप्राज्ञ ! स्वागतं ते महामुने ।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे पावितं कुलम् ॥३१॥

अपने को वीर मानते थे, उन लोगों के बिना इस राज्य तथा भोगों को प्राप्त करने से कौन सा लाभ हैं ? धिक्कार है; मुझे यह बहुत बड़ा कष्ट है, इस तरह से सोच कर वे व्याकुल हो गये ॥१८-२०॥ चेष्टा विहीन तथा उत्साहहीन होकर नीचे की ओर मुँह करके राजा जब होश में अये तो बार-बार वे चिन्ता करने लगे ॥२१॥ मैं किस विधि से योग का अनुष्ठान करूँ अथवा किसी तीर्थ में जाऊँ जिससे कि मैं इस महापाप से शीघ्र मुक्त होऊँ ॥२२॥ जिस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य सर्वोत्तम विष्णुलोक में जाता है, उसके विषय में मैं कृष्ण से कैसे पूछूँ ? उन्होंने ही तो यह युद्ध कराया ॥२३॥ मैं महाराज धृतराष्ट्र से कैसे पूछू ? उनके तो सौ पुत्र मारे गये हैं । मैं महर्षि व्यास से कैसे पूछू ? उनके ही तो वंश का विनाश हुआ है ॥२४॥ इस तरह से धर्मराज युधिष्ठिर सोचकर पुनः बेहोश हो गये और सभी पाण्डव अपने भाई के शोक में रोने लगे ॥२५॥ पाण्डवों के आश्रित सभी महात्मागण तथा वहाँ पर रहने वाले कुन्ती तथा द्रौपदी आदि भी आ गये ॥२६॥ वे सबके सब पृथिवी पर गिरकर रो रहे थे । वाराणसी में मार्कण्डेय ऋषि रहते थे, वे युधिष्ठिर के विषय में जान गये ॥२७॥ कि युधिष्ठिर किस प्रकार व्याकुल हो रहे हैं और दुःखी हैं, शीघ्र ही महातपस्वी मार्कण्डेय हस्तिनापुर के राजाद्वार पर आ गये द्वारपाल ने भी महर्षि को देखकर शीघ्र महाराज को बतलाया ॥२८-२९॥ कि आपसे मिलने

अद्य मे पितरस्तृप्तास्त्वयि दृष्टे महामुने। सिंहासन उपस्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः ॥३२॥
युधिष्ठिरो महात्मा वै पूजयामास तं मुनिम् ।
ततस्तमूचे मार्कण्डः पूजितोऽहं त्वया विभो ! ॥३३॥
आख्याहि त्वरितो राजन्किमर्थं त्वरितं त्वया ।
केन वा विक्लवीभूतः कथयस्व ममाग्रतः ॥३४॥

युधिष्ठिर उवाच

अस्माकं चैव यद्वृत्तं राज्यस्यार्थे महामुने। एतत्सर्वं विदित्वा तु भगवानिह चागतः ॥३५॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाबाहो यत्र धर्मो व्यवस्थितः ।
नैव दृष्टं रणे पापं युध्यमानस्य धीमतः ॥३६॥
किं पुना राजधर्मेण क्षत्रियस्य विशेषतः। तदेवं हृदये कृत्वा तस्मात्पापं न चिन्तयेत्॥३७॥
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसा मुनिम् ।
पृच्छामि त्वां मुनिश्रेष्ठ ! सदा त्रैकाल्यदर्शनम् ॥
कथयस्व समासेन मुच्येऽहं ये न किल्बिषात् ॥३८॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाभाग ! यन्मां पृच्छसि भारत ! ।
एवं साङ्ख्यं च योगं च तीर्थं चैव युधिष्ठिर ॥३९॥

की इच्छा से महर्षि मार्कण्डेय राजद्वार पर आये हैं। यह सुनकर युधिष्ठिर राजद्वापर पर आकर कहे॥३०॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे महाप्राज्ञ ! हे महामुने ! आपका स्वागत है। आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा वंश पवित्र हो गया ॥३१॥ हे महामुने ! आपके दर्शन से मेरे पितृगण तृप्त हो गये महाराज युधिष्ठिर ने महर्षि को सिंहासन पर बैठकर उनके चरणों को धोया। और उनकी सविधि पूजा की। उसके बाद महर्षि ने युधिष्ठिर से कहा राजन् मैं आपसे पूजित हुआ ॥३२-३३॥ राजन् आप मुझे शीघ्र वतलायें कि आप व्याकुल किस कारण से हैं ?॥३४॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** हे महामुने ! हमलोगों के बीच राज्य के लिए जो कुछ भी घटना हुयी इन सारी बातों को जानकर ही आप यहाँ आये हैं॥३५॥ **महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—** राजन् ! आप सुनें जहाँ पर धर्म विद्यमान है, उस धार्मिक युद्ध में युद्ध करने वाले को कोई भी पाप नहीं लगता है ॥३६॥ विशेष रूप से क्षत्रिय को पहले भी ऐसा ही होता था इस बात को जानकर पाप की चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥३७॥ उसके बाद राजा युधिष्ठिर मुनि को प्रणाम करके कहे कि हे मुने ! आप तो त्रिकालदर्शी हैं आपसे मैं पूछता हूँ कि आप उस साधन को संक्षेप में बतलाये जिससे कि मैं पापों से मुक्त हो जाऊँ ॥३८॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** हे महाभाग राजन् ! आप जो पूछते हैं उसे सुनें; हे विभों ! इस तरह के साधन, सांख्य योग तथा तीर्थ

किं पुनर्ब्राह्मणैः पुण्यैः कीर्तितं वै पुरा विभो ! ।
प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥४०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे मार्कण्डेययुधिष्ठिरसंवादवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

एकतालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पुरा कल्पे यथास्थितम्। कथं प्रयागगमनं नराणां तत्र कीदृशम् ॥१॥
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां चैव किं फलम् ।
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किं फलम् ।
एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं हि मे ॥२॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स ! प्रयागस्य तु यत्फलम् ।
पुरा ऋषीणां विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥३॥
आप्रयागात्प्रतिष्ठानाद्धर्मकीवासुकीह्रदात् । कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाश्च बहुमूलिकाः ॥४॥
एतत्प्रजापतिक्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥५॥
तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः। अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापप्रणाशनाः ॥६॥

हैं और पुण्यवान तथा ब्राह्मणों के विषय में क्या कहना है ? किन्तु पुण्य कर्मों को करने वाले पुरुषों के लिए प्रयाग तीर्थ में जाना सर्वश्रेष्ठ साधन है ॥३९-४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४०॥

प्रयाग की महिमा का विस्तृत वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— हे भगवन् ! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि पहले के कल्प में प्रयाग का कैसा रूप था ? और कैसे लोगों को वहाँ पर कैसे जाना होता था ॥१॥ वहाँ पर स्नान करने वाले अथवा शरीर त्याग करने वालों को किस गति की प्राप्ति होती है ? और स्नान करने का क्या फल होता है ? जो लोग प्रयाग में निवास करते हैं उनको किस फल की प्राप्ति होती है ? इन सारी बातों को आप कहें । इस विषय में मुझे अत्यधिक कौतूहल है ॥२॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** मैं तुम्हें प्रयाग के समस्त फलों को बतलाता हूँ । जिन सबों को प्राचीन काल में ऋषियों ने बतलाया और मैंने जिसे सुना उसे बतलाता हूँ ॥३॥ प्रयाग से लेकर प्रतिष्ठानपुर (झुसी) पर्यन्त, धर्म तथा वासुकी ह्रद से कम्बल तथा अश्वतर ये दोनों जो नाग है, वे नाग बहुमूलिक हैं ॥४॥ यह त्रैलोक्य में विख्यात प्रजापति

नशक्याः कथितुं राजन्बहुवर्षशतैरपि । संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य च कीर्त्तनम् ॥७॥
षष्टिर्धनुः सहस्राणि परिरक्षन्ति जाह्नवीम् । यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः ॥८॥
प्रयागं तु विशेषेण स्वयं रक्षति वासवः । मण्डलं रक्षति हरिर्देवैः सह सुसंमतम् ॥९॥
तं वटं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः । स्थानं रक्षति वै देवः सर्वपापहरं शुभम् ॥१०॥
अधर्मेण मृतो लोके नैव गच्छति तत्पदम् ।
स्वल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप ! ॥११॥
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् । दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि ॥१२॥
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापाद्विमुच्यते । पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र ! येषां मध्ये तु जाह्नवी॥१३॥
प्रयागे तु प्रविष्टस्य पापं क्षरति तत्क्षणात् ।
योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः ॥१४॥
अपि दुष्कृतकर्माऽसौ लभते परमां गतिम् ।
कीर्तनान्मुच्यते पापैर्दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥१५॥
अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
सत्यवादी जितक्रोधो अहिंसां परमां स्थितः ॥१६॥
धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः । गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्बिषात्॥१७॥

क्षेत्र हैं । वहाँ पर स्नान करने वाले मनुष्य स्वर्गलोक में जाते हैं और वहाँ पर शरीर त्याग करने वाले मुक्त हो जाते हैं ॥५॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि सभी देवता तथा दूसरे सभी पाप विनाशक तीर्थ मिलकर रक्षा करने का काम करते हैं ॥६॥ प्रयाग की सम्पूर्ण महिमा का वर्णन लाखों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है, अतएव मैं संक्षेप में उसका वर्णन करता हूँ ॥७॥ वहाँ पर साठ हजार धनुर्धारी गङ्गा की रक्षा करते हैं और यमुना की रक्षा सद सात अश्वों वाले सूर्य करते हैं ॥८॥ विशेष रूप से स्वयं इन्द्र प्रयाग की रक्षा करते हैं । देवताओं के साथ मिलकर श्रीहरि प्रयाग मण्डल की रक्षा करते हैं ॥९॥ अक्षयवट की रक्षा हाथ में त्रिशूल धारण करके शङ्करजी करते हैं और समस्त पापों का विनाश करने वाले स्थान की रक्षा श्रीभगवान् करते हैं ॥१०॥ जो अधार्मिक जीव होता है, वह प्रयाग नहीं जा सकता है । हे राजन् ! छोटे-छोटे पाप जो उस जीव के होते हैं ॥११॥ वे सबके सब प्रयाग का स्मरण करने मात्र से ही विनष्ट हो जाते हैं उस तीर्थ के दर्शन तथा उसके नाम का स्मरण करने से भी ॥१२॥ अथवा वहाँ की मिट्टी का स्पर्श करने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है । वहाँ के जो पाँच कुण्ड है, उनमें जाह्नवी का निवास है ॥१३॥ प्रयाग जाने वाले मनुष्य के पाप शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य हजारो योजन दूर से भी गङ्गा का स्मरण करता है ॥१४॥ वह यदि पापी भी होता है तो वह परमागति (मुक्ति) को प्राप्त कर लेता हे । प्रयाग का नाम लेकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है तथा गङ्गा का दर्शन करके वह कल्यांण प्राप्त करता है ॥१५॥ वहाँ गङ्गा में स्नान करके तथा गङ्गा के जल को पीकर मनुष्य अपने सात पीढ़ी को पवित्र बना देता है । सत्य बोलने वाला, अपने क्रोध को वश में रखने वाला तथा अहिंसा का पालन करने वाला ॥१६॥ धर्म का पालन करने वाला, तत्त्वों का ज्ञाता, गौ तथा ब्राह्मण का कल्याण करने वाला मनुष्य गङ्गा तथा यमुना इन दोनों नदियों के बीच

मनसा चिन्तितान्कामान्सम्यक्प्राप्नोति पुष्कलान् ।
ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम् ॥१८॥
ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितृदेवांश्च तर्पयेत्। ईप्सितॉंल्लभते कामान्यत्र तत्राभिजायते॥१९॥
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा॥२०॥
तत्र सन्निहितो नित्यं साक्षाद्देवो महेश्वरः। दुष्पापं मानुषैः पुण्यं प्रयागं तु युधिष्ठिर !॥२१॥
देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः। तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र ! स्वर्गलोकं सुखं गताः॥२२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागस्य महात्म्यं पुनरेव तु। यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१॥
आर्तानां च दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम् ।
स्थानं मुक्त्वा प्रयागं तु नाक्षयं तु कदाचन ॥२॥
गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। दीप्तकाञ्चनवर्णाभे विमाने सूर्यवर्चसि ॥३॥

में स्नान करके पापों से मुक्त हो जाता हे ॥१७॥ वह अपने मन से जो अभिलाषा करता है उसको अच्छी तरह से प्राप्त करता है । अतएव सभी देवताओं से रक्षित प्रयाग तीर्थ में जाकर ॥१८॥ ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए एक मास तक निवास करे तथा पितरों एवं देवताओं का तर्पण करे । ऐसा करने वाला जहाँ कहीं भी जाता है वह अपने अभिप्रेत पदार्थों को प्राप्त करता है ॥१९॥ यमुनाजी भी त्रैलोक्य विख्यात है । वह यमुना नदी प्रयाग में आयी है ॥२०॥ वहाँ पर भगवान् शिव का सदा सन्निधान बना रहता है । हे युधिष्ठिर ! पवित्र प्रयाग तीर्थ मनुष्यों के लिए दुष्प्राप्य है । वहाँ देवता, दानव, सिद्ध, ऋषिगण तथा चारणगण का निवास है । वहाँ पर आचमन करके मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥२१-२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४१।।

प्रयाग तीर्थ में दान आदि की महिमा का वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा— हे राजन् ! आप प्रयाग की महिमा का पुनः श्रवण करें । वहाँ जाकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥१॥ आर्त, दरिद्र, निश्चित रूप से व्यापार करने वाले मनुष्यों के लिए प्रयाग तीर्थ को छोड़कर दूसरा कोई अक्षय तीर्थ नहीं है ॥२॥ गङ्गा तथा यमुना के सङ्गम स्थल में जो अपने प्राणों का परित्याग करता है, वह देदीप्यमान

गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः। ईप्सिताँल्लभते कामान्वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥४॥
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः । वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः ॥५॥
गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते । यावन्न स्मरते जन्म तावत्स्वर्गे महीयते ॥६॥
तत्र स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः। हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले ॥७॥
तदेव स्मरते तीर्थस्मरणात्तत्र गच्छति। देशस्थो यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृहे ॥८॥
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणन्परित्यजेत् ।
स ब्रह्मलोकमाप्नोति वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥९॥
सर्वकामफलावृत्ता मही यत्र हिरण्यमयी। ऋषयो मुनयः सिद्धा यत्र लोके प्रगच्छति॥१०॥
स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे। मोदते ऋषिभिः सार्द्धं स्वकृतेनेह कर्मणा ॥११॥
सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ॥१२॥
ततः शुभानि कर्माणि चिन्तमानः पुनः पुनः ।
गुणवान्वित्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः ॥१३॥
कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठितः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु दानं प्रयच्छति॥१४॥
सुवर्णं मणिमुक्तां वा यदि धान्यं प्रतिग्रहम् ।
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा ॥१५॥

तथा सुवर्ण के समान कान्ति वाले तथा सूर्य की कान्ति के समान तेज: सम्पन्न विमान में ॥३॥ गन्धर्वो तथा अप्सराओं के बीच में स्वर्ग में आनन्दानुभव करता है । श्रेष्ठ ऋषिगण बतलाते हैं कि उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥४॥ वह सभी रत्नों से भरे हुए दिव्य तथा अनेक प्रकार की पताकाओं से अलंकृत, वेश्याओं से भरे हुए तथा सुन्दर लक्षणों से युक्त विमान में आनन्दानुभव करता है ॥५॥ वह सोने के बाद गीतों तथा वाद्यों की मङ्गलमयी ध्वनि को सुनकर जगता है । वह जब जक अपने जन्म का स्मरण नहीं करता है तब तक स्वर्ग में पूजित होता है ॥६॥ कर्मो का क्षय हो जाने पर जब वह स्वर्ग से भ्रष्ट होता है तो वह ऐसे वंश में जन्म लेता है जो स्वर्ण तथा रत्न से भरा रहता है ॥७॥ वह उसी तीर्थ (प्रयाग) का स्मरण करता है और स्मरण करने के कारण वहाँ जाता है । मनुष्य चाहे देश में रहे या वन में रहे, या विदेश में रहे या घर में रहे ॥८॥ वह यदि प्रयाग का स्मरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग करता है, तो वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । ऐसा श्रेष्ठ ऋषिगण कहते हैं ॥९॥ जिस लोक की पृथिवी स्वर्ण की है तथा समस्त काम्य फलों से भरी हुयी है, जहाँ पर ऋषिगण, मुनिगण, तथा सिद्धगण जाते हैं ॥१०॥ वहाँ वह हजारों स्त्रियों से परिपूर्ण मन्दाकिनी के मनोहर तट पर अपने किए हुए कर्मो के फलस्वरूप ऋषियों के साथ आनन्दानुभव करता है ॥११॥ वह द्युलोक में सिद्ध, चारण तथा गन्धवों तथा देवताओं के द्वारा पूजित होता है । उसके बाद वह स्वर्ग से भ्रष्ट होकर जम्बूद्वीप का स्वामी होता है ॥१२॥ उसके पश्चात् वह अपने पुण्य कर्मो का बार-बार चिन्तन करता हुआ इस लोक में गुणवान् तथा धनिक होता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥१३॥ वह मन, कर्म तथा वाणी से सत्य का पालन करता है । जो मनुष्य गङ्गा तथा यमुना के बीच में दान देता है ॥१४॥ सुवर्ण, मणि, मुक्ता अथवा अन्न का दान अपने कार्य में अथवा पितरों के कार्य में अथवा

निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तत्फलमश्नुते। एवं तीर्थं न गृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च ॥१६॥
निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमतो द्विजो भवेत्। कपिलां पाटलावर्णां प्रयागे यः प्रयच्छति ॥१७॥
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलकण्ठीं पयस्विनीम्।
प्रयागे श्रोत्रियं साधु ग्राहयित्वा यथाविधि ॥१८॥
शुक्लाम्बरधरं शान्तं धर्मज्ञं वेदपारगम्। सा गौस्तस्मै च दातव्या गङ्गायमुनसङ्गमे ॥१९॥
वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च।
यावद्रोमाणि तस्या गोः सन्ति गात्रेषु सत्तम! ॥२०॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। यत्रासौ लभते जन्म सागौस्तत्राभिजायते ॥२१॥
न च पश्यत्यसौ घोरं नरकं तेन कर्मणा। उत्तरान्सकुरून्प्राप्य मोदते कालमक्षयम् ॥२२॥
गवांशतसहस्रेभ्यो दद्यादेकां पयस्विनीम्। पुत्रान्दारांस्तथा भृत्यानगौरेका प्रतितारयेत्॥२३॥
तस्मात्सर्वेषु दानेषु गोदानं तु विशिष्यते। दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसम्भवे ॥
गौरेव रक्षां कुरुते तस्माद्देया द्विजातये ॥२४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

देवकार्य में दान लेता है ॥१५॥ और वह जब तक उस दान का फल भोगता है तब तक उसके लिए वह तीर्थ निष्फल होता है। इसतरह से तीर्थ में तथा पवित्र मन्दिरों में दान नहीं लेना चाहिए ॥१६॥ सभी प्रकार के निमित्तों के विषय में ब्राह्मण को सावधान रहना चाहिए। जो लाल रङ्ग की कपिला गौ का प्रयाग में दान करता है ॥१७॥ उसकी सींग कों सुवर्ण से, और खुर को चाँदी से मढ़ाकर उसके गले में कपड़ा बाधकर दूध देने वाली गौ को प्रयाग में श्रोत्रिय ब्राह्मण को देना चाहिए जो श्वेत वस्त्र धारण किए हुए, शान्त एवं धर्मज्ञ ब्राह्मण हो गङ्गा तथा यमुना के सङ्गम स्थल में दान देना चाहिए॥१९॥ मूल्यवान वस्त्र तथा अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्नों का दान गोदान के साथ करे। ऐसा करने से उस गौ के शरीर में जितने रोम होते है, उतने हजार वर्ष तक दाता स्वर्ग लोक में पूजित होता है। जहाँ पर वह जन्म लेता है वहीं पर वह गौ भी जन्म लेती है ॥२०-२१॥ अपने उस पुण्य कर्म के कारण वह व्यक्ति कभी नरकों में नहीं जाता है। वह उत्तर कुरु में जाकर अक्षय काल तक आनन्दानुभव करता है ॥२२॥ एक लाख गौओं की अपेक्षा जो एक दुधारु गौ देता है उसके पुत्रों, पत्नियों तथा भृत्यों को वह अकेली गौ तार देती है ॥२३॥ अतएव सभी दानों में गौ का दान सर्वोत्कृष्ट है। दुर्गम, विषम तथा भयङ्कर महापापों के हो जाने पर वह गौ ही रक्षा करती है अतएव ब्राह्मण को गौ का दान देना चाहिए ॥२४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के बयालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

यथा प्रयागस्य मुने माहात्म्यं कथितं त्वया ।
तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्न संशयः ॥१॥
भगवन्केन विधिना गन्तव्यं धर्मनिश्चयैः । प्रयागे यो विधिः प्रोक्तस्तं मे ब्रूहि महामुने ॥२॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स ! तीर्थयात्राविधिक्रमम् ।
यो गच्छेतकुरुश्रेष्ठ ! प्रयागं देवसंयुतम् ॥३॥
बलीवर्दसमारूढः श्रृणु तस्यापि यत्फलम्। वसते नरके घोरे गवां क्रोधे सुदारुणे ॥४॥
सलिलं च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः ।
यस्तु पुत्रांस्तथा बालान्स्नापयेत्पाययेत्तथा ॥५॥
यथात्मनस्तथा सर्वान्दानं विप्रेषु दापयेत्। ऐश्वर्यलोभान्मोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः॥६॥
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानं परित्यजेत् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति ॥७॥
आर्षेण तु विधानेन यथाविभवसम्भवम्। न पश्यति यमं घोरं नरकं तेन कर्मणा ॥८॥
उत्तरान्सकुरून्गत्वा मोदते कालमक्षयम् । पुत्रांस्तु दारॉंल्लभते धार्मिकान्नयसंयुतान्॥९॥
तत्र दानं प्रदातव्यं यथाविभवसम्भवम्। तेन तीर्थफलेनैव वर्द्धते नात्र संशयः ॥१०॥

प्रयाग माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा— हे मुने ! आपने यथावत् प्रयाग की महिमा को सुनाया । उसी क्रम से मैं पापों से मुक्त हो रहा हूँ इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥१॥ हे भगवन् ! धार्मिक बुद्धि वाले मनुष्यों को प्रयाग जाने में किस विधि का पालन करना चाहिए । प्रयाग जाने की जो विधि है, उसे आप मुझे बतलायें ॥२॥ **माकण्डेय महर्षि ने कहा—** हे वत्स ! मैं तुमको प्रयाग की यात्रा की विधि को बतलाऊँगा। हे कुरुश्रेष्ठ ! जो मनुष्य देवताओं से युक्त प्रयाग तीर्थ में जाता है ॥३॥ जो मनुष्य बैल पर चढ़कर प्रयाग जाता है उसका फल यह होता है कि वह गौओं के क्रोध रूप घोर नरक में जाता है ॥४॥ उस मनुष्य के द्वारा किए गये तर्पण के जल को पितृगण नहीं पीते हैं । जो पुत्रों तथा बालकों को स्नान कराता है तथा उनको गङ्गा का जल पिलाता है ॥५॥ अपने ही समान उसको ब्राह्मणों को दान देना चाहिए। ऐश्वर्य के लोभ के कारण अथवा अज्ञान के कारण जो वाहन पर चढकर प्रयाग की यात्रा करता है ॥६॥ उसके द्वारा की गयी वह तीर्थ यात्रा व्यर्थ हो जाती है, अतएव प्रयाग की यात्रा में वाहन का परित्याग कर देना चाहिए । गङ्गा और यमुना के सङ्गम स्थल में जाकर जो कन्यादान अपने ऐश्वर्य के अनुसार आर्य विधि से करता है वह अपने उस कर्म के फलस्वरूप कभी नरक में नहीं जाता है ॥७-८॥ वह उत्तर कुरु में जाकर अक्षय काल तक आनन्दानुभव करता है । वह धार्मिक तथा नीति मार्गानुगामी पुत्रों तथा पत्नियों को प्राप्त करता है ॥९॥ वहाँ पर अपने वैभव के अनुसार दान देना चाहिए, उस तीर्थ

स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र ! यावदाभूतसम्प्लवम् ।
वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥११॥
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं च गच्छति। तत्र ते द्वादशादित्यास्तपन्ते रुद्रमाश्रिताः ॥१२॥
निर्दहन्ति जगत्सर्वं वटमूलं न दह्यते। नष्टचन्द्रार्कपवनं यदा चैकार्णवं जगत्॥१३॥
स्वपित्यत्रैव वै विष्णुर्जायमानः पुनः पुनः। देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः॥१४॥
सदा सेवन्ति तत्तीर्थं गङ्गायमुनसङ्गमे। तत्र गच्छन्ति राजेन्द्र प्रयागं संयुतं च यत्॥१५॥
तत्र ब्रह्मादयो देवादिशश्चैव दिगीश्वरः। लोकापालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसंमताः ॥१६॥
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः। अङ्गिरप्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयः परे॥१७॥
तथा नागाश्च सिद्धाश्च सुपर्णाः खेचराश्च ये ।
सरितः सागराः शैला नागाविद्याधरास्तथा ॥१८॥
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्॥१९॥
प्रयागं राजशार्दूल ! त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ! ॥२०॥
श्रवणात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि । मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥२१॥
तत्राभिषेकं यः कुर्य्यात्सङ्गमे संशितव्रतः । तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥२२॥
न वेदवचनात्तात न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति ॥२३॥

के ही फलस्वरूप वह संसार में समृद्धि प्राप्त करता है ॥१०॥ हे राजेन्द्र ! वह स्वर्ग लोक में महाप्रलय काल पर्यन्त निवास करता है । जो मनुष्य प्रयाग के अक्षयवट के जड़ में जाकर अपने प्राणों का परित्याग करता है ॥११॥ वह समस्त लोकों को पार करके रुद्रलोक में जाता है । वहाँ पर रुद्र को अपना आश्रय बनाकर द्वादशादित्य तपते रहते है ॥१२॥ वे प्रलय काल में सम्पूर्ण जगत् को जला देते हैं; किन्तु अक्षय वट को नहीं जलाते हैं जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णव बन जाता है, उस समय सूर्य, चन्द्रमा और वायु भी नष्ट हो जाते हैं ॥१३॥ बार-बार उत्पन्न होने वाले विष्णु यहीं पर शयन करते हैं । देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषिगण, सिद्ध तथा चारण ॥१४॥ गङ्गा तथा यमुना के सङ्गम स्थल पर ही प्रयाग तीर्थ की सेवा करते हैं । हे राजेन्द्र ! ये सभी प्रयाग से युक्त सङ्गम स्थल पर जाते हैं ॥१५॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता, दिशाएँ दिशाओं के स्वामी (दिक्पाल) सभी लोकपाल, साध्यगण, समस्त लोक, समस्त पितृगण ॥१६॥ सनत्कुमार आदि परमर्षिगण, अङ्गिरा महर्षि इत्यादि सभी ब्रह्मर्षिगण ॥१७॥ नागगण, सिद्धगण, आकाशचारी पक्षिगण, सभी नदियाँ, सभी सागर, पर्वत, नाग, विद्याधर ॥१८॥ तथा प्रजापति के साथ भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं । गङ्गा और यमुना का सङ्गम स्थल को ही पृथिवी की जङ्घा बतलाया गया है ॥१९॥ हे राजश्रेष्ठ ! प्रयाग त्रैलोक्य में विख्यात है, उससे अधिक पुण्यमय त्रैलोक्य में कोई दूसरा तीर्थ नहीं है ॥२०॥ उस तीर्थ का श्रवण करने तथा उसका नाम स्मरण करने से भी तथा वहाँ की मिट्टी का स्पर्श करने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥२१॥ जो प्रशंसित व्रत वाला मनुष्य प्रयाग में स्नान करता हे, वह राजसूय तथा अश्वमेध इन दोनों यागों के फल के समान फल को प्राप्त करता है ॥२२॥ हे तात ! वेद के वचन तथा लोगों के भी कहने पर भी आपको प्रयाग

दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथा परा:। येषां सान्निध्यमत्रैव कीर्तनात्कुरुनन्दन !॥२४॥
यागतिर्योगयुक्तस्य सदुत्थस्य मनीषिण: । सागतिस्त्यजत: प्राणान्गङ्गायमुनसङ्गमे ॥२५॥
ते न जीवन्ति लोकेऽस्मिन्यत्र यत्र युधिष्ठिर ! ।
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥२६॥
एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागं परमं पदम्। मुच्यते सर्वपापेभ्य: शशाङ्क इव राहुणा ॥२७॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकै:॥२८॥
तत्र गत्वा तु तत्स्थानं महादेवस्य धीमत:। नरस्तारयते सर्वान्दशातीतान्दशापरान्॥२९॥
कृत्वाऽभिषेकं तु नर: सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३०॥
पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायां त्रिषु लोकेषु भारत ! ।
कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं तु विश्रुतम् ॥३१॥
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति। सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥३२॥
उत्तरेण प्रतिष्ठानाद्भागीरथ्यास्तु पूर्वत: । हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥३३॥
अश्वमेधफलं तस्मिन्स्नातमात्रस्य भारत ! । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते ॥३४॥
उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे। सलिलैस्तर्पयेद्यस्तु पितृंस्तत्र विमत्सर: ॥३५॥
पष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्शशतानि च । सेवते पितृभि: सार्द्धं स्वर्गलोकं नराधिप ॥३६॥

जाने के निश्चय को नहीं त्यागना चाहिए ॥२३॥ हे कुरुनन्दन ! प्रयाग का कीर्तन करने मात्र से ही साठ करोड़ दश हजार दूसरे तीर्थों का वहाँ सन्निध्य बना रहता है ॥२४॥ जो गति योगियों को तथा व्युत्थित योगियों की होती है, उसी गति की प्राप्ति गङ्गा तथा यमुना के सङ्गम स्थल में प्राण त्याग करने वाले की होती है ॥२५॥ हे युधिष्ठिर ! जो लोग जीवन में त्रैलोक्य में प्रख्यात प्रयाग नहीं गये है, वे इस लोक में जीवित नहीं है ॥२६॥ इस तरह से परमपदस्वरूप प्रयाग का दर्शन करके मनुष्य उसी तरह से पापों से मुक्त हो जाता है जिस तरह से राहु से चन्द्रमा मुक्त हो जाता है ॥२७॥ यमुना नदी के दाहिने तट पर कम्बल तथा अश्वतर इन दोनों नागों का तीर्थ है; मनुष्य वहाँ पर स्नान करके तथा वहाँ का जल पीकर समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ॥२८॥ वहाँ पर महादेवजी के दर्शन करके मनुष्य अपने से पहले के दश पीढ़ी के मनुष्यों को तथा अपने से बाद के दश पीढ़ी के मनुष्य को तार देता है ॥२९॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है । वह महाप्रलय काल पर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है ॥३०॥ हे युधिष्ठिर ! गङ्गाजी के पूर्व दिशा में तीनों लोकों में विख्यात सामुद्रकूप तथा प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) है ॥३१॥ वहाँ पर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तथा अपने क्रोध को जीतने वाला मनुष्य यदि तीन रात्रियों तक निवास करता है तो वह सभी पापों से मुक्त होकर अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है ॥३२॥ प्रतिष्ठानपुर से उत्तर की ओर और गङ्गाजी से पूर्व दिशा में त्रैलोक्य में विख्यात हंस प्रपतन तीर्थ है ॥३३॥ हे भारत ! वहाँ पर जो स्नान कर लेता है, उसको अश्वमेध याग का फल प्राप्त होता है । जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं तब तक वह मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥३४॥ जो मनुष्य हंस के समान श्वेतवर्ण के स्वच्छ उर्वशी तीर्थ

पूज्यते सततं तत्र ऋषिगन्धर्वकिन्नरैः । ततः स्वर्गपरिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः ॥३७॥
उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम् । गवां शतसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिप ॥३८॥
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते। भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं लभते पुनः ॥३९॥
कुशासनधरो नित्यं नियतःसंयतेन्द्रियः । एककलं तु भुञ्जानो मासं भोगपतिर्भवेत् ॥४०॥
सुवर्णालङ्कृतानां तु नारीणां लभते शतम् ।
पृथिव्यामासमुद्रायां महाभोगपतिर्भवेत् ॥४१॥
दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिप । धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति नित्यशः ॥४२॥
स भुक्त्वा विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं स्मरते पुनः ।
अथ तस्मिन्वटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४३॥
उपोष्य योगुक्तश्च ब्रह्मज्ञानमवाप्नुयात् । कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥४४॥
कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः ॥४५॥
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले भवति रूपवान् । ततो भगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु ॥४६॥
दशाश्वमेधकं तत्र तीर्थं तत्रापरं भवेत् । कृत्वाऽभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥४७॥
धनाढ्यो रूपवान्दक्षो दाता भवति धार्मिकः ।
चतुर्वेदेषु यत्पुण्यं सत्यवादिषु यत्फलम् ॥४८॥

के तट पर जल से अपने पितरों का तर्पण करता है ॥३५॥ वह मनुष्य अपने पितृगणों के साथ छियासठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है ॥३६॥ वहाँ पर ऋषिगण, गन्धर्व और किन्नर उसकी सदैव पूजा करते हैं । उसके बाद पुण्यों के समाप्त हो जाने पर जब वह स्वर्ग लोक से भ्रष्ट होता है तो॥३७॥ उर्वशी के समान सैकड़ों कन्याओं को पत्नी रूप में प्राप्त करता है । हे राजन् ! वह एक लाख गौओं का स्वामी होता है ॥३८॥ सोने के बाद वह रमणियों की कांची (करधनी) तथा नूपुर की ध्वनि को सुनकर जागता है । इस तरह प्रभूत मात्रा में भोगों को भोगकर पुनः उसी तीर्थ में जाता है ॥३९॥ वहाँ पर सदा कुश के आसन पर बैठकर सदा अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है । एक मास तक एक शाम भोजन करके वह भोगों का स्वामी हो जाता हे ॥४०॥ वह सुवर्ण से अलंकृत सैकड़ों नारियों को प्राप्त करता है । वह समुद्र पर्यन्त पृथिवी में महान भोगों को प्राप्त करता है ॥४१॥ वह दश हजार गावों का राजा होता है धन-धान्य से सम्पन्न वह नित्य ही दान करता है ॥४२॥ वह विपुल मात्रा में भोगों को भोगकर पुनः उस तीर्थ का स्मरण करता है । उसके बाद मनोहर अक्षयवट के नीचे अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वह ॥४३॥ योग साधना करते हुए उपवास करके ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य कोटि तीर्थ में जाकर अपने प्राणों का परित्याग करता है ॥४४॥ वह एक हजार करोड़ वर्ष तक स्वर्गलोक में पूजित होता है । उसके बाद कर्मों का क्षय हो जाने पर जब वह स्वर्ग लोक से पतित होता है तो ॥४५॥ सुवर्ण, मणियों तथा मोतियों से परिपूर्ण वंश में रूपवान पुरुष के रूा में जन्म लेता है । वहाँ से वासुकी से उत्तर की ओर भोगवती तीर्थ में जाकर ॥४६॥ वहाँ पर विद्यमान दूसरे दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नान करके वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥४७॥ वह धनाढ्य, रूपवान्, दक्ष तथा दानी और धार्मिक होता है । वहाँ जाने मात्र

अहिंसायां तु यो धर्मो गमनादेव तद्भवेत् ।
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाह्यते ॥४९॥
कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र सिन्ध्वा समागता। यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोधना ॥५०॥
सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ।
क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः ॥५१॥
दिवि तारयते देवांस्तेन सा त्रिपथा स्मृता। यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति तस्य देहिनः ॥५२॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी ॥५३॥
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि। सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ॥५४॥
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥५५॥
सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः॥५६॥
पवित्राणां पवित्रं या मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥५७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

से उन समस्त पुण्यों को प्राप्त कर लेता है, जो पुण्य चारों वेदों का अध्ययन करने से, सत्य बोलने से तथा अहिंसा का पालन करने से प्राप्त होता है । वहाँ पर विद्यमान गङ्गा नदी कुरुक्षेत्र के समान पुण्यमयी है । वहाँ पर जो स्नान करता है वह उस फल को प्राप्त करता है ॥४८-४९॥ वहाँ पर कुरुक्षेत्र के दश गुना नदियाँ आयी हैं । वहाँ पर गङ्गा अनेक तीर्थो तथा तपस्वियों से युक्त हैं ॥५०॥ वह सिद्ध क्षेत्र हैं, इसके विषय विचार नहीं करना चाहिए । वह पृथिवी पर मनुष्यों को तथा नीचे के नागों को तार देने वाला तीर्थ है ॥५१॥ वहाँ की गङ्गा स्वर्गलोक में देवताओं को तारने का काम करती है, अतएव वह त्रिपथगा कहीं गयी है । उस मनुष्य की हड्डियाँ जब तक गङ्गा में रहती हैं ॥५२॥ वह उतने हजार वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है । वह समस्त तीर्थो में श्रेष्ठ तीर्थ है, तथा नदियों में सर्वोत्तम नदी है ॥५३॥ वह सभी जीवों को तथा महापापियों को भी मुक्ति प्रदान करती हे । गङ्गा सर्वत्र सुलभ है किन्तु वह गङ्गाद्वार, प्रयाग तथा गङ्गासागर सङ्गम स्थल इन तीन स्थानों मे दुर्लभ है । इन स्थानों में गङ्गा में स्नान करने वाला स्वर्गलोक जाता है, और जिसका वहाँ शरीर छूट जाता है, वह मुक्त हो जाता है ॥५४-५५॥ जिनका अन्तःकरण पाप से युक्त है, और मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे मनुष्यों के लिए गङ्गा के समान कोई दूसरा आश्रय नहीं है ॥५६॥ गङ्गा पवित्रों को भी पवित्र बनाने वाली है, मङ्गलमय को भी मङ्गलमय बनाने वाली है । वह महेश्वर के शिर से गिरी हुयी है तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाली है ॥५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४३॥

चौवालिसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

श्रृणुराजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसंशयः ॥१॥
मानसं नाम तत्तीर्थं गङ्गायामुत्तरे तटे। त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२॥
गोभूहिरण्यदानेन यत्फलं प्राप्नुयान्नरः। एतत्फलमवाप्नोति तत्तीर्थं स्मरते पुनः ॥३॥
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते ।
मृतस्तु भवति स्वर्गे नरकं च न पश्यति ॥४॥
अप्सरोगणसङ्गीतैःसुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते। हंससारसयुक्तेन विमानेन च गच्छति॥५॥
बहुवर्षाणि राजेन्द्र ! षट्सहस्राणि भुञ्जते। ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टःक्षीणकर्मा दिवश्च्युतः ॥६॥
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये जायते स महाकुले। षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टितीर्थशतानि च ॥७॥
माघे मासि गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसङ्गमे। गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥८॥
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नानस्य तत्फलम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पञ्चाग्निं यस्तु साधयेत् ॥९॥
अहीनाङ्गोह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः। यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रस्य देहिनः ॥१०॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ॥११॥
सभुक्त्वा विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते नरः।जलप्रवेशं यःकुर्यात्सङ्गमे लोकविश्रुते ॥१२॥

प्रयाग के मानस तथा ऋणमोचन तीर्थ का वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा— हे राजन् ! आप प्रयाग का माहात्म्य पुनः सुनें, उसका श्रवण करने मात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ गङ्गा के उत्तर तट पर मानस नामक तीर्थ है, वहाँ पर तीन रात्रियों तक उपवास करने से समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाती है ॥२॥ गौ, सुवर्ण तथा पृथिवी का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति इस तीर्थ का स्मरण करने मात्र से हो जाती है ॥३॥ सकाम अथवा निष्काम कोई भी व्यक्ति यदि गङ्गा नदी में जाकर मर जाता है तो वह मर कर स्वर्ग में ही जाता है, वह नरक में नहीं जाता है ॥४॥ वह सोने के बाद अप्सरा समूह के गीत की ध्वनि को सुनकर जगता है । वह हंसों तथा सरसों से युक्त विमान के द्वारा संचरण करता है ॥५॥ हे राजेन्द्र ! अनेक छह हजार वर्षों तक स्वर्ग का भोग करके जब स्वर्ग से भ्रष्ट होता है ॥६॥ तो उसका जन्म सुवर्ण, मणि तथा मुक्ता नामक धन से सम्पन्न धनाढ्य वंश में होता है । माघ के महीने में प्रयाग के गङ्गा यमुनासङ्गम स्थल पर छियासठ हजार तीर्थ जाते हैं । एक लाख गायों के दान करने का जो फल होता है ॥७-८॥ उस फल की प्राप्ति प्रयाग में माघ के महीने में तीन दिन स्नान करने से ही हो जाती है । गङ्गा और यमुना के बीच में जो पञ्चाग्नि का सेवन करता है ॥९॥ वह अङ्गहीन तथा रोगी नहीं होता है वह सभी इन्द्रियों से सम्पन्न होता है । उस मनुष्य के शरीर में जितनें रोमकूप होते हैं, उतने हजार वर्ष तक वह स्वर्गलोक में पूजित होता है । उसके बाद वह स्वर्ग से भ्रष्ट होकर जम्वूद्वीप का स्वामी होता है ॥१०-११॥ वह प्रभूत मात्रा में भोगों को भोगकर

राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तःसर्वपातकैः । सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते ॥१३॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । स्वर्गलोकमवाप्नोति ऋषिगन्धर्वसेवितः ॥१४॥
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र ! समृद्धे जायते कुले। अधःशिरास्तु यो ज्वालामूर्ध्वपादःपिबेन्नरः ॥१५॥
शतवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र ! अग्निहोत्री भवेन्नरः ॥१६॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते नरः ।
यस्तु देहं विकर्तित्त्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति ॥१७॥
विहङ्गैरूपमुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम्। शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते॥१८॥
ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ।
गुणवान्रूपसम्पन्नो विद्वान्सुप्रियदेहवान् ॥१९॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः ।
यामुने चोत्तरेकूले प्रयागस्य तु दक्षिणे ॥२०॥
ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं तत्परमं स्मृतम्। एकरात्रोषितो भूत्वा ऋणैःसर्वैःप्रमुच्यते॥२१॥
सूर्यलोकमवाप्नोति अनृणी च सदा भेवत् ॥२२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये मानसतीर्थर्णमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

पुनः उस तीर्थ में जाकर भजन करता है । जो मनुष्य लोक में विख्यात सङ्गम के जल में प्रवेश करके अपने शरीर का त्याग करता है, वह समस्त पातकों से उसी तरह मुक्त हो जाती है जिस तरह राहु से ग्रस्त चन्द्रमा मुक्त हो जाता है । वह सोमलोक में जाकर सोम के साथ आनन्दानुभव करता है ॥१२-१३॥ वह ऋषियों तथा गन्धर्वों से सेवित स्वर्गलोक में छियासठ हजार वर्ष तक निवास करता है ॥१४॥ वहाँ से भ्रष्ट होकर वह समृद्ध वंश में जन्म लेता है । जो व्यक्ति नीचे शिर तथा ऊपर पैर करके ज्वाला का पान करता है ॥१५॥ वह मनुष्य एक लाख वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोक में पूजित होता है । हे राजेन्द्र! वहाँ से परिभ्रष्ट होकर वह अग्निहोत्री होता है । वह विपुल मात्रा में भोगों को भोगकर पुनः उस तीर्थ में (प्रयाग में) जाकर भजन करता है । जो मनुष्य प्रयाग में अपने शरीर को काटकर पक्षियों को खाने के लिए प्रदान करता है ॥१६-१७॥ पक्षियों के द्वारा खाये जाने का जो फल होता है, उसे आप सुनें। वह एक लाख वर्ष तक सोमलोक में पूजित होता है ॥१८॥ उसके बाद स्वर्ग से भ्रष्ट होकर वह धार्मिक राजा होता है । वह गुणवान्, रूपवान्, विद्वान् तथा प्रिय शरीर वाला राजा होता है ॥१९॥ वह विपुल भोगों को भोगकर उसी तीर्थ में जाकर भजन करता है । यमुना नदी के उत्तर तट पर तथा प्रयाग से दक्षिण की ओर ॥२०॥ ऋणमोचन नामक श्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ पर एक रात्रि तक निवास करने वाला मनुष्य सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है ॥२१॥ वह मनुष्य सूर्य के लोक में जाता है और वह कभी भी ऋणी नहीं होता है ॥२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के प्रयाग माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४४।।

पैंतालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रयागस्य यत्त्वया कीर्तनं कृतम् ।
विशुद्धमेतद्धृदयं प्रयागस्य च कीर्तनात् ।।
अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीदृशम् ।।१।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागे तु अनाशकफलं विभो ! ।
प्राप्नोति पुरुषो धीमाञ्छ्रद्दधानश्च यादृशम् ।।२।।
अहीनाङ्गो विरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः। अश्वमेधफलं तस्य गच्छतस्तु पदे पदे ।।३।।
कुलानि तारयेद्राजन्दशपूर्वान्दशापरान्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेत परमं पदम् ।।४।।

युधिष्ठिर उवाच

महाभागोऽसि धर्मज्ञ ! दानं वदसि मे प्रभो ! ।
अल्पेनैव प्रदानेन बहून्धर्मानवाप्नुयात् ।।५।।
अश्वमेधैस्तु बहुभिःसुकृतैःप्राप्यते इह। एतन्मे संशयं ब्रूहि परं कौतूहलं हि मे ।।६।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महावीर ! यदुक्तं पद्मयोनिना। ऋषीणां सन्निधौ पूर्वं कथ्यमानं मया श्रुतम् ।।७।।
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम् । संप्रविष्टस्य तदभूमावश्वमेधं पदे पदे ।।८।।
व्यतीतान्पुरुषान्सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश। नरस्तारयते सर्वान्यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।।९।।

प्रयाग की गङ्गा तथा यमुना का माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा— आपने जो प्रयाग का वर्णन किया है, उसको सुनकर तथा प्रयाग का कीर्तन करने के कारण मेरा हृदय शुद्ध हो गया है । हे भगवन् ! आप बतलायें कि वहाँ उपवास करने का कैसा फल होता है ?।।२।। **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** महाराज ! आप प्रयाग में उपवास करने का फल सुनें । बुद्धिमान मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुसार जैसा फल प्राप्त करते हैं ।।२।। वह हीनाङ्ग नहीं होता है, निरोग रहता है तथा वह अपनी पाँचों इन्द्रियों से सम्पन्न होता है । प्रयाग यात्रा के समय वह पग-पग पर अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ।।३।। वह अपने से दश पीढ़ी के पूर्वजों को तथा अपने से बाद के दश पीढ़ियों को तार देता है । वह सभी पापों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है ।।४।। **युधिष्ठिर ने कहा—** हे महाप्रभो ! आप धर्मज्ञ हैं, मुझे दान का फल बतलाइये, जिससे कि मनुष्य अल्पदान के द्वारा बहुत अधिक धर्मों को प्राप्त कर सके ।।५।। इस लोक में अश्वमेध का फल तो बहुत अधिक पुण्य के द्वारा प्राप्त होता है । मुझे इसी बात का संशय है; मुझको बहुत अधिक कौतूहल है ।।६।। **महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—** हे महावीर राजन् ! आप सुनें; इसे ब्रह्माजी जब ऋषियों को बतला रहे थे उस समय मैंने सुना था ।।७।। प्रयाग का मण्डल पाँच योजन विस्तृत है । तीर्थ की भावना से उस मण्डल में जाने से पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।।८।। प्रयाग मण्डल

एवं ज्ञात्वा तु राजेन्द्र ! सदा श्रद्धापरो भवेत् ।
अश्रद्दधानाः पुरुषाः पापोपहतचेतसः ॥
न प्राप्नुवन्ति तत्स्थानं प्रयागं देवनिर्मितम् ॥१०॥

युधिष्ठिर उवाच

स्नेहाद्वा द्रव्यलोभाद्वा ये तु कामवशं गताः ।
कथं तीर्थफलं तेषां कथं पुण्यमवाप्नुयुः ॥११॥
विक्रयं सर्वभाण्डानां कार्याकार्यमजानतः । प्रयागे का गतिस्तस्य एवं ब्रूहि महामुने ॥१२॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्। मासं वसंस्तु राजेन्द्र ! प्रयागे नियतेन्द्रियः॥१३॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यथादिष्टं स्वयम्भुवा। शुचिस्तु प्रयतो भूत्वाऽहिंसकःश्रद्धयान्वितः ॥१४॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यःसगच्छेत्परमं पदम् । विस्रम्भघातकानां तु प्रयागे शृणु यत्फलम्॥१५॥
त्रिकालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्यमाचरेत्। त्रिभिर्मासैःप्रमुच्यते प्रयागात्तु न संशयः॥१६॥
प्राज्ञनेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत्। सर्वकामसमृद्धस्तु स्वर्गलोके महीयते ॥१७॥
स्थानं स लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम् ।
एवं ज्ञानेन सम्पूर्णःसदा भवति भोगवान् ॥१८॥
तारिताःपितरस्तेन नरकात्प्रपितामहाः । धर्मानुसारे तत्त्वज्ञ ! पृच्छतस्ते पुनःपुनः ॥
त्वत्प्रियार्थं समाख्यातं गुह्यमेतत्सनातनम् ॥१९॥

में अपने प्राणों का परित्याग करने वाला पुरुष अपने से पहले के सात पीढ़ी के पुरुषों को तथा भविष्यत् कालिक चौदह पीढ़ी के पुरुषों को तार देता है ॥९॥ हे राजेन्द्र ! इस तरह से जानकर सदा श्रद्धा सम्पन्न होना चाहिए, श्रद्धा से रहित पुरुष पाप युक्त अन्तःकरण वाला देव निर्मित स्थान वाले प्रयाग को नहीं प्राप्त कर पाता है ॥१०॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** जो व्यक्ति स्नेह अथवा द्रव्य के लोभ के कारण काम के वशवर्ती हो जाता है वे तीर्थ के फल अथवा पुण्य कैसे प्राप्त कर सकते हैं ॥११॥ हे महामुने ! आप यह बतलायें कि जो कार्य तथा अकार्य को नहीं जानता है और सभी प्रकार के पात्रों का विक्रय करता है उसको किस गति की प्राप्ति होती है ?॥१२॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! आप सुने; सभी पापों का विनाश करने वाले गोपनीय रहस्य को बतलाता हूँ । जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर प्रयाग में एक मास तक निवास करता है ॥१३॥ ब्रह्माजी ने उसके विषय में बतलाया है कि वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । यदि कोई हिंसारहित व्यक्ति सावधानी पूर्वक पावित्र्य का पालन करते हुए श्रद्धा से युक्त होकर प्रयाग में रहता है, तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और मुक्त हो जाता है । जो प्रयाग में विश्वासघात करता है उसका प्रायश्चित है कि ॥१४-१५॥ वह तीनों संध्यायों में स्नान करे और भिक्षा माँग कर भोजन करे । तो वह प्रयाग में तीन महीनों में ही मुक्त हो जाता है ॥१६॥ जो व्यक्ति ज्ञान पूर्वक प्रयाग तीर्थ की यात्रा करता है उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती है, और वह स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥१७॥ वह धन-धान्य से परिपूर्ण स्थान को प्राप्त करता है । वह ज्ञान से परिपूर्ण होकर सदा भोगों को प्राप्त करता है ॥१८॥ वह अपने पितरों

युधिष्ठिर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं कुलम् ।
प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनादेवतेऽद्य वै ॥
त्वद्दर्शनात्तु धर्मात्मन्मुक्तोऽहं सर्वपातकैः ॥२०॥

मार्कण्डेय उवाच

दिष्ट्या ते सफलं जन्म दिष्ट्या ते तारितं कुलम् ।
कीर्तनाद्वर्द्धते पुण्यं श्रुतं पापप्रणाशनम् ॥२१॥

युधिष्ठिर उवाच

यमुनायां तुः किं पुण्यं किं फलं तु महामुने ! ।
एतन्मे सर्वमाख्याहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥२२॥

तपनस्य सुतादेवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता । समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा ॥२३॥
येनैव निस्सृता गङ्गा तेनैव यमुनागता । योजनानां सहस्त्रेषु कीर्तनात्पापनाशिनी ॥२४॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर ! ।
कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥२५॥
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम् ॥२६॥

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणेतटे । पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं हरवरं स्मृतम् ॥२७॥

तथा पिमामहों का नरक से भी उद्धार कर देता है । हे धर्मज्ञ ! तुम धर्मानुसार बार-बार पूछे इसीलिए तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैंने तुम्हे इस सनातन रहस्य को बतलाया है ॥१९॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा वंश धन्य हो गया । आपने मुझे अनुगृहीत किया है, अत: मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ कि आज आपने मुझे दर्शन दिया है ॥२०॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** सौभाग्यवशात् तुम्हारे जन्म और वंश दोनों सफल हो गये; क्योंकि प्रयाग का नाम लेने से भी पुण्य बढ़ता है; उसका श्रवण करने से पाप का नाश होता है ॥२१॥ **युधिष्ठिर ने पूछा—** हे महामुने ! यमुना में स्नान करने से कौन सा पुण्य होता है और किस फल की प्राप्ति होती है । आपने जैसा देखा है और जैसा सुना है, उन सारी बातों को मुझे बतलायें ॥२२॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** सूर्य की पुत्री यमुना त्रैलोक्य में विख्यात है । जहाँ से यमुना निकलती है, और जहाँ से आयी हैं ॥२३॥ जिस पर्वत से गङ्गा निकली है, उसी से यमुना भी निकली है । हजार योजन दूर से भी इनका नाम लेने से ये पापों का नाश कर देती हैं ॥२४॥ वहाँ पर यमुना में स्नान करके उनके जल का पान करने से । यमुना का कीर्तन करने से पुण्य की प्राप्ति होती है और यमुना का दर्शन करने से कल्याण की प्राप्ति होती है ॥२५॥ स्नान करके उनका जल पीने से ये सात पीढ़ी को पवित्र बना देती हैं । वहाँ पर जो अपने प्राणों का परित्याग कर देता है वह मुक्त हो जाता है ॥२६॥ प्रयाग में यमुना के दाहिने तट पर अग्नि तीर्थ है; पश्चिम दिशा में धर्मराज का हरवर नामक तीर्थ है ॥२७॥ वहाँ पर स्नान करने वाल स्वर्ग लोक में

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणेतटे ॥२८॥
उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः। तीर्थं तु विरजं नाम यत्र देवाःसवासवाः ॥२९॥
उपासतेस्म सन्ध्यां तु नित्यकालं युधिष्ठिर ! ।
देवाःसेवन्ति तत्तीर्थं ये चान्ये विदुषो जनाः ॥३०॥
श्रद्धादानपरो भूत्वा कुरु तीर्थाभिषेचनम्। अन्ये च बहवस्तीर्थाःसर्वपापहराःशुभाः॥३१॥
तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते ॥३२॥
केवलं श्रेष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते। एवं कुरुष्व कौन्तेय ! स्वर्गतीर्थाभिषेचनम्॥३३॥
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। यस्त्विदं कल्य उत्थाय पठते च शृणोति वा॥३४॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं च गच्छति ॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे यमुनामाहात्म्ये प्रयागस्थगङ्गायमुनयोर्माहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय: ॥४५॥

जाता है और वहाँ जो अपने प्राणों का परित्याग करता है वह मुक्त हो जाता है । इस तरह यमुना के दक्षिण तट पर हजारों तीर्थ हैं ॥२८॥ यमुना के उत्तर तट पर सूर्य का तीर्थ है उसका नाम विरज है, हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर इन्द्र आदि देवताओं ॥२९॥ नित्य सध्योपासन करते थे उस तीर्थ का सेवन देवगण तथा विद्वज्जन करते हैं ॥३०॥ तुम श्रद्धा सम्पन्न होकर उस तीर्थ में स्नान करो । सभी पापों को विनष्ट करने वाले दूसरे भी बहुत से तीर्थ हैं ॥३१॥ उन तीर्थों में स्नान करने वाले स्वर्गलोक में जाते हैं और जिनकी मृत्यु हो जाती है वे मुक्त हो जाते हैं । गङ्गा और यमुना दोनों का फल एक समान है ॥३२॥ केवल श्रेष्ठ होने के कारण गङ्गा की सर्वत्र पूजा होती है । हे कौन्तेय ! इस प्रकार से आप स्वर्ग प्राप्ति के साधन भूत तीर्थों में स्नान करें ॥३३॥ ऐसा करने से जीवन भर के पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं । जो प्रात:काल उठकर इस प्रसङ्ग को पढता है अथवा सुनता है ॥३४॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में जाता है ॥३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड का यमुना माहात्म्य वर्णन नामक पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४५।।

छियालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणे पुण्यसम्मितम् ।
तीर्थानां तु सहस्राणि शतानि नियुतानि च ॥१॥
सर्वे पुण्याःपवित्राश्च गतिश्च परमा स्मृता। पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम् ॥२॥
प्रयागमपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते। सर्वाणि सम्परित्यज्य कथमेकं प्रशंससि ॥३॥
अप्रमाणमिदं प्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम् । गतिं च परमां दिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान्॥४॥
किमर्थमल्पयोगेन बहुधर्मं प्रशंसति। एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि तद्भवेत्। नरस्य श्रद्दधानस्य पापोपहतचेतसः ॥६॥
अश्रद्दधानो ह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः। एते पातकिनःसर्वे तेनेदं भाषितं मया॥७॥
शृणु प्रयागमाहात्म्यं यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च यथान्यत्सम्भविष्यति ॥८॥
यथैवान्यन्मया दृष्टं पुरा राजन्यथाश्रुतम्। शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा तु पूज्यते योगमात्मनः ॥९॥
क्लिश्यते चापरस्तत्र नैवयोगमवाप्नुयात्। जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत मानवैः॥१०॥
यथा योगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः। यस्तु सर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥११॥
तेन दानेन दत्तेन योगोलभ्येत मानवैः। प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा ॥१२॥

प्रयाग के पूज्यत्व का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा— मैंने ब्रह्माजी के द्वारा पुराणों में उपदिष्ट पुण्य से युक्त सैकड़ों हजार तथा दशों हजार तीर्थों का वर्णन सुना है ॥१॥ वे सभी तीर्थ पुण्यप्रद, पवित्र तथा परमागति प्रद हैं। पृथिवी पर नैमिष तीर्थ और अन्तरिक्ष में विद्यमान पुष्कर तीर्थ ॥२॥ प्रयाग से भी लौकिक दृष्टि में कुरुक्षेत्र का विशेष महत्त्व है। अतएव इन सबों को छोड़कर आप एक ही तीर्थ की प्रशंसा क्यों करते हैं ?॥३॥ आपने यह अप्रामाणिक और अश्रद्धेय कहा है। आप परम गति तथा दिव्य मनोभिलषित भोगों की अल्पयोग के कारण वहुत से धर्मों की क्यों प्रशंसा कर रहे हैं ? मेरे इस संशय का निराकरण आप अपने ज्ञान तथा श्रवण के अनुसार करें ॥४-५॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** इसको अश्रद्धेय नहीं कहना चाहिए। इसका प्रत्यक्ष भी श्रद्धावान् पुरुष को होता है। जो पापी पुरुष होता है ॥६॥ उसको श्रद्धा नहीं होती है, वह अपवित्र तथा मङ्गल विहीन होता है। इसीलिए इन सबों को पातकी मैंने कहा है ॥७॥ मैं अपने ज्ञान तथा श्रवण के अनुसार प्रयाग का माहात्म्य वतलाता हूँ, सुनो। उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष तथा दूसरे प्रकार के भी जो माहात्म्य हैं; उसे सुनो ॥८॥ हे राजन् ! पहले के समय में प्रयाग का जैसा माहात्म्य देखा और सुना है शास्त्र को प्रमाण मानकर ही आत्मयोग की पूजा होती है ॥९॥ दूसरा व्यक्ति क्लेश उठाने के बाद भी योग को नहीं प्राप्त कर पाता हे। मनुष्य हजारों जन्मों के प्रयास से ही योग को प्राप्त कर पाता है ॥१०॥ जिस तरह मनुष्य हजारों जन्म के बाद योग को प्राप्त कर पाता है उसे

प्रधानहेतुं वक्ष्यामि श्रद्दधत्सु च भारत ! । यथा सर्वेषु भूतेषु सर्वत्रैव तु दृश्यते ॥१३॥
ब्रह्म नैवास्ति वै किञ्चिद्यद्वक्तुंत्विदमुच्यते। यथा सर्वेषु भूतेषु ब्रह्मसर्वत्र पूज्यते॥१४॥
एवं सर्वेषु लोकेषु प्रयागःपूज्यते बुधैः । पूज्यते तीर्थराजश्च सत्यमेतद्युधिष्ठिर ! ॥१५॥
ब्रह्माऽपि स्मरते नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम्। तीर्थराजमनुप्राप्य नैवान्यत्किञ्चिदिच्छति ॥१६॥
को हि देवत्वमासाद्य मानुषत्वं चिकीर्षति। अनेनैवानुमानेन त्वं ज्ञास्यसि युधिष्ठिर !॥१७॥
यथा पुण्यमपुण्यं वा तथैव कथितं मया ॥१८॥

युधिष्ठि उवाच

श्रुतं तद्यत्त्वया प्रोक्तं विस्मितोऽहं पुनः पुनः ।
कथं योगेन तत्प्राप्तिःस्वर्गलोकस्तु कर्मणा ॥१९॥
तदा च लभते भोगान्गां च तत्कर्मणां फलम् ।
तानि कर्माणि पृच्छामि पुनर्यैः प्राप्यते महीम् ॥२०॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाबाहो ! यथोक्तकर्मणा मही ।
गामग्निं ब्राह्मणं शास्त्रं काञ्चनं सलिलं स्त्रियः ॥२१॥
मातरं पितरं चैव यो निन्दति नराधिप । नैतेषामूर्ध्वगमनमेवमाह प्रजापतिः ॥२२॥
एवं योगस्य सम्प्राप्तिःस्थानं परमदुर्लभम्। गच्छन्ति नरकं घोरं ये नराःपापकारिणः ॥२३॥
हस्त्यश्वं गामनड्वाहं मणिमुक्तादि काञ्चनम् ।
परोक्षं हरते यस्तु पश्चाद्दानं प्रयच्छति ॥२४॥

सुनो जो अपने सम्पूर्ण रत्नों को ब्राह्मणों को दान दे देता है, उस दान प्रदान के द्वारा मनुष्य योग को प्राप्त कर पाता है, किन्तु प्रयाग में तो इन सबों की प्राप्ति केवल मृत्यु हो जाने से हो जाती है ॥११-१२॥ हे भारत ! श्रद्धा करने वालों के विषय में मैं प्रधान कारण बतलाता हूँ जैसा कि सर्वत्र ही सभी जीवों में देखा जाता है ॥१३॥ जैसे कोई यह कहे कि ब्रह्म कोई पदार्थ नहीं है, फिर भी सभी भूतों में ब्रह्म की सर्वत्र पूजा होती है ॥१४॥ इसीतरह सम्पूर्ण लोकों में प्रयाग की पूजा होती है युधिष्ठिर! मैं सत्य कहता हूँ यह तीर्थ राज प्रयाग की पूजा होती है ॥१५॥ ब्रह्माजी भी सदा उत्तम तीर्थ प्रयाग का स्मरण किया करते हैं । तीर्थराज प्रयाग में आकर वे दूसरी कोई भी वस्तु नहीं चाहते हैं॥१६॥ कौन ऐसा है ? जो देवत्व को प्राप्त करके मनुष्यत्व को प्राप्त करना चाहेगा । हे युधिष्ठिर ! तुम इसीसे अनुमान लगा सकते हो कि प्रयाग का पुण्यत्व तथा अपुण्यत्व कैसा है ? उसी को मैने तुम्हें सुनाया है ॥१८॥ **युधिष्ठिर ने कहा**— आपने जो कहा है, उसे मैंने सुना है; किन्तु बार-बार आश्चर्य होता है कि कर्मयोग के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कैसे होती है ? और विभिन्न कर्मों के फल को, भोगों को, गौ को मनुष्य मैं आपसे उन कर्मों को जानना चाहता हूँ जिन सबों से पृथिवी की प्राप्ति होती है ॥२०॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा**— हे महाबाहो राजन् ! आप जिस कर्म से पृथिवी तथा गौ, अग्नि, ब्राह्मण, शास्त्र, सुवर्ण, जल, और पत्नियों की प्राप्ति होती है, उसे सुनें ॥२१॥ हे राजन् ! जो माता-पिता की निन्दा करते हैं उनकी ऊपर के लोकों में गति नहीं होती है, यह ब्रह्माजी ने कहा है ॥२२॥ उनके

न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः ।
अनेन कर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरकेऽधमाः ॥२५॥
एवं योगं च धर्मं च दातारं च युधिष्ठिर ! ।
यथा सत्यमसत्यं वा अस्ति नास्तीति यत्फलम् ॥२६॥
निरुक्तं तु प्रवक्ष्यामि यथाऽयं स्वयमाप्नुयात् ॥२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये प्रयागस्य पूज्यत्वकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। नैमिषं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम् ॥१॥
कुरुक्षेत्रं गयञ्चैव गङ्गासागरमेव च। एतेचान्ये च बहवो ये च पुण्याःशिलोच्चयाः ॥२॥
दशतीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापरे। प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः ॥३॥
त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये तु जाह्नवी ।
प्रयागादभिनिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता ॥४॥
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। गङ्गायमुनया सार्धं संस्थिता लोकभाविनी॥५॥

लिए योग की प्राप्ति का स्थान अत्यन्त दुर्लभ है वे पापी मनुष्य घोर नरक में जाते हैं ॥२३॥ जो मनुष्य परोक्ष में हाथी, घोड़ा, गौ, बैल, मणि, मुक्ता तथा सुवर्ण को चुराता है और बाद में उसका दान करता है ॥२४॥ ऐसे भोगी दानी मनुष्य स्वर्ग में नहीं जाते हैं । इस कर्म के द्वारा वे अधम मनुष्य नरक में पकाये जाते हैं ॥२५॥ हे युधिष्ठिर ! योगधर्म और दाता के विषय में ऐसी ही बात है । सत्य, असत्य, सत्ता, असत्ता का जो फल है तथा मनुष्य उसे जो प्राप्त करता हैं, मैं उसी को बतलाता हूँ ॥२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के प्रयाग माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत प्रयाग के पूज्यत्व वर्णन नामक छियालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४६।।

सभी तीर्थों की अपेक्षा प्रयाग तीर्थ की महिमा की अधिकता का वर्णन

मर्कण्डेय महर्षि ने कहा— हे राजन् ! आप पुनः प्रयाग के माहात्म्य को सुनें । मनीषियों ने कहा है कि नैमिष, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धु, सागर, कुरुक्षेत्र, गया, तथा गङ्गासागर, इन सबों के अतिरिक्त जो बहुत से पवित्र पर्वत हैं, तथा दूसरे जो तीस करोड़ दश हजार तीर्थ हैं, उन सबों का नित्य ही प्रयाग में निवास रहता है ॥१-३॥ ऐसे जो प्रयाग में विद्यमान तीन अग्नि कुण्ड है जिन सबों के नीचे

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राजशार्दूल ! कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥६॥
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥७॥
प्रयागं समधिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । भोगवत्यथ या चैव वेदिरेषा प्रजापतेः ॥८॥
तत्र देवाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर !। पूजयन्ति प्रयागं तं ऋषयश्च तपोधनाः ॥९॥
यजन्ते क्रतुभिर्देवांस्तथा बहुधना नृपाः । ततः पुण्यतमो नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ! ॥१०॥
प्रभावात्सर्वतीर्थेभ्यः प्रभवत्यधिकं विभो ! । दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापरे ॥११॥
यत्र गङ्गा महाभागा सदेशस्तत्तपोवनम्। सिद्धक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम् ॥१२॥
इति सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य वा ।
सहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य वा ॥१३॥
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सेव्यमिदं शुभम्। इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्ममुत्तमम्॥१४॥
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्। अधीत्य च द्विजो ध्यायन्निर्मलत्वमवाप्नुयात्॥१५॥
यश्चेदं शृणुयान्नियं तीर्थं पुण्यं सदाशुचिः। जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते॥१६॥
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिःशिष्टार्थदर्शिभिः ।
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य ! न च वक्रमतिर्भव ॥१७॥
त्वया तु सम्यक्पृष्टेन कथितं तु मया विभो ! ।
पितरस्तारिताः सर्वे तारिताश्च पितामहाः ॥१८॥

से होकर सभी तीर्थों से पुरास्कृत प्रयाग से गङ्गाजी निकलती हैं ॥४॥ सूर्य की पुत्री यमुना देवी तीनों लोकों में विख्यात हैं लोककल्याणकारिणी गङ्गा यमुना के साथ वहाँ स्थित हैं ॥५॥ गङ्गा और यमुना के बीच में पृथिवी की जांघ को बतलाया गया है । हे राजन् ! वायु ने कहा है कि साढे तीन करोड़ तीर्थ प्रयाग के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं हैं । इसीलिए जाह्नवी को स्वर्गलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष में सर्वत्र कहा गया है ॥७॥ कम्बल तथा अश्वतर ये दोनों तीर्थ प्रयाग में स्थित हैं सर्पों की नगरी जो भोगवती हैं वह प्रजापति की वेदी हैं ॥८॥ हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर देवता और यज्ञ मूर्तिमान रूप से रहते हैं । वे तथा तपस्वी ऋषिगण प्रयाग की पूजा करते हैं ॥८॥ बहुत से धनवान राजागण यज्ञों के द्वारा देवताओं का यजन करते हैं अतएव हे भारत ! प्रयाग से अधिक पुण्यमय कोई दूसरा स्थान त्रैलोक्य में भी नहीं है ॥१०॥ हे राजन् ! प्रयाग का सभी तीर्थों की अपेक्षा अधिक प्रभाव है अतएव यह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ हैं । तीन करोड़ दश हजार दूसरे तीर्थ प्रयाग में है ॥११॥ जहाँ पर महाभागा गङ्गाजी हैं वह स्थान तपोवन है । गङ्गा के तट पर स्थित उस क्षेत्र को सिद्धक्षेत्र जानना चाहिए ॥१२॥ इस सत्य को द्विजातियों, साधुओं अपने पुत्र, अथवा मित्रों या अपने अनुकूल शिष्यों को बतलाना चाहिए।॥१३॥ यह रहस्य धन्य, स्वर्ग प्रदान करने वाला, सेवनीय, शुभद, पुण्यमय, मनोहर तथा उत्तम पवित्र धर्म हैं।॥१४॥ यह महर्षियों के लिए गोपनीय तथा पापों का विनाश करने वाला है । इस प्रसङ्ग का अध्ययन करके ब्राह्मण निर्मल हो जाता है ॥१५॥ जो मनुष्य इस तीर्थ की महिमा को सुनता है वह पवित्र हो जाता है । वह जातिस्मर हो जाता है स्वर्ग में आनन्दानुभव करता है ॥१६॥ जो शिष्ट अर्थ को जानने वाले

प्रयागस्य तु सर्वे ते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
एवं ज्ञानं च योगं च तीर्थं चैव युधिष्ठिर ! ॥१९॥
बहुक्लेशेन युज्यन्ते ततो यान्ति परां गतिम् ।
प्रयागस्मरणाल्लोकं स्वर्गलोकं च गच्छति ॥२०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये सर्वतीर्थेभ्य:प्रयागस्याधिक्यवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्याय: ॥४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

कथा सर्वात्वियं प्रोक्ता प्रयागस्य महामुने ! ।
एवं मे सर्वमाख्याहि यथा च मम तारयेत् ॥१॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि प्रोक्तं सर्वमिदं जगत् ।
ब्रह्माविष्णुस्तथेशानो देवता प्रभुरव्ययः ॥२॥
ब्रह्मा सृजति भूतानि स्थावरं जङ्गमं च यत् ।
तान्येतानि परो लोके विष्णुःपालयति प्रजाः ॥३॥
कल्पान्ते तत्समग्रं हि रुद्रःसंहरते जगत्। न ददाति च नाध्येति न कदाचिद्विनश्यति ॥४॥

सज्जन होते हैं, उनको ही तीर्थों की प्राप्ति होती है । हे कौरववंशी युधिष्ठिर ! तीर्थों में स्नानकर अपनी कुटिल बुद्धि न बनाओ ॥१७॥ राजन् ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है और उसको मैंने बतलाया है । तुमने अपने समस्त पितरों तथा पितामहों को तार दिया ॥१८॥ दूसरे तीर्थ की महिमा प्रयाग की महिमा के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है, यही ज्ञान, योग तथा तीर्थ है ॥१९॥ इस ज्ञान को जो बहुत क्लेश पूर्वक प्राप्त करता है वह मुक्त हो जाता है । प्रयाग का स्मरण करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक में जाता है ॥२०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के प्रयाग माहात्म्य के प्रसङ्ग में सैंतालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४७।।

प्रयाग के प्रजापतितीर्थत्व का प्रतिपादन

युधिष्ठिर ने कहा— हे महामुने ! आपने प्रयाग की सारी महिमा का वर्णन किया । आप मुझे यह बतलायें कि यह मुझे किस प्रकार से तार सकता है ॥१॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** हे राजन्! आप सुनें इसे मैं बतलाता हूँ । इस सम्पूर्ण जगत् के ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र तीनों देवता प्रभु तथा अविनाशी हैं ॥२॥ ब्रह्मा जगत् के स्थावर तथा जङ्गम समस्त जीवों की सृष्टि करते हैं । उन सबों की रक्षा भगवान् विष्णु करते हैं ॥३॥ कल्प के अन्त में रुद्र सम्पूर्ण प्रजाओं का संहार कर देते हैं । जो न तो दान

ईश्वरः सर्वभूतानां यःपश्यति स पश्यति । उत्तरेण प्रतिष्ठानादिदानीं ब्रह्म तिष्ठति ॥५॥
महेश्वरो वटेभूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः । ततो देवाःसगन्धर्वाःसिद्धाश्च परमर्षयः ॥६॥
रक्षन्ति परमं नित्यं पापकर्मपरायणान् । ये तु चान्ये च तिष्ठन्ति न यान्ति परमां गतिम् ॥७॥

युधिष्ठिर उवाच

अप्याह मे यथातत्त्वं यथैषां तिष्ठते श्रुतम् ।
केन वा कारणेनैव तिष्ठन्ति लोकसंमताः ॥८॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वरः । कारणं तु प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर ॥९॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम् । तिष्ठन्ति रक्षणार्थाय पापकर्मनिवारणाः ॥१०॥
तस्मिंस्तु स्वल्पकं पापं नरके पातयिष्यति। एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रयागे स महेश्वरः ॥११॥
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च महीतले । तिष्ठन्ति ध्रियमाणाश्च यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१२॥

ये चान्ये बहवःसर्वे तिष्ठन्ति च युधिष्ठिर ।
पृथिवीस्थानमारभ्य निर्मितं दैवतैस्त्रिभिः ॥१३॥

प्रजापतेरिदं क्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम् । एतत्पुण्यं पवित्रं च प्रयागं तु युधिष्ठिर ॥१४॥
स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र ! भ्रातृभिः सहितो भव ॥१५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये प्रयागस्य प्रजापतितीर्थत्वकथनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

करता है, न अध्ययन करता है और न कभी विनष्ट होता है ॥४॥ जो मनुष्य सभी जीवों में ईश्वर को देखता है उसी का दर्शन वास्तविक दर्शन है । इस समय प्रतिष्ठानपुरी (झुसी) के उत्तर ओर ब्रह्माजी रहते हैं ॥५॥ परमेश्वर शिवजी अक्षयवट में निवास करते हैं । इसीलिए अक्षयवट की रक्षा सभी देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा परमर्षिगण करते हैं । प्रयाग में पाप कर्म करने वालों की मुक्ति नहीं होती है ॥६-७॥ **युधिष्ठिर ने कहा—** आप मुझे यह भी बतलायें कि ये सभी देवता कैसे रहते हैं ? ये सभी लोक के समस्त देवता आदि यहाँ किस कारण से रहते हैं ॥८॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** प्रयाग में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर तीनों निवास करते हैं । हे युधिष्ठिर ! उसका मैं कारण बतलाता हूँ; तुम सुनो ॥९॥ प्रयाग का मण्डल पाँच योनज विस्तृत है । उसकी पापियों से रक्षा करने के लिए वे देवता वहाँ रहते हैं ॥१०॥ प्रयाग में किया हुआ छोटा सा भी पाप नरक में डाल देता है । इस तरह से प्रयाग में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ॥११॥ पृथिवी पर विद्यमान सातो द्वीप, सभी समुद्र, पर्वत, प्रयाग को धारण किए हुए महाप्रलय काल तक रहते हैं ॥१२॥ हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर बहुत से दूसरे तीर्थ हैं, पृथिवी पर जिन सबों को इन तीनों देवताओं ने बनाया है, वे भी तीर्थ प्रयाग में रहते हैं ॥१३॥ यह प्रयाग नामक तीर्थ प्रजापति का क्षेत्र बतलाया गया है । हे युधिष्ठिर ! यह पुण्यप्रद तथा पवित्र क्षेत्र है ॥१४॥ हे राजेन्द्र तुम अपने भाइयों के साथ अपना राज्य करो ॥१५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक अड़तालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४८॥

उनचासवाँ अध्याय

सूत उवाच

भ्रातृभिःसहिताःसर्वे पाण्डवा धर्मनिश्चयाः। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्वा गुरुदेवांस्त्वतर्पयन् ॥१॥
वासुदेवोऽपि तत्रैव क्षणेनाभ्यागतस्तदा। पाण्डवैःसहितैःसर्वैः पूज्यमानः समाधवः ॥२॥
कृष्णेन सहितैःसर्वैःपुनरेव महात्मभिः। अभिषिक्तःस्वराज्ये तु धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव मार्कण्डेयो महात्मवान्। ततःस्वस्तीति चोक्त्वा वै क्षणादाश्रममागतः ॥४॥

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिःसहितस्तु सः ।
महादानं ददौ चाथ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५॥
यस्त्विदं कल्यमुत्थाय पठते वा शृणोति वा ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥

वासुदेव उवाच

मम वाक्यं तु कर्तव्यं तवस्नेहादब्रवीम्यहम् ।
नित्यं यज्ञरतोभूत्वा प्रयागे विगतज्वरः ॥७॥

प्रयागं संस्मरन्नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर !। स्वयं प्राप्स्यसि राजेन्द्र ! स्वर्गलोकं तु शाश्वतम् ॥८॥
प्रयागमनुगच्छेद्वा वसतेवापि यो नरः। सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकं च गच्छति॥९॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तःसन्तुष्टो नियतःशुचिः। अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१०॥
अकोपनश्च राजेन्द्र ! सत्यवादी दृढ़व्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥११॥

ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम् ।
न हि शक्या दरिद्रेणा यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ॥१२॥

युधिष्ठिर द्वारा मार्कण्डेय महर्षि को महादान

सूतजी ने कहा— धर्म का निश्चय करने वाले सभी पाण्डव अपने भाइयों के साथ ब्राह्मणों को नमस्कार करके अपने गुरुदेवों को प्रणाम किये ॥१॥ उस समय वहाँ पर भगवान् वासुदेव भी क्षणभर में ही आ गये । सभी पाण्डवों ने भगवान् माधव की पूजा की ॥२॥ भगवान् कृष्ण के साथ सभी महात्माओं द्वारा युधिष्ठिर अपने राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त हुए ॥३॥ उसी समय महर्षि मार्कण्डेय स्वस्ति कहकर क्षणभर में उस आश्रम में आ गये ॥४॥ धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के साथ महादान प्रदान किया॥५॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसको पढ़ता अथवा सुनता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और विष्णुलोक में जाता है ॥६॥ **भगवान् वासुदेव ने कहा**— मैं आपके प्रति स्नेह होने के कारण कह रहा हूँ उसका पालन आपको करना चाहिए । प्रयाग में बिना किसी चिन्ता के नित्य ही यज्ञ करते रहना चाहिए ॥७॥ हे युधिष्ठिर ! हमलोगों के साथ प्रतिदिन प्रयाग का स्मरण करते हुए आप शाश्वत स्वर्गलोक को प्राप्त करेंगे ॥८॥ जो मनुष्य प्रयाग की यात्रा करता है अथवा वहाँ निवास करता है, वह सभी पापों से शुद्ध होकर स्वर्गलोक में जाता है ॥९॥ जो मनुष्य किसी प्रकार का दान नहीं लेता है सन्तुष्ट और सदा पवित्र रहता हैं ॥१०॥ अहंकार का त्याग कर देता है, वही तीर्थों के फल को प्राप्त करता है।

बहूपकरणो यज्ञो नानासम्भारसम्भ्रमः । प्राप्यते विविधैरथैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् ॥१३॥
यो दरिद्रैरपि बुधैः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वरः । ततो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोध जनेश्वर ॥१४॥
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम ! । तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ॥१५॥
दशकोटिसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापरे । माघमासे तु गङ्गायां गमिष्यन्ति नरर्षभ ! ॥१६॥
स्वस्थो भव महाराज ! भुङ्क्ष्व राज्यमकण्कम् ।
पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र ! यजमानो विशेषतः ॥१७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वासुदेवेन प्रयागमाहात्म्यानुमोदनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

पचासवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

भवता कथितं सर्वं यत्किञ्चित्पृष्टमेव च। इदानीमपि पृच्छाम एकं वद महामते ! ॥१॥
एतेषां खलुतीर्थानां सेवनाद्यत्फलं लभेत् । सर्वेषां किल कृत्वैकं कर्म केन च लभ्यते ॥२॥
एतन्नो ब्रूहि सर्वज्ञ ! कर्मैवं यदि वर्तते ॥३॥

हे राजेन्द्र ! क्रोध नहीं करने वाला, जो सत्य बोलता है, दृढ़ता पूर्वक व्रत का पालन करता है, सभी जीवों को अपने ही समान मानता है, वही तीर्थ का फल प्राप्त करता है ॥११॥ ऋषियों तथा देवताओं ने यज्ञ का विधान किया है; किन्तु हे राजेन्द्र ! दरिद्र व्यक्ति तो यज्ञ नहीं कर सकता है ॥१२॥ यज्ञ में अनेक प्रकार की सामग्री की आवश्यकता होती है तथा अनेक साधनों को जुटाना पड़ता है । उसे कोई समृद्ध व्यक्ति ही धन के द्वारा प्राप्त कर सकता है ॥१३॥ हे जनेश्वर ! जो दरिद्र विद्वानों के द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है, जिससे यज्ञ से भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है उसे आप जानें ॥१४॥ हे भरत श्रेष्ठ ! यह ऋषियों के लिए भी अत्यन्त गोपनीय है । तीर्थ में जाना यज्ञों से भी अधिक पुण्यप्रद है ॥१५॥ दश करोड़ हजार तथा तीस करोड़ तीर्थ माघ महीने में गङ्गा में चले जाते हैं ॥१६॥ महाराज आप अकण्टक राज्य का भोग करके स्वस्थ हो जायँ । उसके बाद आप विशेष रूप से यज्ञ करेंगे ॥१७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४९॥

विष्णु भक्ति की महिमा

ऋषियों ने कहा— हे महामत्ते हमलोगों ने जो पूछा उन सारे बातों को आपने बतलाया, अब आप एक बात बतलायें ॥१॥ इन तीर्थों का सेवन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उन सभी तीर्थों के करने से किस फल की प्राप्ति होती है ?॥२॥ हे सर्वज्ञ सूतजी ! आप बतलायें कि ऐसा कौन सा कर्म है ?॥३॥ **सूतजी ने कहा—** हे महाभगों ! ब्राह्मण आदि वर्णों के लिए अनेक प्रकार का

सूत उवाच

कर्मयोग:किल प्रोक्तो वर्णानां द्विजपूर्वश: ।
नानाविधो महाभागास्तत्र चैकं विशिष्यते ॥४॥

हरिभक्ति:कृता येन मनसा वचसा गिरा । जितं तेन जितं तेन जितमेव न संशय: ॥५॥
हरिरेव समाराध्य:सर्वदेवेश्वरेश्वर: । हरिनाम महामन्त्रैर्नश्येत्पापपिशाचकम् ॥६॥
हरे:प्रदक्षिणं कृत्वा सकृदप्यमलाशया: । सर्वतीर्थसमाप्लावं लभन्ते यत्र संशय: ॥७॥
प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् । विष्णुनाम परं जप्त्वा सर्वमन्त्रफलं लभेत् ॥८॥
विष्णुप्रसादतुलसीमाघ्राय द्विजसत्तमा: । प्रचण्डं विकरालं तद्यमस्यास्यं न पश्यति॥९॥

सकृत्प्रणामी कृष्णस्य मातु:स्तन्यं पिबेन्न हि ।
हरिपादे मनो येषां तेभ्यो नित्यं नमो नम: ॥१०॥
पुल्कस: श्वपचो वाऽपि ये चान्ये म्लेच्छजातय: ।
तेऽपि वन्द्या महाभागा हरिपादैकसेवका: ॥११॥
किं पुनर्ब्राह्मणा:पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
हरौ भक्तिं विधायैव गर्भवासं न पश्यति ॥१२॥

हरेरग्रे स्वनैरुच्चैर्नृत्यंस्तन्नामकृन्नर: । पुनाति भुवनं विप्रा गङ्गादि सलिलं यथा ॥१३॥
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य आलापादपि भक्तित: । ब्रह्महत्यादिभि:पापैर्मुच्यते नात्र संशय: ॥१४॥
हरे:प्रदक्षिणं कुर्वन्नुच्चैस्तन्नामकृन्नर: । करतालादि सन्धानं सुस्वरं कलशब्दितम्॥१५॥

कर्मयोग बतलाया गया है । उनमें से एक कर्म सभी कर्मों की अपेक्षा विशेष कर्म है । जो व्यक्ति मनसा, कर्मणा, वाचा श्रीहरि की भक्ति करता है ॥४॥ उसी पुरुष ने सबों पर विजय प्राप्त कर लिया है । सभी देवताओं के भी देवेश्वर श्रीहरि की ही आराधना करनी चाहिए ॥५॥ श्रीहरि के नाम रूपी महामंत्र के द्वारा पाप नामक पिशाच का नाश हो जाता है । निर्मल हृदय से श्रीहरि की एक बार भी प्रदक्षिणा करने से ॥६॥ मनुष्य सभी तीर्थों में स्नान करने के फल को प्राप्त कर लेता है । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । श्रीहरि की प्रतिमा का दर्शन करके मनुष्य समस्त तीर्थों का फल प्राप्त कर लेता है ॥७॥ भगवान् विष्णु का जप करके मनुष्य समस्त मंत्रों के फल को प्राप्त कर लेता है । हे द्विजश्रेष्ठों ! भगवान् विष्णु के प्रसाद रूपी तुलसी को सूंघ करके ॥८॥ मनुष्य यमराज के प्रचण्ड और विकराल मुख का दर्शन नहीं करता है । जो मनुष्य एक बार श्रीकृष्ण को प्रणाम करता है, उसको पुन: माता के स्तन का दूध नहीं पीना पड़ता है ॥९॥ जिन लोगों का मन सदा श्रीहरि के चरणों में लगा रहता है, उन लोगों को बारम्बार नमस्कार है । हे महाभागों ! श्रीहरि के चरणों की सेवा करने वाले पुल्कस, चाण्डाल तथा दूसरे म्लेच्छ जाति के भी लोग वंदनीय है । तो फिर हरिचरण के सेवक ब्राह्मणों तथा राजर्षियों के विषय में क्या कहना है ?॥१०-११॥ श्रीहरि की भक्ति करने मात्र से ही गर्भ में वास नहीं करना पड़ता है । श्रीहरि के समक्ष जोर से उनके नामों का उच्चारण करके नृत्य करने वाला मनुष्य ॥१३॥ ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है । जोर से श्रीहरि का नाम लेकर उनकी प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य ॥१४॥ सुन्दर स्वर में मनोहर शब्द करते हुए ताली

ब्रह्महत्यादिकं पापं तेनैव करतालितम् ।
हरिभक्तिकथामुक्त्वाऽऽख्यायिकां शृणुयाच्च यः ॥१६॥
तस्य सन्दर्शनादेव पूतो भवति मानवः । किं पुनस्तस्य पापानामाशङ्का मुनिपुङ्गवाः ! ॥१७॥
तीर्थानां च परंतीर्थं कृष्णनाम महर्षयः । तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः ॥१८॥
तस्मान्मुनिवराःपुण्यं नातःपरतरं विदुः । विष्णुप्रसादनिर्माल्यं भुक्त्वा धृत्वा च मस्तके॥१९॥
विष्णुरेव भवेन्मर्त्यो यमशोकविनाशनः । अर्चनीयो नमस्कार्यो हरिरेव न संशयः ॥२०॥
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् । हरिं चैकं प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि ॥२१॥
ये समानं प्रपश्यन्ति हरिं वै देवतान्तरम् । ते यान्ति नरकान्घोरान्नतांस्तु गणयेद्धरिः ॥२२॥
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं केशवप्रियम् ।
श्वपाकं वा मोचयति नारायणःस्वयम्प्रभुः ॥२३॥
नारायणात्परो नास्ति पापराशिदवानलः । कृत्वाऽपि पातकं घोरं कृष्णनाम्ना विमुच्यते॥२४॥
स्वयं नारायणो देवः स्वनाम्नि जगतां गुरुः ।
आत्मनोऽभ्यधिकां शक्तिं स्थापयामास सुव्रताः ॥२५॥
अत्र ये विवदन्ते वै आयासलघुदर्शनात् । फलानां गौरवाच्चापि ते यान्ति नरकं बहु ॥२६॥
तस्माद्धरौ भक्तिमान्स्याद्धरिनामपरायणः । पूजकं पृष्टतो रक्षेन्नामिनं वक्षसि प्रभुः ॥२७॥

बजाकर भगवान् के नाम का कीर्तन करने से ब्रह्महत्या इत्यादि पाप दूर भाग जाते हैं ॥१५॥ हरिभक्ति की कथा को कहकर जो व्यक्ति उसकी आख्यायिका का श्रवण करता है, उसका दर्शन करने मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है ॥१६॥ हे मुनिवर्यो ! उसके पापों की आशङ्का तो की ही नहीं जा सकती है । हे महर्षियों ! श्रीभगवान् का नाम सभी तीर्थों से बढकर तीर्थ है ॥१७॥ भगवान् कृष्ण का नामोच्चारण करने वाले संसार को पवित्र बना देते हैं । अतएव हे मुनिवरों कृष्णनामोच्चारण से बढकर कोई भी पुण्य कर्म नहीं हैं ॥१८॥ भगवान् विष्णु के प्रसाद तथा निर्माल्य को खाकर तथा शिर पर धारण करके मनुष्य विष्णु के सदृश हो जाता है । वह यम के भय को दूर करने वाला हो जाता है ॥१९॥ अतएव सदा भगवान् श्रीहरि की ही अर्चा और नमस्कार करना चाहिए । जो मनुष्य भगवान् विष्णु तथा अव्यक्त महेश्वर में अभेद का अनुभव करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं, उनकी फिर उत्पत्ति नहीं होती है । अतएव अनादि निधन (अनादि अनंत) सबों की आत्मा भगवान् विष्णु का ॥२०-२१॥ ही केवल दर्शन करें और उनकी ही आपलोग भी पूजा करें । जो लोग दूसरे देवता के समान श्रीहरि को मानते हैं ॥२२॥ वे घोर नरक में जाते हैं, अतएव उन देवताओं को श्रीहरि के समान न माने । भगवान् केशव के प्रिय मूर्ख अथवा पण्डित ब्राह्मण को अथवा विष्णुभक्त चाण्डाल को स्वयं श्रीहरि मुक्ति प्रदान करते हैं । पाप समूह को भस्म करने वाला श्रीहरि से बढकर दूसरा कोई नहीं हैं ॥२३-२४॥ घोर पाप करके भी मनुष्य भगवान् के नामोच्चारण के सहारे मुक्त हो जाता हे । भगवान् के नाम में स्वयं जगद्गुरु भगवान् नारायण का निवास रहता है ॥२५॥ हे सुन्दर व्रत वाले महर्षियों ! भगवान् ने अपने से भी अधिक शक्ति का आधान अपने नाम से किया है । इसमें होने वाले कम प्रयास को देखकर इसके विषय में जो लोग विवाद करते हैं ॥२६॥ तथा फल की अधिकता के कारण को भी देखकर विवाद करने वाले अनेक नरकों

हरिनाममहावज्रं पापपर्वतदारणे। तस्य पादौ तु सफलौ तदर्थगतिशालिनौ ॥२८॥
तावेव धन्यावख्यातौ यौ तु पूजाकरौ करौ।
उत्तमाङ्गमुत्तमाङ्गं तद्धरौ नम्रमेव यत् ॥२९॥
सा जिह्वा या हरिं स्तौति तन्मनस्तत्पदानुगम्।
तानि लोमानि चोच्यन्ते यानि तन्नाम्नि चोत्थितिम् ॥३०॥
कुर्वन्ति तच्च नेत्राम्बु यदच्युतप्रसङ्गतः। अहो लोका अतितरां दैवदोषेण वञ्चिताः ॥३१॥
नामोच्चारणमात्रेण मुक्तिदं न भजन्ति वै। वञ्चितास्ते च कलुषाः स्त्रीणां सङ्गप्रसङ्गतः ॥३२॥
प्रतिष्ठन्ति च लोमानि येषां नो कृष्णशब्दने।
ते मूर्खा ह्यकृतात्मानः पुत्रशोकादिविह्वलाः ॥३३॥
रुदन्ति बहुलालापै र्नकृष्णाक्षरकीर्तने। जिह्वां लब्ध्वाऽपि लोकेऽस्मिन्कृष्णनामजपेन्नहि॥३४॥
लब्ध्वाऽपि मुक्तिसोपानं हेलयैव च्यवन्ति ते।
तस्माद्यत्नेन वै विष्णुं कर्मयोगेन मानवः ॥३५॥
कर्मयोगार्च्चितो विष्णुः प्रसीदत्येव नान्यथा।
तीर्थादप्यधिकं तीर्थं विष्णोर्भजनमुच्यते ॥३६॥
सर्वेषां खलु तीर्थानां स्नानपानावगाहनैः। यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं कृष्णसेवनात् ॥३७॥

में जाना पड़ता है। अतएव आत्म कल्याण चाहने वाले को श्रीहरि का भक्त तथा श्रीहरि के नाम का उच्चारण करने वाला होना चाहिए ॥२७॥ श्रीभगवान् पहले नामोच्चारण करने वाले की रक्षा करते हैं और पूजा करने वाले की बाद में। पाप रूपी पर्वत को विनष्ट करने के लिए श्रीहरि का नाम महावज्र के समान है ॥२८॥ जो भगवानका दर्शन करने के लिए जाता है उसके दोनों चरण धन्य हैं। वे ही हाथ धन्य कहे गये है जिन हाथों से श्रीभगवान् की पूजा की जाती है ॥२९॥ श्रीभगवान् को देखकर जो शिर झुक जाते हैं वे ही वस्तुतः उत्तमाङ्ग हैं। जो जीभ श्रीभगवान् की स्तुति करती है, वही सफल है तथा भगवान् के चरणों का चिन्तन करने वाला मन ही धन्य है ॥३०॥ जो भगवान् के नामों को सुनकर रोमाञ्चित हो जाते हैं वे ही वस्तुतः रोम हैं। उसके ही कारण श्रीभगवान् की कथा सुनते ही आँखों में आनन्दाश्रु भर जाते हैं। ये संसार के लोग भाग्य के दोष के कारण ठगे जा चुके हैं, जिसके कारण वे नामोच्चारण करने मात्र से मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् का भजन नहीं करते हैं ॥३२॥ वे लोग स्त्रियों के सङ्गजन्य प्रसङ्ग के कारण ठगे जा चुके हैं जिनके भगवान् के नामोच्चारण करने से रोम खड़े नहीं हो जाते हैं ॥३३॥ पुत्र शोक आदि के कारण व्याकुल होने वाले वे मूर्ख अकृतार्थ हैं। वे पुत्रादि के शोक में तो जोर-जोर से चिल्लाकर रोते हैं किन्तु भगवन्नामोच्चारण नहीं कर पाते हैं ॥३४॥ जो लोग जीभ को प्राप्त करके भी भगवान् कृष्ण के नाम का जप नहीं कर पाते हैं वे मुक्ति के सोपान को प्राप्त करके भी आसानी से पतित हो जाते हैं ॥३५॥ अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह प्रयास करके कर्मयोग के द्वारा भगवान् विष्णु की पूजा करे। कर्मयोग के द्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, अन्यथा नहीं ॥३६॥ तीर्थ से भी अधिक पवित्र करने वाला भगवान् विष्णु का भजन है। सभी तीर्थों में जाकर स्नान करने, उसके जल का पान करने तथा आगाहन करने से ॥३७॥ जिस

यजन्ते कर्मयोगेन धन्या एव नरा हरिम् । तस्माद्भजध्वं मुनयः कृष्णं परममङ्गलम् ॥३८॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विष्णुभक्तिप्रशंसनं नाम पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥५०॥

एकावनवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

कर्मयोगः कथं सूत ! येन चाराधितो हरिः ।
प्रसीदति महाभाग ! वद नो वदतांवर ! ॥१॥
येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः ।
तद्वदाखिललोकानां रक्षणं धर्मसङ्गतम् ॥२॥
तं कर्मयोगं वद नः सूतमूर्तिमयस्तु यः। इति शुश्रूषवो विप्रा भवदग्रे व्यवस्थिताः ॥३॥

सूत उवाच

एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः। ऋषिभिरग्निसङ्काशैर्व्यासस्तानाह तच्छृणु ॥४॥
शृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम् । कर्मयोगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम्॥५॥
आम्नायसिद्धमखिलं ब्राह्मणार्थं प्रदर्शितम् । ऋषीणां शृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः ॥६॥
सर्वव्याधिहरं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् । समाहितधियो यूयं शृणुध्वं गदतो मम ॥७॥

फल की प्राप्ति मनुष्य करता है उस फल की भगवान् की सेवामात्र से हो जाती है । धन्य लोग कर्मयोग के द्वारा श्रीहरि का यजन कर पाते हैं ॥३८॥ अतएव हे मुनियों ! आपलोग परम मङ्गलमय भगवान् कृष्ण का भजन करें ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के विष्णुभक्ति प्रशंसा नामक पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५०।।

वर्णाश्रम धर्म का सामान्य वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी ! कर्मयोग का स्वरूप कैसा है ? जिसके द्वारा आराधना किए जाने से श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं, इसे आप हमलोगों को बतलायें ॥१॥ मुमुक्षु जीवों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् समाराध्य हैं, उस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले धर्म के स्वरूप को आप हमलोगों को बतलायें ॥२॥ हे सूतजी आप उस मूर्तिमान कर्मयोग का स्वरूप हमलोगों को बतलायें उसको सुनने की इच्छा से हम सभी आपके समक्ष बैठे हैं ॥३॥ **सूतजी ने कहा—** सत्यवती माता के पुत्र व्यासजी से भी उसी प्रकार से अग्नि के समान देदीप्यमान ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने जो कहा उसे आपलोग सुनें ॥४॥ **व्यासजी ने कहा—** हे ऋषियों ! आपलोग सुनें । ब्राह्मणों के लिए कर्मयोग अत्यधिक फल प्रदान करने वाला है ॥५॥ वेदों में वर्णित तथा पूर्ण रूप से ब्राह्मणों के लिए

कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमः। गर्भाष्टमेऽष्टमेवाऽब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥८॥
दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः ।
भिक्षाहारो गुरुहितो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥९॥
कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा। ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा ॥१०॥
सदोपवीती चैव स्यात्सदाबद्धशिखो द्विजः। अन्यथा यत्कृतं कर्म तद्भवत्ययथाकृतम् ॥११॥
वसेदविकृतं वासः कार्पासं वा कषायकम् ।
तदेव परिधानीयं शुक्लं तान्तवमुत्तमम् ॥१२॥
उत्तरं तु समाम्नातं वासः कृष्णाजिनं शुभम् ।
अभावे गावयमपि रौरवं वा विधीयते ॥१३॥
उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सव्यबाहौ समर्पितम् ।
उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जने ॥१४॥
सव्यवाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि योजयेत् ॥१५॥
अग्न्यागारे गवां गोष्ठे होमे तर्प्ये तथैव च ।
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥१६॥
उपासने गुरूणां च सन्ध्ययोः साधुसङ्गमे। उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः ॥१७॥

प्रदर्शित उस कर्म योग के विषय में ऋषियों से ब्रह्माजी ने कहा है कि ॥६॥ सभी प्रकार की व्याधियों को विनष्ट करने वाले पवित्र तथा ऋषि समूह द्वारा सेवित उसको आपलोगों को मैं बतला रहा हूँ उसे आपलोग सावधानी पूर्वक सुनें ॥७॥ ब्राह्मण को चाहिए कि गर्भ के आठवें वर्ष में अथवा जन्म के आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत हो जाने के पश्चात् वह अपने सूत्र ग्रन्थ में प्रोक्त विधि के अनुसार वेदाध्ययन करे॥८॥ दण्ड एवं मेखला धारण करके यज्ञोपवीत एवं कृष्ण मृगचर्म धारण किए हुए, भिक्षा का आहार करते हुए, गुरु की सेवा करते हुए तथा गुरु का मुख देखते हुए उसे वेदाध्ययन करना चाहिए ॥९॥ ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में यज्ञोपवीत बनाने के लिए कपास की सृष्टि की । ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत तीन लरों वाला होना चाहिए तथा वस्त्र रेशमी अथवा सूती होना चाहिए । ब्राह्मण को सदा यज्ञोपवीत पहने रहना चाहिए तथा शिखा को बाँधे रहना चाहिए । ऐसा नहीं करने पर उसके द्वारा किया गाया सारा कर्म व्यर्थ हो जाता है ॥११॥ उसे स्वच्छ उजला सूती वस्त्र अथवा कषाय वस्त्र पहनना चाहिए । उसे उजले सूत से बने वस्त्र को धारण करना उत्तम होता है ॥१२॥ उत्तरीय वस्त्र के रूप में कृष्ण मृगचर्म को बतलाया गया है । उसके अभाव में गवय अथवा रुरु मृग चर्म को धारण करने का विधान है ॥१३॥ दाहिनी भुजो को उठाकर वायीं भुजा पर रखे गये यज्ञोपवीत को माला के समान गले में डालना चाहिए । पितरों के कर्मों को करते समय वायीं भुजा को उठाकर दाहिने कंधे पर रखकर प्राचीनावीत (अपसव्य) हो जाना चाहिए ॥१५॥ यज्ञशाला में, गोशाला में, होम करते समय तथा भोजन करते समय तथा ब्राह्मणों के सन्निकट में ॥१६॥ गुरुजनों की सेवा करते समय, दोनों संध्याओं के समय तथा सत्सङ्गति के समय सदा यज्ञो उपवीत धारण किए रहना चाहिए यही सनातन विधि है ॥१७॥ ब्राह्मण की मेखला (करधनी) तीन

मौञ्जीं त्रिवृत्समां श्लिष्टां कुर्याद्विप्रस्य मेखलाम् ।
मुञ्जाभावे कुशेनाहुर्ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ॥१८॥
धारयेद्वैणवपालाशौ दण्डौ केशान्तिकौ द्विजः ।
यज्ञार्हवृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेव च ॥१९॥
सायं प्रातर्द्विजः सन्ध्यामुपासीत समाहितः। कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्त्यक्त्वैनां पतितो भवेत्॥२०॥
अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायं प्रातः प्रसन्नधीः ।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणांस्तथा ॥२१॥
देवताभ्यर्चनं कुर्यात्पुष्पैः पत्रैर्यवाम्बुभिः। अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं बृद्धेषु धर्मतः॥२२॥
असावहं भोनामेति सम्यक्प्रणतिपूर्वकम्। आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं तन्द्रादिपरिवर्जितः ॥२३॥
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
आकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरं प्लुतः ॥२४॥
यो नवेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्। नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥२५॥
व्यत्यस्तपाणिना कार्यं पादसङ्ग्रहणं गुरोः। सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ॥२६॥
लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽऽध्यात्मिकमेव वा ।
अवाप्य प्रयतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥२७॥
नोदकं धारयेद्भैक्ष्यं पुष्पाणि समिधस्तथा। एवं विधानि चान्यानि नदेवार्थेषु कर्मसु ॥२८॥
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्। वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥२९॥

लरों वाली चिकनी तथा मूंज की होनी चाहिए । मूंज के अभाव में कुश की मेखला बनाये और उसमें एक अथवा तीन गांठों को लगाये ॥१८॥ ब्राह्मण को बांस तथा पलाश के अपने ललाट पर्यन्त टिकासन के बराबर का दण्ड धारण करना चाहिए । अथवा यज्ञीय वृक्ष का दण्ड धारण करना चाहिए । उसे सुन्दर तथा निश्छिद्र होना चाहिए ॥१९॥ ब्राह्मण को सायंकाल और प्रात:काल सावधानी पूर्वक सन्ध्योपासन करना चाहिए । काम, लोभ, अथवा मोह के कारण संध्या का त्याग करने वाला पतित हो जाता है॥२०॥ उसके बाद प्रसन्नता पूर्वक उसे सायं प्रातः होम करना चाहिए । स्नान करके देवताओं और पितरों का तर्पण करना चाहिए ॥२१॥ देवताओं की पूजा पुष्प, पत्र और यव के जल से करना चाहिए । उसे धर्म के अनुसार वृद्धों को प्रणाम करने वाला होना चाहिए । उसे इस तरह से अपना नाम लेकर प्रणाम करना चाहिए । वह तन्द्रा आदि का त्याग करे । उसे आयु तथा आरोग्य की प्राप्ति के लिए वह प्रणाम करना चाहिए ॥२३॥ ब्राह्मण के प्रणाम करने पर वृद्ध पुरुष को सौम्य आयुष्मान् होओ; इस तरह से कहना चाहिए । उसके नाम के अंत में आकार का उच्चारण करना चाहिए और उसके नाम के पहले के अक्षर का प्लुत उच्चारण करना चाहिए ॥२४॥ जो ब्राह्मण प्रणाम करने पर उसके प्रत्यभिवादन को नहीं जानता है विद्वान् पुरुष को उसको प्रणाम नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो शूद्र के समान ब्राह्मण है । गुरु के पैर को छूते समय अपने हाथ को व्यत्यस्त कर लेना चाहिए । बायें हाथ से बायें पैर को और दाहिने हाथ से दायें पैर को छूना चाहिए ॥२६॥ जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करे, उसको पहले नम्रता पूर्वक प्रणाम अवश्य करें ॥२७॥ उस भिक्षा के जल, फूल तथा सामिधा नहीं

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता त्राता च भीतितः ।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ ॥३०॥
वर्णश्रेष्ठः पितृव्यश्च पुंसोऽत्र गुरवः स्मृताः ।
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः ॥३१॥
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः ।
ज्ञेयस्तु गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतो द्विजाः ॥३२॥

अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः । गुरून्दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥३३॥
नैतैरुपविशेत्सार्द्धंविवदेन्नात्मकारणात् । जीवितार्थमपि द्वेषाद्गुरुभिर्नैव भाषणम् ॥३४॥
उद्रिक्तोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषीपतत्यधः । गुरूणामपि सर्वेषां पञ्च पूज्या विशेषतः ॥३५॥
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता। यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते ॥३६॥

ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चेते गुरुवः स्मृताः ।
आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः ॥३७॥

पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता। यावत्पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ॥३८॥
तावत्सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः । पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि ॥३९॥
सपुत्रः सकलं धर्मं प्राप्नुयात्तेन कर्मणा । नास्ति मातृसमं दैवं नास्तिपितृसमो गुरुः॥४०॥
तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथञ्चन विद्यते । तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्कर्मणामनसा गिरा ॥४१॥

लेना चाहिए, इसतरह के दूसरे पदार्थों का उपयोग दैव कार्यों में नहीं करना चाहिए ॥२८॥ ब्राह्मण का कुशल पूछना चाहिए, क्षत्रिय का नैरूज्य पूछना चाहिए, वैश्य का कल्याण पूछे तथा शूद्र का आरोग्य पूछे ॥२९॥ उपाध्याय (विद्या पढाने वाले) पिता, बड़े भाई, भय से रक्षा करने वाले, मामा, श्वशुर, नाना और पितामह (बाबा) एवं अपने से श्रेष्ठ के चाचा, इन सभी पुरुषों को गुरु कहा गया है । माता, नानी, पिता और माता की बहन, सासु, पितामही, अपनी बड़ी धायी, माता एवं पिता के वर्ग के गुरुजनों की पत्नियाँ ये सब भी गुरुजन हैं ॥३२॥ इन सबों का मन, वाणी और शरीर तीनों से अनुवर्तन करना चाहिए । गुरुजनों को देखकर खड़ा हो जाय और हाथ जोड़कर प्रणाम करे ॥३३॥ उनके समक्ष न तो बैठे और न अपने लिए उनसे विवाद करें । जीविका के लिए गुरुजनों से द्वेष नहीं करना चाहिए और न झगड़ा करना चाहिए ॥३४॥ दूसरे गुणों को उद्रिक्त हो जाने पर भी गुरु से द्वेष करने वाले का पतन हो जाता है । गुरुजनों में पाँच लोग विशेष रूप से पूजनीय है ॥३५॥ उनमें से भी प्रथमोक्त तीन श्रेष्ठ है, और उन तीनों में माता सबसे श्रेष्ठ होती है । जो पालन करता है (पिता), जो जन्म देती है (माता) जो विद्या का उपदेश देता है (गुरु), बड़ा भाई तथा स्वामी ये पाँच गुरुजन है । अपने समस्त प्रयासों के द्वारा यहाँ तक कि आपनी जान भी देकर ॥३६-३७॥ आत्म कल्याण कामियों के लिए ये पाँचों विशेष रूप से पूजनीय हैं । जब तक माता और पिता ये दोनों जीवित रहें ॥३८॥ तब तक पुत्र को चाहिए कि वह सब कुछ छोड़कर अपनी माता और पिता की सेवा करें । यदि पुत्र के गुणों से माता पिता प्रसन्न रहें तो ॥३९॥ वह पुत्र अपने उस कर्म के द्वारा सम्पूर्ण धर्मों को प्राप्त कर लेता है । माता से बढकर कोई देवता नहीं है और पिता से बढकर दूसरा कोई गुरु नहीं है ॥४०॥ उन दोनों के उपकार

न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्। वर्जयित्वा मुक्तिफलं नित्यं नैमित्तिकं तथा ॥४२॥
धर्मसारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः । सम्यगाराध्य वक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया ॥४३॥
शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य चापद्यते दिवि ।
यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूढोऽवमन्यते ॥४४॥
तेन दोषेण सम्प्रेत्य निरयं घोरमृच्छति। पुंसां वर्त्मनि सृष्टेन पूज्यो भर्ता तु सर्वदा ॥४५॥
अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्धि गौरवम् ।
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ॥४६॥
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ।
अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ॥४७॥
भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् । अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा नम्य एव च ॥४८॥
ब्राह्मणक्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा। नाभिवाद्याश्च विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन॥४९॥
ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः । ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः॥५०॥
सवर्णेन सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम् । गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥५१॥
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः ।
विद्याकर्मवयोबन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम् ॥५२॥
मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात् ।
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च ॥५३॥

का बदला किसी भी प्रकार नहीं चुकाया जा सकता है । अतएव अपने मन, वाणी और कर्म के द्वारा सदैव माता-पिता की सेवा करनी चाहिए ॥४१॥ माता-पिता की आज्ञा के बिना मुक्ति प्रदान करने वाले नित्य नैमित्तिक धर्मों को छोड़कर कोई दूसरा धर्म न करे ॥४२॥ धर्म के सार स्वरूप मृत्यु के बाद अनन्त फल को प्राप्त करने वाले धर्म का उपदेश देने वाले आचार्य की आज्ञा प्राप्त करके गुरुकुल को छोड़ने वाला ॥४३॥ शिष्य ही विद्या के फल को प्राप्त करता है और अन्त में स्वर्गलोक में जाता है । जो मूर्ख अपने पिता के समान अपने बड़े भाई का अपमान करता है ॥४४॥ वह उस पाप के कारण मृत्यु के बाद घोर नरक में जाता हे । पुरुषों के द्वारा निर्धारित मार्गानुसार बड़ा भाई सदा पूज्य होता है ॥४५॥ इस संसार में उपकारिका होने के कारण माता का गौरव है । मामा, चाचा, श्वशुर तथा गुरु के प्रति कहे कि मैं यह हूँ तथा खड़ा होकर इन लोगों को प्रणाम करें । जो अपने से छोटी उम्र वाले मामा इत्यादि हों तो उनको भी देखकर उनका नाम लेकर न बुलाये ॥४६-४७॥ धर्मज्ञ को चाहिए कि इनलोगों (छोटी उम्र के मामा आदि) को आप इत्यादि कहकर उनके साथ बात करें । इन लोगों को शिर झुकाकर प्रणाम करना चाहिए ॥४८॥ ऐश्वर्य चाहने वाले, ब्राह्मणों को कभी क्षत्रियों आदि को प्रणाम नहीं करना चाहिए ॥४९॥ ये यदि ज्ञान, क्रम तथा गुणों से युक्त तथा बहुश्रुत हो तो भी ब्राह्मण को सभी वर्ण वालों को स्वास्ति कहना चाहिए । यह श्रुति कहती है ॥५०॥ सवर्ण को सवर्णों को ही प्रणाम करना चाहिए । द्विजातियों के गुरु अग्नि हैं और सभी वर्णो के गुरु ब्राह्मण होते हैं ॥५१॥ स्त्रियों के प्रधान गुरु उसके पति होते है और विद्या, कर्म, अवस्था, बधु तथा धन सम्पत्ति ये पाञ्चों

यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ।
पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे विचक्षुषे ॥५४॥
वृद्धाय भारभग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च । भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥५५॥
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया । भवत्पूर्वंचरेद्भैक्ष्यमुपवीतो द्विजोत्तमः ॥५६॥
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भागिनीं निजाम् ॥५७॥
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ।
सजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा ॥५८॥
भैक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं पतितादिविवर्जितम्। वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ॥५९॥
ब्रह्मचार्य्याहरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् । गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥६०॥
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् । सर्वं वा विचरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे ॥६१॥
नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन् । समाहृत्य तु भैक्ष्यान्नं यावदर्थममायया ॥६२॥
भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्यमानसः । भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैवैकान्नो भवेद्व्रती ॥६३॥
भैक्ष्येण वार्त्तिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता। पूजयेदशनं नित्यं मदाच्चैनमकुत्सयन् ॥६४॥
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः । अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥६५॥

मान्यता के कारण बतलायें गये हैं । इनमें से भी उत्तरोत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व अधिक मान्य होने के कारण है । तीनों वर्णों में पाञ्चों की अधिकता और बलवत्ता जिसमें है ॥५२-५३॥ वही लोक में माननीय हैं । दशवी (९० वर्ष से अधिक अवस्था वाले) शूद्र भी माननीय है । ब्राह्मण, स्त्री, राजा, विद्वान्, वृद्ध बोझ ढोने वाले, रोगी, तथा दुर्बल व्यक्तियों को पहले रास्ता देना चाहिए । ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह प्रतिदिन सावधानी पूर्वक, शिष्ट पुरुषों के यहाँ से भिक्षा माँगकर लाए ॥५४-५५॥ उसे आचार्य को निवेदित करे तथा आचार्य की आज्ञा प्राप्त करके भोजन करना चाहिए । ब्राह्मण को **भवाती भिक्षां देहि** कहकर भिक्षा माँगना चाहिए ॥५६॥ क्षत्रिय ब्रह्मचारी को **भिक्षां भवती देहि** कहकर भिक्षा माँगना चाहिए, वैश्य ब्रह्मचारी को **भिक्षां देहि भवती** कहकर भिक्षा माँगना चाहिए । सबसे पहले भिक्षा माता या बहन या मौसी से माँगना चाहिए ॥५७॥ पहले भिक्षा ऐसे ही व्यक्ति से माँगे जो ब्रह्मचारी को लौटाये नहीं । भिक्षा अपने सजातीयों से ही माँगे ऐसा नहीं सम्भव होने पर सभी वर्ण वाले के यहाँ से भिक्षा माँगे ॥५८॥ पतित आदि के यहाँ जाकर भिक्षा न माँगे । भिक्षा उसी के यहाँ से माँगे जिसके यहाँ वेदों और यज्ञों की परम्परा चलती हो ऐसे प्रशस्त पुरुषों के यहाँ से भिक्षा माँगे ॥५९॥ ब्रह्मचारी को सावधानी पूर्वक प्रतिदिन भिक्षा माँगनी चाहिए । भिक्षा गुरुओं के कुल में अथवा अपने बन्धुओं के यहाँ माँगने न जाय ॥६०॥ दूसरों का गृह न मिले तो पूर्वपूर्व का परित्याग करके भिक्षा माँगों । पूर्वोक्तो में से किसी के नहीं रहने सर्वत्र ग्राम में धूमकर भिक्षा माँगे । भिक्षा माँगते समय मौन रहे और इधर-उधर न देखें । भिक्षा लाकर बिना किसी कपट के आवश्यक मात्रा में ही उसका भोजन करें ॥६१-६२॥ भोजन करते समय बोले नहीं और न कुछ सोचे । ब्रह्मचारी को प्रतिदिन किसी एक ही घर से भिक्षा नहीं माँगना चाहिए । केवल भिक्षा का ही अन्न खाना उपवास के समान माना गया है । भोजन को

अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्। प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुखमेव वा ॥६६॥
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः। प्रक्ष्याल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरूपस्पृशेत्॥६७॥
शुद्धे देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥६८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे कर्मयोगकथनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

बावनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्व रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठावलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥१॥
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽनृतभाषणे । ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥२॥
चत्वरं वा श्मशानं वा समाक्रम्य द्विजोत्तम ।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥३॥
चाण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं दृष्ट्वा भोज्यं चापि तथा विधम् ॥४॥

सम्मान की दृष्टि से देखे उसकी कभी निन्दा न करे ॥६३-६४॥ भोजन को देखकर प्रसन्न होना चाहिए तथा उसकी मन से प्रशंसा करनी चाहिए । अत्यधिक भोजन करने से रोग बढ़ता है, आयु घटती है और स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती है ॥६५॥ अधिक भोजन करना पाप है तथा निन्दित है, अतएव अधिक भोजन करना छोड़ देना चाहिए । पूर्वदिशा में मुख करके भोजन करे अथवा जिस दिशा में सूर्य हो उस दिशा में मुख करके भोजन करे ॥६६॥ यह सनातन विधि है कि सदा उत्तर की ओर मुख करके भोजन करे । दोनों हाथ तथा दोनों पैर धोकर भोजन करने वाले को दो बार आचमन करना चाहिए॥६७॥ शुद्ध स्थान में बैठकर भोजन करके दो बार आचमन करे ॥६८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के कर्मयोगवर्णन नामक एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५१॥

कर्तव्य कर्म तथा निषिद्ध कर्म का वर्णन

व्यासजी ने कहा— भोजन करके, पानी पीकर, सोकर, स्नान करके, गली में जाने पर, ओठों के चाटने पर, वस्त्र को छूने पर, वस्त्र को पहनकर ॥१॥ वीर्य, मूत्र तथा मल का त्याग करने पर, झूठ बोलने पर, थूककर, अध्यन प्रारम्भ करते समय, कफ आ जाने पर ॥२॥ चौराहा अथवा श्मशान में घूमकर आने पर ब्राह्मण को चाहिए कि दोनों संध्या के समय आचमन किए रहने पर भी वह आचमन करें ॥३॥ चाण्डाल अथवा म्लेच्छ से बातें करने पर जूठे मुँह, स्त्री अथवा शूद्र से बातें करने पर, जूठे

आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च। भोजने सन्ध्ययोः स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयोः ॥५॥

आगतो वाऽऽचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यतः ।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव वा ॥६॥
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीलीं वा परिधाय च ।
उपस्पृशेज्जलं वार्त्ततृणं वा भूमिमेव च ॥७॥
केशानां चात्मनः स्पर्शे वाससः स्खलितस्य च ।
अनुष्णाभिरकेशाभिरदुष्टाभिश्च धर्मतः ॥८॥

शौचेप्सुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः। शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकेशशिखोऽपि वा॥९॥

अकृत्वा पादयोः शौचं मार्गतो न शुचिर्भवेत् ।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाचमेद् बुधः ॥१०॥

न चैव वर्षधाराभिर्नतिष्ठन्नुद्धृतोदकैः । नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः ॥११॥
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा। न जल्पन्नहसन्प्रेक्षञ्छयानस्तल्प एव च ॥१२॥
नाविक्षिताभिः फेनाद्यैरुपेताभिरथापि वा। शूद्राशुचिकरोन्मुक्तैर्नक्षाराभिस्तथैव च ॥१३॥

न चैवाङ्गुलिभिः शब्दं न कुर्यान्नान्यमानसः ।
न वर्णरसदुष्टाभिर्नचैव प्रदरोदकैः ॥१४॥
न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिर्गन्ध एव वा ।
हृद्गाभिः पूय्यते विप्रः कण्ठ्याभिः क्षत्रियाः शुचिः ॥१५॥

मुँह पुरुष को देखकर, तथा जूठा भोजन को देख लेने पर ॥४॥ आँसू निकल जाने पर, तथा खून निकलने पर आचमन करना चाहिए । भोजन करने पर, दोनों संध्यायों में मल-मूत्र त्याग करने पर, स्नान करके अथवा पानी पीकर ॥५॥ कहीं से आने पर अथवा सोकर, एक बार आचमन करना चाहिए । अग्नि तथा गौ का स्पर्श हो जाने पर अथवा स्पर्श करने पर ॥६॥ स्त्रियों का अथवा अपने वस्त्र का जो शरीर से खिसकर गिर गया हो उसका स्पर्श होने ,पर आचमन करे, तृण तथा भूमि का स्पर्श हो जाने पर भी आचमन करे ॥७॥ केशों का स्पर्श हो जाने पर अथवा अपना वस्त्र खिसकर गिर जाने पर, अनुष्ण, केश रहित तथा शुद्ध जल से धर्म की दृष्टि से आचमन करे ॥८॥ पावित्र्य चाहने वाले को सदा पूर्वाभिमुख बैठकर आचमन करना चाहिए । आमचन करते समय शिखा खोल दे और शिर अथवा गले को ढँक ले ॥९॥ रास्ते में चलकर आने पर पैर धोए बिना मनुष्य पवित्र नहीं होता है। जूता पहने हुए, या जूते पर बैठकर, या पगड़ी बाँधे हुए आचमन नहीं करना चाहिए ॥१०॥ वर्षा की धारा से बैठकर निकाले गये जल से, एक हाथ से दिये गये जल से, बिना यज्ञोपवीत पहने हुए जल से ॥११॥ पादुका पर बैठकर दिए गये तथा घुटने से बाहर हाथ निकाल कर दिए गये जल से, बोलते हुए, हँसते हुए, शय्या पर सोये हुए, इधर-उधर देखते हुए, बिना देखे हुए, फेन से युक्त, शूद्र के द्वारा अपवित्र हाथ से दिए गये, तथा खारे जल से भी आचमन न करे ॥१२-१३॥ अङ्गुलियों से हिलाकर तथा अन्यमनस्कता पूर्वक दिए गये, दूषित वर्ण (रङ्ग) और दूषित रस वाले जल से तथा प्रदरोदक के भी जल से आचमन न करे ॥१४॥ हाथ से हिलोर गये अथवा दुर्गंधि युक्त जल से भी आचमन न

प्रासिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽन्ततः ।
अङ्गुष्ठमूलान्तरतो रेखायां ब्राह्ममुच्यते ॥१६॥
अन्तराङ्गुष्ठदेशिन्योः पितृणां तीर्थमुच्यते। कनिष्ठामूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्रचक्षते ॥१७॥
अङ्गुल्यग्रं स्मृतं दैवं तदेवार्षं प्रकीर्तितम्। मूलेन दैवमार्षं स्यादाग्नेयं मध्यतः स्मृतम् ॥१८॥
तदेव सौमिकं तीर्थमेतज्ज्ञात्वा न मुह्यति । ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥१९॥
होमयेद्वाथ दैवेन न तु पित्र्येण वै द्विजाः। त्रिः प्राश्नीयादपः पूर्वं ब्राह्मेणैव प्रयतस्ततः ॥२०॥
समृज्याङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ॥२१॥
तर्जन्यङ्गुष्ठायोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम्। कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत् ॥२२॥
सर्वासामथ योगेन हृदयं तु तलेन वा। स्पृशेद्वै शिरसस्तद्वदङ्गुष्ठेनांसकद्वयम्॥२३॥
त्रिःप्राश्नीयाद्यदम्भस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ।
ब्रह्माविष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम् ॥२४॥
गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात्। संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ ॥२५॥
नासत्यदस्नौ प्रीयेते स्पृशेन्नासापुटद्वयम्। कर्णयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेते चानिलानलौ ॥२६॥
संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः। मूर्ध्नि संस्पर्शनादेकः प्रीतः स पुरुषो भवेत्॥२७॥

करे । ब्राह्मण उतने जल से आचमन से पवित्र होता है जितना जल हृदय तक पहुँच जाय । क्षत्रिय कण्ठ तक पहुँचे हुए आचमन के जल से पवित्र होता है ॥१५॥ वैश्य ओष्ठ तक पहुचे हुए जल से पवित्र हो जाता है और स्त्री तथा शूद्र जल का स्पर्श कर लेने मात्र से पवित्र हो जाते हैं । अङ्गूठे के मूल भाग के भीतर विद्यमान रेखा में ब्राह्म तीर्थ होता है । अङ्गूठे और तर्जनी इन दोनों अङ्गुलियों के बीच में पितृतीर्थ होता है । कानी अङ्गुलि के मूल भाग के पीछे प्रजापति तीर्थ होता है ॥१७॥ अङ्गुलियों के अग्रभाग में दैवतीर्थ होता है, उसी को आर्ष तीर्थ भी कहते हैं । हथेली के मूल भाग में आर्ष तीर्थ होता हे और बीच में आग्नेय तीर्थ होता है ॥१८॥ उसी को सौमिक तीर्थ कहते हैं, इसको जानकर मोह नहीं होता है । ब्राह्मण को सदा ब्राह्म तीर्थ से आचमन करना चाहिए ॥१९॥ देवतीर्थ से होम करना चाहिये ब्राह्मण को कभी भी पितृतीर्थ से होम नहीं करना चाहिए । होम प्रारम्भ करने से पहले सावधानी पूर्वक ब्राह्मतीर्थ से तीन बार आचमन करे ॥२०॥ अङ्गूठे के मूल से मुख को पोंछकर आचमन करना चाहिए । उसके बाद अङ्गूठे तथा अनामिका अङ्गुलियों को मिलाकर दोनों नेत्रों का स्पर्श करे ॥२१॥ तर्जनी तथा अङ्गूठे से दोनों नाकों का स्पर्श करे । कनिष्ठा तथा अङ्गूठे को मिलाकर दोनों कानों का स्पर्श करना चाहिए ॥२२॥ सभी अङ्गुलियों को मिलाकर हृदय का स्पर्श करना चाहिए । उसीतरह से शिर का भी स्पर्श करे फिर अङ्गूठे से दोनों कन्धों का स्पर्श करना चाहिए ॥२३॥ तीन बार जल से आचमन करने से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ये तीनों देवता प्रसन्न होते हैं, यह सुना जाता है । परिमार्जन करने से गङ्गा और यमुना ये दोनों नदियाँ प्रसन्न होती हैं । दोनों नेत्रों का स्पर्श करने से सूर्य और चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं ॥२४-२५॥ दोनों नाकों का स्पर्श करने से दोनों अश्विनी कुमार प्रसन्न होते हैं। उसीतरह दोनों कानों का स्पर्श करने से वायु तथा अग्नि प्रसन्न होते हैं ॥२६॥ हृदय का स्पर्श करने से सभी देवता प्रसन्न होते हैं । शिर का स्पर्श करने से आत्मा प्रसन्न होती है ॥२७॥ आचमन करते

नोच्छिष्टं कुर्वते वक्त्रे विप्रुषोऽङ्गेलगन्ति याः ।
दन्तवद्दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शेऽशुचिर्भवेत् ॥२८॥
स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भूमिपांसुसमा ज्ञेया न तैरस्पृश्यता भवेत् ॥२९॥
मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे ।
फलमूले चेक्षुदण्डे न दोषं प्राह वै मनुः ॥३०॥
प्रचरंश्चान्नपानेषु द्रव्यहस्तो भवेन्नरः। भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्यभ्युक्षयेत्तु तत् ॥३१॥
तैजसं वै समादय यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तु तत् ॥३२॥
यद्यद्द्रव्यं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः। अनिधायैव तद्द्रव्यं भूमौ त्वशुचितामियात् ॥३३॥
वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात्तत्संस्पृश्याचमेदिह। अरण्ये निर्जने रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि ॥३४॥
कृत्वा मूत्रं पुरीषं व द्रव्यहस्तो न दुष्यति ।
निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः ॥३५॥
अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ।
अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्टतृणेन वा ॥३६॥
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ।
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथिभस्मसु ॥३७॥
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रं न समाचरेत् ।
न गोमये न काष्ठे वा महावृक्षेऽथ शाद्वले ॥३८॥

समय अङ्गों में जो बूंदे पड़ जाती है उससे मुख अपवित्र नहीं होता है । ऊपर तथा नीचे के दांतों को सटाकर उसको जीभ से स्पर्श हो जाने पर पवित्र हो जाता है ॥२८॥ आचमन करते समय दूसरों के पैर पर जो बूंद पड़ जाते है, उसके पृथिवी के धूल के समान समझना चाहिए उसके कारण अस्पृश्यता नहीं होती है ॥२९॥ मनु ने कहा है कि मधुपर्क ग्रहण करने से, सोम पान करने में, पान चबाने में, फल, मूल तथा ईख के खाने में दोष नहीं होता है ॥३०॥ मनुष्य को चलते हुए अन्न तथा जल ग्रहण करने में द्रव्य हाथ में ले लेना चाहिए । उस द्रव्य को पृथिवी पर रखकर आचमन करे फिर उसका जल से प्रोक्षण करे ॥३१॥ तैजस द्रव्य को लेकर यदि मनुष्य मुंह जूठा कर ले तो उस द्रव्य को पृथिवी पर रखकर आचमन करे फिर उसका प्रोक्षण करे ॥३२॥ जिस द्रव्य को लेकर मनुष्य उच्छिष्ट से युक्त हो जाय उस द्रव्य को पृथिवी पर रखे बिना वह अपवित्र हो जाता है ॥३३॥ वस्त्र आदि के विषय में विकल्प होता है उसका स्पर्श करके आचमन करना चाहिए । वन में, निर्जन स्थान में, रात्रि में, चोर तथा व्याघ्र वाले मार्ग में ॥३४॥ द्रव्य को हाथ में लिए रहकर मल-मूत्र का त्याग करने पर वह द्रव्य दूषित नहीं होता है । यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर चढ़ाकर दिन में उत्तर की ओर मुँह करके मूल-मूत्र का त्याग करे और रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मूल-मूत्र का त्याग करें । पृथिवी को पत्थर, काठ, पत्ते अथवा ढेले से ढंककर ॥३६॥ तथा शिर को ढँककर मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए। छाया में बैठकर कूएँ में, नदी में, गोशाला में, मंदिर में, जल में, राखों में, भस्म पर, ॥३७॥ अग्नि

न तिष्ठन्नच निर्वासा न च पर्वतमण्डले । न जीर्णदेवायतने वल्मीके न कदाचन ॥३९॥
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न समाचरेत् । तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च॥४०॥
न क्षेत्रे न बिलेवापि न तीर्थे न चतुष्पथे ।
नोद्यानेऽपां समीपे वा नोषरे नगराशये ॥४१॥
न सोपानत्पादुको वा छत्री वानान्तरिक्षके ।
न चैवाभिमुखः स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् ॥४२॥
न देवदेवालययोरपामपि कदाचन। न ज्योतींषि निरीक्षन्वा न वा प्रतिमुखोऽथवा॥४३॥
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च । आहृत्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणीम् ॥४४॥
कुर्यादतन्द्रितःशौचं विशुद्धैरद्धृतोदकैः। नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांसुलां न सकर्दमाम्॥४५॥
न मार्गान्नोषराद्देशाच्छौचशिष्टां परस्य च ।
न देवायतनात्कूपाद्धाम्नो न च जलात्तथा ॥४६॥
उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥४७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे कर्मयोगकथने कर्तव्यनिषिद्धकर्मकथनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

में तथा श्मशान भूमि में, मल-मूत्र का त्याग न करे । गोबर पर, लकड़ी पर, महावृक्ष पर अथवा घास से भरी भूमि पर ॥३८॥ खड़े-खड़े अथवा नङ्गे होकर, अथवा पर्वत पर, पुराने मन्दिर में या बल्मीक पर कभी भी मल-मूत्र त्याग न करे ॥३८-३९॥ जीवों से युक्त गढ़े में , चलते हुए, भूसी की आग में, खोंपड़ी पर, अथवा सड़क पर भी मल-मूत्र त्याग न करे ॥४०॥ खेत में, बील में, तीर्थ में, चौराहे पर, उद्यान में, जल के समीप, उषर भूमि में या गुफा में भी मल-मूत्र त्याग न करे ॥४१॥ जूता या खडाऊँ पहनकर, छाता लगाकर, या अन्तरिक्ष में, स्त्री गुरु, ब्राह्मण या गौ के सामने मल-मूत्र त्याग न करे ॥४२॥ देवता, देवालय अथवा जल में भी कभी मल-मूत्र न करे, नक्षत्रों तथा ग्रहों को देखते हुए, अथवा पीछे मुख करके भी मल-मूत्र त्याग न करे ॥४३॥ सूर्य के समक्ष, अग्नि के समक्ष तथा चन्द्रमा के समक्ष भी मल-मूत्र न त्यागे । गन्ध को दूर करने वाली मिट्टी को जलाशय के तट से लेकर॥४४॥ निरालस होकर जलाशय से निकले गये शुद्ध जल से पवित्रता बनाये । ब्राह्मण को चाहिए कि वह धूल की अथवा कीचड़ की मिट्टी को न ले ॥४५॥ रास्ते में से, उषर में अथवा दूसरे के शौच से बची हुयी मिट्टी को न ले । मन्दिर से, कुएँ से अथवा जल के भीतर से भी मिट्टी न ले ॥४५-४६॥ उसके बाद उपर्युक्त विधि से आचमन करना चाहिए ॥४७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के शौचविधि वर्णन नामक बावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः ।
आहूतोऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१॥
नित्यमुद्यतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥२॥
प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् । आसीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठेन्न पराङ्मुखः ॥३॥
नीचैः शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥४॥
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् । न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितम्॥५॥
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तने। कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं ततोऽन्यतः॥६॥
दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियः ।
न च वास्योत्तरं ब्रूयात्स्थितो नासीत सन्निधौ ॥७॥
उदकुम्भं कुशान्पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा । मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वै समाचरेत्॥८॥
नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि। आक्रामेदासनं चास्य च्छायादीन्वा कदाचन॥९॥
साधयेद्दन्तकाष्ठादींल्लब्ध्यं चास्मै निवेदयेत्। अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहिते रतः ॥१०॥

ब्रह्मचारी के धर्म का वर्णन

व्यासजी ने कहा— इस तरह से दण्ड इत्यादि से युक्त तथा शौच पालन परायण ब्रह्मचारी को गुरु के मुख को देखते हुए वेदाध्ययन करना चाहिए ॥१॥ उसे सज्जनों के आचार से युक्त तथा संयत तथा हाथ उठाये रहना चाहिए । गुरु के बैठो कहने पर गुरु के सामने उसे बैठना चाहिए ॥२॥ गुरु की बातों को सुनने या उनसे बातचित करते समय उसे सोये नहीं रहना चाहिए । वह गुरु के समक्ष न तो बैठै रहे, न उनके सामने भोजन करे और न उनकी आरे पीठ करके बैठे ॥३॥ गुरु के सन्निकट में उसकी शय्या के तथा आसन के नीचे होना चाहिए । गुरु के आँखों के समक्ष उसके आसन को स्वमनोनुकूल नहीं होना चाहिए ॥४॥ परोक्ष में भी गुरु के केवल नाम का उच्चारण न करे, गुरु के नाम में विशेषण लगाकर ही बोलना चाहिए । गुरु के चाल, बोली तथा चेष्टाओं की नकल नहीं करनी चाहिए ॥५॥ जहाँ पर गुरु का विरोध अथवा गुरु की शिकायत की जा रही हो वहाँ पर अपने कानों को मूंद लेना चाहिए अथवा वहाँ से अन्यत्र चले जाना चाहिए ॥६॥ दूर से गुरु की पूजा न करे । गुरु पर कभी क्रोध भी न करे, उनके सन्निकट गुरु की पत्नी पर भी क्रोध न करे । गुरु की बातों का उत्तर न दे और न तो गुरु के बैठे रहने पर उनके सन्निकट में बैठे ॥७॥ गुरु के लिए पानी, घड़ा, कुश, पुष्प तथा समिधा हमेशा लाते रहना चाहिए । गुरु के अङ्गों को सदैव साफ करे तथा उनमें चन्दनादि लगाये ॥८॥ गुरु की निर्माल्य वस्तुएँ, उनकी शय्या, पादुका तथा जूता पर कभी पैर न रखे । उनके आसन पर भी न चढे, और न तो गुरु की छाया को लाँघे ॥९॥ साधन, तथा दतौन इत्यादि जो भी

न पादौ सारयेदस्य सन्निधाने कदाचन । जृम्भितं हसितं चैव कण्ठप्रावरणं तथा ॥११॥
वर्जयेत्सन्निधौ नित्यमङ्गस्फोटनमेव च । यथाकालमधीयीत यावन्न विमनागुरुः ॥१२॥
आसीनोऽधोगुरोः पार्श्वे सेवां च सुसमाहितः ।
आसने शयने याने नैव तिष्ठेत्कदाचन ॥१३॥
धावन्तमनुधावेत गच्छन्तमनुगच्छति । गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादे तथाऽधोविष्टरेषु च ॥१४॥
आसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च ।
जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः ॥१५॥
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितकारिणीम्। गन्धमाल्यं रसं कल्पं शुक्तिं प्राणिविहिंसनम्॥१६॥
अभ्यङ्गानाञ्जने पानं छत्रधारणमेव च । कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्तनम् ॥१७॥
आतर्जनं परीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा। परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥१८॥
उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् । आहरेद्यावदन्नानि भैक्ष्यं चाहरहश्चरेत् ॥१९॥
घृतं च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितं च यत् ।
अनृत्यदर्शी सततं भवेद्गीतादिनिस्पृहः ॥२०॥
नादित्यं वै समीहेत नाचरेद्दन्तधावनम् । एकान्तमशुचिं स्त्रीभिः शूद्राद्यैरभिभाषणम् ॥२१॥
गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः । मलापकर्षणं स्नानं नाचरेद्धि कदाचन॥२२॥
न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागे कथञ्चन। मोहाद्वा यदि वा लोभात्त्यक्त्वा तु पतितो भवेत्॥२३॥

मिले उसे गुरु को समर्पित करे । गुरु से पूछे बिना कहीं न जाय तथा सदैव गुरु के प्रिय कार्य को करे ॥१०॥ गुरु के सन्निकट में कभी भी पैर न फैलाये । गुरु के सन्निकट में कभी भी जम्भाई न ले, हँसे नहीं तथा अपने कण्ठ को न ढँके । उनके सन्निकट अपने अङ्गों को भी न फोड़े । समयानुसार तब तक अध्ययन करना चाहिए जब तक गुरु पढ़ाना बंद न करना चाहें ॥११-१२॥ गुरु के बगल में नीचे बैठकर गुरु की सेवा सावधानी पूर्वक करे । कभी भी गुरु के आसन, शय्या तथा सवारी पर न बैठे ॥१३॥ गुरु के दौड़ने पर उनके पीछे दौड़ना चाहिए और उनके चलने पर चलना चाहिए । गौ, अश्व तथा ऊँट की सवारी पर तथा नीचे के आसनों पर ॥१४॥ गुरु के साथ बैठे तथा पत्थर, शिला, चौकी तथा नौका में गुरु के साथ बैठे । उसे सदा जितेन्द्रिय, अपने मन को वश में रखने वाला तथा क्रोध रहित एवं पवित्र होना चाहिए ॥१५॥ गुरु के प्रति सदा मधुर तथा हितकारी वाणी बोलनी चाहिए । चन्दन, माला, सङ्कल्प तथा शुक्ति का धारण प्राणियों की हिंसा ॥१६॥ आँख में आंजन लगाना, शरीर मलवाना, छाता धारण करना, काम, लोभ, भय, निद्रा, गीत गाना, बाजा, बजाना नाचना ॥१७॥ किसी को डराना धमकाना, दूसरों की निन्दा करना, स्त्रियों को देखना तथा स्त्रियों का स्पर्श करना, दूसरे की हानि करना, चुगुली करना, इन सारी बातों को ब्रह्मचारी को प्रयास पूर्वक छोड़ देना चाहिए । ब्रह्मचारी को गुरु के लिए जल भरा घड़ा, फूल गोबर, मिट्टी तथा कुश लाये जब तक भिक्षा करे तब तक प्रतिदिन लाये ॥१९॥ वह घी, नमक तथा सभी प्रकार की वासी चीजें त्याग दे । वह कभी नृत्य न देखे तथा गीत आदि के प्रति निस्पृह रहे ॥२०॥ वह सूर्य को कभी न देखे, चलते हुए दतौन न करे, अपवित्र स्त्रियों के साथ एकान्त में रहना तथा शूद्रों के साथ बातचित इन सबों का वह त्याग करे ॥२१॥ गुरु

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽऽध्यात्मिकमेव वा ।
आददीत यतो ज्ञानं तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥२४॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागमथाब्रवीत् ॥२५॥
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् । नत्वाऽभिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥२६॥
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिषु योगिषु । प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितं चोपदिशत्सु च ॥२७॥
श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् । गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥२८॥
बालः संमानयेन्मान्याञ्छिष्यो वा यज्ञकर्मणि ।
अध्यापयन्गुरो सूनुर्गुरुवन्मानमर्हति ॥२९॥
उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने । न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च ॥३०॥
गुरुवत्प्रतिपूज्याश्च सवर्णागुरुयोषितः । असवर्णाश्च सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥३१॥
अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च। गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥३२॥
गुरुपत्नी तु युवतीनाभिवाद्या तु पादयोः । कुर्वीत वन्दनं भूम्यामसावहमितिब्रुवन् ॥३३॥
विप्रोष्य पादग्रहणपूर्वकं चाभिवादनम् । गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥३४॥
मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चाथ पितृष्वसा। सम्पूज्यागुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया ॥३५॥

के उच्छिष्ट अन्न को दवा समझकर ग्रहण करे लालच वशात् नहीं । कभी भी वह खूब शरीर में साबुन आदि लगाकर न नहाये ॥२२॥ ब्राह्मण को कभी भी गुरु का परित्याग करने का मन में भी नहीं सोचना चाहिए । यदि वह मोह अथवा लोभवशात् गुरु का परित्याग करे तो पतित हो जाता है ॥२३॥ जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो उसका कभी भी परित्याग न करे ॥२४॥ यदि गुरु घमण्ड के कारण कार्य तथा अकार्य को न जानें और कुमार्गगामी हो जायँ तो भी गुरु का त्याग नहीं करना चाहिए; ऐसा मनु ने कहा है ॥२५॥ जब गुरु के भी गुरु सन्निकट में आ जायँ तो उनके प्रति भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह गुरु के प्रति करता है । गुरु के गुरु को नमस्कार करने के बाद हटकर अपने गुरु को प्रणाम करना चाहिए ॥२६॥ इसीतरह का व्यवहार सभी विद्यागुरुओं से करना चाहिए । योगियों तथा अधर्म को रोकने वालों एवं उपदेश करने वालों से भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए ॥२७॥ कल्याण चाहने वाले को अपने गुरु के प्रति सदैव ही ऐसा आचरण करना चाहिए गुरु के पुत्रों गुरु की पत्नियों तथा अपने बान्धवों के साथ भी ऐसा ही आचरण करे ॥२८॥ बालक को चाहिए कि वह अपने मान्य पुरुषों का सम्मान करे शिष्ट पुरुषों का भी सम्मान करे । पढ़ाने वाले गुरु पुत्र का भी गुरु के ही समान सम्मान करना चाहिए ॥२९॥ किन्तु गुरु के पुत्र के शरीर को दबाना, स्नान कराना तथा उनका उच्छिष्ट प्रसाद सेवन न करे । गुरुपुत्र के पैरों को भी न धोए ॥३०॥ गुरु की सवर्ण नारियों का भी सम्मान गुरु के ही समान करना चाहिए । उस वर्ण की स्त्रियों को भी खड़ा होकर प्रणाम करना चाहिए ॥३१॥ गुरु की पत्नी का शृङ्गार करना, उनको स्नान कराना, उनके शरीर को दबाना तथा केशों को सँवारने आदि का काम नहीं करना चाहिए ॥३२॥ गुरु की पत्नी यदि युवती हों तो उनका पैर छूकर प्रणाम नहीं करे अपितु मैं यह हूँ इस तरह से कहकर पृथिवी पर माथा टेककर उनको प्रणाम करे ॥३३॥ बाहर जाते समय गुरु की पत्नी के पैर को स्पर्श करके उन्हें प्रणाम करे क्योंकि

भ्रातृभार्याश्च सङ्ग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि। विप्रोष्य तूपसङ्ग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥३६॥

पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥३७॥

एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम् । वेदमध्यापयेद्धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यशः ॥३८॥

संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन् । हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः ॥३९॥

आचार्यपुत्रः शूश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।
शक्तोऽन्नदोऽम्बुदः साधुरध्याप्या दश धर्मतः ॥४०॥

कृतकण्ठस्तथाऽद्रोही मेधावी गुरुकृन्नरः । आप्तः प्रियोऽथ विधिवत्षडध्याप्या द्विजातयः॥४१॥

एतेषु ब्राह्मणे दानमन्यत्र तु यथोचितम् । आचम्य संयतो नित्यमधीयीत उदङ्मुखः ॥४२॥

उपसङ्गृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चाऽऽरमेत् ॥४३॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीत पवित्रैश्चैव पावकः । प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ॥४४॥

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादन्तेऽपि विधिवद् द्विजाः ।
कुर्यादध्यापनं नित्यं स ब्रह्माञ्जलिपूर्वतः ॥४५॥

सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनम् । अधीयीताप्ययं नित्यं ब्राह्मण्याद्धीयतेऽन्यथा ॥४६॥

यही सज्जनों का धर्म हैं ॥३४॥ माता की बहन (मौसी), मामी, सासु, बूआ तथा गुरु की सभी पत्नियों का गुरुपत्नी के ही समान समादर करना चाहिए ॥३५॥ अपने बड़े भाई की पत्नी का भी प्रतिदिन समादर करे ! बाहर जाकर लौटने पर विशेष रूप से अपने बान्धवों एवं संबन्धियों की पत्नियों को प्रणाम करना चाहिए ॥३६॥ बूआ तथा बड़ी बहन के प्रति भी माता के ही समान व्यवहार करना चाहिए, किन्तु उन सबों में माता महान् होती है ॥३७॥ इस तरह से आचरण करने वाले, आत्मज्ञ तथा दम्भ रहित शिष्य को वेद, पुराण तथा वेदाङ्गों को सदैव पढाना चाहिए ॥३८॥ एक वर्ष से अपने आश्रम में रहने वाले शिष्य को ज्ञान को प्रदान नहीं करने पर भी गुरु उस शिष्य के समस्त पापों को हर लेते हैं ॥३९॥ आचार्य के पुत्र, सेवा करने वाले, ज्ञान प्रदान करने वाले, धार्मिक तथा पवित्रता का पालन करने वाले, समर्थ, अन्न तथा जल देने वाले इन दशों को धर्मानुसार अच्छी तरह से पढाना चाहिए ॥४०॥ कण्ठस्थ करने वाले, द्रोह नहीं करने वाले, मेधावी, गुरु मानने वाले, प्रामाणिक तथा प्रिय इन छह प्रकार के ब्राह्मणों को विधिपूर्वक पढाना चाहिए ॥४१॥ इन छहों में ब्राह्मण को विद्या दान करे दूसरों को यथोचित् रूप से पढाये । आचमन करके संयम पूर्वक तथा उत्तर की ओर मुख करके वेदाध्ययन करना चाहिए।॥४२॥ पढ़ते समय गुरु के चरणों को पकड़कर तथा गुरु के मुख को देखते रहे और जब आचार्य कहें कि सौम्य आओ पढ़ तो पढ़ो और जब आचार्य कहें कि अब पाठ बन्द करना चाहिए तो पाठ बन्द कर दे ॥४३॥ पहले अग्नि के चारो ओर कुश को बिछाकर अग्नि की उपासना करे । पहले तीन बार प्राणायाम करके ही ओङ्कार की उपासना करने के योग्य शिष्य होता है ॥४४॥ हे द्विजो ! ब्राह्मण को मन्त्र के आदि और अन्त दोनों में प्रणव का उच्चारण करना चाहिए । गुरु भी ब्रह्माञ्जलि मुद्रा बनाकर सदा अध्यापन करे ॥४५॥ सभी जीवों का सनातन नेत्र वेद ही है । अतएव सदैव वेदाध्ययन करना चाहिए अन्यथा

अधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या सदेवताः ।
प्रीणाति तर्पयन्कालं कामैर्हूताःसदैवताः ॥४७॥
यजूंष्यधीते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः ।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम् ॥४८॥
अथर्वाङ्गिरसो नित्यं मध्वा प्रीणाति देवताः ।
धर्माङ्गानि पुराणानि मांसैस्तर्पयते सुरान् ॥४९॥

प्रातश्च सायं प्रयतो नैत्यकं विधिमाश्रितः । गायत्रीं समधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः ॥५०॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्तितः ॥५१॥
गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलयाऽतोलयत्प्रभुः । एकतश्चतुरो वेदा गायत्री च तथैकतः ॥५२॥
ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् । ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धायान्वितः ॥५३॥

पुरा कल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवःस्वः सनातनाः ।
महाव्याहृतयास्तिस्रः सर्वाशुभनिबर्हणाः ॥५४॥

प्रधानं पुरुषः कालो विष्णुब्रह्ममहेश्वराः । सत्वंरजस्तमस्तित्रः क्रमाद्व्याहृतयः स्मृताः ॥५५॥
ॐकारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदुत्तरम् । एष मन्त्रो महायोगः सारात्सार उदाहृतः ॥५६॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम् । विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम् ॥५७॥
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी । गायत्र्या न परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ॥५८॥

ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से हीन हो जाता है ॥४६॥ जो ऋग्वेद का अध्ययन करता है, वह देवताओं को दूध से आहुति देता है, वह देवताओं को तृप्त करता हुआ काल तथा देवताओं को प्रसन्न करता है ॥४७॥ यजुर्वेद का अध्ययन करने वाला दही से देवताओं को प्रसन्न करता है, जो सामवेद का अध्ययन करता है, वह घी की आहुति से देवताओं को प्रसन्न करता है ॥४८॥ अर्थर्ववेद का अध्ययन करने वाला सदा मधु से देवताओं को प्रसन्न करता है । धर्मशास्त्रों तथा पुराणों का अध्ययन करने वाला मांस से देवताओं को तृप्त करता है ॥४९॥ सायंकाल और प्रातःकाल नित्य कर्म करने वाले को वन में जाकर गायत्री का जप करना चाहिए ॥५०॥ एक हजार गायत्री का जप सर्वोत्तम है, एक सौ गायत्री का जप मध्यमकोटि का है और दश बार गायत्री का जप अधम कोटि का होता है । गायत्री का प्रतिदिन जप करना चाहिए इसे ही जप कहा गया है ॥५१॥ पहले परमात्मा ने गायत्री तथा वेदों को तुला पर रखकर तौला एक तरफ चारों वेदों को रखा और दूसरी ओर गायत्री को ॥५२॥ पहले ओम् का उच्चारण करके उसके बाद व्याहृतियों का उच्चारण करे उसके बाद गायत्री को एकाग्रमन से श्रद्धा पूर्वक पढ़े ॥५३॥ पहले कल्प में भूः भुवः और स्वः ये तीन सनातन व्याहुतियाँ उत्पन्न हुयीं । ये महाव्याहृतियाँ हैं और समस्त अमङ्गलों का नाश करती हैं ॥५४॥ ये तीनों व्याहृतियाँ क्रमशः प्रधान, पुरुष और काल की अथवा विष्णु, ब्रह्मा और महेश्वर की अथवा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का बोधक हैं ॥५५॥ उसके बाद ओम् ब्रह्म का उच्चारण करके उसके बाद गायत्री का उच्चारण करे । ऐसा करने से महायोग बनता है। यह सर्वोत्तम वेद का सार कहा गया है ॥५६॥ जो मनुष्य प्रतिदिन वेदमाता गायत्री का इस प्रकार का जप करता है, वह ब्रह्मचारी गायत्री के अर्थ को जानकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥५७॥ गायत्री वेदमाता

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः ।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम् ॥५९॥
यत्सूर्ययाम्यगमनं मासान्विप्रोऽर्द्धपञ्चमान् । अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः ॥६०॥
पुष्ये तु च्छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ।
मासि शुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥६१॥
छन्दांसि च द्विजोऽभ्यस्येच्छुक्लपक्षे तु वै द्विजः ।
वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षेषु मानवः ॥६२॥
इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनं च कुर्वाणोऽभ्यस्यन्नपि प्रयत्नतः ॥६३॥
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने । विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च सम्प्लवे ॥६४॥
अकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः । एतानभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ॥६५॥
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने । निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥६६॥
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यानृतावपि । प्रादुष्कृतेष्वग्निषु च विद्युत्स्तनितनिस्वने ॥६७॥
स ज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ।
नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च ॥६८॥
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धं च नित्यशः । अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ ॥६९॥

हैं, वे संसार को पवित्र बनाने वाली हैं, इस बात को जानकर कहा जाता है कि गायत्री से बढ़कर दूसरा कोई जप नहीं है ॥५८॥ हे द्विजोत्तमों ! श्रावण मास की पूर्णिमा तिथि को अथवा प्रौष्ठपदी (भाद्रपद की अमावस्या के दिन) उपाकर्म करने को बतलाया गया है ॥५९॥ सूर्य के दक्षिण में जाने के जो साढ़े चार मास होते हैं उन महीनों में ब्राह्मण को ब्रह्मचारी के पवित्र स्थान में वेदाध्ययन करना चाहिए।॥६०॥ पुष्यनक्षत्र में बाहर जाकर वेदों का उत्सर्ग करना चाहिए । महीने के शुक्ल पक्ष के आ जाने पर पहले दिन में पूर्वाह्ण में ब्राह्मणों को वेदों का अध्ययन करना चाहिये और कृष्ण पक्ष में वेदाङ्गों का तथा पुराणों का अध्ययन करना चाहिए ॥६२॥ वेदाध्ययन करने वाले को निम्नाङ्कित अनध्याय दिनों में वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए । वेदाध्ययन का अभ्यास करने वाले को भी अनध्यायों में वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए।॥६३॥ रात्रि में ऐसी हवा के चलने पर कि उसकी आवाज कानों में सुनायी पड़ने लगे तो अनध्याय कर दे। दिन में धूल भरी हवा चलने पर वेदाध्ययन न करे । बिजली के चमककर गर्जने पर तथा वर्षा होने पर, महोल्कापात होने पर भी वेदाध्ययन न करे ॥६४॥ प्रजापति ने कहा है कि इन समयों में अकालिक अनध्याय होता है । होमाग्नि के जलने पर, बिजली के चमकने पर तथा महोल्कापात होने पर भी वेदाध्ययन न करे । भूकम्प होने पर, बिजली गिरने पर तथा तारों के दिखने लगने पर इन उत्पातों के होने पर अकालिक अनध्याय समझना चाहिये । ऋतु परिवर्तन काल में भी अनध्याय कर दे । होमाग्नि के जलने लगने पर और बिजली के चमक कर गरजने लगनेपर सज्योति दिन भर का अनध्याय होता है । रात्रि के शेष भाग में इन सबों के होने पर अगली रात्रि के उस बेला तक का अनध्याय होता है । ग्रामों तथा नगरों में सदैव अनध्याय रखना चाहिए ॥६५-६७॥ धर्म की शुद्धता चाहने वाले लोगों को चाहिए कि सदैव पूतिगन्ध से युक्त शव जब तक ग्राम में रहे तब तक अनध्याय रखे । चाण्डाल के सन्निकट

अनध्यायोरुद्यमाने समये जलदस्य च। उदके चार्धरात्रे च विण्मूत्रं च विसर्जयन् ॥७०॥
उच्छिष्टः श्राद्धभुक्चैव मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य वेतनम् ॥७१॥
त्र्यहं न करायेद्ब्रह्म राज्ञोराहोश्च सूतके। यावदेकान्ननिष्ठा स्यात्स्नेहालोपश्च तिष्ठति ॥७२॥
विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत् ।
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ॥७३॥
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा शूद्रश्राद्धान्नमेव च। नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥७४॥
आमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टमीषु च। उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ॥७५॥
अष्टकासु अहरोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु। मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च ॥७६॥
तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षेषु सूरिभिः ।
श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ॥७७॥
कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः । समानविद्ये च मृते तथासब्रह्मचारिणि ॥७८॥
आचार्ये संस्थिते चापि त्रिरात्रं क्षपणां स्मृतम् ।
छिद्राण्येतानि विप्राणमनध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥७९॥
हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विवर्जयेत्। नैत्यके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च ॥८०॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे होममध्ये तथैव च। एकामृचमथैकं वा यजुः सामानि वा पुनः ॥८१॥

में भी वेदाध्ययन न करे ॥६८॥ जब बादल उठे उस समय भी अनध्याय होता है । आधी रात्रि को वर्षा होने पर उस दिन शाम तक का अनध्याय रखे । मल-मूत्र त्याग करने पर भी वेदाध्ययन न करे ॥६९-७०॥ जूठे मुँह तथा श्राद्ध का भोजन करने पर वेद का स्मरण भी नहीं करना चाहिए । एकोदिष्ट का भोजन करके भी ब्राह्मण को वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए । राहु का दान लेकर अथवा ग्रहण का सूतक लगने पर तीन दिन का अन्ध्याय होता है । जब तक ब्राह्मण के शरीर में श्राद्ध का अन्न रहता है तब तक उसे वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए । सोये सोए, पैर फैलाकर तथा पैर मोड़कर भी वेदाध्ययन न करे ॥७२-७३॥ मांस खाकर अथवा शूद्र का अन्न खाकर भी वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए । कुहरा छा जाने पर, बाण का शव्द सुनायी पड़ने पर, दोनों संध्यायों में भी वेदाध्ययन न करे॥७४॥ आमावस्या के दिन, चतुर्दशी के दिन, पूर्णिमा के दिन, दोनों अष्टमियों, उपाकर्म करने पर, वेदोंत्सर्ग करने पर भी तीन दिन का अनध्याय होता है ॥७५॥ अष्टकाओं के समय एक दिन और एक रात का अनध्याय होता है । मार्गशीर्ष, पौष, तथा माघ के महीने में ॥७६॥ इन महिनों के कृष्णपक्षों में होने वाली तीन अष्टकाओं का बतलाया है । बहेड़े की छाया में, सेमर तथा महुआ के छाया में भी ॥७७॥ एवं कोबिदार तथा कपित्थ की छाया में कभी भी वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए । एक साथ पढ़ने वाले ब्रह्मचारी की मृत्यु हो जाने पर ॥७८॥ तथा आचार्य की मृत्यु हो जाने पर भी तीन दिन का अनध्याय होता है । ये अनध्याय जितने हैं, वे ब्राह्मणों के लिए छिद्र स्वरूप कहे गये है ॥७९॥ उन समयों में अध्ययन करने पर राक्षस हिंसा करते हैं इसलिए इन समयों में अध्ययन न करे । नित्य कर्मों का तथा सन्ध्योपासन का कभी भी अनध्याय नहीं होता है ॥८०॥ उपाकर्म में होम के अन्त में तथा होम के बीच में एक

नाष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चाभिधावति। अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ॥८२॥
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु सर्वाण्येतानि वर्जयेत्। एष धर्मः समासेन कीर्तिनो ब्रह्मचारिणः ॥८३॥

ब्रह्मणाऽभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः ॥८४॥
स संमूढोन सम्भाष्यो वेदवाह्यो द्विजातिभिः ।
न वेदपाठमात्रेण सन्तुष्टो वै भवेद्द्विजः ॥८५॥

पाठमात्रावसानस्तु पङ्के गौरिव सीदति। योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत् ॥८६॥
स संमूढः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते । यदि त्वात्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छति वै गुरौ॥८७॥
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणम् । गत्वा वनं च विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥८८॥
अधीयीत तथानित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः । सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदान्तांश्च विशेषतः ॥८९॥

अभ्यसेत्सततं युक्तो भिक्षाशनपरायणः ।
एतद्विधानं परमं पुराणं वेदागमे सम्यगिहोदितं वः ॥९०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे स्वर्गखण्डे कर्मयोगकथने ब्रह्मचारिधर्मकथनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

भी ऋचा या एक भी यजुष या एक भी साम का अष्टका आदि के समय अध्ययन न करे और जिस समय तेज हवा चल रही हो उस समय भी वेदाध्ययन न करे । वेदाङ्गों तथा इतिहास पुराणों का भी अनध्याय नहीं होता है ॥८१-८२॥ दूसरे धर्मशास्त्रों के विषय में इन दिनों में अनध्याय नहीं करना चाहिए। इसतरह संक्षेप में ब्रह्मचारी के धर्म का निरूपण किया गया ॥८३॥ इनका वर्णन ब्रह्माजी ने पहले जगत् कल्याणकारी ऋषियों को सुनाया था । जो ब्राह्मण वेद का अध्ययन न करके दूसरे शास्त्रों में परिश्रम करता है ॥८४॥ वह वेदवाह्य है उसके साथ ब्राह्मणों को बाते नहीं करनी चाहिए । ब्राह्मण को केवल वेदाध्ययन करने मात्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए ॥८५॥ केवल वेदों का पाठ करने वाला ब्राह्मण कीचड़ में फंसी हुयी गौ के समान है । दुःख भोगता है । जो विधि पूर्वक वेदों का अध्ययन करके वेदार्थ का विचार नहीं करता है ॥८६॥ वह मूर्ख शूद्र के समान है वह किसी कर्म के योग्य नहीं है । जो व्यक्ति आजीवन गुरुकुल में निवास करना चाहता है ॥८७॥ उसे जीवन भर शरीर त्याग पर्यन्त सदा गुरु की सेवा करनी चाहिए । उसे वन में जाकर विधि पूर्वक अग्नि में होम करना चाहिए ॥८८॥ उसे सावधानी पूर्वक ब्रह्मनिष्ठ होकर वेदाध्ययन करना चाहिए । उसे विशेष रूप से वेदान्तों और शतरुद्रिय का पाठ करना चाहिए और गायत्री का जप करना चाहिए । वह भिक्षान्न का भोजन करते हुए सदैव वेदाध्ययन करे ॥८९॥ यह विधान अत्यन्त प्राचीन है, वेदों आगमों तथा इस पद्म महापुराण को आपलोगों को सुनाया गया । इसको प्राचीन काल में महर्षियों ने ब्रह्माजी ने पूछा था, उसी को मनु ने भी बतलाया है ॥९०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के कर्मयोग वर्णन नामक तिरपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५३।।

चौवनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान्वेदाङ्गानि तथा द्विजाः ।
अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः ॥१॥
गुरवे तु धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया । तीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा शक्तो वा स्नातुमर्हति ॥२॥
वैणवीं धारयेद्यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम् । यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् ॥३॥
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ । रौक्मे च कुण्डले धार्ये कृत्तकेशनखः शुचिः ॥४॥
अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रो न रक्तां बिभृयात्स्त्रजम् ।
शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः ॥५॥
न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै विभवे सति । न रक्तमुल्बणं चान्यधृतं वासो न कुण्डलम् ॥६॥
नोपानहौ स्त्रजं चाथ पादुके च प्रयोजयेत्। उपवीतमलङ्कारं दर्भान्कृष्णाजिनं तथा ॥७॥
नापसव्यं परीदध्याद्वासेन विकृतं वसेत् । आहरेद्विधिवद्दारान्सदृशानात्मनःशुभान् ॥८॥
रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान् । असपिण्डां च वै मातुरसमानार्षगोत्रजाम् ॥९॥
आहरेद् ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम् ।
ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ॥१०॥

गृहस्थ धर्म का वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे द्विजों ! द्विजोत्तम को चाहिए कि वह एक वेद, दो वेदों अथवा तीन वेदों का तथा वेदाङ्गों का अध्ययन करके एवं उन सबों के अर्थ का विचार करके समावर्तन संस्कार करायें ॥१॥ आचार्य को अभिप्रेत दक्षिणा देकर गुरु की आज्ञा से उसे वेद स्नान करना चाहिए । ब्रह्मचर्यावस्था के समाप्त हो जाने पर वह ज्ञानी पुरुष वेद स्नान करने के योग्य हो जाता है ॥२॥ वह वेणुयष्टि (दण्ड) अधोवस्त्र तथा उत्तरीय वस्त्र को धारण करे । वह दो यज्ञोपवीतों को धारण करे तथा जल भरा कमण्डलु धारण करे ॥३॥ छाता, श्वेत पगड़ी, खड़ाऊँ अथवा जूता धारण करे । दो सोने के कुण्डलों को धारण करे केश और नख को कटवाकर पवित्र हो जाय ॥४॥ सुवर्ण की माला को छोड़कर ब्राह्मण को कोई दूसरी लाल माला नहीं धारण करना चाहिए । वह श्वेत वस्त्र धारण करे तथा अच्छी लगने वाली सुगन्धि धारण करे । वैभव के रहने पर भी पुराने और फटे वस्त्र को नहीं धारण करना चाहिए । वह लाल तथा उत्तेजक वस्त्र को न धारण करे, वह दूसरे के कुण्डल को भी नहीं धारण करे ॥६॥ वह दूसरे के जूते, माला तथा खडाऊँ को भी न पहने । उपवीत, अलङ्कार तथा कृष्ण मृगचर्म धारण करे ॥७॥ वह अपसव्य यज्ञोपवीत न धारण करे और न विकृत वस्त्र पहने । वह अपने स्वरूपानुरूप तथा मङ्गलमयी पत्नी से विवाह करे ॥८॥ उसे रूप तथा सद् लक्षण से युक्त होना चाहिए तथा योनिगत दोषों से रहित होना चाहिए । उसे पति के पिता के गोत्र का नहीं होना चाहिए ॥९॥ ब्राह्मण की पत्नी को शील तथा शौच (पावित्र्य) पालन नामक गुण से युक्त होना चाहिए । स्नातक को तब तक ऋतुकाल में अभिगमन करना चाहिए जब तक कि पुत्र की उत्पत्ति न हो जाय ॥१०॥ अभिगमन निषिद्ध दिनों में नहीं करना

वर्जयेत्प्रतिषिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि तु । षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशींद्वादशीं व चतुर्दशीम् ॥११॥
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयाहनि। आदधीत विवाहाग्निं जुहुयाज्जातवेदसम् ॥१२॥
एतानि स्नातको नित्यं पावनानि च पावयेत् ।
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥१३॥
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानतिभीषणान्। अभ्यसेत्प्रयतो वेदं महायज्ञान्न हापयेत् ॥१४॥
कुर्याद् गृह्याणि कार्याणि सन्ध्योपासनमेव च ।
सख्यं समाधिकैः कुर्यादुपेयादीश्वरं सदा ॥१५॥
दैवतान्यभिगच्छेत कुर्याद्धार्याभिपोषणम् । न धर्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि॥१६॥
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः। वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ॥१७॥
देशवाग्बुद्धिसारूप्यमाचारन्विचरेत्सदा । श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्साधुभिर्यश्च सेवितः ॥१८॥
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् । येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥१९॥
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति ।
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ॥२०॥
सत्यवादी जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः। सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही ॥२१॥
मातापित्रोर्हितेयुक्तो ब्राह्मणस्य हिते रतः। दाता यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥२२॥
त्रिवर्गसेवी सततं देवानां च समर्चनम्। कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान् ॥२३॥

चाहिए । षष्ठी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी, चतुर्दशी तिथियों में अभिगामन न करे ॥११॥ पुत्र जन्म के बाद तीन वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । वह विवाह कालिक अग्नि का अधान करके अग्नि में होम करे ॥१२॥ इन नियमों का पालन करने वाला स्नातक पवित्र वस्तुओं को भी पवित्र बना देता है । उसे अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल वेदोंक्त कर्मों को निरालस होकर करना चाहिए ॥१३॥ उन कर्मों को नहीं करने वाला अत्यन्त भयङ्कर नरकों में चला जाता है । वह सावधानी पूर्वक वेदाभ्यास करे और महायज्ञों का परित्याग न करे ॥१४॥ वह गृह्यसूत्रोक्त कर्मों को करे तथा सन्ध्योपासन करे । अपने समान अथवा अपने से श्रेष्ठ पुरुषों से मित्रता करे और सदा ईश्वर की उपासना करे ॥१५॥ वह देवताओं की आराधना करे और अपनी पत्नी का पोषण करे । वह अपने द्वारा किए गये पुण्यों का कभी प्रचार न करे और न अपने पापों को छिपाये ॥१६॥ सभी जीवों पर दया करे और उनका कल्याण करे । वह अपनी अवस्था, कर्म, धन सम्पत्ति, ज्ञान तथा वंश के अनुसार देश, वाणी तथा बुद्धि से आचरण करते हुए विचरण करे । श्रुतियों और स्मृतियों में कहे गये तथा साधु पुरुषों द्वारा सेवित ॥१७-१८॥ आचार का ही पालन करे दूसरे आचार की कभी इच्छा भी न करे । उसके पिता पितामह ने जिस आचरण का पालन किया हो ॥१९॥ उसी आचरण का वह पालन करे । सज्जनों के मार्ग पर चलने वाला कभी दूषित नहीं होता है । वह प्रतिदिन वेदाध्ययन करे, सदा यज्ञोपवीत धारण किए रहे ॥२०॥ सत्य बोले, क्रोध को अपने वश में रखे, लोभ तथा मोह न करे । सदा गायत्री का जप करे तथा श्राद्ध करे । इस प्रकार का गृहस्थ मुक्त हो जाता है ॥२१॥ माता-पिता का कल्याण करने वाला, ब्राह्मणों का कल्याण करने वाला, दानी, यज्ञ करने वाला और देवताओं का भक्त मनुष्य ब्रह्मलोक

विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः। गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ॥२४॥
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः ।
अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥२५॥
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः। यथाशक्ति चरन्धर्मं निन्दितानि विवर्जयेत् ॥२६॥
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् । गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्याविचारणा ॥२७॥
विगर्हितजयक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम् । अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा ॥२८॥
स्वदुःखेष्वेव कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदम्। दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम् ॥२९॥
चतुर्दशानां विद्यानां धारणा हि परार्थतः । विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्धते ॥३०॥
अधीत्य विधिवद्विद्यामर्थं चैवोपलभ्यते। धर्मकार्याणि कुर्वीत ह्येतद्विज्ञानमुच्यते ॥३१॥
सत्येन लोकं जयति सत्यं तत्परमं पदम्। यथाभूताप्रमादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः ॥३२॥
दमःशरीरोपरतिः शमः प्रज्ञाप्रसादतः । अध्यात्ममक्षरं विद्या यत्र गत्वा न शोचति ॥३३॥
यया स देवो भगवान्विद्यया विद्यते परः। साक्षादेव हृषीकेशस्तज्ज्ञानमितिकीर्तितम् ॥३४॥
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनःशुचिः। महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम् ॥३५॥
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत् । नहि देहं विना विष्णुःपुरुषैर्विद्यते परः ॥३६॥

में पूजित होता है ॥२२॥ त्रिवर्ग का सेवन करने वाला मनुष्य सदैव देवताओं का पूजन करे और देवताओं को नमस्कार करे ॥२३॥ समय का सदा विभाग करने वाला, क्षमा करने वाला तथा दयालु मनुष्य ही गृहस्थ कहलाता है केवल गृहमात्र से कोई गृही नहीं हो जाता है ॥२४॥ क्षभा, दया, विज्ञान, सत्य, दम तथा शम अध्यात्म ज्ञान परायणता यही ब्राह्मण का लक्षण है ॥२५॥ द्विजोत्तम को चाहिए कि वह इन गुणों के विषय में प्रमाद न करे । वह अपनी शक्ति के अनुसार धर्म का आचरण करे तथा निन्दित कर्मों का त्याग कर दे ॥२६॥ गृहस्थ पुरुष मोह (अज्ञान) रूपी कीचड़ को दूर करके तथा सर्वोत्तम योग को प्राप्त करके संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है, इस विषय में विचार करना आवश्यक है॥२७॥ निन्दा, पराजय, हिंसा, बन्धन वध तथा दूसरों के क्रोध से उत्पन्न होने वाले क्रोध को सह लेना ही क्षमा है ॥२८॥ अपने दुःख में अकरुणा और दूसरों के दुःख में सौहार्द को मुनियों ने दया कहा है यह धर्म का साक्षात् साधन है ॥२९॥ चौदह विद्याओं को यथार्थ रूप से धारण करना ही विज्ञान है, इसी से धर्म की विशेष वृद्धि होती है । (छहो वेदाङ्गों, चारो वेद, मीमांसा, न्यायशास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र ये ही चतुर्दश विद्यायें हैं) ॥३०॥ विद्याओं का अच्छी तरह से अध्ययन करने से अर्थ की प्राप्ति होती है । उसके द्वारा धर्म कार्यों को करना चाहिए इसी को विज्ञान कहते हैं ॥३१॥ मनुष्य सत्य के द्वारा लोक पर विजय प्राप्त कर लेता है । सत्य ही परम पद है । इसके ठीक-ठीक पालन में प्रमद नहीं करने को मनीषियों ने सत्य कहा है ॥३२॥ शरीर के प्रति उपरामता का हो जाना ही दम है, बुद्धि की निर्मलता से शम की प्राप्ति होती है, अक्षर पद को अध्यात्म समझना चाहिए जिसको प्राप्त करने से मनुष्य को शोक नहीं होता है ॥३३॥ जिस विद्या के द्वारा षड्विध ऐश्वर्य से युक्त परा देवता भगवान् हृषीकेश का साक्षात् ज्ञान होता है उसी ज्ञान को वस्तुतः ज्ञान कहा गया है ॥३४॥ जो विद्वान्, ब्राह्मण उस ज्ञान में स्थित रहकर क्रोध से सदा दूर तथा पवित्र रहता है, तथा पञ्च महायज्ञों को करता है वह

नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः। न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्॥३७॥
सीदन्नपि हि धर्मेण नत्वधर्मं समाचरेत्। धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु ॥३८॥
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधीः। न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न संवसेत्॥३९॥
यस्त्विमं नियतो मर्त्यो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः ।
अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥४०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे गृहस्थधर्मकथनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पचपनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत्क्वचित् ।
नाहितं नाप्रियं वाच्यं न स्तेनः स्यात्कदाचन ॥१॥
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव च ।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते ॥२॥
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात्पतितादपि। न चान्यस्मादशक्तश्चेन्निन्दितान्वर्जयेद्बुधः॥३॥

सर्वोत्तम गति को प्राप्त करता है ॥३५॥ शरीर धर्म का आश्रय है, इसकी रक्षा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए। क्योंकि कोई भी शरीर के बिना परम पुरुष भगवान् विष्णु का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है ॥३६॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह सदा, धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति में लगा रहे । वह धर्म से रहित अर्थ और काम का मन से भी स्मरण न करे ॥३७॥ धर्म के कारण कष्ट का अनुभव करनेपर भी अधर्म का कभी आचरण नहीं करना चाहिए । भगवान् धर्म देव ही सभी जीवों के आश्रय हैं ॥३८॥ मनुष्य को जीवों का उपकारक होना चाहिए दूसरे के प्रति द्रोह का कर्म और बुद्धि नहीं बनना चाहिए। कभी भी वेद और धर्म की निन्दा न करे और न उनकी निन्दा करने वालों के साथ रहे ॥३९॥ जो मनुष्य इस धर्माध्याय का नित्य ही पाठ करता है और पावित्र्य का पालन करता है जो इसे पढ़ाये अथवा किसी को सुनाये वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड के कर्मयोग वर्णन नामक चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५४।।

गृहस्थों के आचार का वर्णन

व्यासजी ने कहा— बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी जीव की हिंसा न करे, झूठ न बोले, किसी का अकल्याण न करे, अप्रियवाणी न बोले, और किसी की भी वस्तु को न चुराये ॥१॥ चाहे वह वस्तु तृण, या शाक मिट्टी या जल ही न हो । दूसरे की वस्तु को लेने वाला जीव नरक में अवश्य जाता

नित्यं याचनको न स्यात्पुनस्तं नैव याचयेत् ।
प्राणानपहरत्येवं याचकस्तस्य दुर्मतेः ॥४॥
न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमः । ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापत्स्वपि कदाचन ॥५॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते। देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः ॥६॥
पुष्पं शाकोदकं काष्ठं तथा मूलं फलं तृणम् ।
अदत्तानि च नस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः ॥७॥
ग्रहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजाः। नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम् ॥८॥
तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद्बुधः ।
धर्मार्थं केवलं प्राहुरन्यथा पतितो भवेत् ॥९॥
तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः । क्षुधितैर्नान्यथा विप्रा धर्मादिभिरिति स्थितिः ॥१०॥
न धर्मस्यापदेशेन पातं कृत्वा व्रतं चरेत् । व्रतेन पापं व्यागुह्य कुर्वन्स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥११॥
प्रेत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः । छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति॥१२॥
अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपतिष्ठति। स लिङ्गिनो हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥१३॥
याचनं योनिसम्बन्धं सहवासं च भाषणम्। कुर्वाणः पतते नित्यं तस्माद्यत्यनेन वर्जयेत् ॥१४॥

है ॥२॥ राजा से, शूद्र से, पतित से, अथवा दूसरे किसी से भी दान न ले । यदि दान लिए बिना। उसका काम नहीं चले तो वह निन्दित व्यक्ति से दान न ले ॥३॥ हमेशा याचना नहीं करते रहना चाहिए, याचना करे भी तो एक ही व्यक्ति से न माँगता रहे; क्योंकि इस तरह का याचक उस मूर्ख का प्राण भी ले लेता है ॥४॥ विशेष रूप से ब्राह्मण को देवता के द्रव्य को नहीं लेना चाहिए । विपत्ति ग्रस्त होने पर भी ब्राह्मण की भी संपत्ति का अपहरण न करे ॥५॥ वस्तुतः विष को विष नहीं कहा गया है, वास्तविक विष तो ब्राह्मण की सम्पत्ति है । इसी तरह देव सम्पत्ति भी, अतएव इन सबों का सदा त्याग करे ॥६॥ मनु प्रजापति ने कहा है कि पुण्य, शाक, जल, काष्ठ, मूल, फल, तृण इन सबों को भी बिना दिए नहीं लेना चाहिए ॥७॥ द्विज को चाहिए कि वह देवता की अर्चना के लिए फूल ले; किन्तु उसकी स्वामी की आज्ञा के बिना एक ही स्थान से सदा फूल न ले ॥८॥ महर्षियो ने बतलाया है कि तृण, काष्ठ, फल, पुष्प, तथा प्रकाश को धार्मिक कार्य के लिए लिया जा सकता है, अन्यथा लेने पर ग्रहीता पतित हो जाता है । हे विप्रों ! भूखा व्यक्ति मार्ग में विद्यमान, तिल, मूंग तथा यव आदि को एक मुट्ठी ले सकता है; यही धार्मिक स्थिति है ॥१०॥ धर्म के बहाने पाप करके व्रत नहीं करना चाहिए, व्रत के द्वारा पाप को छिपाकर स्त्रियों तथा शूद्रों को ठगने वाला ॥११॥ मरने के पश्चात् परलोक तथा इस लोक में भी ब्रह्मवादियों के द्वारा निन्दित किया जाता है । छल करने के लिए किया गया व्रत राक्षसों को प्राप्त होता है ॥१२॥ जो ब्रह्मचारी न होकर भी ब्रह्मचारी का वेष बनाकर अपनी वृत्ति को चलाता है, वह ब्रह्मचारियों के पापों का ही हरण करता है और मृत्यु के बाद तिर्यग्योनि में जाता है ॥१३॥ उससे याचना करने वाला, विवाह शादी का सम्बन्ध रखने वाला, उसके साथ रहने वाला, उससे बातचित करने वाला, निश्चित रूप से पतित हो जाता है अतएव प्रयास पूर्वक इन सब कार्यों को नहीं करना चाहिए ॥१४॥ कभी भी देवता से द्रोह नहीं करना चाहिए तथा गुरु से भी द्रोह न करे।

देवद्रोहं न कुर्वीत गुरुद्रोहं तथैव च । देवद्रोहाद्गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः ॥१५॥
जनापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम् ।
गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया ॥१६॥
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः ।
कुविचारैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ॥१७॥
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।
अनृतात्पारदार्याच्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् ॥१८॥
अगोत्रधर्माचरणात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् । अश्रोत्रियेषु दानाच्च वृषलेषु तथैव च ॥१९॥
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् । अधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले वसेत् ॥२०॥
शूद्रराज्ये च न वसेन्न पाखण्डजनैर्वृत्ते। हिमवद्विन्ध्योर्मध्यं पूर्वपश्चिमयोः शुभम् ॥२१॥
मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद् द्विजः ।
कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः ॥२२॥
पुण्या वा विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः ।
अर्द्धक्रोशं नदीकूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः ॥२३॥
नान्यत्र निवसेत्पुण्यं नान्त्यजग्रामसन्निधौ । न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्नपुल्कसैः ॥२४॥
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्यैर्जायावसायिभिः । एकशय्यासने पङ्क्तिर्भाण्डे पक्वान्नमिश्रणम् ॥२५॥
याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम्। सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च॥२६॥

गुरु से द्रोह करना देवद्रोह की अपेक्षा करोड़ों गुणा अधिक पापकारक होता है ॥१५॥ उससे भी करोड़ गुणा अधिक पापकारी लोगों की निन्दा करना तथा नास्तिकता होता है । गायों, देवताओं, ब्राह्मणों, कृषि तथा राजा की सेवा के द्वारा ॥१६॥ अच्छे वंश भी असद्वंश हो जाते हैं और वे धर्म हीन हो जाते हैं । बुरे विचार, विहित कर्मो का परित्याग, वेदाध्ययन नहीं करना ॥१७॥ तथा ब्राह्मण का अतिक्रमण करने से भी सद्वंश असद्वंश हो जाते हैं । मृषाभाषण करने, परस्त्री का सेवन करने तथा अभक्ष्य भक्षण करने से ॥१८॥ अपने वंश के आचरण का परित्याग करने से वंश शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है, अश्रोत्रियों तथा वृषलों के यहाँ का दान लेने में ॥१९॥ तथा आचार रहितों का दान लेने से शीघ्र वंश का नाश जो जाता है । जहाँ पर अधार्मिकों की भरमार हो तथा बहुत से रोगी लोग जहाँ हो; वहाँ पर नहीं रहना चाहिए ॥२०॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह शूद्रों के राज्य में और पाखण्डियों से भरे स्थान में न रहे। हिमालय और विन्ध्य पर्वत के बीच में विद्यमान पूर्व आशैर पश्चिम का स्थान शुभ है ॥२१॥ इन स्थानों को छोड़कर अन्यत्र न रहे; समुद्रों के किनारे भी न रहे । जहाँ पर स्वाभाविक रूप से कृष्ण मृग संचरण करते हों ॥२२॥ अथवा जहाँ कोई विख्यात पवित्र नदी हो ब्राह्मण को वहीं निवास करना चाहिये । नदी के तट से आधे कोश की दूरी को छोड़कर ब्राह्मण अन्यत्र न रहे ॥२३॥ शूद्रों के ग्राम में भी नहीं रहना चाहिए । पतितों, चाण्डालों, पुल्कस जाति के लोगों ॥२४॥ मूर्खो, घमण्डियों तथा स्त्रियों का व्यापार करने वाले लोगों के साथ भी न रहे । एक शय्या पर सोना, एक आसन पर बैठना, एक पंक्ति में बैठना, एक वर्तन में भोजन करना, साथ-साथ पढ़ना और एक साथ यज्ञ करना ये ग्यारह कारण

एकादशसमुद्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंस्थिताः । समीपे चाप्यवस्थानात्पापं सङ्क्रमते नृणाम् ॥२७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साङ्कर्यं परिवर्जयेत् । एकपङ्क्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम् ॥२८॥
भस्मना कृतमर्यादा न तेषां सङ्करो भवेत्। अग्निना भस्मना चैव सलिलेन विलेखतः ॥२९॥
द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः षङ्क्तिर्विभिद्यते ।
न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादं न च पैशुनम् ॥३०॥
परक्षेत्रे गां चरन्तीं न चाचक्षीत कर्हिचित् ।
न संवसेत्सूचकेन न कं वै मर्मणि स्पृशेत् ॥३१॥
न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शराग्निकम्। परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनं वाथ काञ्चनम् ॥३२॥
न कुर्याद् बहुभिः सार्द्धं विरोधं बन्धुभिस्तथा ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥३३॥
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्नक्षत्राणि न निर्दिशेत् ।
नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वा द्विजोत्तमः ॥३४॥
न देवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत्। न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत् ॥३५॥
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्। यस्तु देवानृषींश्चैव वेदान्वा निन्दते द्विजः ॥३६॥
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः ।
निन्दयेद्वा गुरुं देवं वेदं वा सोपबृंहणम् ॥३७॥
कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः। तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात्किञ्चिदुत्तरम्॥३८॥

सांकार्य के हैं । सन्निकट में रहने पर भी एक आदमी का पाप दूसरे में चला जाता है ॥२५-२७॥ अतएव प्रयास करके सांकर्य का परित्याग करना चाहिए । एक पंक्ति में बैठने पर भी जो दूसरे का स्पर्श नहीं करते हैं ॥२८॥ भस्म आदि से रेखा खींचकर जो अपने को पृथक् करते हैं उनको भी सांकर्य दोष नहीं होता है । आग, भस्म, तथा जल से रेखा खींच देने पर भी सांकर्य नहीं होता है ॥२९॥ दरवाजे के द्वारा, स्तम्भ के द्वारा तथा मार्ग के द्वारा, इन छह वस्तुओं के द्वारा पंक्ति अलग हो जाती है । अकारण वैर नहीं करना चाहिए, न अनावश्यक विवाद करना चाहिए और न चुगुली करनी चाहिए॥३०॥ दूसरे के खेत में चरती हुयी गौ का कभी समाचार न बतलाये । चुगली करने वाले के साथ न रहे, और न तो किसी चूभने वाली बात कहे ॥३१॥ सूर्य के घेरा, इन्द्र धनुष तथा दूसरे के आह्निक की विद्वान् किसी दूसरे को न कहे, चन्द्रमा तथा सुवर्ण को न बतलाये ॥३२॥ अनेक बांधवों के साथ विरोध न करे, जो आचरण अपने को अच्छा न लगे वैसा आचरण दूसरों के प्रति न करे ॥३३॥ तिथि, पक्ष, नक्षत्र इत्यादि दूसरो को बतलाने का काम न करे । रजस्वला स्त्री से बातें न करे और न तो अपवित्र व्यक्ति से बातें करें ॥३४॥ देवता, गुरु तथा ब्राह्मणों को दिए जाने वाले दान को कभी मना न करे। कभी अपनी प्रशंसा न करे और न तो किसी दूसरे की निन्दा करे ॥३५॥ वेद की निन्दा और देवता की निन्दा का प्रयास पूर्वक परित्याग करे । जो ब्राह्मण देवता, ऋषि तथा वेदों की निन्दा करता है ॥३६॥ मुनीश्वरों ने बतलाया है कि उसके लिए कोई भी प्रायश्चित नहीं है । जो वेद, गुरु तथा देवता की, इतिहासों और पुराणों की निन्दा करता है ॥३७॥ वह करोड़ों कल्पों से भी अधिक समय तक रौरव आदि नरकों

कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैनमवलोकयेत्। वर्जयेद्वै रहस्यानि परेषां गर्हणं बुधः ॥३९॥
विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्याद्वै कदाचन ।
न पापं पापिनां ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमः ॥४०॥
सत्येन तुल्यो दोषः स्यादसत्याद्दोषवान्भवेत् ।
नृणां मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात् ॥४१॥
तानि पुत्रान्पशून्घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम् ।
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेये गुर्वङ्गनागमे ॥४२॥
दृष्टं वै शोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशंसने। नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं वाऽनिमित्ततः ॥४३॥
नास्तं यान्तंन वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम् ।
तिरोहितंसमीक्षेत नादर्शाद्यनुगामिनम् ॥४४॥
न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन। न च मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम् ॥४५॥
नाशुचिः सूर्यसोमादीन्ग्रहानालोकयेद्बुधः। नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वाऽवगुण्ठितः ॥४६॥
न पश्येद्व्योमसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम् ।
न तैलोदकयोश्छायां न पङ्क्तिं भोजनेऽसित ॥४७॥
न मुक्तबन्धनं पश्यन्नोन्मत्तं गजमेव वा। नाश्नीयाद्भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ॥४८॥

में निवास करता है । किसी के निन्दा करने पर मौन हो जाना चाहिए उसका उत्तर नहीं देना चाहिए॥३८॥ अपने दोनों कामों को मूंद कर अन्यत्र चले जाना चाहिए उस निन्दा को नहीं सुनना चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि वह दूसरे के रहस्य तथा निन्दा को छिपाये रहे कहे नहीं ॥३९॥ अपने लोगों के साथ कभी भी विवाद नहीं करना चाहिए । द्विजोत्तम को चाहिये कि वे पापियों के पाप अथवा अपाप को न कहें ॥४०॥ क्योंकि उस पाप का कथन सत्य होने पर कहने वाले को भी उतना ही पाप होता है, यदि वह असत्य हुआ तो केवल कहने वाले को ही पाप लगेगा । जिस पर मिथ्या कलङ्क लगाया जाता है उसके रोने से जो आँसू गिरते हैं वे मिथ्या कलङ्क लगाने वालों के पुत्रों तथा पशुओं का विनाश कर देते हैं । ब्रह्महत्या, मदिरा पान, चोरी करने तथा गुरु पत्नी के साथ सहगमन का प्रायाश्चित तो ऋषियों ने बतलाया है किन्तु मिथ्या कलङ्क लगाने का कोई भी प्रायश्चित नहीं बतलाया है । बिना किसी कारण के उगते हुए सूर्य या चन्द्रमा को नहीं देखना चाहिए ॥४१-४३॥ डूबते हुए जल में दिखाये पड़ने वाले, मेघ से ढँके हुए, आकाश के मध्य में स्थित, छिपे हुए अथवा दर्पण में छाया के रूप में दिखने वाले भी सूर्य एवं चन्द्रमा को न देखे ॥४४॥ नङ्गी स्त्री को न देखे, न तो नङ्गे पुरुष को कभी देखे, मल एवं मूत्र को भी न देखे, मैथुन में प्रवृत्त पुरुष को भी न देखे ॥४५॥ अपवित्रावस्था में सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रहों को नहीं देखना चाहिए । जूठे मुँह अथवा अपने सम्पूर्ण शरीर को कपड़े से ढँककर भी नहीं बोलना चाहिए ॥४६॥ जिसको प्रेत ने छू लिया हो उसको न देखे, क्रुद्ध हुए गुरु के मुख को न देखे, तेल ओर जल में पड़ने वाली छाया को न देखे और भोजन कर लेने पर जूठी पंक्ति को भी न देखे ॥४७॥ बंन्धन से छूटे हुए पागल हाथी को न देखों । पत्नी के साथ बैठकर भोजन न करे । भोजन करती हुयी पत्नी को भी न देखे ॥४८॥ छींकती हुयी, अँगड़ाई लेती हुयी तथा

क्षुवतीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम् ।
नोदके चात्मनो रूपं शुभं वाऽशुभमेव वा ॥४९॥
न लङ्घयेच्च मतिमान्नाधितिष्ठेत्कदाचन। न शूद्राय मतिं दद्यात्कृसरं पायसं दधि ॥५०॥
नोच्छिष्टं वा मधु घृतं न च कृष्णाजिनं हविः ।
न चैवास्मै व्रतं ब्रूयान्न च धर्मं वदेद्बुधः ॥५१॥
न च क्रोधवशं गच्छेद् द्वेषं रागं च वर्जयेत् ।
लोभं दम्भं तथा शाठ्यं ह्यसूयां ज्ञानकुत्सनम् ॥५२॥
ईर्ष्यां मदं तथा शोकं मोहं च परिवर्जयेत् ।
न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यं तु ताडयेत् ॥५३॥
न हीनानुपसेवेत न च तृष्णामतिः क्वचित् ।
नात्मानं चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत् ॥५४॥
न विशिष्टमसत्कुर्यान्नात्मानं वासनाद्बुधः । न नखेनलिखेद्भूमिं गां च संवेशयेन्नहि ॥५५॥
न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वतेषु च पर्वतान् । आवासे भोजने वापि न त्यजेत्सहयायिनम् ॥५६॥
नावगाहेदपो नग्नो वह्निं नातिस्पृशेत्तथा । शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत् ॥५७॥
न सर्पशस्त्रैः क्रीडेत स्वानि खानि न संस्पृशेत् ।
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह व्रजेत् ॥५८॥
न पाणिपादवाङ्नेत्रचापल्यं समुपाश्रयेत् । न शिश्नोदरचापल्यं न च श्रवणयोः क्वचित् ॥५९॥

आसन पर सुख पूर्वक बैठी हुयी पत्नी को न देखे । अपना रूप अच्छा है कि नहीं इस बात को जानने के लिए जल में अपना रूप न देखे ॥४९॥ बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह कभी भी शुभ या अशुभ वस्तु को न तो लाङ्घे और न उस पर बैठे । कभी शूद्र को ज्ञान प्रदान न करे । उसको खिचड़ी, दूध या दधि न दे ॥५०॥ उसको जूठा पदार्थ न दे, उसको शहद, घी, कृष्णमृगचर्म और हविष्य भी नहीं दे । बुद्धिमान व्यक्ति शूद्र को व्रतोपदेश भी न करे और न उसको धर्मोपदेश करे ॥५१॥ वह कभी क्रोध न करे और राग तथा द्वेष का वशवर्ती न होए । उसे लोभ दम्भ, शठता, असूया, ज्ञान की निन्दा॥५२॥ ईर्ष्या, मद, शोक तथा मोह का परित्याग कर देना चाहिए । किसी को पीडित न करे कल्याण की दृष्टि से शिष्य और पुत्र का प्रताडन करे ॥५३॥ कभी नीच व्यक्तियों की नौकरी न करे और तृष्णामयी बुद्धि न बनाये । कभी भी आत्मा का अपमान न करे और हीनता का परित्याग कर दे ॥५४॥ विशिष्ट व्यक्ति का अनादर न करे और न अपना ही अनादर करे । पैर के नख से भूमि को न कुरेदे और न तो गौ को जबरदस्ती बैठाये । न तो नदियों में नदी का नाम ले और न पर्वतों पर पर्वतों का नाम ले । साथ-साथ चलने वालों को ठहरने और भोजन करने के समय छोड़ नहीं देना चाहिए ॥५६॥ जल में नङ्गे न नहाये, और न तो अग्नि को लांधे । शिर में लगाने से बचे हुए तेल को दूसरें अङ्गों मे न लगाये ॥५७॥ सर्प तथा शस्त्रों से खेल न करे, और अपनी इन्द्रियों का स्पर्श न करे छिपाने योग्य रोमों का भी स्पर्श न करे और न तो असभ्यों के साथ चले ॥५८॥ पाणि, पैर, वाणी और नेत्र की चपलता को त्याग दे । शिश्न (लिङ्ग) पेट तथा कानों की भी चंचलता

न चाङ्गनखवाद्यं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत् ।
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन ॥६०॥
न शातयेदिष्टिकाभिमूलानि च फलानि च ।
न म्लेच्छभाषण शिक्षेन्नाकर्षेच्च पदासनम् ॥६१॥
नखभेदनमास्फोटं छेदनं वा विलेखनम् । कुर्य्याद्विमर्द्दनं धीमान्नाकस्मादेव निष्फलम् ॥६२॥
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यं वृथाचेष्टां न चाचरेत्। न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ॥६३॥
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।
न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोषयेद्वाक्पतेरपि ॥६४॥
नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत नाप्सु विण्मूत्रमाचरेत् ।
नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥६५॥
न गच्छंस्तु पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत् ।
न दन्तैर्नखरोमाणि च्छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत् ॥६६॥
न बालातपमासेवेत्प्रेतधूमं विवर्जयेत् । नैव स्वप्याच्छून्यगेहे स्वयं नोपानहौ हरेत् ॥६७॥
नाकारणाद्वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ।
न पादक्षालनं कुर्यात् पादेनैव कदाचन ॥६८॥
नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद्बुधः ।
नाभिप्रसारयेद्देवं ब्राह्मणान्गामथापि वा ॥६९॥
वाय्वग्निनृपविप्रान्वा सूर्यं वा शशिनं प्रति। अशुद्धः शयनं पानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम्॥७०॥

को छोड़ दे ॥५९॥ अपने अङ्गों तथा नखों को बाजे के तरह न बजाये । अञ्जलि से जल न पीये। हाथ अथवा पैर से जल को न पीये ॥६०॥ मूलों (कन्दों) तथा फलों को इंटे से न कूंचे । म्लेच्छों की भाषा न सीखे और पैर से कभी आसन को न खींचे ॥६१॥ बुद्धिमान् को अकस्मात् व्यर्थ ही नखों को तोड़ना, ताल ठोकना, नख को काटना, पृथिवी पर रेखा खीचनां तथा देह रगड़ना इन कामों को नहीं करना चाहिए ॥६२॥ गोद में भोजन लेकर भोजन नहीं करना चाहिए तथा व्यर्थ की चेष्टायें भी नहीं करनी चाहिए । उसे व्यर्थ न तो नाचना चाहिए न गाना चाहिए और न बाद्य बजाये ॥६३॥ दोनों हाथों को एक साथ मिलाकर शिर न खुजलाये । लौकिक स्तुतियों के द्वारा देवताओं की स्तुति न करे चाहे वह बृहस्पति प्रणीत ही क्यों न हो ॥६४॥ कभी जूआ न खेले, न दौड़े, और न तो जल में मलमूत्र का त्याग करे । सदा जूठे मुँह न तो बैठे और न नङ्गे स्नान करे ॥६५॥ चलते हुए न पढ़े और न चलते हुए अपने शिर का स्पर्श करे । दाँतों से नख और रोएँ को नहीं काटना चाहिए । सोए हुए मनुष्य को न जगाये ॥६६॥ मध्याह्न के सूर्य का सेवन न करे तथा श्मशान के धुएं से दूर रहे। शून्यगृह में न सोए और स्वयं अपने जूतों को न ढोये ॥६७॥ विना कारण के न थूके; नदी को तैर कर पार न करे । पैर से पैर को रगडकर न धोए ॥६८॥ आग में दोनों पैरों को संतप्त न करे कांस्यपात्र में भी पैरों को न धोए । देवता, गौ तथा ब्राह्मण के सामने पैर न फैलाये । वायु, अग्नि, राजा, ब्राह्मण, सूर्य तथा चन्द्रमा के समक्ष भी पैर न फैलाये । अशुद्धावस्था में कोई पेय पदार्थ पीना, वेदाध्ययन करना,

बहिर्निष्क्रमणं चैव न कुर्वीत कदाचन । स्वप्नमध्ययनं स्नानमुद्वर्तं भोजनं गतिम् ॥७१॥
उभयोः सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने चैव वर्जयेत् ।
न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥७२॥
न चालनं पदा वापि नदेवप्रतिमां स्पृशेत् । नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान्कीर्तयेदृषीन् ॥७३॥
नावगाहेदगाधाम्बु धावयेन्नाऽनिमित्ततः । न वामहस्ते नोद्धृत्य पिबेद्वक्त्रेण वा जलम् ॥७४॥
नोत्तरेदनुपस्पृश्य नाप्सु रेतः समुत्सृजेत् । अमेध्यालिप्तमर्हंवा लोहितं वा विषाणि वा ॥७५॥
व्यतिक्रामेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत् । चैत्यवृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमाचरेत् ॥७६॥
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान् ।
तुषाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन ॥७७॥
न चाग्निं लङ्घयेद्धीमान्नोपदध्यादधः क्वचित् ।
न चैनं पादतः कुर्याच्छूर्पेण न धमेद्बुधः ॥७८॥
न वृक्षमवरोहेत नावेक्षेताशुचिःक्वचित् । अग्नौ न च क्षिपेदग्निं नाद्भिःप्रशमयेत्तथा ॥७९॥
सुहृन्मरणमात्रं वा स्वयं न श्रावयेत्परान् । अपण्यं कूटपण्यं वा विक्रये न प्रयोजयेत् ॥८०॥
न वह्निं मुखनिःश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः । पुण्यस्थानोदकस्थाने सीमान्तं वाहयेन्न तु ॥८१॥
परबाधां न कुर्वीत जलवातातपादिभिः । कारयित्वा सुकर्माणि गुरून्पश्चान्न वञ्चयेत् ॥८२॥
सायं प्रातर्गृहद्वारान्रक्षार्थं परिघट्टयेत् । बहिर्माल्यं सुगन्धि वा भार्यया सह भोजनम् ॥८३॥

स्नान करना, भोजन करना ॥७०॥ तथा बाहर निकलना, इन कार्यों को कभी न करे । दोनों सन्ध्याओं तथा मध्याह्न में सोना, वेदाध्ययन करना, स्नान करना, उबटन लगाना, भोजन करना तथा चलना इन कार्यों को न करे । जूठे हाथ से ब्राह्मण, गौ, तथा अग्नि का स्पर्श न करे ॥७१-७२॥ अग्नि को पैरों से न चलाये, न तो देवता की प्रतिमा का स्पर्श करे । अशुद्धावस्था में अग्नि की सेवा न करे और न तो देवताओं और ऋषियों का नाम लें ॥७३॥ न तो अगाध जल में स्नान करे और न तो अकारण दौड़े । बायें हाथ से निकालकर मुंह लगाकर जल को न पिए । बिना आचमन किए जल में न उतरे और जल में वीर्य त्याग न करे । अमेध्य (अपवित्र) बिना लिपी हुयी भूमि रक्त तथा विष को न लांघे ॥७५॥ रजस्वला स्त्री के साथ तथा जल में मैथुन न करे । देवालय या श्मशान भूमि के वृक्ष को न काटे और न जल में थूके ॥७६॥ हड्डी, भस्म, खोपड़ी, केश, कांटा, भूस्सी की राख और करीष के ऊपर न बैठे ॥७७॥ बुद्धिमान को चाहिए कि वह अग्नि को न लांघे और न तो कभी उसे नीचे रखे । उसे पैर के नीचे भी न रखे और न सूप से आग को हवा करे ॥७८॥ वृक्ष पर न तो चढे और न अपवित्र अवस्था में वृक्ष को देखे । होम की अग्नि में दूसरी अग्नि को न डाले और न तो जल से अग्नि को शान्त करे ॥७९॥ मित्र की मृत्यु का समाचार स्वयं न दे बिक्री करते समय जो बेचने योग्य वस्तु न हो उसे न मिलाये और अथवा झूठा मूल्य न बतलाये ॥८०॥ होम की अग्नि को मुख श्वास न जलाये और अपवित्रावस्था में भी न जलाये । पवित्र जल के स्थान में सीमान्त का अपहरण न करे ॥८१॥ पहले की गयी प्रतिज्ञा को भङ्ग न करे । पशुओं, व्याघ्रों और पक्षियों को परस्पर में न लड़ाये ॥८२॥ जल, वायु तथा धूप से दूसरे को दुःख न दे ॥८३॥ सायंकाल और प्रातःकाल

विगृह्य वादं कृत्वा वा प्रवेशं च विवर्जयेत् ।
न खादन्ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पेद्वा हसेद् बुधः ॥८५॥
स्वमग्निं चैव हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत् ।
न पक्षवेकेणोपधमेन्न शूर्पेण च पाणिना ॥८६॥

मुखेनाग्निं समिन्धीत मुखादग्निरजायत । परस्त्रियं न भाषेत नायाज्यं याजयेद् बुधः ॥८७॥
नैकश्चरेत्सदा विप्रः समुदायं च वर्जयेत्। न देवायतनं गच्छेत्कदाचिद्वाऽप्रदक्षिणम्॥८८॥
न पीडयेद्वा वस्त्राणि न देवायतने स्वपेत्। नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह ॥८९॥
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैः पतितेन वा। नोपानद्वर्जितो वाऽथ जलादिरहितस्तथा ॥९०॥
न वर्त्मनि चितिं वाममतिक्रामेत्क्वचिद् द्विजः ।
न निन्देद्योगिनः सिद्धान्व्रतिनो वा यतींस्तथा ॥९१॥

देवतायतनं प्राज्ञा देवानां चैव सत्रिणाम्। नाक्रामेत्कामतश्छायां ब्राह्मणानां च गोरपि ॥९२॥
स्वांतु नाक्रामयेच्छायां पतिताद्यैर्नरोगिभिः । नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत्कदाचन ॥९३॥
वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम् । न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयं च पिबेद् द्विजः ॥९४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे गृहस्थाचारनीतिवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

रक्षा करने के लिए घर के द्वार को बन्द रखे । कलह तथा विवाह करके पत्नी के साथ बाहर की माला सुगन्धि तथा भोजन को घर में नहीं लाये । विद्वान् ब्राह्मण को चाहिए कि वह खाते हुए खड़ा न होए, न बोले और न हँसे ॥८४-८५॥ अपनी अग्नि को हाथ से न छुए और देर तक जल में न रहे । अग्नि को पंखा, शूप तथा हवा से हवा न करे ॥८६॥ मुख से ही अग्नि को फूंक कर प्रज्वलित करे मुख से ही अग्नि की उत्पत्ति हुयी है । दूसरे की स्त्री से बाते न करे और अयाज्य याजन न कराये॥८७॥ ब्राह्मण न तो अकेले चले और न समुदाय में दूर रहे । देवमन्दिर को वायीं ओर करके कभी न चले॥८८॥ वस्त्र को कसकर न मरोड़े और न तो देवमन्दिर में सोये । अकेले मार्ग में न चले और अधार्मिकों के साथ भी न चले ॥८९॥ रोगियों शूद्रों तथा पतितों के साथ भी न जाय । बिना जूता पहने भी न चले और जल आदि के बिना भी न जाय ॥९०॥ द्विज को रास्ते में चिता को बायें करके नहीं जाना चाहिए। योगियों, सिद्धों, व्रतियों तथा संन्यासियों की निन्दा न करे ॥९१॥ देवमन्दिर, देवता, याज्ञिक तथा ब्राह्मणों की छाया को जानकर न धांगे ॥९२॥ अपनी छाया को भी पतित से तथा रोगियों से न लंघवाये, कभी भी आङ्गार, भस्म, तथा केश आदि पर पैर न रखे ॥९३॥ झाडू की धूल तथा स्नान के वस्त्र तथा घड़े से छलके हुए जल से बचना चाहिए । ब्राहाण अभक्ष्य वस्तुओं को न खाय और अपेय वस्तुओं को न पीये ॥९४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि कामतः ।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते त्वनापदि ॥१॥
षण्मासान्यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम् ।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥२॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः । यस्यान्ने नोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात् ॥३॥
राजान्नं नर्तकान्नं च षण्ढान्नं चर्मकारिणाम् ।
गणान्नं गणिकान्नं च षडन्नं च विवर्जयेत् ॥४॥
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा। गान्धर्वलोहकारान्नं मृतकान्नं विवर्जयेत् ॥५॥
कुलालचित्रकारान्नं वार्धुषेः पतितस्य च। पौनर्भवच्छत्रिकयोरभिशस्तस्य चैव हि ॥६॥
सुवर्णकारशैलूषव्याधवन्ध्यातुरस्य च। चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च ॥७॥
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च। सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः ॥८॥
भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे। उत्सृष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः ॥९॥
पापीयोऽन्नं च सङ्घान्नं शस्त्राजीवस्य चैव हि ।
भीतस्य रुदितस्यान्नमवक्रुष्टं परिक्षतम् ॥१०॥
ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं मृतकस्य च। वृथापाकस्य चैवान्नं शावान्नं चातुरस्य च ॥११॥

भक्ष्याभक्ष्य निरूपण

व्यासजी ने कहा— ब्राह्मण को शूद्र का अन्न, मोह अथवा कामनावशात् भी नहीं खाना चाहिए। बिना विपत्ति के जो शूद्र का अन्न खाता है वह शूद्र की योनि में जाता है ॥१॥ जो मनुष्य शूद्र का निंदित अन्न छह मास तक खाता है वज जीते जी शूद्र हो जाता है और मरने पर कुत्ता होता है ॥२॥ हे मुनीश्वरों ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इनमें जिसका अन्न मरते समय पेट में रहता है, वह उसी योनि में जाता है ॥३॥ राजा का अन्न, नाचने वाले का अन्न, नपुंसक का अन्न, चमड़े का काम करने वाले का अन्न, गणान्न (समुदाय का अन्न) और वेश्या का अन्न इन छह प्रकार के अन्नों का परित्याग कर देना चाहिए ॥४॥ तेली, धोबी, चोर, शराब बेचने वाला, नाचने-गाने वाला, लुहार तथा मरणाशौच युक्त के अन्न को त्याग देना चाहिए ॥५॥ कुम्हार, चित्रकार, सूदखोर, पतित, द्वितीय पति को स्वीकार करने वाली स्त्री के पुत्र, अभिशप्त, सुनार, रङ्गमञ्च पर खेल दिखाकर जीवन निर्वाह करने वाला (शैलूष) व्याध, बन्ध्या, रोगी, चिकित्सक, व्यभिचारिणी स्त्री, दण्ड देने वाले ॥६-७॥ चोर, नास्तिक, देवताओं की निन्दा करने वाला इन सबों के अन्न को त्याग देना चाहिए । सोमरस को बेचने वाले तथा विशेष रूप से चाण्डाल के अन्न को त्याग देना चाहिए ॥८॥ जिस पर उसकी पत्नी का शासन हो, तथा जिसके घर में उपपति (जार) रहता है, पत्नी के द्वारा परित्यक्त पुरुष, कायर पुरुष, जूठा खाने वाले ॥९॥ पापी का अन्न तथा संघ का अन्न, शस्त्र के बल पर अपनी जीविका चलाने वाले, भयभीत रहने वाले, रोने

अप्रजानां तु नारीणां कृतघ्नस्य तथैव च। कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥१२॥
शौण्डान्नं घाण्टिकान्नं च भिषजामन्नमेव च ।
विद्वत्प्रजननस्यान्नं परिवेत्रन्नमेव च ॥१३॥
पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः। अवज्ञातं चावधूतं सरोषभियान्वितम् ॥१४॥
गुरोऽपि नभोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम्। दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम् ॥१५॥
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्विषम् ।
आर्थिकः कुलमित्रं च गोपालो वाहनापितौ ॥१६॥
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्। कुशीलवः कुम्भकश्च क्षेत्रकर्मक एव च॥१७॥
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पगुणं बुधैः ।
पायसं स्नेहापक्वं च गोरसश्चैव सक्तवः ॥१८॥
पिण्याकं चैव तैलं च शूद्राद् ग्राह्यं द्विजातिभिः ।
वृन्ताकं नालिकाशाकं कुसुम्भं भस्मकं तथा ॥१९॥
पलाण्डुंलशुनं शुक्तं निर्यासं चैव वर्जयेत्। छत्राकं विड्वराहं च स्विन्नं पीयूषमेव च ॥२०॥
विलयं विमुखं चैव कोरकाणि विवर्जयेत् ।
गृञ्जनं किंशुकं चैव कृष्माण्डं च तथैव च ॥२१॥
उदुम्बरमलावुं च जग्ध्वा पतित वै द्विजः। तथा कृसरसयावौ पायसापूपमेव च॥२२॥

वाले मनुष्य तथा घायल मनुष्य के भी अन्न का परित्याग कर देना चाए ॥१०॥ ब्रह्मद्वेषी, पाप करने में जिसकी रुचि बनी रहती है, श्राद्ध का अन्न तथा मृतक के भी अन्न को त्याग देना चाहिए । बलि वैश्वदेव रहित रसोई का अन्न, मूर्दे का अन्न, रोगी का अन्न ॥११॥ बन्ध्या नारी का अन्न, कृतघ्न का अन्न, बढ़ई का अन्न तथा हथियार बेचने वाले के भी अन्न को त्याग देना चाहिए ॥१२॥ शौण्डान्न (दबंगई करने वाले का अन्न) घांटिका का अन्न, वैद्य का अन्न, किसी विद्वान से उत्पन्न पुरुष का अन्न, परिवेत्ता (बड़े भाई का विवाह हुए बिना ही अपना विवाह करने वाले) का अन्न ॥१२॥ विशेष रूप से पुनर्भू (पुनः विवाहित स्त्री का अन्न और दिघीषुपति (बड़ी बहन का विवाह हुए बिना यदि छोटी बहन का विवाह हो जाय तो बड़ी बहिन दिघीषु होती है और उसका पति दिघीषु पति होता है ।) का अन्न, अपमानित और निन्दित पुरुष का अन्न, क्रोधी तथा आश्चर्यित का भी अन्न त्याग देना चाहिए ॥१४॥ गुरु का भी संस्कार रहित अन्न नहीं खाना चाहिए । मनुष्य का सारा पाप उसके अन्न में ही रहता है ॥१५॥ जो जिसके अन्न को खाता है वह उसके पापों को ही खाता है । आर्द्धिक (किसान) कुलमित्र (कूर्मी) ग्वाले, वाह (दास) नापित (नाई) ॥१६॥ ये शुद्र हैं । इनका अन्न खाने योग्य नहीं है, और जिसने आत्म निवेदन कर दिया है, नट, कुम्हार, खेतों में काम करने वाले । ये भी शूद्रों में ही है, किन्तु इनके अन्न खाने योग्य है । इनके अन्न को थोड़ा सा मूल्य देकर लिया जा सकता है । खीर, तेल में पका हुआ अन्न, गोरस, सत्तू ॥१७-१८॥ तिल की खल्ली, और तेल इन सबों को ब्राह्मणों को शूद्रों से ले लेना चाहिए । भांटा, कमल नाल, शाक, कुम्हड़ा, भस्मक, प्याज, लशून, शुक्त और गोंद का त्याग कर देना चाहिए । छत्राक (कुकुरमुत्ता) यंत्र द्वारा निकाले गये आसव आदि को भी त्याग देना चाहिए।

अनुपाकृतमांसं च देवान्नानि हवींषि च । यवागूं मातुलिङ्गं च मत्स्यानप्यनुपाकृतान् ॥२३॥
नीपं कपित्थं प्लक्षं च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
पिण्याकं चोद्धृतस्नेहं देवधान्यं तथैव च ॥२४॥
रात्रौ च तिलसम्बन्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत् ।
नाश्नीयात्पयसा तक्रं नाभक्ष्यानुपयोजयेत् ॥२५॥
कृमिदुष्टं भावदुष्टं मृत्संसर्गं च वर्जयेत् । कृमिकीटावपन्नं च सुहृत्क्लेदं च नित्यशः ॥२६॥
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चाण्डालावेक्षितं तथा ।
उदक्यया च पतितैर्गवासङ्घ्रातमेव च ॥२७॥
असङ्गतं पर्य्युषितं पर्यस्तान्नं च नित्यशः । काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव सङ्गतम् ॥२८॥
मनुष्यैरप्यवघ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च । न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोगया ॥२९॥
मलवद्वाससा वाऽपि परवासोऽथ वर्जयेत्। विवत्सायाश्च गोःक्षीरं मेषस्यानिर्दशस्य च ॥३०॥
आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत् । बलाकं हंसदात्यूहं कलविङ्कं शुकं तथा ॥३१॥
कुररं च चकोरं च जालपादं च कोकिलम् ।
वायसान्खञ्जरीटांश्च श्येनं गृध्रं तथैव च ॥३२॥
उलूकं चक्रवाकं च भासं पारावतं तथा । कपोतं टिट्टिभं चैव ग्रामकुक्कुटमेव च ॥३३॥
सिंहं व्याघ्रं च मार्जारं श्वानं सूकारमेव च ।
शृगालं मर्कटं चैव गर्द्दभं न च भक्षयेत् ॥३४॥

गाजर, मूली, कुम्हड़ा, गूलर, और लौकी के खाने से द्विज पतित हो जाता है । खिचड़ी, लपसी, खीर, पूआ ॥१९-२२॥ अनुपाकृत मांस, देवान्न, हविष्य, हलुआ, मातुलिङ्ग, बिना पकायी हुयी मछली ॥२३॥ कदम्ब, कैंथ, पाकड़ का फल इन सबों का प्रयत्न पूर्वक त्याग कर देना चाहिए । तिल की खल्ली जिसका तेल निकाल लिया गया हो, देव धान्य ॥२४॥ तेल ओर दही इन सबों का रात्रि में प्रयत्न पूर्वक त्याग कर दे । दूध के साथ छांछ और अभक्ष्य वस्तुओं को न मिलाये ॥२५॥ जिसमें कीड़े पड़ गये हों, भावदुष्ट (जो मन में दुःख करके दिया गया हो) तथा जिसमें मिट्टी मिली हो ऐसे पदार्थ का त्याग कर देना चाहिए । कृमि तथा कीड़े जिसमें पड़े हों ऐसा अन्न हृदय को दुःख देते हैं ॥२६॥ जिसको कुत्ता सूंघ लिया हो, जो पुनः पकाया गया हो, जिसको चाण्डाल ने देख लिया हो, या रजस्वला अथवा पतित ने देख लिया हो जिसे गौ ने सूंघ लिया हो ॥२७॥ अनुचित, वासी तथा पर्यस्त (जिसे उलट-पलट दिया गया हो) जिसे कौए ने अथवा मूर्गे ने छू लिया हो, जिसमें कीड़े पड़ गये हो ॥२८॥ जिसे मनुष्यों ने सूंघ लिया हो, या कोढ़ी ने छू लिया हो, या रजस्वला स्त्री ने दिया हो, या वेश्या ने दिया हो या रोगिणी स्त्री ने दिया हो ऐसे अन्न का परित्याग कर देना चाहिए ॥२९॥ मैले वस्त्र का अथवा दूसरे के वस्त्र का भी परित्याग कर दे । जिसका बछड़ा मर गया हो ऐसी गौ के दुग्ध का, बकरी का, ऊँटनी का ॥३०॥ भेड़ का तथा गर्भिणी का भी दुग्ध न पिये यह मनु ने कहा है । बगुला, हंसं, कौआ, गौरैया, तोता ॥३१॥ कुरर चकोर, जालपाद, कोयल, दूसरे पक्षी, खड़ची, बाज पक्षी, तथा गृध्र ॥३२॥ उल्लू, चक्रवाक, भास, पारावत (कबूतर), टिटिहरी, ग्राम का मुर्गा ॥३३॥ सिंह, व्याघ्र,

न भक्षयेत्सर्वमृगाञ्छिखिनोऽन्यान्वनेचरान् । जलेचरान्स्थलचरान्प्राणिनश्चेति धारणा ॥३५॥
गोधाकूर्मः शशः खड्गः सल्लकश्चेति सत्तमाः ।
भक्ष्यापञ्चनखा न्नित्यं मनुराह प्रजापतिः ॥३६॥
मत्स्यान्सशल्कान्भुञ्जीत मांसं रौरवमेव च। निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च नान्यथा ॥३७॥
मयूरं तित्तिरं चैव कपोतं च कपिञ्जलम्। वाध्रीणसं बकं भक्ष्यं मीनं प्राह प्रजापति ॥३८॥
शफरीसिंहतुण्डं च तथा पाठीनरोहितौ। मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणीया द्विजोत्तमाः ॥३९॥
प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसं च द्विजकाम्यया। यथाविधिप्रयुक्तं च प्राणानामपि चात्यये ॥४०॥
भक्षयेन्नैव मांसानि शेषभोजी च लिप्यते। औषधार्थमशक्तो वा नियोगाद्यज्ञकारणम् ॥४१॥
आमन्त्रितश्च यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥४२॥
अदेयं वाप्यपेयं वा तथैवास्पृश्यमेव वा ।
द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः ॥४३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत् ।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसम्भाष्यो भवेद् द्विजः ॥४४॥
भक्षयित्वाऽप्यभक्ष्याणि पीत्वाऽपेयान्यपि द्विजः ।
नाधिकारी भवेत्तावद्यावत्तन्न जहात्यधः ॥४५॥

विडाल, कुत्ता, सूकर, स्यार, बन्दर तथा गधा इन सबों को न खाये ॥३४॥ किसी भी मृग को न खाये, मयूर तथा दूसरे वन में रहने वाले जीवों को भी न खाये । जल में रहने वाले, पृथिवी पर रहने वाले भी जीवों को न खाय ॥३५॥ गोह, कछुआ, खरगोश, गैण्डा तथा सल्लक (साहिल) इन जीवों को भी न खाये । मनु प्रजापति ने कहा है कि पाँच नख वाले जीवों को खाना चाहिए ॥३६॥ मछली, साहिल, तथा रुरुमृग के मांस को देवता को निवेदित करके खाना चाहिए अन्यथा नहीं ॥३७॥ मयूर, तित्तिर, कपोत, कपिंजल, वाघ्रीण, बगुला, मीन, हंस, पराजित ॥३८॥ शफरीं, सिंहतुण्ड, पाठीन तथा रोहित (रोहू) हे द्विजबरों, ये सभी मछलियाँ भक्षणीय कहीं गयी हैं ॥३९॥ द्विजत्व की प्राप्ति की इच्छा वाले को इन सबों के प्रेक्षित मांस को खाना चाहिए । इन सबों को प्राण संकटापन्न होने पर ही विधि के अनुसार ही लेना चाहिए ॥४०॥ मांसों को नहीं खाना चाहिए । किन्तु श्राद्ध में पितरों को समर्पित करने से बचे हुए मांस को खाने वाले को पाप नहीं लगता है । ओषधि बनाने के लिए असमर्थ तथा यज्ञ में जिसका विधान किया गया हो ॥४१॥ जिसको श्राद्ध में बुलाया गया है वह यदि दैव मांस को छोड़ देता है तो उस पशु के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने वर्षों तक वह नरकों में जाता है ॥४२॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह अदेय, अपेय तथा अस्पृश्य मदिरा को कभी देखे भी नहीं ॥४३॥ अतएव हर प्रकार के प्रयास से मदिरा का परित्याग कर देना चाहिए । मदिरा पीने वाला ब्राह्मण सभी कर्मों के लिए पतित हो जाता है । उसके साथ ब्राह्मणों को बात भी नहीं करना चाहिए ॥४४॥ अभक्ष्य पदार्थ का भक्षण करके तथा अपेय वस्तु का पान करके तब तक अधिकारी नहीं होता है जब तक कि

तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः । अपेयानि च विप्रो वै तथाचेद्याति रौरवम् ॥४६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भक्ष्याभक्ष्यनियमो नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् । ब्रह्मणाभिहितं पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम् ॥१॥
अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् । दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥२॥
यो ददाति विशिष्टेभ्यः श्रद्धया परया युतः ।
तद्वै वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥३॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते । चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥४॥
अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे । अनुद्दिश्य फलं तस्माद्ब्राह्मणाय तु नित्यकम् ॥५॥
यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे । नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुत्तमम् ॥६॥
अपत्यविजयैश्वर्यसुखार्थं यत्प्रदीयते । दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७॥
यदीश्वरस्य प्रीत्यर्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते । चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८॥

वह पतित नहीं हो जाता है ॥४५॥ अतएव अभक्ष्य पदार्थों का सदैव त्याग करना चाहिए तथा अपेय पदार्थ का भी त्याग करना चाहिए, अन्यथा वह रौरव आदि नरकों में जाता है ॥४६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के भक्ष्याभक्ष्य निरूपण नामक छप्पनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५६।।

दानधर्म का वर्णन

व्यासजी ने कहा— अब मैं सर्वोत्तम दान धर्म का वर्णन करता हूँ । प्राचीन काल में ब्रह्मवादियों को ब्रह्माजी ने इसका उपदेश दिया था ॥१॥ योग्य पात्र को धन प्रदान करने को ही दान शब्द से कहा गया है, यह भोग तथा मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाला है ॥२॥ यो पराश्रद्धा से सम्पन्न होकर विशिष्ट पुरुषों को दान करता है, उसी को मैं दान मानता हूँ यह पाप से रक्षा करता है ॥३॥ दान तीन प्रकार का बतलाया गया है नित्य, नैमित्तिक और काम्य । इन सबों से उत्तम विमल दान चौथे प्रकार का दान है ॥४॥ जिससे उपकार सम्भन न होऐ ऐसे ब्राह्मण को जो प्रतिदिन दान दिया जाता है । जिससे किसी फल की अभिलाषा नहीं की जाती है, वह दान नित्य दान है ॥५॥ पापों की शान्ति के लिए जो विद्वानों के हाथ पर दान दिया जाता है, उस सर्वोत्तम दान को सज्जनों ने नैमितिक दान कहा है ॥६॥ सन्तान या सुख या विजय प्राप्ति के लिए जो दान दिया जाता है उस दान को धर्म का चिन्तन करने वाले ऋषियों ने काम्य दान कहा है ॥७॥ परमात्मा की प्रसन्नता के लिए जो दान ब्रह्मज्ञानियों को धर्ममय

दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः। उपास्यते तु तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥९॥
कुटुम्बभुक्तिवसानाद्देयं यदतिरिच्यते। अन्यथा दीयते यद्धै न तद्दानं फलप्रदम् ॥१०॥
श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने। व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्॥११॥

यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये ।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥१२॥

इक्षुभिः संयुतां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्। ददाति वेदविदुषे यः स भूयो न जायते ॥१३॥
गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिं सम्प्रयच्छति। ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१४॥
भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन । अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्॥१५॥
यो ब्राह्मणाय शान्ताय शुचय धर्मशीलिने। ददाति विद्यां विधिना ब्रह्मलोके महीयते॥१६॥
दद्यादहरहः स्वर्णं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः स्थानमाप्नुयात्॥१७॥

गृहस्थायान्नदानेन फलमाप्नोति मानवः ।
अन्नमेवास्य दातव्यं दत्त्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ॥१८॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा ।
उपोष्य विधिना शान्तः शुचिः प्रयतमानसः ॥१९॥
पूजयित्वा तिलैः कृष्णैर्मधुना च विशेषतः ।
प्रीयतां धर्मराजेति यदा मनसि वर्त्तते ॥२०॥

यावज्जीवं तु यत्पापं तत्क्षणादेव नश्यति। कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी॥२१॥

अन्तःकरण से दिया जाता है, वह कल्याणकारी विमल दान है ॥८॥ योग्य पात्र के प्राप्त होने पर दान धर्म का पालन अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिए । ऐसा करने वाले की वह दान धर्म हर प्रकार से रक्षा करता है ॥९॥ परिवार को भोजन और वस्त्र देने से जो बचे उसका दान करना चाहिए । कुटुम्ब का पालन किए बिना जो दान दिया जाता है वह दान फलद नहीं होता है ॥१०॥ श्रोत्रिय को कुलीन, विनीत, तपस्वी, व्रत करने वाले तथा दरिद्र ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक दान देना चाहिए ॥११॥ जो कोई आहिताग्नि ब्राह्मण को भक्ति पूर्वक भूमिदान करता है, वह परम पद को प्राप्त करत है जहाँ जाकर उसे सोचना नहीं पड़ता है ॥१२॥ जो व्यक्ति ईख से भरी हुयी यव और गेहूँ से लहलहाती हुयी भूमि वेदज्ञ ब्राह्मण को दान देता है वह पुनः जन्म नहीं लेता है ॥१३॥ जो मनुष्य गोचर्म के बराबर भी भूमि दान दरिद्र ब्राह्मण को देता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१४॥ संसार में भूमिदान से बड़ा कोई भी दान नहीं है । अन्न दान उसी के समान है और विद्या का दान उससे बढकर है ॥१५॥ जो शान्त, पवित्र, धार्मिक ब्राह्मण को विधिपूर्वक विद्या दान करता है वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥१६॥ ब्रह्मचारी ब्राह्मण को समस्त पापों से मुक्ति पाने के लिए प्रतिदिन सुवर्ण का दान देना चाहिए । वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्माजी के स्थान को प्राप्त करता है ॥१७॥ मनुष्य गृहस्थ को अन्न दान करके फल को प्राप्त करता है । गृहस्थ को अन्न ही देना चाहिए, उसको अन्न दान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥१८॥ वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को विधि पूर्वक उपवास करके शान्त मन से पाँच अथवा सात ब्राह्मणों को काली तिल और मधु से पूजा करके, मन में यह सोचकर कि इससे धर्मराज प्रसन्न

ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्। घृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां तु विशेषतः ॥२२॥

निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ।

सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्चवा ॥२३॥

तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति। माघमासे तमिस्रे तु द्वादश्यां समुपोषितः ॥२४॥

शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम् ।

प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलानेव समाहितः ॥२५॥

जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः । आमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने ॥२६॥

यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याच्चोद्दिश्य केशवम् । प्रीयतामीश्वरो विष्णुर्हृषीकेशः सनातनः ॥२७॥

सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्॥२८॥

आराधयेद्द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः । कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये ॥२९॥

स्नात्वाऽभ्यर्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः ।

प्रीयतां मे महादेवो दद्याद् द्रव्यं स्वकीयकम् ॥३०॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम् । द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टभ्यां विशेषतः ॥३१॥

अमावास्यां तथा भक्तैः पूजनीयस्त्रिविक्रमः ।

एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् ॥३२॥

अर्चयेद्ब्राह्मणमुखे स गच्छेत्परमं पदम्। एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद्द्वादशी शुक्लपक्षतः ॥३३॥

हो जो अन्न दान दिया जाता है उससे जीवन भर के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । जो व्यक्ति काले मृर्गचर्म पर तिल सुवर्ण, मधु तथा घी ॥१९-२१॥ रखकर ब्राह्मण को दान देता है, वह सम्पूर्ण पापों को पार कर जाता है । विशेष रूप से वैशाखी (वैशाख की पूर्णिमा) को धर्मराज की प्रसन्नता के लिए घी, अन्न और जल घड़ा जो ब्राह्मण को दान देता है वह समस्त भमों से मुक्त हो जाता है । जो सुवर्ण, से युक्त तथा तिल से युक्त पाँच या सात ब्राह्मणों को जल से तृप्त करता है वह ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है । माघ मास के कृष्णपक्ष की द्वादशी तिथि को उपवास करके ॥२२-२४॥ श्वेत वस्त्र धारण करके काली तिल से अग्नि में होम करके ब्राह्मणों को सावधानी पूर्वक तिल का दान करना चाहिए।॥२५॥ ऐसा करने वाला ब्राह्मण जीवन भर के समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । माघी अमावास्या के दिन तपस्वी ब्राह्मण को ॥२६॥ देवाराध्य भगवान् केशव की प्रसन्नता के लिए दान दे और कहे कि इस दान से सनातन भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हों ॥२७॥ ऐसा करने से सात जन्मों के पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य माघ कृष्ण चतुर्दशी को स्नान करके भगवान् शङ्कर ॥२८॥ जी की आराधना ब्राह्मण से करवाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है । विशेष रूप से माघ कृष्ण अष्टमी तिथि को स्नान करके धार्मिक ब्राह्मण की पाद प्रक्षालन आदि के द्वारा पूजा करके भगवान् महादेव प्रसन्न हों इस तरह से कहकर अपना धन प्रदान करे ॥२९-३०॥ ऐसा करने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । विशेष रूप से द्विजों को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को तथा आमावस्या तिथि को भगवान् त्रिविक्रम की पूजा करनी चाहिए । एकादशी को निराहार रहकर द्वादशी के दिन भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना ब्राह्मण भोजन कराकर करे, ऐसा करने

तस्यामाराधयेद्देवं प्रयत्नेन जनार्दनम्। यत्किञ्चिद्देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ॥३४॥
दीयते विष्णुमेवापि तदनन्तफलं स्मृतम् । यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः॥३५॥
ब्राह्मणान्पूजयेद्यत्नात्स तु तां तोषयेत्ततः। द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ॥३६॥
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिषु तैः क्वचित् ।
प्रतिमादिषु यत्नेन तस्मात्फलमभीप्सता ॥३७॥
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः। विभूतिकामः सततं पूजयेद्धि पुरन्दरम् ॥३८॥
ब्रह्मवर्चसकामास्तु ब्रह्माणां ज्ञानकामुकः। आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम्॥३९॥
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद्वै विनायकम्। भोगकामस्तु शशिनं बलकामः समीरणम् ॥४०॥
मुमुक्षुः सर्वसंसारात्प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम्। यस्तु योगं तथा मोक्षमन्विच्छेज्ज्ञानमैश्वरम् ॥४१॥
अर्चयेत विरूपाक्षं प्रयत्नेन सुरेश्वरम्। ये वाञ्छन्ति महाभोगाञ्ज्ञानानि च महेश्वरम् ॥४२॥
ते पूजयन्ति भूतेशं केशवं चापि भोगिनः ।
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति जलदानं ततोऽधिकम् ॥४३॥
तैलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्। भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ॥४४॥
गृहदाताऽग्र्यवेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् । वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्वदो यानमुत्तमम्॥४५॥

वाला परमपद को प्राप्त करता है । शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि वैष्णवी तिथि है ॥३३॥ उस तिथि को प्रयत्न पूर्वक भगवान् जनार्दन की आराधना करनी चाहिए । भगवान् शङ्कर की प्रसन्नता के लिए जो कुछ भी पवित्र ब्राह्मण को दान दिया जाता है ॥३४॥ वह भगवान् विष्णु को भी दिया जाता है, उस दान का अनन्त फल होता है । जो मनुष्य जिस देवता की आराधना करना चाहे ॥३५॥ वह ब्राह्मणों की पूजा करे उससे उस देवता की प्रसन्नता होती है, क्योंकि देवता सदा ब्राह्मणों के शरीर में ही निवास करते हैं ॥३६॥ ब्राह्मणों के नहीं मिलने पर देवताओं की मूर्ति आदि में पूजा की जाती है और प्रतिमा में बहुत प्रयास करने पर ही फल की प्राप्ति होती है ॥३७॥ ब्राह्मणों में देवता की पूजा सदैव विशेष रूप से करनी चाहिए । ऐश्वर्य चाहने वाले को सदा इन्द्र की पूजा करनी चाहिए ॥३८॥ ब्रह्मवर्चस तथा ज्ञान चाहने वाले को सदा ब्रह्माजी की पूजा करनी चाहिए । आरोग्य चाहने वाले को सूर्य की पूजा करनी चाहिए और धन चाहने वाले को अग्नि की आराधना करनी चाहिए ॥३९॥ कर्मों की सिद्धि चाहने वाले को गणेशजी की पूजा करनी चाहिए । भोग चाहने वाले को चन्द्रमा की पूजा करनी चाहिए और बल चाहने वाले को वायु की पूजा करनी चाहिए ॥४०॥ सम्पूर्ण संसार से मोक्ष चाहने वाले को प्रयत्न पूर्वक श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए । जो योग, मोक्ष तथा ऐश्वर्य ज्ञान प्राप्त करना चाहे ॥४१॥ उसको प्रयत्न पूर्वक सुरेश्वर शिवजी की पूजा करनी चाहिए । जो लोग महाभोग तथा ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं।॥४२॥ भूतों के स्वामी शङ्करजी की पूजा करते हैं । भोग को चाहने वाले जीव भगवान् केशव की भी अर्चना करते हैं । जल दान करने वाला तृप्त होता है और जलदान से उससे अधिक तृप्त होता है ॥४३॥ तेल देने वाला अनुकूल प्रजा को प्राप्त करता है, दीप दान करने वाला उत्तम नेत्रों को प्राप्त करता है । भूमिदान करने वाला सबकुछ प्राप्त कर लेता है, सुवर्ण दान करने वाला दीर्घायु होता है ॥४४॥ गृह दान करने वाला उत्तम भवनों को प्राप्त करता है, चाँदी दान करने वाला उत्तम रूप प्राप्त करता

अन्नदाता श्रियं स्वेष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ॥४६॥
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ।
धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ॥४७॥
वेदविद्याविशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते। गवां चान्नप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४८॥
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः। फलमूलानि पानानि शाकानि विविधानि च ॥४९॥
प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः सदा भवेत् ।
औषधं स्नेहमाहारं रोगिणो रोगशान्तये ॥५०॥
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च । असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम्॥५१॥
तीक्ष्णतापं च तरति च्छत्रोपात्प्रदोनरः । यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्यापेक्षितं गृहे ॥५२॥
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता। अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥५३॥
सङ्क्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ।
प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च ॥५४॥
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीप्रस्त्रवणेषु च। दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ॥५५॥
तस्माद्विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः ।
स्वर्गाय भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये ॥५६॥

है । वस्त्र दान करने वाला चन्द्रमा के लोक में जाता है और अश्व दान करने वाला उत्तम सवारी प्राप्त करता है ॥४५॥ अन्न दान करने वाला अपने अभिप्रेत लक्ष्मी को प्राप्त करता है, गोदान करने वाला ब्राह्मण स्वर्ग प्राप्त करता है । सवारी तथा शय्या दान करने वाला पत्नी को प्राप्त करता है और अभय प्रदान करने वाला ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥४६॥ अन्न दान करने वाला शाश्वत सुख प्राप्त करता है और वेद ज्ञान देने वाला शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करता है । ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार अन्न दान करना चाहिए ॥४७॥ वेदज्ञ ब्राह्मण को दान देने वाला मृत्यु के बाद स्वर्ग जाता है । गायों को अन्न खिलाने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥४८॥ इन्धन दान करने वाले को मन्दाग्नि नहीं होती है । फल, मूल, पेय पदार्थ तथा अनेक प्रकार के शाक ॥४९॥ जो ब्राह्मणों को दान देता है वह सदा प्रसन्न रहता है । रोगियों के रोग की शान्ति के लिए औषधि, तेल, भोजन, देने वाला मनुष्य निरोग, सुखी तथा दीर्घायु होता है । असिपत्र वन का मार्ग क्षुरे के धार से युक्त है ॥५०-५१॥ छाता और उपानह दान करने वाला तीक्ष्ण, धूप से संतप्त नहीं होता है । संसार में जो-जो वस्तुएँ अभिप्रेत होती हैं, तथा घर के लिए जो-जो वस्तुएँ अपेक्षित होती हैं ॥५२॥ उन वस्तुओं की अक्षयता चाहने वाले व्यक्ति को उन वस्तुओं का दान गुणवान् ब्राह्मण को देना चाहिए । अयनों के बदलने पर विषुव काल में, तथा चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण के समय ॥५३॥ तथा संक्रान्ति आदि के समय जो वस्तु दान दी जाती है, वह अक्षय होती है । प्रयाग आदि तीर्थों में पवित्र मन्दिरों में ॥५४॥ नदियों तथा झरनों के तट पर जिन वस्तुओं का दान दिया जाता है, उनका अक्षय पुण्य होता है । संसार में दान धर्म से बड़ा कोई भी धर्म नहीं है ॥५५॥ अतएव द्विजातियों को श्रोत्रिय ब्राह्मणों को दान स्वर्ग की प्राप्ति,

मुमुक्षुणा तु दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्वहम् ।
दीयमानं तु यो मोहाद्गोविप्राग्निसुरेषु च ॥५७॥
निवारयत्यधर्मात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत सः। यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेद् ब्राह्मणान्सुरान्॥५८॥
सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात्प्रवासयेत्। यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति ॥५९॥
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्राह्मणः स तु गर्हितः। न तस्मात्प्रतिगृह्णीयुर्न वसेयुश्च तेन हि ॥६०॥
अङ्कयित्वा स्वकाद्राष्ट्राद्राजा तं विप्रवासयेत् ।
पश्चात्सद्भ्यो ददातीह स्वद्रव्यं धर्मसाधनम् ॥६१॥
स पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः ।
स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः ॥६२॥
सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद्द्विजोत्तमाः। प्रभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकं भोजयेद् द्विजम् ॥६३॥
न च मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम्। सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति ॥६४॥
स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम् ।
यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् ॥६५॥
तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्य च सन्निधिम्। योऽर्चितं प्रतिगृह्णीयाद्दद्यादर्चितमेव च ॥६६॥
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये। न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि च॥६७॥
न पाखण्डेषु सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित्। रूप्यं चैव हिरण्यं च गामश्वं पृथिवीं तिलान्॥६८॥
अविद्वान्प्रतिगृह्णीयाद्भस्मी भवति काष्ठवत्। द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत्प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः॥६९॥

ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा पापों की शान्ति के लिए देना चाहिए ॥५६॥ मुमुक्षु पुरुष को ब्राह्मणों को प्रतिदिन दान देना चाहिए । गौ, विप्र तथा देवताओं को दिए जाने वाले दान को ॥५७॥ दान देने वाले को जो मना करता है वह मरकर पशु-पक्षी होता है । जो धनार्जन करके, ब्राह्मणों तथा देवताओं की पूजा नहीं करता है ॥५८॥ राजा को चाहिए कि उसका सब कुछ छिन ले और राज्य से निकाल दे । जो मनुष्य दुर्भिक्ष (आकाल) पड़ने पर अन्न आदि का दान भूख से मरते हुए ब्राह्मणों को नहीं देता है, वह निन्दित व्यक्ति है । ऐसे व्यक्ति से कोई भी दान नहीं लेना चाहिए और न उसके राज्य में रहना चाहिए ॥६०॥ राजा आज्ञा देकर उस व्यक्ति को अपने देश से बाहर निकाल दे । जो व्यक्ति दुर्भिक्ष के बाद धर्म के साधन भूत धन का दान करता है ॥६१॥ वह तो पूर्वोक्त से भी अधिक पापी है । वह नरक में पकाया जाता है । जो ब्राह्मण वेदाध्ययन करने वाले, विद्वान और जितेन्द्रिय हैं ॥६२॥ सत्य एवं संयम से युक्त हैं द्विज श्रेष्ठ को चाहिए कि वह उन ब्राह्मणों को दान दे । विद्वान तथा धार्मिक ब्राह्मण के भोजन किए रहने पर भी भोजन कराना चाहिए ॥६३॥ किन्तु अवृत्त तथा दश रात्रियों से भूखे भी मूर्ख को भोजन न कराये । जो सन्निकट में विद्यमान् श्रोत्रिय ब्राह्मण को छोड़कर दूसरे को दान देता है, उस पाप कर्म के फल स्वरूप वह पापी अपने सात पीढ़ी के पूर्वजों को भस्म कर देता है । यदि वह ब्राह्मण स्वयम् शील तथा विद्या आदि के विषय में श्रेष्ठ हो तो ॥६५॥ तो फिर वह उस सन्निकटस्थ को छोड़कर उसको दान दे देना चाहिए । जो पूजा में प्राप्त वस्तु को प्राप्त करके उसी का दान कर देता है ॥६६॥ वे दोनों प्रकार के व्यक्ति स्वर्ग जाते हैं, और जो प्राप्त वस्तु का दान नहीं करता है वह नरक में जाता है । नास्तिक और बकवादी को तो जल भी नहीं देना चाहिए ॥६७॥ धर्मज्ञ व्यक्ति पाखण्डियों तथा वेदज्ञान से रहित ब्राह्मण को चाँदी, सोना, गौ, घोड़ा, पृथिवी तथा तिल

अपि राजन्यवैश्याभ्यां न तु शूद्रात्कथञ्चन ।
वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम् ॥७०॥
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते। वेदानधीत्य सकलान्यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः ॥७१॥
न तां गतिमवाप्नोतिसन्तोषाद्यामवाप्नुयात्। प्रतिग्रहरुचिर्नस्याच्छूद्रान्नं तु समाहरेत् ॥७२॥
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन्ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
यस्तु याति न सन्तोषं न स स्वर्गस्य भाजनम् ॥७३॥
उद्वेजयति भूताति यथा चौरस्तथैव सः। गुरुं भृत्यांश्चोज्जिहीर्षुस्तर्पयन्देवतातिथीन् ॥७४॥
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः। एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः ॥७५॥
वर्तमानः संयतात्मा याति तत्परमं पदम्। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य गत्वाऽरण्यं तु तत्त्ववित्॥७६॥
एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीनः समाहितः। एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः॥
ज्ञात्वाऽनुतिष्ठेन्नियतं तथाऽनुष्ठापयेद् द्विजान् ॥७७॥
इति देवमनादिमेकमीशं गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम् ।
समतीत्य स सर्वभूतयोनिं प्रकृतिं याति परं न याति जन्म ॥७८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे गृहस्थधर्मनिर्णयो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

का दान न दे ॥६८॥ यदि अविद्वान् व्यक्ति इन वस्तुओं का दान लेता है तो वह काठ के समान भस्म हो जाता हे । श्रेष्ठ ब्राह्मण को श्रेष्ठ ही द्विजातियों से धन प्राप्त करना चाहिए ॥६९॥ वह क्षत्रियों और वैश्यों से भी दान ले किन्तु शूद्रों से दान कभी न ले । उसे अपनी वृत्ति का सङ्कोच कर लेना चाहिए बहुत अधिक धन का विस्तार न करे ॥७०॥ जो सदा धन प्राप्ति में ही लगा रहता है, वह ब्राह्मणत्व से ही पतित हो जाता है । सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन करके तथा सम्पूर्ण यज्ञों के करके ॥७१॥ भी मनुष्य उस गति को नहीं प्राप्त करता है जिस गति को वह सन्तोष के द्वारा प्राप्त करता है । उसकी दान लेने में रुचि न रहे तथा वह श्राद्ध के अन्न का ग्रहण न करे ॥७२॥ आवश्यकता से अधिक दान लेने वाला ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त करता है । जिसको कभी सन्तोष नहीं होता है, वह कभी स्वर्ग में नहीं जा पाता है ॥७३॥ जिससे सभी जीव उद्विग्न होते हैं वह चोर के समान है । गुरुजनों और भृत्यों का उद्धार करने का इच्छुक देवता और अतिथियों को तृप्त करने के लिए सबसे दान ले; किन्तु उसे अपनी जीविका का साधन न बनाये । इस तरह का आत्मज्ञ गृहस्थ देवता तथा अतिथि की पूजा करने वाला होता है ॥७४-७५॥ इस तरह से संयत आत्मा वाला होकर वह परमपद को प्राप्त करता है । तत्त्वज्ञ पुरुष पुत्रों पर पत्नी का भार सौंपकर वन में चला जाय ॥७६॥ वह समाहित होकर अकेले सदा विचरण करे । हे द्विजोत्तम ! इसतरह से मैंने आपलोगों को गृहस्थों का धर्म सुनाया ॥७७॥ इसतरह से अनादि देव तथा सबों के स्वामी श्रीभगवान् का सदा पूजन करे । वह समस्त भूत योनियों को पार करके, वह परम प्रकृति परमात्मा को प्राप्त कर लेता है, उसका पुनः जन्म नहीं होता है ॥७८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के गृहस्थधर्म वर्णन नामक सत्तावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५७॥

अठावनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागमायुषः। वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत्सदारः सग्निरेव च॥१॥
निक्षिप्य भार्यां पुत्रेषु गच्छेद्वनमथापि वा । दृष्ट्वाऽपत्यस्यवाऽपत्यं जर्जरीकृतविग्रहः॥२॥
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे प्रशस्ते चोत्तरायणे। गत्वाऽरण्यं नियमवांस्तपः कुर्यात्समाहितः ॥३॥
फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत् । यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥४॥
पूजयेदतिथिं नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत्सुरान् ।
गृहादादाय चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्समाहितः ॥५॥
जटाश्च विभृयान्नित्य नखरोमाणि नोत्सृजेत् ।
स्वाध्यायं सर्वथा कुर्यान्नियच्छेद्वाचमन्यतः ॥६॥
अग्निहोत्रं च जहुयात्पञ्चयज्ञान्समाचरेत् । उत्पन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा॥७॥
चीरवासा भवेन्नित्यं स्नायात्त्रिषवणं शुचिः ।
सर्वभूतानुकम्पश्च प्रतिग्रहविवर्जितः ॥८॥
दर्शेन पौर्णमासेन यजेत नियतं द्विजः। ऋत्विष्ट्याग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि कारयेत् ॥९॥
उत्तरायणं च क्रमशो दक्षिणायनमेव च। वासन्तशारदैर्मेध्यैरुत्पन्नैः स्वयमाहृतैः ॥१०॥
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् । देवताभ्यः पितृभ्यश्च दत्त्वा मेध्यतरं हविः ॥११॥
शेषं समुपभुञ्जीत लवणं च स्वयङ्कृतम्। वर्ज्जयेन्मद्यमांसानि भौमानि कवकानि च॥१२॥

वानप्रस्थाश्रम के आचार का वर्णन

इस तरह आयु के द्वितीय भाग पर्यन्त गृहस्थाश्रम में रहकर अपनी पत्नी तथा अग्नि के साथ वानप्रस्थ आश्रम को स्वीकार कर लेना चाहिए ॥१॥ अथवा पत्नी का भार पुत्रों के ऊपर छोड़कर वन में चले जाना चाहिए । अथवा पौत्र का मुख देखकर शरीर को जर्जर हो जाने के कारण उत्तरायण के समय शुक्ल पक्ष में वन में जाय और वहाँ नियम पूर्वक तप करे ॥२-३॥ प्रतिदिन पवित्र फल और मूल लाकर उसका आहार करे । उसका जो आहार हो उसी से पितरों तथा देवताओं की पूजा करे ॥४॥ अतिथियों की पूजा करे और स्नान करके देवताओं की पूजा करे । घर से लोकर आठ ग्रास भोजन करे ॥५॥ हमेशा जटा धारण करे वह नखों और रोमों को न काटे । हमेशा वेदाध्ययन करे अन्यथा मौन रहे ॥६॥ अग्निहोत्र करे और पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान करे । वन में उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के पवित्र शाकों, मूलों तथा फलों से पञ्चमहायज्ञ करे ॥७॥ चीर वस्त्र धारण करे तथा तीनों संध्याओं में स्नान करे । सभी जीवों पर दया करे और दान न ले ॥८॥ ब्राह्मण को नियमतः दर्श एवं पौर्णमास याग करना चाहिए । वह ऋत्विष्टि, आग्रायण तथा चातुर्मास्य यागों को करे ॥९॥ क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन याग भी करे । वसंत तथा शरद् ऋतु में उत्पन्न तथा स्वयं लाये गये वन्य अन्नों से पृथक-पृथक् अनेक प्रकार के पुरोडश और चरु का निर्माण करे । देवताओं और पितरों को अत्यन्त पवित्र हविष्य को प्रदान करके ॥११॥ बचे हुए को स्वयं नमक बचाकर भोजन करे । मद्य, मांस तथा पार्थिव

भूस्तृणं शष्पकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ।
न फलाकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् ॥१३॥
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि पुष्पाणि च फलानि च ।
श्रावणेनैव विधिना वह्निं परिचरेत्सदा ॥१४॥
न द्रुह्येत्सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्। न दत्तं किञ्चिदश्नीयाद्रात्रौ ध्यानपरो भवेत्॥१५॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः। ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत ॥१६॥
यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत् ।
तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥१७॥
तत्र यो जायते गर्भो न स स्पृश्यो द्विजातिभिः ।
न हि वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि ॥१८॥
भूमौ शयीत सततं सावित्रीजप्यतत्परः। शरण्यः सर्वभृतानां सद्विभागपरः सदा॥१९॥
परिवादं मृषावादं निद्रालस्ये च वर्जयेत्। एकाग्निरनिकेतः स्यात्प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत् ॥२०॥
मृगैः सह चरेद्दान्तस्तैः सहैव च संवसेत्। शिलायां शर्करायां वा शयीत सुसमाहितः॥२१॥
सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयिकोऽपि वा ।
षण्माससनिचयो वापि समानिचय एव वा ॥२२॥
नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा चाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिवी वास्यात्किंवाप्यष्टमकालिकः ॥२३॥

कवक का परित्याग कर दे ॥१२॥ पृथिवी पर उगे हुए घास, तृण तथा बहेड़े के फल को न खाय। हल से जोतकर उत्पन्न किए गये अन्न को किसी के द्वारा दिए जाने पर भी न खाय ॥१३॥ ग्राम में उत्पन्न पुष्प तथा फल को आपद्ग्रस्त होने पर भी न ले । श्रौतविधि से ही अग्नि की सेवा करे ॥१४॥ किसी भी जीव से द्रोह न करे, निर्द्वन्द्व तथा निर्भय रहे । रात्रि में कुछ भी न खाय और परमात्मा का ध्यान करे ॥१५॥ इन्द्रियों को वश में रखे और क्रोध को काबू में रखे । सदा तत्त्व ज्ञान का चिन्तन करे । सदा ब्रह्मचर्य का पालन करे, कभी पत्नी के साथ संसर्ग न करे ॥१६॥ जो वन में जाकर कामवशात् पत्नी से मैथुन करता है उसका वानप्रस्थव्रत भङ्ग हो जाता है, वह ब्राह्मण प्रायश्चितीय हो जाता है ॥१७॥ उस गर्भ से जो बच्चा पैदा हो उसका ब्राह्मणों को स्पर्श नहीं करना चाहिए । उसका वेदाध्ययन में अधिकार नहीं होता है, यही नियम उसके वंश वालों के लिए भी होता है ॥१८॥ वानप्रस्थी सदा भूमि पर शयन करे और गायत्री का जप करे । वह सभी जीवों की रक्षा करे और सदैव सत्पुरुषों को अन्न का भाग देता रहे ॥१९॥ वह परिवाद (बहस करना), झूठ बोलना, निद्रा तथा आलस्य का त्याग कर दे । वह एक अग्नि का सेवन करे घर बनाकर न रहे, पोंछी हुयी भूमि पर बैठे ॥२०॥ अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर मृगों के साथ सञ्चरण करें और उन सबों के ही साथ सो जाय । वह अच्छी तरह से समाहित होकर पत्थर पर अथवा कङ्कड़ी पर सो जाय ॥२१॥ वह शीघ्र ही खा लेने वाला रहे अथवा महीने भर के लिए संग्रह करे । छह मासों के लिए भी संचय करे अथवा एक वर्ष के लिए किसी वस्तु का वह संग्रह करे ॥२२॥ अपनी शक्ति के अनुसार दिन में अन्न लाकर सायंकाल भोजन करे । अथवा

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्जयेत् ।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥२४॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा । स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥२५॥
भूमौ वा परिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद्धैर्यमुत्सृजेत् ॥२६॥
ग्रीष्मे पञ्चतपाश्च स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः । आर्द्रवासाश्च हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयेत्तपः ॥२७॥
उपस्पृशेत्त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत् । एकपादेन तिष्ठेत मरीचिं वा पिबेत्सदा॥२८॥

पञ्चाग्निधूमगो वास्यादूष्मगः सोमपोऽपि वा ।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे तु गोमयम् ॥२९॥
शीर्णपर्णाशिनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा ।
योगाभ्यासरतश्च स्याद्रुद्राध्यायी भवेत्सदा ॥३०॥

अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः । यमान्सेवेत सततं नियमांश्चाप्यतन्द्रितः ॥३१॥

कृष्णाजिनी सोत्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।
अथ चाग्नीन्समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः ॥३२॥

अनग्निरनिकेतो वा मुनिर्मोक्षपरो भवेत् । तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत्॥३३॥
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनचारिषु । ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् ॥३४॥
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा। विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत् ॥३५॥

वह चतुर्थ काल में भोजन करे अथवा आठ काल पर भोजन करे ॥२३॥ अथवा चान्द्रायण विधि से शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष में भोजन का त्याग करे । वह एक-एक पक्ष पर उबाली हुयी लप्सी एक-एक दिन खाय ॥२४॥ अथवा सदैव मूल, फल तथा पुष्प से निर्वाह करे । वैखानसमत का पालन करने वाला अपने आप पककर पृथिवी पर गिरे हुए फलों आदि को खाय, तोड़कर न खाय ॥२५। वह पृथिवी पर लोटता रहे अथवा पञ्जों पर दिन भर खड़ा रहे । वह अपने स्थान तथा आसन से विचरण करता रहे धैर्य का कभी त्याग न करे ॥२६॥ ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि को तथा और वर्षा काल में मेघों के नीचे सोये । हेमन्त ऋतु में भिंगा वस्त्र पहने, ऐसा करके वह अपनी तपस्या को क्रमशः बढाये ॥२७॥ वह तीनों सवनों में आचमन करे और पितरों तथा देवताओं का तर्पण करे । वह एक पैर पर खड़ा रहे और किरणों का पान करे ॥२८॥ अथवा वह पञ्चाग्नि के घूम का पान करे, अथवा उष्मा का पान करे या सोम का पान करे । वह शुक्ल पक्ष में जल अथवा दुग्ध पिये तथा कृष्ण पक्ष में गोबर का पान करे ॥२९॥ वह गिरे हुए पत्तों को खाकर रहे अथवा उपवास करे । वह सदा योग का अभ्यास करे तथा रुद्राध्याय का पाठ करे ॥३०॥ वह अथर्वशिरः का अध्ययन करे या वेदान्तों का अध्ययन करे। वह निरालस होकर सदा यमों का पालन करे तथा नियमों का भी पालन करे ॥३१॥ वह कृष्णमृगचर्म को धारण करे और उसी का उत्तरीय भी बनाये । यज्ञोपवीत को वह श्वेत रखे । वह अपनी आत्मा में ही अग्नियों का आधान करके सदा ध्यान करता रहे ॥३२॥ मोक्ष चाहने वाले मुनि को अग्नि रहित तथा गृह रहित होना चाहिए । तपस्वी ब्राह्मणों के यहाँ ही जाकर भिक्षा माँगकर लाये ॥३३॥ दूसरे गृहस्थ तथा वन में रहने वाले द्विजों के यहाँ से भिक्षा माँग लाये । गाँव से माँगकर भिक्षा लाये और वन

विद्याविशेषान्सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च । महाप्रस्थानिकं वाऽसौ कुर्यादनशनं तथा ॥
अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः ॥३६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वानप्रस्थाश्रमाचारधर्मो नामाष्टञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

उनसठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थं चायुषो भागं संन्यासेन नयेत्क्रमात्॥१॥
अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ।
योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥२॥
यदा मनसि सम्पन्नं वैराग्यं सर्ववस्तुषु। तदा संन्यासमिच्छेच्च पतितः स्याद्विपर्यये॥३॥
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः । दान्तः शुक्लकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्॥४॥
ज्ञानसंन्यासिनःकेचिद्वेदसंन्यासिनोऽपरे । कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्तिताः॥५॥
यः सर्वत्र विनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः । प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी आत्मन्येव व्यवस्थितः॥६॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशीर्निष्परिग्रहः। प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजतेन्द्रियः॥७॥

में निवास करते हुए आठ ग्रास ही भोजन करे ॥३४॥ दोनों में या हाथ में या किसी टुकड़े में लेकर भोजन करे । वह आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए अनेक उपनिषदों पाठ करे ॥३५॥ विद्या विशेष होने के कारण गायत्री तथा रुद्राध्याय का भी अध्ययन करे । शरीर त्याग करने के समय यह अनशन करे। वह अग्नि में प्रवेश कर जाय अथवा किसी दूसरे द्रव्य (जल आदि) में प्रवेश करके ब्रह्मार्पण विधि का पालन करे ॥३६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के वानप्रस्थधर्म वर्णन नामक अठावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५८।।

यतिधर्म का निरूपण

व्यासजी ने कहा— इस तरह आयु के तृतीय भाग में वानप्रस्थ आश्रम में रह कर आयु के चतुर्थ भाग को क्रमशः संन्यास के द्वारा व्यतीत करे ॥१॥ द्विज को चाहिये कि वह सभी अग्नियों को अपनी आत्मा में आधान करके संन्यास ग्रहण कर ले । वह सदा योगाभ्यास करता रहे तथा ब्रह्मविद्या में लगा रहे ॥२॥ जब मन में सभी वस्तुओं से वैराग्य हो जाय तब वह संन्यास लेने की इच्छा करे नहीं तो वह पतित हो सकता है ॥३॥ प्राजापत्य या आग्नेय इष्टि करके दान्त शुक्ल तथा काषाय वह ब्रह्माश्रम को स्वीकार करे ॥४॥ सन्यासी तीन प्रकार के होते हैं, ज्ञान संन्यासी, वेद संन्यास और कर्म सन्यासी॥५॥ जो सभी वस्तुओं से निःस्पृह, निर्द्वन्द तथा निर्भय हो उसे ज्ञान संन्यासी कहते हैं वह अपनी आत्मा

यस्त्वग्निमात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः। ज्ञेयः स कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः ॥८॥
त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानी त्वभ्यधिको मतः ।
न तस्य विद्यते कार्यं नलिङ्गं वा विपश्चितः ॥९॥
निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वः पर्णभोजनः ।
जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ॥१०॥
ब्रह्मचारी जिताहारो ग्रामादन्नं समाहरेत् । अध्यात्मरतिरासीत निरपेक्षो निराशिषः ॥११॥
आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेदिह । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवनम्॥१२॥
कालमेव प्रतीक्षेत निर्वेशं भृतको यथा । नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन ॥१३॥
एवं ज्ञानपरो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते । एकवासाश्च वा विद्वान्कौपीनाच्छादनोऽपि च ॥१४॥
मुण्डी शिखी वाऽथ भवेत्त्रिदण्डी निष्परिग्रहः ।
काषायवासाः सततं ध्यानयोगपरायणः ॥१५॥
ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपि वा । समः शत्रौ तथा मित्रे तथा मानापमानयोः॥१६॥
भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत्क्वचित् ।
यस्तु मोहेन वान्यस्मादेकान्नादी भवेद्यतिः ॥१७॥
न तस्य निष्कृतिः काचिद्धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ।
रागद्वेषवियुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥१८॥

में ही व्यवस्थित रहता है ॥६॥ वेद सन्यासी को चाहिए कि वह सदा वेदों का ही अभ्यास करे । वह आशा और परिग्रह से दूर रहे । उसे मुमुक्षु और जितेन्द्रिय होना चाहिए ॥७॥ जो ब्राह्मण अग्नि को आत्मसात् करके ब्रह्म में ही अपने को अर्पित कर देता है तथा पञ्च महायज्ञ परायण रहता है, उसे कर्म संन्यासी कहते हैं ॥८॥ इन तीनों प्रकार के संन्यासियों में ज्ञान संन्यासी श्रेष्ठ है । उस ज्ञानी पुरुष के लिए न तो कुछ कर्तव्य रह जाता है न कोई चिह्न, उसके लिए अपेक्षित होता है ॥९॥ वह ममता रहित, निर्भय, शान्त, द्वन्द्व रहित तथा पत्तों का भोजन करता है । पुराना कोपीन पहनता है या नङ्गा रहता है और ध्यान करता रहता है ॥१०॥ वह ब्रह्मचारी और आहार पर विजय प्राप्त करके ग्राम से अन्न लाये तथा अध्यात्म से प्रेम करे । किसी की अपेक्षा न करे और न किसी चीज की आशा करे॥११॥ वह आत्मा को सहायक बनाकर आत्म सुख के लिए विचरण करे । वह न तो मरण का अभिनंदन करे और न जीवन का अभिनन्दन करे ॥१२॥ जिसतरह भृत्य स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है, उसीतरह वह काल की प्रतीक्षा करे । उसे अध्ययन, कर्तव्य तथा श्रवण की कोई आवश्यकता नहीं होती है ॥१३॥ इस तरह से ज्ञान परायण योगी ब्रह्म स्वरूप हो जाता है । वह एक वस्त्र पहने अथवा केवल कौपीन ही धारण करे ॥१४॥ वह मुंड मुड़ाये रहे, त्रिदण्ड धारण करे, शिखा रखे, कोई दान न ले। काषाय वस्त्र पहने और सदा ध्यान करता रहे ॥१५॥ वह ग्राम के सन्निकट किसी वृक्ष के नीचे रहे या मन्दिर में रहे । वह शत्रु, मित्र, तथा मान-अपमान को एक समान समझे ॥१६॥ सदा भिक्षा का अन्न खाये किसी एक स्थान का अन्न न खाय । जो मोह अथवा दूसरे किसी कारण से एक का अन्न खाता है ॥१७॥ उसके लिए धर्मशास्त्रों में कोई प्रायश्चित्त नहीं बतलाया गया है । उसे राग और द्वेष

प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात्सर्वनिस्पृहः। दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्॥१९॥
सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनः पूतं समाचरेत्। नैकत्र निवसेद्देशे वर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः॥२०॥
स्नात्वा शौचयुतो नित्यं कमण्डलुकरः शुचिः।
ब्रह्मचर्यरतोनित्यं वनवासरतो भवेत्॥२१॥
मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेन्द्रियः। दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः॥२२॥
आत्मज्ञानगुणोपेतो यदि मोक्षमवाप्नुयात्। अभ्यसेत्सततं देवं प्रणवाख्यं सनातनम्॥२३॥
स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु।
यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः॥२४॥
धौतकाषायवसनो भस्माच्छन्नतनूरुहः। अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च॥२५॥
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्।
पुत्रेषु चाथ निवसन्ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः॥२६॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम्। अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तपःपरम्॥२७॥
क्षमा दया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः।
वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्चयज्ञान्समाहितः॥२८॥
कुर्यादहरहः स्नात्वा भिक्षार्थे नैव तेन हि।
होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः॥२९॥

से रहित तथा मिट्टी के ढेले, पत्थर तथा सुवर्ण को एक समान समझना चाहिए ॥१८॥ वह किसी जीव की हिंसा न करे सबसे निःस्पृह रहे तथा मौन रहे। पृथिवी को देखकर पैर रखे, पानी वस्त्र से छानकर पिये ॥१९॥ सदा सत्य बोले और पवित्र मन से विचार करके आचरण करे। किसी एक स्थान में न रहे। वर्षा काल को छोड़कर दूसरे समय में भिक्षुक बना रहे। स्नान करके पवित्र रहे, हाथ में पवित्र कमण्डलु धारण करे। सदा ब्रह्मचर्य का पालन करे तथा वन में निवास करे ॥२१॥ मोक्ष शास्त्र का अध्ययन करे, यज्ञोपवीत धारण करे तथा जितेन्द्रिय रहे। वह दम्भ तथा अहङ्कार से रहित रहे वह किसी की निन्दा अथवा चुगली न करे ॥२२॥ आत्मज्ञान तथा आत्म गुणों से युक्त रहे ऐसा करने वाला संन्यासी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। निरन्तर प्रणव देवता का अभ्यास करता रहे ॥२३॥ वह विधि पूर्वक स्नान तथा आचमन करके पवित्रता के साथ मन्दिर आदि में रहे। समाहित होकर वह हाथ में कुश लिए रहे, यज्ञोपवीत धारण करे तथा शान्त मन वाला रहे ॥२४॥ धोए हुए गेरुए वस्त्र पहने उसमें उसके रोओं को ढँका रहना चाहिए। वह अधि यज्ञ तथा आधिदैविक ब्रह्म का जप करना चाहिए ॥२५॥ वेदान्तोक्त आध्यात्मिक ब्रह्म का भी उसे चिन्तन करना चाहिए। यदि ब्रह्मचारी, संन्यासी पुत्रों के बीच में रहे तो॥२६॥ वह सदा वेदों का ही अभ्यास करे ऐसा करने वाला संन्यासी परम पद को प्राप्त करता है। अहिंसा, सत्य, चोरी का अभाव, ब्रह्मचय, तपस्या, क्षमा, दया तथा संतोष ये संन्यासी के विशेष व्रत हैं। अथवा वह वेदान्त ज्ञान में निष्ठित होकर पञ्च यज्ञों का पालन करे ॥२८॥ वह भिक्षा के अन्न से ही प्रतिदिन इसका अनुष्ठान करे। वह समयानुसार सावधान होकर होम के मंत्रों का भी जप करे ॥२९॥ वह प्रतिदिन वेदाध्ययन करे और दोनों सन्ध्याओं में गायत्री का जप करे। वह एकान्त में सदा परमात्मा का ध्यान

स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत् ।
ध्यायेच्च सततं देवमेकान्ते परमेश्वरम् ॥३०॥
एकान्नं वर्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं परिग्रहम्। एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान्॥
कमण्डलुकरो विद्वांस्त्रिदण्डो याति तत्परम् ॥३१॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे यतिधर्मनिरूपणं नामैकोनषष्टितमोऽध्याय: ॥५९॥

साठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

एवं त्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम्। भैक्ष्येण वर्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापिवा॥१॥
एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्येत विस्तरे। भैक्ष्ये प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥२॥
सप्तागारं चरेद्भैक्ष्यमलाभे न पुनश्चरेत्। गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः ॥३॥
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमादद्याद्वाग्यतः शुचिः ।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च समाचम्य यथाविधि ॥४॥
आदित्यं दर्शयित्वाऽन्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखो नरः ।
हुत्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासनष्टौ समाहितः ॥५॥
आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायेत परमेश्वरम्। अलावुदारुपात्रे च मृण्मयं वैणवं तथा ॥६॥

करे ॥३०॥ वह सदा एकान्न खाये काम, क्रोध तथा परिग्रह का परित्याग करे । वह एक वस्त्र या दो वस्त्र रखे । शिखा और यज्ञोपवीत धारण करे । संन्यासी सदा अपने हाथ में त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करे ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के यतिधर्म निरूपण नामक उनसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५९॥

यतियों के नियम

व्यासजी ने कहा— इस तरह से अभी तक संयमित तथा आश्रमनिष्ठ संन्यासियों के भिक्षा से निर्वाह करने का वर्णन किया गया अथवा फल और मूल से निर्वाह का प्रकार बतलाया गया ॥१॥ संन्यासी एक बार भिक्षा माँगे, उसका विस्तार न करे । जो यति भिक्षा में आसक्त हो जाता है वह विषयों में भी असक्त हो जाता है ॥२॥ सात घरों में भिक्षा माँगने जाय और भिक्षा नहीं मिलने पर पुनः भिक्षा न माँगे । यति भिक्षा के लिए द्वार पर नीचे मुख करके उतनी ही देर तक खड़ा रहे जितनी देर में गाय दूही जा सकती है ॥३॥ एक बार भिक्षा कहकर मौन हो जाय और पवित्र रहे । दोनों हाथों और पैरों को धोकर तथा आचमन करके विधिपूर्वक ॥४॥ अन्न को सूर्य को दिखाकर पूर्वाभिमुख बैठकर उस

चत्वारि यतिपात्राणि मनुराह प्रजापतिः। प्राग्रात्रे मध्यरात्रे च पररात्रे तथैव च ॥७॥
सन्ध्यासूक्तिविशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरम्। कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम् ॥८॥
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसः स्थितम्। सर्वस्याधारमव्यक्तमानन्दं ज्योतिरव्ययम् ॥९॥
प्रधानपुरुषातीतमाकाशं दहनं शिवम्। तदन्तं सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम् ॥१०॥

ओङ्कारान्तेऽथवाऽऽत्मानं समाप्य परमात्मनि ।
आकाशे देवमीशानं ध्यायेदाकाशमध्यगम् ॥११॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्। पुराणपुरुषं विष्णुं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात् ॥१२॥
यद्वा गुहादौ प्रकृतौ जगत्संमोहनालये। विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम् ॥१३॥
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते। आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥१४॥
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्। आनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत वाग्यतः ॥१५॥
गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्। योऽवतिष्ठेत्सदाऽनेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम् ॥१६॥
तस्माज्ज्ञानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः। ज्ञानं समभ्यसेद् ब्रह्म येन मुच्येत बन्धनात् ॥१७॥

अन्न को खाय। वह पञ्च प्राणाहुति देकर आठ ग्रास भोजन करे ॥५॥ आचमन करके परमेश्वर का ध्यान करे। संन्यासी के पात्र चार प्रकार के होते हैं, लौकी (तुमड़ी) के, लकड़ी के, मिट्टी अथवा बांस के बने हुए यह मनु प्रजापति ने कहा है। रात्रि के प्रथम प्रहर में या मध्यरात्रि में या रात्रि के अन्तिम प्रहर में ॥६-७॥ संध्या सूक्ति विशेष के द्वारा ईश्वर का अपने हृदय कमल में चिन्तन करे कि परमात्मा का नाम विश्व है क्योंकि वे विश्व के कारण है ॥८॥ सभी भूतों की आत्मा स्वरूप हैं, प्रकृति से परे हैं, वे सबों के आधार हैं, अव्यक्त, आनन्द स्वरूप तथा अव्यय ज्योति हैं ॥९॥ वे प्रकृति तथा पुरुष से श्रेष्ठ हैं, प्रकाश स्वरूप कल्याणकारी और पापों के विनाशक है। उन्ही में सभी भाव पदार्थों का अन्तर्भाव हो जाता है वे ही ईश्वर और ब्रह्मस्वरूप हैं ॥१०॥ ओङ्कार में अथवा परमात्मा में आत्मा को समर्पित करके, हार्दाकाश के मध्य में विद्यमान सबों के नियामक और दिव्यगुण सम्पन्न, परमात्मा का ध्यान करे ॥११॥ वे ही समस्त भाव पदार्थों के कारण हैं, आनन्दमात्र स्वरूप, पुराण पुरुष भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाला पुरुष संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१२॥ अथवा हृदय गुफा के भीतर, अथवा संसार को मोहित करने वाली प्रकृति में, समस्त भूतों के कारण स्वरूप परमव्योम परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ॥१३॥ जिनमें सम्पूर्ण जगत् का लय हो जाता है, समस्त भूतों के जीवन (प्राण) स्वरूप, ब्रह्म के सूक्ष्म आनन्द का पुरुष साक्षात्कार करते हैं ॥१४॥ उस आनन्द में ही ब्रह्म निहित हैं। वे ब्रह्म केवल ज्ञान स्वरूप हैं। उस अनन्त तथा सत्य स्वरूप परमात्मा का ध्यान करके मौन हो जाय ॥१५॥ यह यतियों के लिए अत्यन्त गोपनीय ज्ञान बतलाया गया है। जो इसके साथ सदा बना रहता है वही ऐश्वर्य योग को प्राप्त करता है ॥१६॥ अतएव सदा ज्ञान में रत रहने वाला और अध्यात्म विद्या में निष्ठित संन्यासी ज्ञान स्वरूप ब्रह्म का बार-बार चिन्तन करे। ऐसा करके वह संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१७॥ सबों से पृथक् तथा केवल आत्मा के स्वरूप का मनन करके उसके पश्चात् आनन्द स्वरूप, अक्षर ज्ञान स्वरूप ब्रह्म का ध्यान करे ॥१८॥ जिससे समस्त

मत्वा पृथक्त्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् ।
आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायेत च ततः परम् ॥१८॥
यस्माद्भवन्ति भूतानि यज्ज्ञात्वा नेह जायते। स तस्मादीश्वरो देवः परस्ताद्योऽधितिष्ठति ॥१९॥
यदन्तरे तद्गमनं शाश्वतं शिवमव्ययम्। य इदं स्वपरोक्षस्तु स देवः स्यान्महेश्वरः ॥२०॥
व्रतानि यानि भिक्षाणां विहितानि तथा यमः ।
एवैकातिक्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥२१॥
उपेत्य च स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं समाहितः ।
प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात्सान्तपनं शुचिः ॥२२॥
ततश्चरेत नियमात्कृच्छ्रं संयतमानसः। पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥२३॥
न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः। तथापि च न कर्तव्यः प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ॥२४॥
एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा। उक्त्वाऽनृतं प्रकर्तव्ये यतिना धर्मलिप्सुना॥२५॥
परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः। स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः॥२६॥
हिंसा चैवापरा तृष्णा याच्चाऽऽत्मज्ञाननाशिका ।
यदेतद् द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ॥२७॥
स तस्य हरते प्राणान्यो यस्य हरते धनम् ।
एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रतच्युतः ॥२८॥

भूत उत्पन्न होते हैं, उसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त मुमुक्षु पुरुष पुनः इस संसार में नहीं आता है । इसीलिए वे देव ईश्वर हैं और वे सवों के ऊपर विद्यमान रहते हैं ॥१९॥ जिसके भीतर ही यह आकाश है, वह ईश्वर शाश्वत कल्याण स्वरूप हैं । जो यह जगत् स्वरूप है और इन इन्द्रियों से परोक्ष है वही देव परमेश्वर हैं ॥२०॥ संन्यासियों के जो व्रत है उसी तरह यह भी भिक्षुओं का व्रत है । एक के बाद दूसरे का अतिक्रमण होने पर प्रायश्चित का विधान किया गया है ॥२१॥ यदि वह कामनावशात् किसी स्त्री के साथ सङ्गम करे तो उसको एकाग्र मन से यह प्रायश्चित करना चाहिए कि वह प्राणायाम करते हुए सान्तपन व्रत करे तव वह पवित्र होता है ॥२२॥ (सांतपन व्रत का यह स्वरूप है कि गोमूत्र, गोबर, गाय का दूध, गाय की दधि, गाय का घी और कुश का जल) इन छहों को मिलाकर पी ले उसके बाद उस दिन कोई वस्तु न खाये । उसके बाद फिर चौबीस घंटे का उपवास करे । यह दो दिन का सांतपन व्रत होता है । यदि इन छहो वस्तुओं में से एक को खाकर एक दिन रहे और सातवें दिन कुछ भी न खाय तो यह महासांतपन व्रत या कृच्छ्र सांतपन व्रत कहलाता है । सांतपन व्रत करने के बाद प्रायश्चित रूप से कृच्छ्र सांतपन करना चाहिए । उसके बाद वह आश्रम में आकर भैक्षाचरण करे ॥२३॥ मनीषियों का कहना है कि धार्मिक को असत्य भाषण भ्रष्ट नहीं करता है फिर भी, संन्यासी को मृषा भाषण नहीं करना चाहिए क्योंकि मृषा भाषण अत्यन्त भयङ्कर है ॥२४॥ झूठ बोल देन पर सन्यासी एक सौ प्राणायाम और चौबीस घंटे का उपवास करे ॥२५॥ अत्यन्त विपत्ति पड़ने पर भी दूसरे की वस्तु की चोरी न करे चोरी से बड़ा कोई भी पाप नहीं है, यह स्मृतियों में कहा गया है ॥२६॥ हिंसा, तृष्णा और याच्चा ये तीनों आत्मज्ञान का नाश करने वाले हैं । ये धनवान् का बाहरी प्राण हैं ॥२७॥ जो जिसका धन

भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः । अकस्मादेव हिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत्॥२९॥
कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा ।
स्कन्देतेन्द्रियदौर्बल्यात्स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ॥३०॥
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ।
दिवा स्कन्देत्त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतं बुधाः ॥३१॥
एकान्ने मधुमासं च नवश्राद्धे तथैव च । प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम्॥३२॥
ध्यानतिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम् । तस्मान्नारायणं ध्यात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत्॥३३॥
यद्ब्रह्मणः परं ज्योतिः प्रविष्टाक्षरमव्ययम् । योऽन्तरात्मा परं ब्रह्म सविज्ञेयो महेश्वरः ॥३४॥
एष देवो महादेवः केवलः परमश्शिवः । तदेवाक्षरमद्वैतं तदनित्यं परंपदम् ॥३५॥
तस्मान्महीयते देवे स्वधाम्निज्ञानसंज्ञिते । आत्मयोगात्परे तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥३६॥
नान्यं देवं महादेवाद्व्यतिरिक्तं प्रपश्यति । तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परमं पदम् ॥३७॥
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् । न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां पश्रिमः ॥३८॥
एकमेव परं ब्रह्मविज्ञेयं तत्त्वमव्ययम् । स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बध्यते ॥३९॥
तस्माद्यतेत नितयं यतिः संयतमानसः । ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ॥४०॥

हरण करता है, वह उसके प्राण का ही हरण करता है । धनापहारी दुष्ट आचरण भ्रष्ट होकर अपने व्रत से च्युत हो जाता है ॥२८॥ ऐसा करने वाला संन्यासी निर्वेद करके सावधानी पूर्वक भैक्षाचरण करे। यदि कोई संन्यासी किसी की हिंसा कर दे तो उसे ॥२९॥ कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र अथवा चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । यदि किसी स्त्री को देखकर संन्यासी का वीर्य पात हो जाय तो उसको उसके प्रायश्चित्त के रूप में सोलह प्राणायाम करना चाहिए । यदि दिन में वीर्यपात हो जाय तो फिर वह तीन रात्रियों तक उपवास करे और सौ प्राणायाम करे ॥३१॥ यदि संन्यासी एक स्थान का अन्न, मधु, नवीन श्राद्ध का अन्न अथवा केवल नमक ही खा ले तो उसको शुद्धि के लिए प्राजापत्य व्रत करना चाहिए । (तीन दिन सबेरे, तीन दिन शाम को तथा तीन दिन अयाचित्त अन्य खाने के बाद तीन दिन तक उपवास करने को प्राजापत्य व्रत कहते हैं ।) ॥३२॥ निरन्तर ध्यान करते रहने वाले के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । अतएव भगवान् नारायण का ध्यान करके सदा उनके ही ध्यान में लगे रहना चाहिए ॥३३॥ जो ब्रह्म की सर्वोत्कृष्ट ज्योति अक्षर तथा निर्विकार है तथा सबों में प्रविष्ट है । जो अन्तरात्मा तथा परंब्रह्म है उसी को महेश्वर जानना चाहिए ॥३४॥ वे ही देव महादेव, केवल और परम शिव हैं । वे ही अक्षर और अद्वैत हैं और वे ही नित्य परम पद हैं ॥३५॥ इसीलिए परंब्रह्म में स्वधा और विज्ञान की कभी समाप्ति नहीं होती है । इसीलिए आत्मयोग से परं तत्त्व महादेव कहे गये हैं ॥३६॥ ध्यान निष्ठ पुरुष महादेव से भिन्न किसी दूसरे देवता का साक्षात्कार नहीं करता है । जो उसी को आत्मा मानता है वह परम गति को प्राप्त करता है ॥३७॥ जो परमात्मा से भिन्न को अपनी आत्मा मानते हैं वे उस परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाते हैं, उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है ॥३८॥ केवल परंब्रह्म को ही निर्विकार तत्त्व मानना चाहिए । वे ही देवता महादेव हैं, इस अर्थ को जानकर मनुष्य संसार के बन्धन में नहीं बंधता है ॥३९॥ संयतमना यति को उसी के लिए प्रयास करना चाहिए उसे शान्त, ज्ञान योगरत और

एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः ।
पितामहेन मुनिना विभुना पूर्वमीरितः ॥४१॥
नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दद्यादेवमनुत्तमम् । ज्ञानं स्वयम्भुवा प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम् ॥४२॥
इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं सुरवरपरितोषे यद्भवेदेकहेतुः ।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः प्रणिहितमनसो ये नित्यमेवाचरन्ति ॥४३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे यतिनियमविधानकथनंनामषष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

एकसठवाँ अध्याय

सूत उवाच

एवमुक्तं पुरा विप्रा व्यासेनामिततेजसा । एतावदुक्त्वा भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥
समाश्वास्य मुनीन्सर्वाञ्जगाम च यथागतम् । भवद्भयस्तु मया प्रोक्तं वर्णाश्रमविधानकम् ॥२॥
एवं कृत्वा प्रियो विष्णोर्भवत्येव न चान्यथा ।
रहस्यं तत्र वक्ष्यामि श‍ृणुत द्विजसत्तमाः ॥३॥
ये चात्र कथिता धर्मा वर्णाश्रमनिबन्धनाः । हरिभक्तिकलांशांशसमाना नहि ते द्विजाः ॥४॥

महादेव परायण होना चाहिए ॥४०॥ हे विप्रों ! इस तरह से मैंने आपलोगों को यतियों के आश्रम का वर्णन सुनाया । 'इसको मननशील तथा व्यापक ब्रह्माजी ने प्राचीनकाल में सुनाया था ॥४१॥ इस अनुत्तम ज्ञान को पुत्रों शिष्यों तथा योगियों को छोड़कर किसी दूसरे को नहीं बतलाना चाहिए । इस ज्ञान को ब्रह्माजी ने बतलाया है, यह यतियों का कल्याणकारी धर्म है ॥४२॥ इस तरह यतियों के नियमों का इस प्रकार से विधान वर्णित किया गया । यह ब्रह्माजी के सन्तोष का सर्वोत्कृष्ट साधन है । जो लोग सदा अपने मन को लगाकर इसका सदैव आचरण करते हैं, उनका न तो जन्म होता है और न उनकी मृत्यु होती है ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के संन्यास के नियम वर्णन नामक साठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६०॥

भगवान् विष्णु की भक्ति की महिमा का वर्णन

सूतजी ने कहा— हे विप्रों ! प्राचीन काल में इस प्रकार से कहकर अमित तेजस्वी सत्यवती नंदन व्यासजी ने ॥१॥ सभी मुनियों को आश्वस्त करके जिस प्रकार से आये थे उसी प्रकार चले गये। मैंने आपलोगों को वर्णो एवं आश्रमों के विधान को सुनाया ॥२॥ इन वर्णाश्रम, धर्म का ही पालन करके मनुष्य भगवान् विष्णु का प्रिय होता है, दूसरे साधन से नहीं । हे द्विजश्रेष्ठों ! इस विषय में मैं आपलोगों को रहस्य की बातें बतलाता हूँ उसे आपलोग सुनें ॥३॥ यहाँ पर मैंने जिन वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन

पुंसामंकेह वै साध्या हरिभक्तिः कलौ युगे ।
युगान्तरेण धर्मा हि सेवितव्या नरेण हि ॥५॥
कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक् ।
दामोदरं हृषीकेशं पुरुहूतं सनातनम् ॥६॥
हृदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम् ।
कलिकालोरगादंशात्किल्बिषात्कालकूटतः ॥७॥
हरेर्भक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः ।
किं जपैः श्रीहरेर्नाम गृहीतं यदि मानुषैः ॥८॥
किंस्नानैर्विष्णुपादाम्बुमस्तके येन धार्यते । किंयज्ञेन हरेः पादपद्मं येन धृतं हृदि ॥९॥
किंदानेन हरेः कर्म सभायां वै प्रकाशितम् ।
हरेगुर्णगणाञ्छुत्वा यः प्रहृष्येत्पुनः पुनः ॥१०॥
समाधिनाप्रहृष्टस्य सा गतिः कृष्णचेतसः । तत्र विघ्नकराःप्रोक्ताः पाखण्डालापपेशलाः ॥११॥
नार्यस्त्सङ्गिनश्चापि हरिभक्तिविघातकाः । नारीणां नयनादेशः सुराणामपि दुर्जयः ॥१२॥
स येन विजितो लोके हरिभक्तः स उच्यते ।
माद्यन्ति मुनयोऽप्यत्र नारीचारितलोलुपाः ॥१३॥
हरिभक्तिः कुतः पुंसां नारीभक्तिजुषां द्विजाः ।
राक्षस्यः कामिनीवेषाश्चरन्ति जगति द्विजाः ॥१४॥

किया है, वे सब श्रीहरि की भक्ति के एक कला के अंश के बराबर भी नहीं हैं ॥४॥ अतएव कलियुग में पुरुषों को एकमात्र श्रीहरि की भक्ति की ही साधना करनी चाहिए । दूसरे युगों में उपर्युक्त धर्मों का पालन करना चाहिए ॥५॥ जो व्यक्ति कलियुग में भगवान् नारायण का यजन करता है वही धार्मिक है। दामोदर भगवान् हृषीकेश सनातन पुरुष हैं ॥६॥ उनको अपने हृदय में जो स्थापित कर लेता है वह तीनों लोकों का विजयी है । कलिकाल रूपी सर्प के डँसने से उत्पन्न पापरूपी विष से ॥७॥ वही व्यक्ति बच सकता है जिसने श्रीहरि की भक्ति रूपी अमृत का पान कर लिया है । जिसने श्रीहरि के नामों का उच्चारण किया है उसे मंत्रों का जप करने से कौन सा लाभ है ॥८॥ जो अपने शिर पर श्रीहरि के चरणोदक को धारण कर लिया है उसको स्नान करने से कौन सा लाभ है ? जिसने अपने हृदय में श्रीहरि के चरण कमलों को धारण कर लिया है उसको यज्ञों को करने से कौन सा लाभ है ?॥९॥ जिसने सभा में श्रीहरि की लीलाओं का वर्णन किया है उसको दान करने से क्या लाभ है ? श्रीहरि के गुण समूह का श्रवण करके जो बार-बार रोमाञ्चित हो जाता है ॥१०॥ जो गति समाधि के द्वारा प्राप्त होती है वही गति उसको भी प्राप्त होती है जिसका मन सदा श्रीभगवान् में लगा रहता है । उसमें पाखण्डियों के वचन ही विघ्न कारक होते हैं ॥११॥ स्त्रियों की सङ्गति भी भगवद् भक्ति को विनष्ट करने वाली होती है । नारियों द्वारा किए जाने वाला कटाक्षपात आदि को देवता भी नहीं जीत पाते हैं ॥१२॥ जिसने संसार में नारियों के कटाक्षपात पर विजय प्राप्त कर लिया है, वहीं श्रीहरि का भक्त कहलाता है । नारियों के चरित के लोभी मुनिजन भी नारियों के कटाक्षपात पर मदमत्त हो जाते हैं ॥१३॥

नराणां बुद्धिकवलं कुर्वन्ति सततं हिताः । तावद्विद्या प्रभवति तावज्ज्ञानं प्रवर्तने ॥१५॥
तावत्सुनिर्मला मेधा सर्वशास्त्रविधारिणी । तावज्जपस्तपस्तावत्तावत्तीर्थनिषेवणम् ॥१६॥
तावच्च गुरुशुश्रूषा तावद्वितरणे मतिः । तावत्प्रबोधो भवति विवेकस्तावदेव हि ॥१७॥
तावत्सतां सङ्गरुचिस्तावत्पौराणलालसा । यावत्सीमन्तिनीलोलनयनान्दोलनं नहि ॥१८॥
जनोपरि पतेद्विप्राः सर्वधर्मविलोपनम् । तत्र ये हरिपादाब्जमधुलेशप्रसादिताः ॥१९॥
तेषां न नारीलोलाक्षिक्षेपणं हि प्रभुर्भवेत् । जन्मजन्महृषीकेशसेवनं यैः कृतं द्विजाः ॥२०॥
द्विजे दत्तं हुतं वह्नौ विरतिस्तत्र तत्र हि । नारीणां किल किं नाम सौन्दर्य परिचक्षते ॥२१॥
भूषणानां च वस्त्राणां चाकचक्यं तदुच्यते । स्नेहात्मज्ञानरहितं नारीरूपं कुतःस्मृतम् ॥२२॥
पूयमूत्रपुरीषासृक्त्वङ्मेदोस्थिवसान्वितम् । कलेवरं हि तन्नाम कुतः सौन्दर्य्यमत्र हि ॥२३॥

तदेवं पृथगाचिन्त्य स्पृष्ट्वा स्नात्वा शुचिर्भवेत् ।
तैः संहितं शरीरं हि दृश्यते सुन्दरं जनैः ॥२४॥

अहोऽतिदुर्दशा नृणां दुर्दैवघटिता द्विजाः । कुचावृतेऽङ्गे पुरुषो नारीबुद्ध्या प्रवर्त्तते ॥२५॥

का नारी वा पुमान्को वा विचारे सति किञ्चन ।
तस्मात्सर्वात्मना साधुर्नारीसङ्गं विवर्जयेत् ॥२६॥

हे द्विजों ! जो नारी की भक्ति करता है, वह श्रीहरि की भक्ति नहीं कर सकता है । हे द्विजों ! राक्षसियाँ ही उन कामिनियों के वेष में संसार में विचरण करती हैं । वे सदा मनुष्यों की हितकारिणी बुद्धि को खा जाती हैं ॥१४॥ विद्या तथा ज्ञान तब तक ही काम करते हैं; जब तक ही निर्मल बुद्धि सभी शास्त्रों को धारण करती है ॥१५॥ तब तक ही जप, तप और तीर्थों की सेवा हो पाती है; गुरुजनों की सेवा और संसार सागर को पार करने की बुद्धि भी तब तक ही बनी रहती है ॥१६॥ तब तक ही विवेक के द्वारा श्रेष्ठ ज्ञान होता है, सज्जनों की सङ्गति में रूचि भी तब तक ही बनी रहती है तथा पुराणों के श्रवण की लालसा भी तब तक ही बनी रहती है ॥१७॥ जब तक कि नारियाँ अपने चञ्चल नेत्रों से कटाक्षपात नहीं करती हैं । हे व्रिप्रों ! मनुष्यों पर पड़ने वाला नारियों का कटाक्ष पात समस्त धर्मों का नाश करने वाला होता है ॥१८॥ जिस मनुष्य पर कृपा करके श्रीहरि उसको अपने चरण कमलों के पराग के कण का भी पान करा दिए हैं । उन मनुष्यों को नारी के चञ्चल नेत्रों के कटाक्ष विक्षिप्त नहीं कर पाते हैं ॥१९॥ हे द्विजों ! जिन लोगों ने जन्म-जन्मान्तरों में श्रीभगवान् हृषीकेश की सेवा की है, ब्राह्मणों को दान दिया है, अग्नि में होम किया है, उसको स्त्रियों से वैराग्य होता है ॥२०॥ जिसको नारी का सौन्दर्य कहते हैं, वह क्या है ? वह तो वस्त्रों तथा भूषणों का चाकचाक्य मात्र है ॥२१॥ स्नेह, तथा आत्मज्ञान से रहित नारी का रूप क्या है ? पीब, मूत्र, मल, खून, चमड़ा, मेदस, हड्डी तथा वसा से युक्त ॥२२॥ शरीर को ही तो सौन्दर्य कहते हैं, किन्तु शरीर में तो सौन्दर्य है ही कहाँ? शरीर में विद्यमान एक भी वस्तु का स्पर्श हो जाने पर स्नान किए बिना शुद्धि नहीं होती है ॥२३॥ उन्हीं वस्तुओं का समन्वित रूप शरीर है और उसी को कामी पुरुष सुन्दर देखता है । मनुष्यों की यही सबसे बड़ी दुर्दशा और दुर्भाग्य है कि वह उठे हुए स्तनों वाले शरीर को देखकर उसे नारी समझकर आसक्त हो जाता है । कौन नारी है ओर कौन पुरुष हैं, इस बात का विचार करने पर कोई भी निर्णय

को नाम नारीमासाद्य सिद्धिं प्राप्नोति भूतले ।
कामिनीकामिनीसङ्गसङ्गमित्यपि सन्त्यजेत् ॥२७॥
तत्सङ्गाद्रौरवमिति साक्षादेव प्रतीयते । अज्ञानाल्लोलुपा लोकास्तत्र दैवेन वञ्चिताः ॥२८॥
साक्षान्नरककुण्डेऽस्मिन्नारीयोनौ पचेन्नरः । यत एवागतः पृथ्व्यां तस्मिन्नेव पुनारमेत् ॥२९॥
यतः प्रसरते नित्यं मूत्रं रेतोमलोत्थितम् । तत्रैव रमते लोकः कस्तस्मादशुचिर्भवेत् ॥३०॥
तत्रातिकष्टं लोकेऽस्मिन्नहोदेवविडम्बना । पुनः पुना रमेत्तत्र अहो निस्त्रपता नृणाम् ॥३१॥
तस्माद्विचारयेद्धीमान्नारीदोषगणान्बहून् । मैथुनाद् बलहानिः स्यान्निद्रातितरुणायते ॥३२॥
निद्रयाऽपहृतज्ञानः स्वल्पायुर्जायते नरः । तस्मात्प्रयत्नतो धीमान्नारीं मृत्युमिवात्मनः ॥३३॥
पश्येद्गोविन्दपादाब्जे मनो वै रमयेद्बुधः । इहामुत्र सुखं तद्धि गोविन्दपदसेवनम् ॥३४॥
विहाय को महामूढो नारीपादं हि सेवते । जनार्द्दनाङ्घ्रिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी ॥३५॥
नारीणां योनिसेवा हि योनिसङ्कटकारिणी । पुनः पुनः पतेद्योनौ यन्त्रनिष्पाचितो यथा ॥३६॥
पुनस्तामेवाभिलषेद्विद्यादस्य विडम्बनम् । ऊर्ध्वबाहुरहं वाच्मि शृणु मे परमं वचः ॥३७॥
गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनाजुषि । नारीसङ्गं परित्यज्य यश्चापि परिवर्त्तते ॥३८॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः । कुलाङ्गना दैवयोगादूढा यदि नृणां सती ॥३९॥

नहीं हो पाता है ॥२५॥ अतएव साधु पुरुष को चाहिए कि वह पूर्णरूप से नारी के सङ्ग को त्याग दे । संसार में कौन ऐसा पुरुष हैं जो नारी की संङ्गति करके सिद्धि प्राप्त कर लिया हो ?॥२६॥ कामिनी तथा कामिनी के साथ रहने वालो की सङ्गति का भी त्याग कर देना चाहिए । कामिनी की सङ्गति साक्षात् रौरव नरक प्रतीत होता है ॥२७॥ अज्ञानी तथा भाग्य के द्वारा ठगे गये लोग ही नारी के लोभी हो जाते हैं । नारी की योनि साक्षात् नरक का कुण्ड है और उसी में पुरुष पकाया जाता है ॥२८॥ जिससे मनुष्य को इस संसार में आता है, उसी में वह पुनः रमण करने लगता है । उसी स्थान से मूत्र, रेतस और मल निकलता है ॥२९॥ संसार में उस स्थान में अधिक अपवित्र दूसरा कौन सा स्थान हो सकता है । इस संसार की सबसे बड़ी विडम्बना और कष्ट है कि मनुष्य बार-बार नारी के योनि में रमण करता है । इससे बढकर निर्लज्जता क्या हो सकती है ? अतएव बुद्धिमान् पुरुष को नारियों में होने वाले दोषों के आधिक्य का विचार करना चाहिए ॥३१॥ मैथुन करने से बल घटता है और नींद अत्यन्त बढ़ जाती है । निद्रा के कारण ज्ञान का अपहरण हो जाता है और उसके कारण मनुष्य अल्पायु हो जाता है ॥३२॥ इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह नारी को अपनी मृत्यु के रूप में देखे और भगवान् गोविन्द के चरण कमल में ही अपने मन को लगाये ॥३३॥ भगवान् गोविन्द के चरणों की सेवा लोक एवं परलोक दोनों में सुखप्रद है । उनको छोड़ कर कौन ऐसा मूर्ख हे जो नारी के चरणों की सेवा करें ?॥३४॥ भगवान् जनार्दन के चरणों की सेवा मुक्ति को प्रदान करने वाली है । नारियों की योनि की सेवा योनि रूपी सङ्कट में डाल देती है ॥३५॥ वह यन्त्र में पकाये गये के समान बार-बार योनि में आता है । इसके बाद फिर भी उस योनि को प्राप्त करना चाहता है, यह मनुष्य की सबसे बड़ी विडम्बना है ॥३६॥ मैं ऊपर की ओर हाथ उठाकर कहता हूँ, मेरी बातों को सुनो, भगवान् गोविन्द में ही अपने मन को लगाओ । यातना रूपी योनि में नहीं ॥३७॥ जो मनुष्य नारी के सम्बन्ध का परित्याग

पुत्रमुत्पाद्य यस्तत्र तत्सङ्गं परिवर्जयेत् । तस्य तुष्टो जगन्नाथो भवत्येव न संशयः ॥४०॥
नारीसङ्गो हि धर्मज्ञैरसत्सङ्ग प्रकीर्त्यते । तस्मिन्सति हरौ भक्तिः सुदृढा नैव जायते ॥४१॥
सर्वसङ्गं परित्यज्य हरौ भक्तिं समाचरेत् । हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्ल्लभा हि मता मम॥४२॥
हरौ यस्य भवेद्भक्तिः स कृतार्थो न संशयः ।
तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणाति येन हि ॥४३॥
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ।
हरौ भक्तिं बिना नृणां वृथा जन्म प्रकीर्तितम् ॥४४॥
ब्रह्मेशादि सुरा यस्य यजन्ते प्रीतिहेतवे । नारायणमनाव्यक्तं न तं सेवेत को जनः॥४५॥
तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृती ।
जनार्द्दनपदद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते ॥४६॥
जनार्दन जगद्वन्द्य शरणागतवत्सल । इतीरयन्ति ये मर्त्या न तेषां निरये गतिः ॥४७॥
ब्राह्मणा हि विशेषेण प्रत्यक्षं हरिरूपिणः। पूजयेयुर्यथायोगं हरिस्तेषां प्रसीदति ॥४८॥
विष्णुर्ब्राह्मणरूपेण विचरेत्पृथिवीमिमाम् । ब्राह्मणेन बिना कर्म सिद्धिं प्राप्नोति नैव हि॥४९॥
द्विजपादाम्बुभक्त्या यैः पीत्वा शिरसि चार्पितम् ।
तर्पिताः पितरस्तेन आत्माऽपि किल तारितः ॥५०॥
ब्राह्मणानां मुखे येन दत्तं मधुरमर्चितम् । साक्षात्कृष्णमुखे दत्तं तद्वै भुङ्क्ते हरिः स्वयम्॥५१॥

करके इस संसार में रहता है उसको पग-पग पर अश्वमेध याग का फल प्राप्त होता है ॥३८॥ यदि कुलांगना से विवाह हो भी जाय तो उससे पुत्र उत्पन्न करने के बाद उसके सङ्ग का परित्याग कर देना चाहिए ॥३९॥ ऐसा करने वाले पर भगवान् जगन्नाथ अवश्य प्रसन्न होते हैं । धर्मज्ञों ने नारी के सङ्ग को बुरी सङ्गति कहा है ॥४०॥ इसलोक में श्रीहरि की भक्ति ही मुझको अभिप्रेत है । जिसकी श्रीहरि में भक्ति हो जाती है, वह मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है ॥४२॥ अतएव मनुष्य को उन्हीं कर्मो को करना चाहिए जिससे श्रीहरि की प्रसन्नता होती है । श्रीहरि के सन्तुष्ट हो जाने पर संसार संतुष्ट हो जाता है, और उनके प्रसन्न हो जाने पर संसार प्रसन्न हो जाता है ॥४३॥ श्रीहरि की भक्ति के बिना मनुष्य का जन्म व्यर्थ बतलाया गया है । ब्रह्माजी तथा शङ्करजी इत्यादि देवता श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए उनकी पूजा करते हैं ॥४४॥ भगवान् नारायण अव्यक्त हैं, उनकी सेवा सबों को करनी चाहिए । नारायण भक्त की महाभाग्यवती माता हैं; और महापुण्यवान पिता हैं ॥४५॥ जो मनुष्य अपने हृदय में भगवान् के दोनों चरणों को धारण करता है । जो लोग हे नारायण ! हे जगद्‌बंधा !! हे शरणागत वत्सल !!! इसतरह से उच्चारण किया करते हैं, वे मनुष्य कभी नरकों में नहीं जाते हैं । ब्राह्मण तो विशेष रूप से श्रीहरि के प्रत्यक्ष रूप हैं ॥४६-४७॥ जो लोग यथायोग्य ब्राह्मणों की पूजा करते हैं उन लोगों पर श्रीहरि प्रसन्न होते हैं । भगवान् विष्णु ही ब्राह्मण के रूप में पृथिवी पर विचरण करते हैं ॥४८॥ ब्राह्मण के बिना किसी भी कर्म की सिद्धि नहीं होती है । जो लोग ब्राह्मण के चरणोदक को पीकर अपने शिर पर धारण करते हैं ॥४९॥ उनके पितृगण तृप्त हो जाते हैं और वे मनुष्य भी स्वयं तर जाते हैं । जो मनुष्य ब्राह्मणों की पूजा करके उनको मिट्ठी वस्तु खिलाता है ॥५०॥ उसने साक्षात् भगवान् कृष्ण

अहोऽति दुर्भगा लोकाः प्रत्यक्षे केशवे द्विजे ।
प्रतिमादिषु सेवन्ते तदभावे हि तत्क्रिया ॥५२॥
ब्राह्मणानामधिष्ठानात्पृथ्वी धन्येति गीयते । तेषां पाणौ च यद्दत्तं हरिपाणौ तदर्पितम्॥५३॥
तेभ्यः कृतान्नमस्कारात्तिरस्कारो हि पाप्मनाम् ।
मुच्यते ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो विप्रवन्दनात् ॥५४॥
तस्मात्सतां समाराध्यो ब्राह्मणो विष्णुबुद्धितः ।
क्षुधितस्य द्विजस्यास्ये यत्किञ्चिद्दीयते यदि ॥५५॥
प्रेत्य पीपूषधाराभिः सिञ्चते कल्पकोटिकम् ।
द्विजतुण्डं महाक्षेत्रमनूषरमकण्टकम् ॥५६॥
तत्र चेदुप्यते किञ्चित्कोटिकोटिफलं लभेत् ।
सघृतं भोजनं चास्मै दत्त्वा कल्पं स मोदते ॥५७॥
नानासुमिष्टमन्नं यो ददाति द्विजतुष्टये। तस्य लोका महाभोगाःकोटिकल्पान्तमुक्तिदाः॥५८॥
ब्राह्मणं च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेनानुकीर्तितम्। पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवालनम्॥५९॥
पुराणं सर्वतीर्थेषु तीर्थं चाधिकमुच्यते। यस्मैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति॥६०॥
यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥६१॥

को खिलाया है, ब्राह्मणों के रूप में वह भगवान् स्वयं उस भोजन को करते हैं। हे संसारियों! ब्राह्मण के रूप में प्रत्यक्ष भगवान् केशव का मिलना अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥५१॥ ब्राह्मण रूपी श्रीहरि के अभाव में ही मूर्तियों में भगवान् की पूजा की जाती है। पृथिवी पर ब्राह्मणों के ही रहने से पृथिवी के धन्य कहा जाता है ॥५२॥ उन ब्राह्मणों के हाथ में जो कुछ भी दिया जाता है, वह साक्षात् श्रीभगवान् ही हाथ पर दिया जाता है। ब्राह्मणों को नमस्कार करने वाले के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥५३॥ ब्राह्मणों की वन्दना करने वाला मनुष्य ब्रह्महत्या इत्यादि पापों से मुक्त हो जाता है। अतएव सत्पुरुषों को चाहिए कि वे ब्राह्मणों की पूजा विष्णु बुद्धि से करें ॥५४॥ भूखे ब्राह्मण के मुख में जो कुछ भी प्रदान किया जाता है, वह वस्तु मृत्यु के पश्चात् अमृत की धारा के रूप में उस दाता को करोड़ों कल्पों तक तृप्त करती रहती हैं ॥५५॥ ब्राह्मण का मुख ऊषर तथा कण्टक रहित महाक्षेत्र हैं। उस महाक्षेत्र में जो कुछ भी बोया जाता है वह करोड़ों गुना फल प्रदान करता है ॥५६॥ ब्राह्मण को घृत से युक्त भोजन प्रदान करके मनुष्य एक कल्प तक सुखी रहता है। ब्राह्मण की सन्तुष्टि के लिए जो उन्हें सुन्दर मीठा भोजन कराता है ॥५७॥ उसके लिए सभी लोक महाभोग प्रदान करने वाले तथा करोड़ों कल्प पर्यन्त मुक्ति प्रदान करने वाले हो जाते हैं। यदि ब्राह्मण को अपने सामने बैठाकर कोई ब्राह्मण से कही जाने वाली ॥५८॥ पुराण का श्रवण करता है वह पाप रूपी इन्धन को दावाग्नि के समान जला देता है। सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ, पुराण को कहा गया है ॥५९॥ पुराण के एक श्लोक के एक चरण का भी श्रवण करने से श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। जिस तरह से संसार को प्रकाश प्रदान करने के लिए श्रीहरि सूर्य के रूप में विचरण करते हैं ॥६०॥ सम्पूर्ण संसारी जीवों को प्रकाश प्रदान करने वाले श्रीहरि ही हैं। उसी तरह से सबों के अन्तःकरण को प्रकाशित करने के लिए पुराण शरीरक के

तथैवान्तः प्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ॥६२॥
तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः । श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः ॥६३॥
विष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमपि दुर्लभम् । पुराणाख्यानममलममलीकरणं परम् ॥६४॥
यस्मिन्वेदार्थमाहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा । पुराणं निर्मितं विप्र तस्मात्तत्परमो भवेत् ॥६५॥
पुराणे निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम् ।
तस्मात्कृते पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति ॥६६॥
साक्षात्स्वयं हरिर्विप्रः पुराणं च तथाविधम् ।
एतयोः सङ्गमासाद्य हरिरेवभवेन्नरः ॥६७॥
तथा गङ्गाम्बुसेकेन नाशयेत्किल्बिषं स्वकम् ।
केशवो द्रवरूपेण पापात्तारयते महीम् ॥६८॥
वैष्णवो विष्णुभजनस्याकाङ्क्षी यदि वर्तते ।
गङ्गाम्बुसेकममलममलीकरणं चरेत् ॥६९॥
विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते ।
विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी ॥७०॥
ब्राह्मणेषु पुराणेषु गङ्गायां गोषु पिप्पले । नारायणधिया पुम्भिर्भक्तिः कार्या ह्यहैतुकी॥७१॥
प्रत्यक्षविष्णुरूपा हि तत्त्वज्ञैर्निश्चिता अमी । तस्मात्सततमभ्यर्च्या विष्णुभक्त्यभिलाषिणा॥७२॥
विष्णौ भक्तिं बिना नृणां निष्फलं जन्म उच्यते ।
कलिकालपयोराशिं पापग्राहसमाकुलम् ॥७३॥

रूप में ॥६१॥ वे इस संसार में विचरण करते हैं । पुराण सर्वश्रेष्ठ पवित्र करने वाला है । अतएव यदि श्रीहरि को प्रसन्न करने का मन करे तो ॥६२॥ मनुष्य को सदैव ही भगवत् स्वरूप पुराण का श्रवण करना चाहिए । पुराण को विष्णुभक्त को शान्तमना होकर श्रवण करना चाहिए ॥६३॥ पुराणों की कथा निर्मल है और श्रोता को निर्मल बनाने का यह अत्यन्त दुर्लभ सर्वोत्कृष्ट साधन है । व्यास शरीरक श्रीहरि ने वेदार्थो को लेकर ॥६४॥ पुराण का निर्माण किया है अतएव पुराण सर्वश्रेष्ठ है । जिस धर्म का निश्चय पुराण में किया गया है वह धर्म साक्षात् केशव स्वरूप है ॥६५॥ अतएव पुराणों का श्रवण करने से मनुष्य भगवान् विष्णु स्वरूप हो जाता है । जिस तरह श्रीहरि साक्षात् ब्राह्मण स्वरूप हैं उसी तरह पुराण भी श्री हरि स्वरूप हैं ॥६६॥ इन दोनों की सङ्गति को प्राप्त करके मनुष्य श्रीहरि स्वरूप हो जाता है । उसी तरह से मनुष्य के गङ्गा स्नान के द्वारा अपने पापों का नाश करना चाहिए।॥६७॥ भगवान् केशव ही गङ्गा जल के रूप में संसार का उद्धार करते हैं । यदि कोई वैष्णव भगवान् विष्णु का भजन करना चाहता है ॥६८॥ तो उसे अपने को निर्मल बनाने के लिए गङ्गा में स्नान करना चाहिए। संसार में गङ्गा देवी भगवान् विष्णु की भक्ति को प्रदान करने वाली कही गयी हैं ॥६९॥ विष्णु स्वरूपिणी गङ्गाजी संसार का उद्धार करने वाली हैं ॥७०॥ पुरुषों को चाहिए कि वे ब्राह्मणों, पुराणों, गङ्गा गौ तथा पिप्पल वृक्ष में नारायण की बुद्धि से निष्प्रयोजन भक्ति करे ॥७१॥ तत्त्वज्ञ पुरुषों ने इन सबों को प्रत्यक्ष विष्णुस्वरूप बतलाया है अतएव भगवान् विष्णु की भक्ति चाहने वाले को इन सबों की सदैव

विषयामज्ज्नावर्त्तदुर्बोधफेनिलं परम् । महादुष्टजनव्यालमहाभीमं भयानकम् ॥७४॥
दुस्तरं च तरन्त्येव हरिभक्तितरिस्थिताः । तस्माद्यतेत वै लोको विष्णुभक्तिप्रसाधने ॥७५॥
किं सुखं लभते जन्तुरसद्वार्तावधारणे । हरेरद्भुतलीलस्य लीलाख्याने न सज्जते ॥७६॥
तद्विचित्रकथा लोके नानाविषयमिश्रिताः । श्रोतव्या यदि वै नृणां विषये सज्जते मनः ॥७७॥

निर्वाणे यदि वा चित्तं श्रोतव्या तदपि द्विजाः ।
हेलया श्रवणाच्चापि तस्य तुष्टो भवेद्धरिः ॥७८॥
निष्क्रियोऽपि हृषीकेशो नानाकर्म चकार सः ।
शुश्रूषूणां हितार्थाय भक्तानां भक्तवत्सलः ॥७९॥

न लभ्यते कर्मणाऽपि वाजपेयशतादिना। राजसूयायुतेनापि यथा भक्त्या स लभ्यते ॥८०॥
यत्पदं चेतसा सेव्यं सद्भिराचरितं मुहुः । भवाब्धितरणे सारमाश्रयध्वं हरेः पदम् ॥८१॥

रे रे विषय संलुब्धाः पामरा निष्ठुराः नराः ।
रौरवे हि किमात्मानमात्मना पातयिष्यथ ॥८२॥
बिना गोविन्दसौम्याङ्घ्रिसेवनं मा गमिष्यथ ।
अनायासेन दुःखानां तरणं यदिवाञ्छथ ॥८३॥

भजध्वं कृष्णचरणावपुनर्भवकारणे । कुत एवागतो मर्त्यः कुत एव पुनर्व्रजेत् ॥८४॥

पूजा करनी चाहिए ॥७२॥ भगवान् विष्णु की भक्ति के बिना मनुष्य का जन्म निष्फल कहा गया है । कालिकाल रूपी समुद्र पाप रूपी ग्राह से भरा हुआ है ॥७३॥ विषयों में असक्ति ही उस समुद्र के आवर्त (चकोह) है और वह अज्ञान रूपी फेन से भरा है । अत्यन्त दुष्ट पुरुष ही इस समुद्र के अत्यन्त भयङ्कर सर्प हैं ॥७४॥ इस भयङ्कर समुद्र को वे ही लोग पार कर पाते हैं जो श्रीहरि की भक्ति रूपी नौका पर सवार हैं । अतएव मनुष्य को भगवान् विष्णु की भक्ति को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।।७५॥ उस सत् पुरुषों की चर्चा करने से कौन सा सुख मिलता है ? जिसके कारण मनुष्य का मन अद्भूत लीला करने वाले श्रीहरि की कथा में नहीं लगाता है ॥७६॥ अनेक प्रकार के विषयों से मिश्रित श्रीहरि की कथा लोक में अत्यन्त विचित्र हैं, अतएव यदि विषयों में ही मन लगता है तो उन कथाओं का ही श्रवण करना चाहिए ॥७७॥ हे द्विजों ! यदि मन मुक्ति में लगता है तो श्रीहरि की ही कथाओं को सुनना चाहिए ! उदासीन भाव से भी उसे सुनने वाले पर श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं ॥७८॥ भगवान् हृषीकेश निष्क्रिय होकर भी भक्तवत्सल हैं, श्रवण करना चाहने वालों के कल्याण के लिए श्रीभगवान् ने अनेक कर्मों को किया हैं ॥७९॥ सैकड़ों वाजपेय याग आदि कर्म के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती है । दशो हजार राजसूय यज्ञ के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति उस प्रकार नहीं होती है, जैसे भक्ति से होती है ॥८०॥ जिससे अन्तःकरण से सेवनीय पद की प्राप्ति सज्जन पुरुषों ने की है और जिसका उन लोगों ने बारम्बार अनुष्ठान किया है, जो संसार सागर को पार करने का सार है, उसी श्रीहरि के पद का आपलोग आश्रयण करें ॥८१॥ अरे विषयासक्त मूर्ख तथा निष्ठुर लोगों अपने आपको तुमलोग नरक में क्यों डालते हों ?॥८२॥ लोगों यदि बिना प्रयास के तुमलोग दुःखों के पार जाना चाहते हो तो भगवान् गोविन्द के सौम्य चरणों की सेवा बिना वह सम्भव नहीं है ॥८३॥ मुक्ति प्राप्ति के कारणभूत

एतद्विचार्य मतिमानाश्रयेद्धर्मसङ्ग्रहम् । नानानरकसम्पातादुत्थितो यदि पूरुषः ॥८५॥
स्थावरादि तनुं लब्ध्वा यदि भाग्यवशात्पुनः ।
मानुष्यं लभते तत्र गर्भवासोऽतिदुःखदः ॥८६॥
ततः कर्मवशाज्ज्न्तुर्यदि वा जायते भुवि । बाल्यादिबहुदोषेण पीडितो भवति द्विजाः ॥८७॥
पुनर्यौवनमासाद्य दारिद्र्येण प्रपीड्यते। रोगेण गुरुणा वापि अनावृष्ट्यादिना तथा ॥८८॥
वार्द्धकेन लभेत्पीडामनिर्वाच्यामितस्ततः। मनसश्चलनाद्व्याधेस्ततो मरणमाप्नुयात् ॥८९॥
न तस्मादधिकं दुःखं संसारेऽप्यनुभूयते। ततः कर्मवशाज्जन्तुर्यमलोके प्रपीड्ययते ॥९०॥
तत्रातियातनां भुक्त्वा पुनरेव प्रजायते। जायते म्रियते जन्तुर्म्रियते जायते पुनः ॥९१॥
अनाराधितगोविन्दचरणस्येदृशी दशा। अनायासेन मरणं बिनायासेन जीवनम् ॥९२॥
अनाराधितगोविन्दचरणस्य न जायते। धनं यदि भवेद् गेहे रक्षणात्तस्य किं फलम्॥९३॥
यदाऽसौ कृष्यते याम्यैर्दूतैः किं धनमन्वियात् ।
तस्माद् द्विजातिसत्कार्यं द्रविणं सर्वसौख्यदम् ॥९४॥
दानं स्वर्गस्य सोपानं दानं किल्बिषनाशनम् ।
गोविन्दभक्तिभजनं महापुण्यविवर्द्धनम् ॥९५॥
बलं यदि भवेन्मर्त्ये न वृथा तद्व्ययं चरेत् ।
हरेरग्रे नृत्यगीतं कुर्यादेवमतन्द्रितः ॥९६॥

भगवान् गोविन्द के चरणों का भजन करो मनुष्य कहाँ से आया है और कहाँ जायेगा ॥८४॥ इस बात का विचार करके बुद्धिमान पुरुष को धर्म का संग्रह करना चाहिए । अनेक नरकों में गिरने के पश्चात् मनुष्य यदि उससे निकल पाता है ॥८५॥ तो स्थावर आदि शरीरों को प्राप्त करने के पश्चात् यदि वह भागयवशात् मानव शरीर को प्राप्त करता है तो उसको अत्यधिक कष्ट देने वाले गर्भ में निवास करना पड़ता है ॥८६॥ उसके बाद कर्मवशात् जीव यदि जन्म लेता है हे द्विजों ! वह बाल्य आदि अनेक दोषों से पीडित होता है ॥८७॥ फिर युवावस्था आने पर उसको यदि दरिद्रता मिलती है तो उसको बहुत कष्ट होता है । वह किसी बड़े रोग तथा अनावृष्टि आदि के कारण भी दुःख भोगता है ॥८८॥ वृद्धावस्था के कारण वह अनिर्वचनीय पीड़ा को इधर-उधर भोगता है । मन की चंचलता के कारण रोग होता है फिर मृत्यु हो जाती है ॥८९॥ संसार में मृत्यु से बढ़कर कोई दूसरा दुःख नहीं होता है । उसके बाद जीव अपने कर्मों के अनुसार यमलोक में पीड़ित होता है ॥९०॥ वहाँ पर अत्यन्त कष्ट को भोग कर वह पुनः जन्म लेता है । इस तरह जीव जन्म लेता है और मरता रहता है ॥९१॥ इस तरह की स्थिति उसकी ही होती है जिसने गोविन्द के चरणों की आराधना नहीं की है । जिसने गोविन्द के चरणों की आराधना नहीं की है उसकी अनायास मृत्यु तथा अनायास जन्म नहीं होता है । यदि घर में धन है तो उसको रखने से कौन सा लाभ है ?॥९२-९३॥ जब जीव को यमदूत बाँधकर ले जाते हैं तो धन उसके पीछे जायेगा क्या ? अतएव ब्राह्मणों की सेवा में व्यय किया हुआ धन हर प्रकार के सुख को प्रदान करता है ॥९४॥ दान स्वर्ग का सोपान हैं तथा दान पापों का विनाशक है। भगवान् गोविन्द की भक्ति तथा उनकी आराधना पुण्य को अत्यन्त बढ़ाने वाली है ॥९५॥ मनुष्य के शरीर में

यत्किञ्चिद्विद्यते पुसां तच्च कृष्णे समर्पयेत् ।
कृष्णार्पितं कुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम् ॥९७॥
चक्षुर्भ्यां श्रीहरेरेव प्रतिमादिनिरूपणम् । श्रोत्राभ्यां कलयेत्कृष्णगुणनामान्यहर्निशम् ॥९८॥
जिह्वया हरिपादाम्बु स्वादितव्यं विचक्षणैः। घ्राणेनाघ्राय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम् ॥९९॥
त्वचा स्पृष्ट्वा हरेर्भक्तं मनसाध्याय तत्पदम् ।
कृतार्थो जायते जन्तुर्नात्र कार्या विचारणा ॥१००॥
तन्मनाहि भवेत्प्राज्ञस्तथा स्यात्तद्गताशयः । तमेवान्तेऽभ्येति लोको नात्र कार्या विचारणा॥१०१॥
चेतसा चाप्यनुध्यातः स्वपदं यः प्रयच्छति ।
नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः ॥१०२॥
सततनियतचित्तो विष्णुपादारविन्दे वितरणमनुशक्तिप्रीतये तस्य कुर्यात् ।
नतिमतिरतिमस्याङ्घ्रिद्वये संविदध्यात्स हि खलु नरलोके पूज्यतामाप्नुयाच्च ॥१०३॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विष्णुभक्तेराधिक्यवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

यदि बल हो तो उस बल को व्यर्थ न करे बल्की वह श्रीहरि के समक्ष नित्य निरालस होकर नृत्य और गीत गाये ॥९६॥ पुरुष के पास जो कुछ भी हो उसे श्रीहरि को समर्पित कर दे । जो वस्तु श्रीभगवान् को समर्पित की जाती है, वह कुशल प्रदान करती है, और दूसरों को समर्पित की गयी वस्तु दुःख देती है ॥९७॥ अपने दोनों नेत्रों से श्रीहरि की प्रतिमा आदि को देखे और दोनों श्रोवों के द्वारा सदा श्रीभगवान् के गुणों तथा नामों का श्रवण करे ॥९८॥ जिह्वा के द्वारा श्रीहरि के चरणोंदक का स्वाद लेना चाहिए । नासिका के द्वारा श्रीभगवान् के चरणों पर चढी हुयी तुलसी को सूंघना चाहिए ॥९८-९९॥ त्वगिन्द्रिय से श्रीहरि के भक्तों का स्पर्श करे और मन से श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान करे । ऐसा करके जीव कृतार्थ हो जाता है, इस विषय में विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥१००॥ प्राज्ञ पुरुष को श्रीहरि में ही मन लगाना चाहिए और उनमें ही अपने हृदय को लगाये । अन्त में सम्पूर्ण जगत् श्रीभगवान् को ही प्राप्त करता है, इस विषय में विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥१०१॥ अन्तःकरण से ध्यान करने पर भी जो श्रीहरि अपना पद प्रदान कर देते हैं उन आदि और अन्त रहित अनन्त भगवान् नारायण की सेवा कौन नहीं कर सकता है ? ॥१०२॥ जिसका चित्त निरन्तर श्रीभगवान् के चरणकमलों में लगा रहता है; भगवान् की प्रसन्नता के लिए अपनी शक्ति के अनुसार दान करे और श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम करें, अपनी बुद्धि लगाये और प्रेम करे । ऐसा करने वाला संसार में पूज्य हो जाता है ॥१०३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के स्वर्गखण्ड के एकसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६१॥

बासठवाँ अध्याय

सूत उवाच

एवं यन्महिमा लोके लोकनिस्तारकारणम् ।
तस्य विष्णोः परेशस्य नानाविग्रहधारिणः ॥१॥
एवं पुराणं रूपं वै तत्र पाद्मं परं महत् । ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञितम् ॥२॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः ।
ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम् ॥३॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते ।
भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः ॥४॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः । लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम् ॥५॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम् ।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्तितम् ॥६॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते ।
एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः ॥७॥
हृदयं तत्र वै पाद्मं यच्छ्रुत्वाऽमृतमश्नुते । पाद्ममेतत्पुराणं तु स्वयं देवोऽभवद्धरिः ॥८॥
यस्यैकाध्यायमध्याप्य सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ।
तत्रादिमं स्वर्गमिदं सर्वपाद्मफलप्रदम् ॥९॥
स्वर्गखण्डं समाकर्ण्य महापातकिनोऽपि ये ।
मुच्यन्ते तेऽपि पापेभ्यस्त्वचो जीर्णाद्यथोरगाः ॥१०॥

पद्ममहापुराण की महिमा

सूतजी ने कहा— इस तरह से संसार में जिनकी महिमा उद्धार करने वाली है उन परमात्मा भगवान् विष्णु के अनेक शरीरों में पुराण भी उनका एक शरीर है ॥१॥ इस तरह पुराण रूपी शरीर में पद्मपुराण की महिमा महान् है । ब्रह्म पुराण श्रीहरि की शिरोभाग है, पद्मपुराण उनका हृदय है ॥२॥ विष्णु पुराण उनका दाहिना हाथ है और श्रीभगवान् का शिव पुराण बायाँ हाथ है । भागवत पुराण उनका उरूभाग है । नारदीय पुराण उनकी नाभि है ॥३॥ मार्कण्डेय पुराण उनका दाहिना पैर है, अग्नि पुराण उनका बायां पैर है । भविष्य पुराण भगवान् विष्णु की दाहिनी घुटना है ॥४॥ ब्रह्मवैवर्त पुराण उनकी बायीं घुटना है । लिङ्ग पुराण उनका दाहिना गुल्फ (घुटी) है, वाराह पुराण उनका बायाँ गुल्फ है ॥५॥ स्कन्दपुराण भगवान् विष्णु का रोम समूह है । वामन पुराण उनका त्वक् (चमड़ा) है कूर्म पुराण भगवान् विष्णु का पृष्ठ है और मत्स्य पुराण को मेदा कहा गया है ॥६॥ गरुड पुराण उनकी मज्जा है और ब्रह्माण्ड पुराण उनकी अस्थि है । इस तरह से पुराण शरीरक भगवान् श्रीहरि हैं ॥७॥ पद्म पुराण भगवान् का हृदय, उसका श्रवण करके मनुष्य मुक्त हो जाता है । स्वयं भगवान् श्रीहरि का रूप है पद्मपुराण ॥८॥ इस पुराण का एक अध्याय भी सुनकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है उसमें भी यह स्वर्गखण्ड

अपि चेत्सुदुराचारः सर्वधर्मबहिष्कृतः । आदिस्वर्गं समाकर्ण्य पूयते नात्र संशयः ॥११॥
सर्वं पुराणमाकर्ण्य यत्फलं लभते नरः । तत्सर्वं समवाप्नोति श्रुत्वा पाद्ममहोद्विजाः ॥१२॥
समग्रं पाद्माकर्ण्य यत्फलं समवाप्नुयात् । आदिस्वर्गमिदं श्रुत्वा तत्फलं लभते नरः ॥१३॥
माघे मासे प्रयागे तु स्नात्वा प्रतिदिनं नरः ।
यथा पापात्प्रमुच्येत तथा हि श्रवणाद्भवेत् ॥१४॥
दत्ता तेन स्वर्णतुला दत्ता चैव धराऽखिला ।
कृतं वितरणं तेन दरिद्रे यदृणं कृतम् ॥१५॥
हरेर्नामसहस्राणि पठितानि ह्यभीक्ष्णशः । सर्वे वेदास्तथाऽधीतास्तत्तत्कर्म कृतं तथा ॥१६॥
अध्यापकाश्च बहवःस्थापिता वृत्तिदानतः । अभयं भयलोकेभ्यो दत्तंतेन तथा द्विजाः ॥१७॥
गुणवन्तो ज्ञानवन्तो धर्मवन्तोऽनुमानिताः । मेषकर्कटयोर्मध्ये तोयं दत्तं सुशीतलम् ॥१८॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे च प्राणास्त्यक्ताश्च तेन हि ।
अन्यानि च सुकर्माणि कृतानि तेन धीमता ॥१९॥
येनादिखण्डं सदसि श्रुतं संश्रावितं तथा । स्वर्गखण्डं समाधीत्य नानाभोगान्समश्नुते ॥२०॥
अन्तःपुरगनारीणां सुखसुप्तः प्रबुध्यते । किङ्किणीरवसन्नादैस्तथा मधुरभाषणैः ॥२१॥

सम्पूर्ण पद्मपुराण के फल को प्रदान करने वाला है ॥९॥ महापातकी भी जीव स्वर्गखण्ड का श्रवण करके अपने पापों का उसी तरह त्याग कर देता है, जिस तरह सर्प अपनी पुरानी त्वचा को छोड़ देता है॥१०॥ अत्यन्त दुराचारी तथा सभी धर्मों से बहिष्कृत सर्वप्रथम स्वर्ग खण्ड का श्रवण करके जिस फल को प्राप्त करता है ॥११॥ इस आदि स्वर्ग खण्ड का श्रवण करके मनुष्य उसी फल को प्राप्त करता है । प्रयाग में माघ मास में प्रतिदिन स्नान करके मनुष्य ॥१२॥ जिस तरह से सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१३॥ उसी तरह से स्वर्ग खण्ड का श्रवण करके वह पाप मुक्त हो जाता है ॥१४॥ वह सुवर्ण का तुलादान करने का, सम्पूर्ण पृथिवी का दान करने का, द्ररिद्र के ऋण को दान के द्वारा चुकाने का, निरन्तर विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करने का सम्पूर्ण वेदों के अध्ययन करने का तथा वेदों में वर्णित समस्त कर्मों के अनुष्ठान करने का, अनेक अध्यापकों को रखकर उनको वृत्ति प्रदान करने का तथा सम्पूर्ण लोकों को अभय प्रदान करने का फल प्राप्त करता है ॥१५-१६-१७॥ वह गुणवान्, ज्ञानी तथा धार्मिकों का सम्मान करने का फल प्राप्त करता है। मेष राशि तथा कर्क राशि में शीतल जलदान करने का वह फल प्राप्त कर लेता है ॥१८॥ ब्राह्मण तथा गौ की रक्षा करने के लिए जो अपना प्राण त्याग कर देता है, उसका फल वह भी प्राप्त कर लेता है ॥१९॥ जो व्यक्ति आदि स्वर्गखण्ड का सभा में श्रवण करता है अथवा उसका श्रवण कराता है वह दूसरे भी समस्त पुण्यों का फल प्राप्त कर लेता है। स्वर्गखण्ड का अध्ययन करके मनुष्य अनेक भोगों को प्राप्त करता है ॥२०॥ सुखपूर्वक सोया हुआ वह अन्तःपुर में चलने वाली नारियों की करधनी की क्षुद्रघंटिकाओं की ध्वनि सुनकर तथा मधुर भाषणों को सुनकर जगता है॥२१॥ वह इन्द्र के लोक में दीर्घकाल तक निवास करता है और इन्द्र के आधे सिंहासन का फल भोग करता है। उसके बाद वह क्रमशः सूर्यलोक तथा चन्द्रलोक में जाता है ॥२२॥ उसके बाद सप्तर्षि लोक में भोगों को भोग कर वह ध्रुवलोक में जाता है। उसके बाद तेजोमय शरीर धारण करके ब्रह्मलोक

इन्द्रस्यार्धासनं भुङ्क्ते इन्द्रलोके वसेच्चिरम्। ततः सूर्यस्य भवनं चन्द्रलोकं ततो व्रजेत् ॥२२॥
सप्तर्षिभवनेभोगान्भुक्त्वा याति ततो ध्रुवम् ।
ततश्च ब्रह्मणो लोकं प्राप्य तेजोमयं वपुः ॥२३॥
तत्रैव ज्ञानमासाद्य निर्वाणं परमृच्छति । सद्भिः सह वसेद्धीमान्सत्तीर्थेस्नानमाचरेत् ॥२४॥
कुर्यादेव सदालापं सच्छास्त्रं शृणुयान्नरः। तत्र पाद्मं महाशास्त्रं सर्वाम्नायफलप्रदम् ॥२५॥
स्वर्गखण्डं च तन्मध्ये महापुण्यफलप्रदम् ॥२६॥
भजध्वं गोविन्दं नमत हरिमेकं सुरवरं गमिष्यध्वं लोकानतिविमलभोगानतितराम् ।
शृणुध्वं हे लोका वदत हरिनामैकमतुलं यदीच्छावीचीनां सुखतरणमिष्टानि लभत ॥२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे स्वर्गखण्डे पद्मपुराणमाहात्म्यकथनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥
सम्पूर्णमिदमादिखण्डापरनामकमादिस्वर्गखण्डं स्वर्गखण्डं वा ।

में जाता है ॥२३॥ वहीं पर ज्ञान को प्राप्त करके वह मुक्त हो जाता है। बुद्धिमान पुरुष को सज्जनों के साथ निवास करना चाहिए और तीर्थों में जाकर स्नान करना चाहिए ॥२४॥ वह परमात्मविषयणी चर्चा करे और सत् शास्त्रों का श्रवण करे उन पुराणों में पद्म पुराण महाशास्त्र और सम्पूर्ण वेदों के फल को प्रदान करने वाला है । उसमें भी स्वर्ग खण्ड पुण्य रूपी महाफल को प्रदान करने वाला है॥२५॥ हे संसार के लोगों ! आपलोग संसार सागर को सुखपूर्वक पार करना चाहें तो भगवान् गोविन्द का भजन करें केवल श्रीहरि को ही प्रणाम करें और उसके फल स्वरूप आपलोग अत्यन्त विमल लोकों तथा भोगों को प्राप्त करें । हे संसारी जीवों आपलोग मेरी बात सुनें केवल आपलोग अतुलनीय श्रीहरि के नामों का उच्चारण करें और अनुकूल फल प्राप्त करें ॥२६-२८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के तृतीय स्वर्गखण्ड के बासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६२।।
यह आदि खण्ड नामक स्वर्ग खण्ड भी सम्पूर्ण हुआ ।।

श्रियै नमः
श्रीधराय नमः
श्रीवेदव्यासाय नमः
ओम् नमो भगवते वासुदेवाय नमः

ब्रह्मखण्ड

पहला अध्याय

शौनक उवाच

कलौ समागते सूत प्राणिनां केन कर्मणा ।
उद्धारो वै भवेत्तत्त्वं कथयस्व ममाग्रतः ॥१॥

सूत उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ ! पुण्यात्मप्रवरो भवान् ।
सर्वेषां च जनानां त्वं शुभवाञ्छो निरन्तरम् ॥२॥
एतद्व्यासः पुरा विप्रः सर्वज्ञः सर्वपूजितः। पृष्टो जैमिनिना तं स यदाह शृणु वैष्णव !॥३॥
दण्डवत्प्रणिपत्यासौ व्यासं सर्वार्थपारगम्। गुरुं सत्यवतीसूनं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवः॥४॥

जैमिनिरुवाच

कलौ नृणां भवेत्केन मोक्षो वै कथयस्व मे ।
अल्पेनापि च पुण्येन मर्त्याश्चाल्पायुषो यतः ॥५॥

व्यास उवाच

साधुसङ्गाद्भवेद्विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभो ! ।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततो ज्ञानं ततो गतिः ॥६॥

व्यास जैमिनि संवाद

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी कलियुग के आ जाने पर जीवों का उद्धार जिस कर्म के द्वारा होता है, उसे आप बतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— बहुत अच्छी बात है; मुनिवर्य ! आप पुण्यवानों में श्रेष्ठ हैं । आप सदा सभी लोगों का कल्याण करना चाहते हैं ॥२॥ प्राचीन काल में महर्षि जैमिनि ने महर्षि व्यास से यही पूछा था और उन्होंने जो उसका उत्तर बतलाया उसे आप सुनें । सर्वज्ञ महर्षि व्यास को दण्डवत् प्रणाम करके महर्षि जैमिनि ने अपने गुरु सत्यवती माता के पुत्र व्यासजी से पूछा ॥३-४॥ **जैमिनि महर्षि ने कहा**— आप मुझे उस साधन को बतलायें जिस साधन से मनुष्यों को

न रोचते कथा भूमौ पापिष्ठाय जनाय वै ।
वैष्णवो स तु विज्ञेय:पापिष्ठप्रवरो द्विजः ॥७॥
श्रीकृष्णस्य कथां श्रुत्वाऽऽनन्दी भवति वैष्णवः ।
असत्यां तां तु यो ब्रूयाज्ज्ञेयः स पापिनां गुरुः ॥८॥
यस्मिन्यस्मिन्स्थले विप्र ! कृष्णस्य वर्तते कथा ।
तस्मात्तस्माज्जगन्नाथो याति त्यक्त्वा न कर्हिचित् ॥९॥
कृष्णस्य यःकथारम्भे कुर्याद्विघ्न नराधमः ।
नरकान्निष्कृतिर्नास्ति मन्वन्तरशतावधि ॥१०॥
ये पुराणकथां श्रुत्वा निन्दन्त्युपहसन्ति वै। तेषां करस्था नरका बहुक्लेशकराः सदा ॥११॥
मान्तरार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। श्रीकृष्णचरितं यो वै श्रोतुमिच्छां करोत्यपि ॥१२॥
भक्त्या यो वै नरःकुर्याच्छ्रीकृष्णचरितं तथा ।
न जाने श्रवणे तस्य का गतिर्वा भविष्यति ॥१३॥
ब्रह्महत्यादिकं पापमकालमरणं तथा। सुरापानं तथास्तेयं सर्वं नश्यति पापिनः ॥१४॥
पापं कृत्वा तु यो मर्त्यःपश्चात्पापं निवर्तयेत् ।
तस्य पापं व्रजेन्नाशमग्निना तूलराशिवत् ॥१५॥
श्रीकृष्णचरितं विप्र ! तिष्ठेद्वैपुस्तकं गृहे। तस्य गृहसमीपं हि नायान्ति यमकिङ्कराः॥१६॥

अल्प पुण्य से भी मुक्ति मिले क्योंकि कलियुग में मनुष्य अल्पायु हो जाते हैं ॥५॥ **व्यासजी ने कहा—** हे विप्र सज्जनों ! की सङ्गति से शास्त्रों का श्रवण करने को मिलता है । उसी से श्रीहरि की भक्ति होती है और उसीसे ज्ञान उत्पन्न होता है । ज्ञान से मुक्ति मिलती है ॥६॥ पृथिवी पर पापी मनुष्यों का भगवान् विष्णु की कथा अच्छी नहीं लगती । जिसको भगवान् की कथा अच्छी न लगे उसको पापियों में श्रेष्ठ जानना चाहिए ॥७॥ श्रीवैष्णव पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की कथा को सुनकर आनन्दित होते हैं, जो उस कथा को असत्य कहे उसे पापियों का गुरु समझना चाहिए ॥८॥ हे विप्र ! जिस-जिस स्थान में भगवान् की कथा होती है, उन स्थानों को छोड़कर श्रीभगवान् कहीं नहीं जाते हैं ॥९॥ जो नराधाम भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का आरम्भ करने में विघ्न करता है, वह सैकड़ों मन्वन्तरों में भी नरक से नहीं निकल पाता है ॥१०॥ जो लोग पुराणों की कथा को सुनकर उसकी निन्दा अथवा उपहास करते हैं उनके हाथ में अत्यधिक क्लेश प्रदान करने वाले नरक बने रहते हैं ॥११॥ जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का श्रवण करने की इच्छा भी करता है उसके पूर्वजन्म के सभी पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य भक्ति पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरित की कथा करता है उसको किस-किस उत्तम गति की प्राप्ति होगी इसे मैं नहीं कह सकता हूँ ॥१३॥ इस कथा से ब्रह्महत्या आदि पाप, अकालमृत्यु, मदिरा पान जन्य पाप तथा चोरी जन्य पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१४॥ जो मनुष्य पहले पाप करके बाद में पाप करना छोड़ देता है, उसके पापों का नाश उसीतरह से हो जाता है जिसतरह अग्नि रुई के ढेर को विनष्ट कर देता है ॥१५॥ हे विप्र ! जिसके घर में श्रीकृष्ण चरित की पुस्तक रहती हे, उसके घर के समीप यमदूत नहीं आते हैं ॥१६॥ **जैमिनि महर्षि ने कहा—** हे गुरों ! मैं यह जानना चाहता

जैमिनिरुवाच

वदन्ति वैष्णवान्कांश्च वाञ्छा ब्रूहि गुरो ! मम ।
इदानीं तान्समाज्ञातं तेषां माहात्म्यमुत्तमम् ॥१७॥

व्यास उवाच

यो नरो मस्तके भक्त्या वैष्णवाङ्ध्यम्भसो द्विज ! ।
करोत्ति सेचनं पापी तीर्थस्नानेन तस्य किम् ॥१८॥
साधुसङ्गं तु यः कुर्यात्क्षणं वाऽर्द्धक्षणं द्विज ।
तस्य नश्यन्ति पापानि ब्रह्महत्यामुखानि च ॥१९॥
यत्र यत्र कुले चैव एको भवति वैष्णवः ।
कुलं तस्य यदापापैर्युक्तं तन्मोक्षगामि वै ॥२०॥
हिंसादम्भकामक्रोधैर्वर्जिताश्चैव ये नराः । लोभमोहपरित्यक्ता ज्ञेयास्ते वैष्णवा द्विज! ॥२१॥
पितृभक्ता दयायुक्ताःसर्वप्राणिहिते रताः । अमत्सरा वैष्णवा ये विज्ञेयाः सत्यभाषिणः ॥२२॥
विप्रभक्तिरता ये च परस्त्रीषु नपुंसकाः । एकादशीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥२३॥
गायन्ति हरिनामानि तुलसीमाल्यधारकाः । हर्यङ्घ्रिसलिलैःसिक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः॥२४॥
श्रोत्रयोर्मस्तके येषां तुलस्याःपर्णमुत्तमम् । कर्हिचिद्दृश्यते विप्र ! विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः॥२५॥
पाखण्डसङ्गरहिता विप्रद्वेषविवर्जिताः । सिञ्चेयुस्तुलसीं ये च ज्ञातव्या वैष्णवा नराः॥२६॥
पूजयन्ति हरिं ये च तुलस्या चार्चयन्ति ये ।
कन्यादानरता ये च ये वै ह्यतिथिपूजकाः ॥२७॥

हूँ कि श्रीवैष्णव किसको कहते हैं । मैं इस समय श्रीवैष्णव के माहात्म्य को जानना चाहता हूँ ॥१७॥ **व्यासजी ने कहा—** जो पापी भी मनुष्य श्रीवैष्णवों के चरणोदक को अपने शिर पर धारण करता है उसको तीर्थ स्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥१८॥ जो मनुष्य क्षणभर अथवा आधा क्षण भी साधु पुरुषों की सङ्गति करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१९॥ जिस वंश में एक आदमी भी श्रीवैष्णव हो जाता है, उसका पाप युक्त भी वंश मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥२०॥ जो मनुष्य, काम, क्रोध, हिंसा और दम्भ से रहित है, लोभ तथा मोह से रहित हैं उनको श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥२१॥ माता-पिता के भक्त, दयालु, सभी प्राणियों का कल्याण करने वाले, मत्सर रहित तथा सत्य बोलने वाले मनुष्यों को श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥२२॥ ब्राह्मणों की भक्ति करने वाले और दूसरों की स्त्रियों के विषय में नपुंसक (निष्काम) बने रहने वाले तथा एकादशी व्रत करने वाले लोगों को श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥२३॥ जो श्रीहरि के नामों का गीत गाते हैं तुलसी की माला पहनते हैं तथा श्रीभगवान् के चरणोदक को अपने शिर पर धारण करते हैं, उन्हें श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥२४॥ जो अपने कान में तथा शिर पर तुलसीदल को धारण करते हैं उनको श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥२५॥ जो पाखण्डियों का सङ्ग नहीं करते हैं तथा ब्राह्मणों से द्वेष नहीं करते हैं तथा तुलसी के पौधे को पानी से पटाते हैं, उनको श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥२६॥ जो श्रीहरि की पूजा करते हैं, और उनकी तुलसी से अर्चना करते हैं, कन्याओं का दान करते हैं और अतिथियों की पूजा करते हैं ॥२७॥ भगवान् विष्णु

शृण्वन्ति विष्णुचरितं विज्ञेया वैष्णवा नराः ।
यस्य गृहे सुप्रतिष्ठेच्छालग्रामशिलाऽपि च ॥२८॥
मार्जयन्ति हरेः स्थानं पितृयज्ञप्रवर्तकाः । जने दीने दयायुक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥२९॥
परस्वं ब्राह्मणद्रव्यं पश्यन्ति विषवच्च ये । हरिनैवेद्यं येऽश्नन्ति विज्ञेया वैष्णवा जनाः ॥३०॥
वेदशास्त्रानुरक्ता ये तुलसीवनपालकाः । राधाष्टमीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥३१॥
श्रीकृष्णपुरतो ये च दीपं यच्छन्ति श्रद्धया ।
परनिन्दां न कुर्वन्ति विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥३२॥

सूत उवाच

पृष्टो जैमिनिना व्यास इत्युवाच यथाक्रमम् ।
मयेदं कथ्यते ब्रह्मन्यत्प्रसङ्गाद्गुरोः श्रुतम् ॥३३॥
अध्यायं श्रद्धया युक्ता ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे व्यासजैमिनिसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

के चरित का श्रवण करते हैं, उनको श्रीवैष्णव जानना चाहिए । जिसके घर में शालग्राम शिला स्थापित रहती है ॥२८॥ श्रीहरि के स्थान की जो साफ रखते हैं तथा पितृयज्ञ किया करते है । दीन जनों पर दया करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए । जो दूसरे की सम्पत्ति तथा ब्राह्मण के द्रव्य को विष के समान समझते हैं तथा श्रीहरि के नैवेद्य का ही भोजन करते हैं, उनको श्रीवैष्णव समझना चाहिए ॥२९-३०॥ जिनकी वेदों तथा शास्त्रों में अनुरक्ति बनी रहती है तथा तुलसी वन को जो लगाते हैं जो राधाष्टमी व्रत को करते है, उनको श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥३१॥ जो श्रीभगवान् के समक्ष श्रद्धा पूर्वक दीप जलाते हैं तथा दूसरे की निन्दा नहीं करते हैं, उनको श्रीवैष्णव जानना चाहिए ॥३२॥ **सूतजी ने कहा**— महर्षि जैमिनि के द्वारा इसतरह से पूछे जाने पर महर्षि व्यास ने इसतरह से क्रमशः कहा। हे ब्रह्मन् ! (शौनक) उसी के प्रसङ्ग में मैंने जो सुना है उसे मैं कह रहा हूँ ॥३३॥ जो मनुष्य इस पुराण का एक अध्याय का भी श्रद्धा पूर्वक श्रवण करते हैं, वे नरोत्तम सभी पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के परमपद में जाते हैं ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के व्यास जैमिनि संवाद के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

द्वितीय अध्याय

सूत उवाच

शृणु शौनक ! वक्ष्यामि चान्यधर्मं पुरातनम् ।
व्यासजैमिनिसंवादं श्रोतॄणां पापनाशनम् ॥१॥

जैमिनिरुवाच

कर्मणा हि गुरो ! केन मन्दिरं जगतीपतेः ।
याति तत्कथयस्वाद्य नरः पापी च मे प्रभो! ॥२॥

व्यास उवाच

श्रीकृष्णमन्दिरे यो वै लेपनं कुरुते नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तश्शान्ते याति हरेर्गृहम् ॥३॥
यश्चाम्बुलेपनं कुर्यात्संक्षेपाच्छृणु जैमिने । तस्य पुण्यमहंवच्मि मन्दिरे जगतीपतेः ॥४॥
तत्र यावन्ति वै सन्ति रजांसि च द्विजोत्तम ! ।
तावत्कल्पसहस्राणि स वसेद्विष्णुमन्दिरे ॥५॥
पुराऽऽसीद्दण्डकोनाम्ना चौरो लोकभयप्रदः ।
ब्रह्मस्वहारी मित्रघ्नो युगे द्वापरसंज्ञके ॥६॥
असत्यभाषी क्रूरश्च परस्त्रीगमने रतः । गोमांसाशी सुरापश्च पाखण्डजनसङ्गभाक् ॥७॥
वृत्तिच्छेदी द्विजातीनां न्यासापहारकस्तथा । शरणागतहन्ता च वेश्याविभ्रमलोलुपः ॥८॥
एकदा स द्विजश्रेष्ठ ! कस्यचिद्विष्णुमन्दिरम् ।
जगाम हरणार्थाय विष्णोर्द्रव्यं स मूढधीः ॥९॥
अथ हरि प्रविश्यासावङ्घ्रिं कर्दमसंयुतम् । प्रोञ्छयामास वै निम्ने भूमौ देवगृहस्य च ॥१०॥

मन्दिर लेपन का माहात्म्य

सूतजी ने कहा— हे शौनक ! महर्षि मैं दूसरा प्राचीन धर्म बतला रहा हूँ उसे आप सुनें । यह व्यास जैमिनि संवाद सुनने वालें के पाप को विनष्ट करने वाला है ॥१॥ **जैमिनि महर्षि ने कहा—** हे प्रभो ! पापी भी मनुष्य किस कर्म को करके जगत् पति श्रीहरि के लोक में जाता है, उसे आप मुझे बतलायें ॥२॥ **व्यासजी ने कहा—** जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दिर को लिपता है, वह सभी पापों से रहित होकर शान्त मन से श्रीहरि के लोक में जाता है ॥२॥ हे जैमिने ! आप संक्षेप में सुनें जो भगवान् के मन्दिर को जल से धोता है, मैं उसका पुण्य बतला रहा हूँ ॥४॥ हे द्विजोत्तम ! वहाँ पर जितने भी धूलिकण रहते हैं, उतने हजार कल्प तक वह श्रीहरि के लोक में निवास करता है ॥५॥ प्राचीन काल में द्वापर युग में संसार को भयभीत करने वाला दण्डक नामक एक चोर था । वह ब्राह्मणों की सम्पत्ति को चुरा लेता था और अपने मित्रों को मार देता था ॥६॥ वह असत्य भाषी, क्रूर तथा परस्त्रीगामी था । वह गोमांस खाता था, मदिरा पीता था, तथा पाखण्डियों के साथ रहता था ॥७॥ ब्राह्मणों की वृत्ति को विनष्ट करता था, धरोहर को हड़प लेता था । वह शरणागतों को मार देने वाला तथा वेश्यागामी था ॥८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! एक बार वह मूर्ख भगवान् विष्णु को मन्दिर में भगवान् की सम्पत्ति

तेनैव कर्मणा भूमिर्निम्नरिक्ता बभूव ह। लोहस्य च शलाकाभ्यामुद्घाट्य त्वरं मुदा॥११॥
प्रविवेश हरेर्गेहं वितानवरशोभितम्। रत्नकाञ्चनदीपाढ्यं परिध्वस्तमहत्तमः॥१२॥
नानापुष्पसुगन्धाढ्यं नानापात्रसमाकुलम्। सुवासितस्य तैलस्य गन्धेन परिपूरितम्॥१३॥
अनेन हारकेणाथ पर्यंके सुमनोहरे। शायितो राधयासार्द्धं दृष्टःपीताम्बरोऽच्युतः॥१४॥
प्रणम्य राधिकानाथं निष्पापःसोऽभवत्तदा। नेष्याम्यथ न नेष्यामि अनेन हिं भवेन्मम॥१५॥

सेवां कर्तुमशक्तोऽहं यतश्चोरोऽस्मि सर्वदा।
द्रव्येण कार्यमस्तीति तन्नेतुं कृतवान्मनः॥१६॥
पातयित्वांऽशुकं भूमौ कौशेयं कमलापतेः।
बबन्ध वस्तुजातं च पाणौ कृत्वा स कम्पितः॥१७॥
विष्णोर्मायापतेश्चाथ तानि सर्वाणि जैमिने!।
कृत्वा शब्दं सुघोरं च पतितान्यथा तानि वै॥१८॥
परित्यज्य सुनिद्रां च धावन्त इति किन्वहो।
आगता बहुशो लोकाश्चौरो द्रव्यं जवेन च॥१९॥
त्यक्त्वा धनं च चौरोऽपि त्रस्तःकिञ्चिज्जगाम ह।
दंशितः कालसर्पेण मृतोऽसौ गतकिल्बिषः॥२०॥

यमाज्ञया तस्य दूताःपाशमुद्गरपाणयः। आगतास्तं समानेतुं दंष्ट्रिणश्चर्मवाससः॥२१॥
बबन्धुश्चर्मपाशेन निन्युर्दुर्गमवर्त्मना। दृष्ट्वा तं शमनः क्रुद्धःपप्रच्छ सचिवं प्रति॥२२॥

चुराने के लिए गया॥९॥ इसके बाद मंदिर के भीतर प्रवेश करके उसके द्वार पर अपने कीचड़ भरे पाँव को मन्दिर के नीचे की सम्पूर्ण भूमि में पोंछ दिया॥१०॥ उसी के कारण वह नीचे की भूमि पूरी हो गयी। उसने लोहे के छड़ से दरवाजा खोलकर शीघ्र ही प्रसन्नता पूर्वक चन्दोवा से सुशोभित मन्दिर में प्रवेश कर गया। मन्दिर अनेक रत्ननिर्मित दीपकों से भरा हुआ शान्त था॥११-१२॥ वह अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि से युक्त, अनेक प्रकार के पात्रों से परिपूर्ण तथा सुगन्धित तेल के गन्ध से परिपूर्ण था। इस चोर ने देखा कि अत्यन्त मनोहर शय्या पर पीताम्बरधारी अच्युत राधाजी के साथ सोये हैं॥१४॥ उसने राधिका नाथ को प्रणाम किया और उसके कारण वह निष्पाप हो गया। वह सोचने लगा कि मैं इसको ले जाऊँ या नहीं ले जाऊँ इससे मेरा कौन सा लाभ होगा ?॥१५॥ मैं इसकी सेवा तो कर नहीं सकता हूँ क्योंकि मैं तो सदा चोरी करता हूँ। मेरा काम तो द्रव्य से है, इसलिए उसने द्रव्य लेने का मन बनाया॥१६॥ उसने लक्ष्मीपति के रेशमी वस्त्रों को भूमि पर गिरा दिया उसने सम्पूर्ण वस्त्र समूह को बाँधकर हाथ से उठाया; किन्तु उसका हाथ काँप गया॥१७॥ उसके बाद मायापति विष्णु की वे सारी वस्तुएँ घोर शब्द करती हुयी पृथिवी पर गिर पड़ीं॥१८॥ उसके कारण बहुत से लोग अपनी निद्रा का परित्याग करके शीघ्रता से वहाँ आ गये और चोर द्रव्य और धन को छोड़कर शीघ्रता पूर्वक वहाँ से चला गया। उसी समय उस निष्पाप चोर को काले सांप ने काट लिया और वह मर गया॥१९-२०॥ यम के दूत वहाँ पाश और मुद्गर लेकर आये। उनके दाँत बड़े-बड़े थे और वे चमड़ा पहने थे॥२१॥ उन सबों ने उसे चमड़े के पाश से बाँध दिया और वे उसको दुर्गम मार्ग

यम उवाच

अनेन किं कृतं कर्म पापं वा पुण्यमेव वा ।
समूलं वेद हे प्राज्ञ ! चित्रगुप्त ! ममाग्रतः ॥२३॥

चित्रगुप्त उवाच

सृष्टानि यानि पापानि विधात्रा पृथिवीतले। कृतान्यनेन मूढेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२४॥
किं त्वाकर्णय लोकेश ! सुकृतं चास्य वर्त्तते ।
मन्येऽहं यमुनाभ्रातः ! सर्वपापविलोपि तत् ॥२५॥

धर्मराज उवाच

किं पुण्यं वर्ततेऽमात्य वदसारं ममान्तिके ।
श्रुत्वैवं तद्विधास्यामि यत्र य्रोग्योभवेदसौ ॥२६॥

व्यास उवाच

यमस्य वचनं श्रुत्वा सभयश्चित्रगुप्तकः । कृत्वा हस्ताञ्जलिं प्राह चात्मनःस्वामिने द्विज!॥२७॥

चित्रगुप्त उवाच

हरणार्थं हरेर्द्रव्यं गतोऽसौ पापिनांवरः । प्रोज्झितः कर्द्दमोराजन्पादयोर्द्वारतो हरेः ॥२८॥
बभूव लिप्ता सा भूमिर्बिलच्छिद्रविवर्जिता। तेन पुण्यप्रभावेण निर्गतंपातकं महत् ॥
वैकुण्ठं प्रतियोग्योऽसौ निर्गतस्तव दण्डतः ॥२९॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा स वचनं तस्य पीठं कनकनिर्मितम् ।
ददौ तस्मै चोपविष्टस्तत्र पूज्यो यमेन सः ॥
ननाम शिरसा तं वै प्रोवाच विनयान्वितः ॥३०॥

से यमलोक ले गये । उसको देखकर क्रुद्ध हुए यमराज ने अपने मंत्री से पूछा ॥२२॥ **यमराज ने कहा—** इसने कौन सा पाप अथवा पुण्य कर्म किया है ? हे प्राज्ञ ! चित्रगुप्त आप उन सारी बातों को मुझे बतलाएँ ॥२३॥ **चित्रगुप्त ने कहा** ब्रह्माजी ने पृथिवी पर जिन-जिन पापों की रचना की है, उन सारे पापों को इसने किया है, यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥२४॥ हे लोकेश ! यमराज मैं समझता हूँ कि इसका एक ऐसा पुण्य है कि उससे इसके सारे पाप विनष्ट हो गये हैं ॥२५॥ **धर्मराज ने कहा—** हे आमात्य ! इसका पुण्य क्या है, उसका सारांश मुझे बतलाइये । उसको सुनकर के मैं यह जिसके योग्य होगा वैसा ही दण्ड दूँगा ॥२६॥ यम की वाणी सुनकर भयभीत चित्रगुप्त ने हाथ जोड़कर अपने स्वामी से कहा ॥२७॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** पापियों में श्रेष्ठ यह श्रीहरि का द्रव्य चुराने के लिए गया था । इसने कीचड़ को श्रीहरि के द्वार से हटा दिया ॥२८॥ उससे वह भूमि बिल तथा छिद्र से रहित हो गयी और लिप गयी उस पुण्य के प्रभाव से इसका महान् पाप विनष्ट हो गया । अब यह वैकुण्ठ के योग्य हो गया है, आपके दण्ड का विषय नहीं रह गया है ॥२९॥ **व्यासजी ने कहा—** चित्रगुप्त की बातों को सुनकर यमराज ने उसे सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाकर उसकी पूजा की ॥३०॥ यम ने

यम उवाच

पवित्रं मन्दिरं मेऽद्य पादयोस्तव रेणुभिः ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोस्मि न संशयः ॥३१॥
इदानीं गच्छ भो साधो ! हरेर्मन्दिरमुत्तमम् ।
नानाभोगसमायुक्तं जन्ममृत्युनिवारणम् ॥३२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा धर्मराजोऽसौ स्यन्दने स्वर्णनिर्मिते ।
राजहंसयुते दिव्ये तमारोप्य गतैनसम् ॥३३॥
समस्तसुखदं स्थानं प्रेषयामास चक्रिणः। एवं प्रविष्टो वैकुण्ठे तत्र तस्थौ सुखं चिरम्॥३४॥
लेपनं ये प्रकुर्वन्ति भक्त्या तु हरिमन्दिरे। तेषां किं वा भविष्यति न जानेऽहंद्विजोत्तम !॥३५॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या पठेद्यो वा समाहितः ।
कोटिजन्मार्जितं पापं नश्यत्येव न संशयः ॥३६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे हरिमन्दिरलेपनमाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

शिर झुकाकर प्रणाम किया और विनयावनत होकर कहा **यम ने कहा—** आज मेरा घर आपकी चरण धूलि से पवित्र हो गया है ॥३१॥ आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ । इसमें कोई भी संशय नहीं है । हे साधु पुरुष ! अब आप श्रीहरि के लोक में जायँ ॥३२॥ वह अनेक प्रकार के भोग सामग्री से युक्त तथा जन्म मृत्यु को दूर करने वाला है । **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से कहकर यमराज ने उसे स्वर्ण निर्मित रथ पर बैठाया ॥३३॥ राजहंस से युक्त उस दिव्य रथ पर बैठाकर निष्पाप उसको सब प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु के लोक में भेज दिया ॥३४॥ इस तरह वैकुण्ठ में जाकर उसने दीर्घकाल तक निवास किया । जो लोग भक्ति पूर्वक श्रीहरि के मन्दिर को लिपते हैं उनको प्राप्त होने वाले पुण्य का मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ । जो इस आख्यान को भक्ति पूर्वक सुनता है अथवा पढ़ता है । उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं हैं ॥३५-३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के भगवान् के मन्दिर को लिपने का माहात्म्य वर्णन नामक द्वितीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तीसरा अध्याय

शौनक उवाच

कार्त्तिकस्त्य च माहात्म्यं ब्रूहि सूत ! ममाग्रतः ।
तद्व्रतस्य फलं किं वा दोषं किं तदकुर्वतः ॥१॥

सूत उवाच

पुरैकदा मुनिश्रेष्ठ ! व्यासं सत्यवतीसुतम्। जैमिनिः पृष्टवानेतदारेभे कथितुं मुनिः ॥२॥

व्यास उवाच

तिलतैलं मैथुनं यः शुभदेकार्त्तिके त्यजेत्। बहुजन्मकृतैःपापैर्मुक्तो याति हरेर्गृहम् ॥३॥
मत्स्यं च मैथुनं यो वै कार्त्तिके न परित्यजेत् ।
प्रति जन्मनि संमूढः शूकरश्च भवेद् ध्रुवम् ॥४॥
कार्त्तिके तुलसीपत्रैः पूजयेद्वैजनार्दनम् । पत्रेपत्रेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥५॥
कार्त्तिके मुनिपुष्पैर्यः पूजयेन्मधुसूदनम् । देवानां दुर्लभं मोक्षं प्राप्नोति कृपया हरेः ॥६॥
कार्त्तिके मुनिशाकं वै योऽश्नाति च नरोत्तमः ।
संवत्सरकृतं पाप शाकेनैवेकेन नश्यति ॥७॥
फलं तस्य नरोऽश्नाति चोर्जे यो वै हरिप्रिये ।
प्रदाय तु हरेर्ब्रह्मन्वृजिनं कोटिजन्मजम् ॥८॥
सुरसं सर्पिषा युक्तं दद्याद्यो हरयेऽपि च । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सगच्छेद्धरिमन्दिरम् ॥९॥
कार्तिके यो नरो दद्यादेकपद्मं हरावपि । अन्ते विष्णुपदं गच्छेत्सर्वपापविवर्जितः ॥१०॥

श्रीभगवान् के मन्दिर में दीपदान का माहात्म्य वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी आप मुझे कार्तिक मास के व्रत का माहात्म्य सुनायें, उस व्रत को करने से कौन सा फल होता है ? और नहीं करने से कौन सा पाप होता हैं ?॥१॥ **सूतजी ने कहा—** एक बार महर्षि जैमिनि ने सत्यवती नंदन व्यासजी से यही प्रसन्न किया था और उसके उत्तर में व्यासजी ने कहना प्रारम्भ किया ॥२॥ **व्यासजी ने कहा—** जो मनुष्य कार्तिक के महीने में तिल का तेल और मैथुन का त्यागता है, वह अनेक जन्मों के पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता हैं ॥३॥ जो कार्तिक के महीने में मत्स्य और मैथुन का त्याग नहीं करता है, वह मूर्ख प्रत्येक जन्म में सूकर होता है ॥४॥ कार्तिक में तुलसी पत्र से भगवान् जनार्दन की पूजा करनी चाहिए, उसके एक-एक पत्ते के बदले में उसे अश्वमेध याग का फल प्राप्त होता है ॥५॥ कार्तिक के महीने में जो अगस्त्य पुष्प के द्वारा भगवान् मधुसूदन की पूजा करता है, वह देवताओं को भी दुर्लभ श्रीभगवान् की कृपा से मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥६॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य कार्तिक के महीने में मुनिशाक को खाता है वह केवल शाक के प्रभाव से वर्ष भर के किए हुए पापों को विनष्ट कर देता है । जो मनुष्य श्रीहरि के प्रिय कार्तिक के महीने में उसके फल को खाता है और उसका दान करता है, वह करोड़ों जन्म के पापों को विनष्ट कर देता है ॥८॥ जो उसके (मुनिपुष्प के) सुन्दर रस को घी के साथ श्रीहरि को समर्पित

प्रातः स्नानं नरो यो वै कार्तिके श्रीहरिप्रिये ।
करोति सर्वतीर्थेषु यत्स्नात्वा तत्फलं लभेत् ॥११॥
कार्तिके यो नरो दद्यात्प्रदीपं नभसि द्विजः ।
विप्रहत्यादिभिःपापैर्मुक्तो गच्छेद्धरेर्गृहम् ॥१२॥
मुहूर्तमपि यो दद्यात्कार्तिके प्रीतये हरेः । दीपं नभसि विप्रेन्द्र ! तस्मिंस्तुष्टःसदा हरिः॥१३॥
यो दद्याच्च गृहे दीपं कृष्णस्य सघृतं द्विजः ।
कार्त्तिके चाश्वमेधस्य फलं स्याद्वै दिने दिने ॥१४॥
प्रदीपस्य च माहात्म्यं विशेषमुच्यते मया । निशामय द्विजश्रेष्ठ सेतिहासं समाहितः॥१५॥
पूर्वं त्रेतायुगे विप्रो वैकुण्ठो नामतः शुचिः ।
यस्य सङ्गप्रभावेण मुक्तो भवति पातकी ॥१६॥
एकदा कार्तिके सोऽपि प्रदीपं पुरतो हरेः ।
दत्त्वागृहं गतो विप्रो घृतपूर्णं द्विजर्षभ ! ॥१७॥
सर्पिस्तत्खादितुं चाखुरागतोऽपि प्रदीपतः । यावत्खादितुमारेभे वोधितोऽसौ प्रदीपकः॥१८॥
मूषकोऽग्निभयात्तत्र वेगेनापि पलायितः। आखोश्च सकलं पापं विनष्टं कृपया हरेः॥१९॥
सर्पेण दंशितश्चाखुःप्राणत्यागं चकार ह। ततो यमाज्ञया दूताः पाशमुद्गरपाणयः॥२०॥
आगतास्तं समानेतुं बबन्धुश्चर्मरज्जुभिः। यावन्नेतुं मनश्चक्रुः शङ्खचक्रगदाधराः ॥२१॥
आगता गरुडारूढा विष्णुदूताश्चतुर्भुजाः । विमानं गगने चैव राजहंसयुतं शुभम्॥२२॥

करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥९॥ जो कार्तिक के महीने में श्रीहरि पर एक भी कमल को चढ़ाता है वह समस्त पापों से रहित होकर अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१०॥ जो श्रीहरि को प्रिय कार्तिक मास में प्रातःकाल स्नान करता है, उसको समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥११॥ कार्तिक मास में जो आकाश दीप जलाता है वह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥१२॥ जो मनुष्य श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए आकाश में एक मुहूर्त भी दीपदान करता है, उस पर श्रीहरि सदा प्रसन्न रहते हैं । जो कार्तिक के महीने में श्रीभगवान् के मन्दिर में घी का दीपक जलाता है वह प्रतिदिन अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है ॥१४॥ मैंने कार्तिक में दीपदान विशेष माहात्म्य बतलाया है । हे मुनिश्रेष्ठ! इस इतिहास को आप एकाग्रमन से सुनें ॥१५॥ पहले के त्रेतायुग में वैकुण्ठ नामक एक पवित्र ब्राह्मण थे उनके सङ्ग के ही प्रभाव से पापी मुक्त हो गया ॥१६॥ एक बार वे कार्तिक के महीने में श्रीहरि के समक्ष प्रदीप जलाकर घर चले गये वह दीपक घी से भरा था ॥१७॥ उस घी को खाने के लिए कोई चूहा वहाँ आया । ज्यों ही वह खाना प्रारम्भ किया उसी समय वह दीपक और तेज जलने लगा॥१८॥ अग्नि के भय से वह चूहा तेजी से वहाँ से भागा । श्रीभगवान् की कृपा से चूहा का सारा पाप विनष्ट हो गया ॥१९॥ उस चूहे को साँप ने काट लिया और वह मर गया । उसके बाद यम की आज्ञा से यम के दूत हाथ में पाश तथा मुद्गर धारण करके आये ॥२०॥ उसको लेने के लिए आकर उन सबों ने उसे चमड़े की रस्सी से बाँध दिया । जब वे जाने के लिए तैयार हुए उसी समय शङ्ख, चक्र तथा

निर्मितं कनकैः शुद्धैः कामगं कृपया हरेः ।
पाशं छित्त्वा ततो दूताः प्रोचुस्ते यमकिङ्करान् ॥२३॥
विष्णुभक्तोऽप्यसौ मूढा व्यर्थं तु बन्धनं कृतम् ।
गच्छध्वं शमनप्रेष्या यदि वाञ्छाऽस्ति जीवितुम् ॥२४॥
श्रुत्वा प्रकम्पितास्ते वै पृच्छन्ति विनयान्विताः ।
केन पुण्य प्रभावेण युष्माभिर्नीयते पुरम् ॥२५॥
असौ विष्णोर्महापापी यूयं तद्वक्तुमर्हथ ॥२६॥

विष्णुदूता ऊचुः

पुरतोवासुदेवेस्य प्रदीपबोधनं कृतम्। तेनैव कर्मणा दूता नयामो विष्णुमन्दिरम्॥२७॥
अनिच्छयाऽपि यः कुर्याद्विष्णोर्दीपस्य बोधनम् ।
कोटिजन्मार्जितं पापं त्यक्त्वा याति हरेर्गृहम् ॥२८॥
भक्त्या प्रदीपं यो दद्यात्कार्तिके तु हरेर्दिने ।
तस्य पुण्यं समाख्यातुं न शक्तो हरिणा बिना ॥२९॥
घृतपूर्णप्रदीपं यो भक्त्या दद्याद्धरेर्गृहे । अश्वमेधसहस्रेण तस्य किंवा प्रयोजनम्॥३०॥
अश्वमेधप्रकर्ता यः स्वर्गं याति हरेर्दिने । कार्तिके दीपदाता च सगच्छेद्धरिमन्दिरम्॥३१॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा ततो दूता गतास्ते वै यथाऽऽगताः ।
विष्णुदूता रथे कृत्वा गतास्तं विष्णुमन्दिरम् ॥३२॥

गदा धारण किए हुए ॥२१॥ गरुड पर सवार चार भुजाओं वाले भगवान् विष्णु के दूत वहाँ आ गये। उनका विमान आकाश में था । वह राजहंस से युक्त था ॥२२॥ वह शुद्ध सुवर्ण से निर्मित था, श्रीभगवान् की कृपा से इच्छा के अनुसार चलने वाला था । उन लोगों ने पाश को काटकर यमदूतों से कहा ॥२३॥ मूर्खों यह तो भगवान् विष्णु का भक्त है इसे व्यर्थ ही बन्धन में डाले हो । यमदूतों ! यदि तुमलोग जीना चाहो तो शीघ्र यहाँ से चले जाओ ॥२४॥ इस बात को सुनकर वे भयभीत होकर काँपने लगे। उन सबों ने हाथ जोड़कर कहा— इसके किस पुण्य के प्रभाव से आप लोग इसे विष्णुलोक में ले जा रहे हैं ?॥२५॥ यह तो महापापी है, आपलोग बतलायें । **भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा—** इसने भगवान् वासुदेव के समक्ष दीप को जला दिया है ॥२६॥ उसी कर्म के प्रभाव से इसे हमलोग विष्णुलोक में ले जा रहे हैं । जो व्यक्ति बिना इच्छा के भी भगवान् विष्णु के दीप को जला देता है ॥२७॥ वह अपने करोड़ों जन्म के पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है । जो व्यक्ति एकादशी के दिन श्रीभगवान् को भक्तिपूर्वक दीपदान करता है ॥२८॥ उसको प्राप्त होने वाले पुण्य का वर्णन श्रीहरि को छोड़कर दूसरा कोई नहीं कर सकता है । जो घी से भर कर श्रीहरि के मंदिर में भक्तिपूर्वक दीपदान करता है उसको हजारों अश्वमेध याग करने से कोई लाभ नहीं है । जो अश्वमेध याग करता है, वह स्वर्ग लोक में जाता है और कार्तिक मास के एकादशी के दिन घृतभरा दीप दान करने वाला श्रीहरि के लोक में जाता है । **व्यासजी ने कहा—** इस बात को सुनकर यमदूत जैसे आये थे वैसे ही लौट

विष्णुसान्निध्य एवास्य मन्वन्तरशतं गतम्। ततो मर्त्ये राजकन्या बभूव कृपया हरेः॥३३॥
पुत्रपौत्रसमायुक्ता चिरं भोगं चकार सा। ततःपुनर्गता सा तु गोलोकं हरिसेवया॥३४॥

सूत उवाच

भक्त्या शृणोति यो मर्त्यो दीपमाहात्म्यमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति विष्णुमन्दिरम् ॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे दीपदानमाहात्म्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथा अध्याय

शौनक उवाच

जयन्त्याः सूत माहात्म्यं कदा सा क्रियते जनैः ।
कथयस्व मम त्वं वै पोतःसंसारसागरे ॥१॥

सूत उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टो मुनिसत्तम! । पुरा ब्रह्मा नारदेन पृष्ट एतत्सुरालये॥२॥

नारद उवाच

जयन्त्याश्चैव माहात्म्यं कथयस्व पितामह । यच्छ्रुत्वाऽहं गमिष्यामि तद्विष्णोःपरमं पदम्॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वावहितो विप्र तवाग्रे कथयाम्यहम्। जयन्त्या उपवासेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥४॥

गये ॥२९-३१॥ भगवान् विष्णु के दूत उसे रथ पर बैठाकर विष्णुलोक में ले गये । वह भगवान् विष्णु के सन्निकट सौ मन्वन्तरों तक रहा ॥३२॥ उसके बाद श्रीभगवान् की कृपा से मर्त्यलोक में आकर राजकुमार हुआ । उसने अपने पुत्रों और पौत्रों के साथ दीर्घकाल तक भोगों को भोगा ॥३३॥ इसके बाद वह श्रीहरि की सेवा करने के कारण गोलोक में चला गया । **सूतजी ने कहा—** जो मनुष्य भक्तिपूर्वक दीपदान के माहात्म्य को सुनता है ॥३४॥ वह समस्त पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥३५॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के दीपदान माहात्म्य वर्णन नामक तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

जयन्ती व्रत के माहात्म्य का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! लोग जयन्ती व्रत कब करते हैं ? इस बात को आप बतलायें, उस व्रत का माहात्म्य क्या ? आप तो संसार सागर को पार करने के लिए नौका के समान हैं ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे विप्र ! हे मुनिश्रेष्ठ !! आपने जो पूछा है, उसे मैं बतलाता हूँ । प्राचीनकाल में नारदजी ने ब्रह्माजी से यह प्रश्न देवलोक में किया था ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** हे पितामह ! आप

स्मरणात्कीर्तनात्पापं सप्तजन्मार्जितं मुने !। जयन्ती दहते तच्च किं पुनःसोपवासकृत् ॥५॥
जन्माष्टमी च नवमी चैत्रे मासि सिताशुभा ।
कृष्णा चतुर्दशी कुम्भे मेषे शुक्ल चतुर्दशी ॥६॥
दुर्गाष्टम्याश्विने शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।
महापुण्याश्च शुभदा जयन्त्यः षट् प्रकीर्तिताः ॥७॥
कृष्णजन्माष्टमी पूर्वा प्रसिद्धा पापनाशिनी। क्रतुकोटिसमा ह्येषा तीर्थानामयुतैःसमा॥८॥
कर्ता गवां सहस्त्रं तु यो ददाति दिने दिने ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥९॥
हेमभारसहस्त्रं तु कुरुक्षेत्रे रविग्रहे। तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥१०॥
कृष्णाजिनसहस्त्राणि तिलधेनुशतानि च । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥११॥
कन्याकोटि सहस्त्राणां दाने भवति यत्फलम् ।
तत्फलंसमवाप्नोति जयन्त्या समुपोषणे ॥१२॥
स सागरामिमां पृथ्वीं दत्त्वा यल्लभते फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥१३॥
वापीकूपतडागादि कर्तव्यं देवतालये। तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥१४॥
मातापित्रोर्गुरूणाञ्च भक्तियुक्तः करोति यः ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥१५॥

जयन्ती के माहात्म्य को बतलायें जिसका श्रवण करके मैं भगवान् विष्णु के धाम में जाऊँगा ॥३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे विप्र ! आप सावधानी पूर्वक सुनें उसे मैं बतलाता हूँ । जो जयन्ती का व्रत करता है वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । हे मुने ! स्मरण करने तथा उसका नाम कीर्तन करने से जयन्ती सात जन्मों के पापों को भस्म कर देती है और जो उसका व्रत करता है उसके विषय में क्या कहना है ?॥४-५॥ जन्माष्टमी तथा चैत्रमास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि, कुम्भ मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, मेष मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि, ये छह जयन्तियाँ बतलायी गयी हैं । ये महापुण्यवान् तथा कल्याणकारिणी हैं ॥७॥ सबसे पहले आने वाली कृष्णजन्माष्टमी पाप नाशिका रूप से प्रसिद्ध है । यह करोड़ों यज्ञों तथा दश हजार तीर्थों के समान पुण्यवती बतलायी गयी है ॥८॥ जयन्ती का व्रत करने वाले को वही फल प्राप्त होता है जो प्रतिदिन एक हजार गायों का दान करने से होता है ॥९॥ कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय एक हजार भार सुवर्ण दान करने का जो फल होता है उस फल को जयन्ती व्रत करने वाला प्राप्त कर लेता है ॥१०॥ अनेक हजार कृष्ण मृगचर्म तथा सैकड़ों तिलधेनु का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती हे, उस फल को जयन्ती व्रत करने वाला प्राप्त करता है ॥११॥ करोड़ों हजार कन्यादान करने का जो फल होता है, उस फल की प्राप्ति जयन्ती व्रत करने वाला कर लेता है ॥१२॥ सागरों के साथ सम्पूर्ण पृथिवी का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति जयन्ती व्रत के करने से होती है ॥१३॥ देव मन्दिर में वापी, कूप तथा तडाग आदि का निर्माण करना चाहिए।

आपदा हरणार्थाय तीर्थसेवा कृतात्मनाम् । सत्यव्रतानां यत्पुण्यं जयन्त्यां समुपोषणे॥१६॥
गङ्गायां नर्मदायां यत्पुण्ये सारस्वते जले । स्नात्वा पुण्यमवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥१७॥
यत्पुण्यं श्राद्धकर्तृणां पितॄणामिन्दुसंक्षये । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥१८॥

नारद उवाच

केन केन कृता पूर्वं कथयस्व पितामह ! ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

कार्तवीर्येण कर्णेन कुमारेण च धीमता। सगरेण दिलीपेन ककुस्थेन कृता पुरा॥२०॥
गौतमेन च गार्ग्येण जामदग्न्येन धीमता। वाल्मीकिना कृता पूर्वं द्रौपदेयेन साधुना॥२१॥
ददाति वाञ्छितान्कामान्भाद्रकस्य सिताष्टमी ।
प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता विशेषेण मताऽष्टमी ॥२२॥
वर्षे वर्षे प्रकर्तव्या प्रीत्यर्थे चक्रपाणिनः। कोटिजन्मार्जितं पापं मुहूर्तेन विलीयते॥२३॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा निष्ठापूर्वजितेन्द्रियः । गन्धपुष्पादि नैवेद्यैः पूजनीयः पृथक्पृथक् ॥२४॥
एवं य कुरुते विप्र ! जयन्तीसमुपोषणम्। कोटिजन्मार्जितं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतःकृतम्॥२५॥
प्रसादाद्देवकीसूनोर्यामार्द्धेन विलीयते। जयन्ती तिथिसम्प्राप्तौ भुञ्जते ये नराधमाः ॥२६॥
त्रैलोक्यसम्भवं पापं भुञ्जते ते न संशयः। सागराद्यानि तीर्थानि मुक्तिस्थनानि सर्वशः ॥२७॥

उसके करने से प्राप्त होने वाले फल की प्राप्ति जयन्ती व्रत के करने से होती है ॥१४॥ जो माता-पिता तथा गुरुजनों की सेवा भक्तिपूर्वक करता है, उसको प्राप्त होने वाला फल जयन्ती व्रत करने वाले को होती है ॥१५॥ विपत्ति को दूर करने के लिए, जो तीर्थ की सेवा करके कृतकृत्य हो जाते हैं, तथा जो लोग केवल सत्य ही बोलने का व्रत ले रखे हैं, उनको प्राप्त होने वाले पुण्य की प्राप्ति जयन्ती व्रत करने वाले को होती है ॥१६॥ गङ्गा, नर्मदा तथा सरस्वती नदी के जल में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति जयन्ती व्रत करने वाले की होती है ॥१७॥ आमावस्या तिथि को पितरों का श्राद्ध करने वालों को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति जयन्ती व्रत में उपवास करने वाले को होती है ॥१८॥ **नारदजी ने कहा—** हे पितामह ! आप बतलायें कि इस व्रत को किसने-किसने किया है । **ब्रह्माजी ने कहा—** कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) कर्ण तथा कार्तिकेय॥१९॥ सगर, दिलीप, ककुत्स्थ, ये सब पहले इस व्रत को किए हैं । गौतम, गार्ग्य तथा बुद्धिमान परशुरामजी॥२०॥ तथा महर्षि वाल्मीकि एवं द्रौपदी के पुत्र ने इस व्रत को किया है । भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि समस्त अभिप्रेत कामनाओं को पूर्ण करती है ॥२१॥ प्रजापति देवताक नक्षत्र (रोहिणी) से युक्त अष्टमी विशेष रूप से अभिमत हैं अतएव श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए उस व्रत को प्रतिवर्ष करना चाहिए ॥२२॥ जितेन्द्रिय होकर भक्तिपूर्वक रात्रि में जागरण करके, गन्ध पुरुष इत्यादि से श्रीभगवान् की अलग-अलग पूजा करे । हे विप्र ! इस प्रकार से जो जयन्ती व्रत में उपवास करता है उसके करोड़ों जन्म के पाप एक मुहूर्त तक जागरण करने से नष्ट हो जाते हैं और जानकर अथवा बेजाने ही जयन्ती व्रत करता है, उसके करोड़ों जन्म के पाप भगवान् की कृपा से आधे प्रहर जागरण करने से विनष्ट हो जाते हैं । जो नराधाम जयन्ती तिथि आने पर भोजन करते हैं ॥२३-२६॥ वे निश्चित रूप से त्रैलोक्य

गृहे तिष्ठन्ति सर्वाङ्गे जयन्तीव्रतकारिणः। तस्य सर्वाणि तीर्थानि देहे तिष्ठन्ति देवताः ॥२८॥
करोति यो नरो भक्त्या जयन्तीं कृष्णवल्लभाम् ।
न वेदेन पुराणेन मया दृष्टं महामुने ॥२९॥
तत्समं नाधिकं वापि कृष्णराधाष्टमीव्रतम्। न करोति नरो भक्त्या स भवेत्क्रूरराक्षसः ॥३०॥
यो नरोऽश्नाति मूढात्मा जयन्तीवासरे द्विज ।
महानरकमश्नाति यथा च हरिवासरे ॥३१॥
अतीतमामिष्यच्च कुलमेकोत्तरं शतम्। पतेत्तु नरके घोरे जयन्त्यां भोजनेन वै ॥३२॥
जयन्ती बुधवारे च रोहिण्या सहिता यदा ।
भवेच्च मुनिशार्दूल ! किं कृतैर्व्रतकोटिभिः ॥३३॥
कृते त्रेतायुगे चैव द्वापरे च कलौ युगे। कृता सम्यग्विधानेन जयन्ती पापनाशिनी ॥३४॥
जागरे पद्मनाभस्य पुराणं पाठयेत्तु यः । आजन्मोपार्जितं पापं दहते तूलराशिवत्॥३५॥
यः श्रृणोति नरो भक्त्या पुराणं हरिवासरे ।
कोटिजन्मार्जितं तस्य पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥३६॥
वासरे पद्मनाभस्य पूजयेद्वाचकं मुनेः। कुलकोटिं समुद्धृत्य विष्णुलोके स पूज्यते ॥३७॥
जयन्त्यामुपवासे च यो नरोऽत्रपराङ्मुखः। सर्वधर्मविनिर्मुक्तो यात्यसौ नरकं ध्रुवम्॥३८॥
गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च घृतपूर्णप्रदीकैः। पूजयेद्भक्तिभावैश्च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्॥३९॥

के समस्त पापों को करते हैं । सागर आदि तीर्थ मुक्ति के स्थान हैं ॥२७॥ वे जयन्ती व्रत करने वालों के समस्त गृह में निवास करते हैं । जयन्ती व्रत करने वाले के समस्त अङ्गों में सभी तीर्थों का निवास होता है ॥२८॥ जो मनुष्य भक्ति पूर्वक भगवान् की प्रिया जयन्ती का व्रत करता है; उस व्रत के समान राधा और श्रीकृष्ण का प्रिय न तो वेदों में कोई बतलाया गया है और न तो पुराणों में । उस व्रत को नहीं करने वाला मनुष्य क्रूर राक्षस होता है ॥३०॥ जो मूर्ख जयन्ती के समय भोजन करता है उसको उसी तरह से नरक में जाना होता है, जैसे एकादशी के दिन भोजन करने वाले को जाना पड़ता है॥३१॥ जयन्ती व्रत के समय भोजन करने वाले के एक सौ एक वंश घोर नरक में चले जाते हैं ॥३२॥ यदि बुधवार को राहिणी नक्षत्र को श्रीकृष्ण जयन्ती व्रत हो तो उस व्रत को करने से करोड़ों व्रतों को करने का फल मिलता है ॥३३॥ सत्ययुग, द्वापर, त्रेतायुग तथा कलियुग में किए गये समस्त पापों को विधिपूर्वक किया गया जयन्ती का व्रत विनष्ट कर देता है ॥३४॥ जागरण के समय जो भागवत पुराण पढ़वाता है, वह अपने जीवन भर के पापों को उसी तरह से भस्म कर देता है जिस तरह से अग्नि रुई के ढेर को जला देती है ॥३५॥ जो मनुष्य एकादशी के दिन भक्तिपूर्वक पुराण का श्रवण करता है उसके करोड़ों जन्म के पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ एकादशी के दिन जो कथा वाचक की पूजा करता है वह अपने करोड़ों पूर्वजों का उद्धार करके भगवान् विष्णु के लोक में पूजित होता है ॥३७॥ जो कृष्णजयन्ती के समय उपवास नहीं करता है, वह समस्त धर्मों से रहित होकर नरक में जाता है॥३८॥ जयन्ती के दिन चन्दन, पुष्प, धूप तथा घी से भरे दीपक के साथ ब्राह्मण की पूजा करके ब्राह्मण को दक्षिणा देना चाहिए ॥३९॥ जो ब्राह्मण, इस विधान से जयन्ती व्रत करता है वह अपने इक्कीस पीढ़ी

विधिनाऽनेन यो विप्र जयन्तीं प्रकरोति च ।
नरो वै तारयेद्भक्त्या पुरुषानेकविंशतिम् ॥४०॥
न दौर्भाग्यं न वैधव्यं न भवेत्कलहो गृहे ।
सन्ततेर्न विरोधं च न पश्यति धनक्षयम् ॥४१॥
यान्यांश्चिकीर्षते कामाञ्जयन्तीसमुपोषकः । तांस्तान्प्राप्नोति सकलान्विष्णुलोकं स गच्छति॥४२॥
विष्णुभक्तिपरा नित्यं जयन्तीव्रतमानसाः । ते धन्यास्ते कुलीनास्त ईश्वरास्ते च पण्डिताः॥४३॥
यानि कानि च तीर्थानि व्रतानि नियमानि च ।
जयन्तीवासरस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥४४॥
भाद्रे वै चोभये पक्षे यः करोति सभार्यकः ।
राधाकृष्णाष्टमीं वत्स ! प्राप्नोति हरिसन्निधिम् ॥४५॥
व्रतं च पुण्यकरं च यः करोति सदा हरेः ।
स याति विष्णोर्वैकुठं जयन्तीसमुपोषकः ॥४६॥
अनाचारं कुलभ्रष्टं कीर्तिहीनं कुयोनिजम् । नाशयत्याशु पापं च जयन्ती हरिवल्लभा ॥४७॥
मेरुतुल्यानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। स निर्दहति सर्वाणि जयन्त्यां समुपोषकः ॥४८॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । मोक्षार्थी लभते मोक्षं जयन्त्यां समुपोषकः॥४९॥
जयन्तीकरणे चित्तं येषां भवति तत्परम्। यमोऽपि शङ्कते नित्यं ते यान्ति परमां गतिम्॥५०॥

सूत उवाच

कथयित्वा नारदं तु ययौ स च यथाऽऽगतः ।
मयाऽपिकथितं ब्रह्मन्यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने ॥५१॥

के पुरुषों को तार देता है ॥४०॥ उसके घर में न तो दौर्भाग्य होता है न कोई विधवा होती है और न उस घर में कलह होता है, सन्तानों में विरोध नहीं होता है और न तो किसी का धनक्षय होता है॥४१॥ जयंती व्रत करने वाला जो-जो इच्छा करता है, उसकी वे सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥४२॥ सदा भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाले तथा जयन्ती व्रत करने वाले ही धन्य, कुलीन, ईश्वर (नियामक) तथा पण्डित हैं ॥४३॥ समस्त तीर्थ, व्रत एवं नियम के द्वारा होने वाल फल जयन्ती के दिन के व्रत के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं होते हैं ॥४४॥ हे वत्स ! जो व्यक्ति भाद्रपद मास के दोनों पक्षों में राधा कृष्ण की अष्टमी व्रत को मनाते हैं वे श्रीहरि के सन्निधान को प्राप्त करते हैं ॥४५॥ पुण्यप्रद श्रीहरि के व्रत को जो मनुष्य सदैव करता है, वह जयन्ती व्रत का उपवास करने वाला श्रीहरि के वैकुण्ठ लोक में जाता है ॥४६॥ श्रीभगवान् की प्रिय जयन्ती को उपवास करने वाले की आचारहीनता, कुल भ्रष्टता, कीर्तिहीनता और कुयोनिता जन्य दोषों को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है ॥४७॥ ब्रह्महत्या हत्यादि महान पाप सुमेरु पर्वत के समान महान् है, उन सबों को जयन्ती उपवास करने वाला भस्म कर देता है ॥४८॥ जयन्ती के उपवास करने वाला यदि पुत्र चाहे तो उसे पुत्र मिलता है, धनार्थी धन प्राप्त करता है तथा मोक्ष चाहने वाला मोक्ष प्राप्त करता है॥४९॥ जिसका मन जयन्ती मनाने में लगा रहता है, उससे सदा यमराज भी भयभीत रहते हैं, वह व्यक्ति परमपद

माहात्म्यं च जयन्त्या ये शृण्वन्ति भक्तिभावतः ।
तेऽपि यान्ति परं धाम विमुक्ताः सर्वपातकैः ॥५२॥
पुराणवाचकं ब्रह्मञ्जयन्तीव्रतिनं तथा । ये पश्यन्ति नराः पापास्ते यान्ति परमं पदम्॥५३॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे जयन्तीव्रतमाहात्म्यं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कथयस्व महाप्राज्ञ ! पुत्रहीनो जनो भवेत् ।
कर्मणा केन वै सूत ! पुत्रो भवति केन च ॥१॥

सूत उवाच

एतत्पृष्टः पुरा ब्रह्म नारदेन महात्मना । स यदाह तदा तं च शृणुष्व मुनिपुङ्गव ॥२॥

नारद उवाच

पितामह ! महाप्राज्ञ ! सर्वतत्त्वार्थपारग ! ।
अपुत्रो वै भवेन्मर्त्यः कर्मणा केन पद्मज ! ॥३॥
बन्ध्या स्त्री वा भवेत्केन वृजिनेन ममाग्रतः ।
कथय शृण्वतो वै मे सर्वप्राणिहितेरत ! ॥४॥

को प्राप्त करता है ॥५०॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से कहकर नारदजी जैसे आये थे वैसे ही लौट गये । हे ब्रह्मन् ! आपने जो पूछा था उसे आपको मैंने सुना दिया ॥५१॥ जो लोग जयन्ती के माहात्म्य को भक्ति पूर्वक सुनते हैं, वे भी सभी पापों से रहित होकर परंधाम में जाते हैं ॥५२॥ हे ब्रह्मन् ! जो पापी मनुष्य भी पुराण वाचक तथा जयन्ती का व्रत करने वाले का दर्शन करते हैं वे भी परमगति को प्राप्त करते हैं ॥५३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ खण्ड के जयन्ती माहात्म्य वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

कर्म विपाक का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे महाप्राज्ञ ! आप यह बतलायें कि किस कर्म के फलस्वरूप मनुष्य पुत्रहीन होता है और किस कर्म के करने से उसे पुत्र की प्राप्ति होती हैं ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रश्न को पहले नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा था और ब्रह्माजी ने उनको जो बतलाया; उसे आप सुनें ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** हे सभी तत्त्वों के ज्ञाता महाप्राज्ञ ! पितामह ! हे पद्मज ! किस कर्म के कारण मनुष्य पुत्रहीन होता है ? । हे समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाले ब्रह्माजी!

दुहिता जायते केन कर्मणा वा नपुंसकः। मृतवत्सो भवेत्केन मृतवत्सातिदुःखिता ॥
केन पुण्येन भो ब्रह्मन्पुनः पुत्रो भवेद्वद ॥५॥

ब्रह्मोवाच

कथयामि समासेन सावधानेन तच्छृणु। वृत्तान्तं पृच्छसि त्वं वै शृण्वतां विस्मयप्रदम् ॥६॥
पूर्वजन्मनि यो मर्त्यो वर्तनं ब्राह्मणस्य च। हरेद्वा हारयेदत्र पुत्रहीनो भवेत्किल ॥७॥
इह जन्मनि यो मर्त्यः पुराणश्रवणं हि च ।
स सस्यभूमेर्दानं च कुर्याद्वैश्रद्धयान्वितः ॥८॥
धेनुं बहुगुणां हैमीं बहुदुग्धां सदक्षिणाम् । सुवर्णप्रतिमां चैव तस्य पुत्रो भवेद्ध्रुवम् ॥९॥
पूर्वजन्मनि या नारी परबालकघातनम्। करोति कपटेनैव बालहीना भवेद् ध्रुवम्॥१०॥
सौवर्ण प्रतिमादानं या नारी श्रद्धयान्विता। कुर्यात्पानं ब्राह्मणस्य भक्त्या वै चरणाम्बुनः॥११॥
पुराणश्रवणं चैव दद्याद्वै बहुदक्षिणाम् । बह्वपत्या जीववत्सा भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥१२॥
जले निमग्नं बालं यो दृष्ट्वा या न समुद्धरेत् ।
इहजन्मन्यपुत्रो वै साऽपुत्री च भवेद् ध्रुवम्॥१३॥
वृषभं चैव कूष्माण्डं ससुवर्णसवस्त्रकम्। दद्याद्दानं ब्राह्मणस्य कुर्याद् बालव्रतंशुभम् ॥१४॥
गौरीं कन्यां तथा कुर्यात्पुराणश्रवणं हि यः ।
पुत्रो वै जायते तस्य सर्वपातकनाशनम् ॥१५॥

किस पाप के कारण कोई स्त्री बन्ध्या होती है ? उसे आप मुझे बतलायें मैं सुनना चाहता हूँ ॥३-४॥ अथवा किस कर्म के कारण पुत्र अथवा पुत्री नपुंसक हो जाते हैं । किस कर्म के कारण कोई पुरुष मृतवत्स अथवा अत्यन्त दुखिनी स्त्री मृतवत्सा हो जाती है ? और हे ब्रह्मन् ! किस कर्म के करने से फिर पुत्र की प्राप्ति होती है ?॥५॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** मैं इसे संक्षेप में कहता हूँ; सावधानी पूर्वक सुनो तुम सुनने वालों को विस्मित कर देने वाला वृत्तान्त पूछ रहे हो ॥६॥ जो मनुष्य अपने पूर्वजन्म में किसी ब्राह्मण की वृत्ति का हरण कर लेता है, अथवा हरण करवा देता है वह इस संसार में पुत्रहीन होता है ॥७॥ इस जन्म में जो पुराण का श्रवण करता है, खेती से भरी भूमि का दान श्रद्धापूर्वक करता है ॥८॥ अनेक गुणों से युक्त तथा सुवर्ण से युक्त करके बहुत दूध देने वाली गौ को दक्षिणा के साथ दान करता है तथा सुवर्ण की प्रतिमा का दान करता है उसको निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त होता है ॥९॥ जो नारी छल पूर्वक किसी दूसरे के बालक का पूर्वजन्म में बध किए रहती है, वह निश्चित रूप से पुत्रहीन होती है ॥१०॥ जो नारी श्रद्धा पूर्वक सुवर्ण की प्रतिमा का दान करती है और श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मण के चरणोंदक का पान करती हैं ॥११॥ पुराण का श्रवण करके प्रभूत मात्रा में दक्षिणा दान देती है, वह अनेक पुत्रों वाली तथा जीवित पुत्रों वाली होती है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥१२॥ जो जल में डूबते हुए बालक को देखकर भी उसे नहीं निकालती है, वह इस जन्म में पुत्र अथवा पुत्री से विहीन होती है ॥१३॥ जो गौरी कन्या, बैल, कोहड़ा, सुवर्ण तथा वस्त्र का ब्राह्मण को दान देती है तथा बालव्रत करती है । इसके साथ पुराण का श्रवण करती हैं, उसको सभी पापों का नाश करने वाला पुत्र होता है ॥१४-१५॥ पूर्व जन्म में जो मनुष्य अतिथि ब्राह्मण को क्रोध तथा दण्डा दिखाकर

पूर्वजन्मनि यो मर्त्यो निराशं चातिथिं द्विज ! ।
कुर्यात्क्रोधेन दण्डं च पुत्रहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥१६॥
ब्राह्मणं चातिथिं चैव कुर्याद्भक्त्या प्रपूजनम् ।
अन्नदानं जलं चैव तथा देवालयं शुभम् ॥१७॥
पूर्वजन्मनि या नारी भ्रूणहत्यां च यो नरः ।
कुर्यात्सा मृतवत्सा च मृतवत्सो भवेद् ध्रुवम् ॥१८॥
या नारी स्वामिसहिता कुर्याच्च हरिवासरम् ।
सुपुत्रा भर्तृसुभगा भवेत्सा प्रति जन्मनि ॥१९॥
यो नरो गोदमं कुर्याच्छूद्रः कुर्याद्विमोहितः ।
ब्राह्मणीहरणं वापि कर्मणा स नपुंसकः ॥२०॥
इदं तु वृजिनं कृत्वा पश्चात्पुण्यं करोति यः ।
इह पुण्यप्रभावेण दुहिता जायते द्विज ! ॥२१॥
आसीत्त्रेतायुगे राजा श्रीधरो नामतो द्विज ! ।
अपुत्रो धनवांस्तस्य जाया हेमप्रभावती ॥२२॥
व्यासं सकलशास्त्रज्ञं सर्वलोकहितैषिणम् । आगतं चैव पप्रच्छ चापुत्रोऽहं कथं द्विज !॥२३॥
उवाच नृपतेः श्रुत्वा वचनं विनयान्वितम् । राज्ञा दत्ते च पीठे च निर्मिते कनकादिभिः॥२४॥
राजा राज्ञी तस्य पादौ धौतौ कृत्वा च हर्षितौ ।
पीत्वा पादोदकं द्वौ च सर्वपातकनाशनम् ॥२५॥

व्यास उवाच

राजञ्छृणुष्व यत्पृष्टमपुत्रो येन कर्मणा । तवेयं राज्ञी चापुत्री चैकपत्नीव्रतस्तथा॥२६॥

निराश कर देता है वह निश्चित रूप से पुत्रहीन होता है ॥१५॥ उसे चाहिए कि वह अर्थी ब्राह्मण की भक्तिपूर्वक पूजा करके उसे अन्न, जल तथा देवालय का दान दे ॥१७॥ जो पुरुष अथवा नारी भ्रूणहत्या किए रहती है वह नारी मृतवत्सा होती है और पुरुष मृतवत्स होता है ॥१८॥ जो नारी अपने पति के साथ एकादशी का व्रत करती है, वह प्रत्येक जन्मों में पुत्रों वाली सधवा होती है ॥१९॥ जो शूद्र पुरुष अज्ञान के कारण गौ के साथ मैथुन करता है, अथवा ब्राह्मणी का अपहरण करता है, वह अपने कर्म के कारण नपुंसक होता है ॥२०॥ जो पाप को करने के बाद पुण्य कर्मो को करता है तो बाद में पुण्य के प्रभाव से वह पुत्रवान् होता है ॥२१॥ हे द्विज ! पहले के त्रेतायुग में एक श्रीधर नामक राजा था । वह पुत्रहीन था और उसकी पत्नी का नाम हेमप्रभावती था ॥२२॥ सभी शास्त्रों के ज्ञाता तथा सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करने वाले आये हुए व्यासजी से उसने पूछा कि मैं हे द्विज ! मैं पुत्रहीन क्यों हूँ ?॥२३॥ राजा ने व्यासजी को सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाकर पति पत्नी ने उनके दोनों पैरों को धोया और प्रसन्नता का अनुभव किया, उनके सर्वपाप विनाशक चरणोदक का पान किया । राजा की नम्रता युक्त वाणी को सुनकर ॥२४-२५॥ **व्यासजी ने कहा**— राजन् ! आप जिस कर्म के कारण

पूर्वजन्मनि चन्द्रस्त्वं नाम्ना वस्तनुः स्मृतः। भार्या तवापि शुभ्राङ्गी नाम्ना वै शङ्करी स्मृता ॥२७॥

एकदा पथि यातौ च नीचपुत्रं जलेऽपि च ।

मग्नं दृष्ट्वा हेलया च गतौ स पञ्चतां गतः ॥२८॥

बहुपुण्यप्रभावेण राज्ञी राजा गतौ युवाम्। तेन कर्मविपाकेन युवयोर्न भवेत्सुतः ॥२९॥

राजोवाच

इदानीं केन पुण्येन सुतो वै जायते प्रभो। अपुत्रस्य मनुष्यस्य जीवनं हि निरर्थकम्॥३०॥

व्यास उवाच

सवस्त्रं चैव कृष्माण्डं वृषभं ससुवर्णकम्। देहि दानं ब्राह्मणस्य कुरुबालव्रतं तथा॥३१॥

गौरीं कन्यां तथा देहि पुराणश्रवणं कुरु। पुत्रो वै जायते तत्र सर्वपातकनाशनम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा ततो राजा व्यासोक्तं दानमुत्तमम् ।

पुराणश्रवणं चैव चकार गतकिल्बिषः ॥३३॥

ततः पुत्रो वर्षमध्ये बभूव सर्वपूजितः। अभूद्राजा सार्वभौमः सुन्दरः कुलनायकः ॥३४॥

सूत उवाच

य इदं शृणुयाद्भक्त्या करोति दानमुत्तमम् ।

अपुत्रो लभते पुत्रं संक्षेपात्कथितं मया ॥३५॥

भक्त्या श्रुत्वा तु या नारी कुर्याद् ब्राह्मणपूजनम् ।

सुपुत्रा सा भवेन्नित्यं शास्त्रोक्तविधिना द्विज !॥३६॥

एक पत्नी व्रत होकर भी पुत्रहीन हैं उसे आप सुनें और आपकी पत्नी भी पुत्रहीन है ॥२६॥ पूर्वजन्म में आपका नाम चन्द्र था और आपका सुन्दर शरीर था । आपकी सुन्दरी पत्नी का नाम शङ्करी था ॥२७॥ एक बार आप दोनों रास्ते में जा रहे थे । आपने देखा कि कोई नीच का पुत्र पानी में डूब गया, देखकर भी आप दोनों चले गये और वह बालक मर गया ॥२८॥ बहुत अधिक पुण्य करने के कारण आप दोनों राजा और रानी हुए, किन्तु उस कर्म के प्रभाव से आप दोनों पुत्र विहीन हैं ॥२९॥ **राजा ने कहा**— हे प्रभों ! इस समय किस पुण्य को करने से पुत्र हो सकता है, निष्पुत्र मनुष्यों का तो जीवन ही व्यर्थ हो जाता है ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा**— तुम वस्त्र में लपेट कर सुवर्ण युक्त कुसुमाण्ड तथा बैल का दान ब्राह्मण को दो, बालव्रत करो और गौरी कन्या का दान करो, पुराण का श्रवण करो, ऐसा करने से समस्त पापों को नष्ट करने वाला पुत्र होगा ॥३१-३२॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— इस तरह से व्यासजी की वाणी को सुनकर राजा ने व्यासोक्त दानों को किया, पुराण का श्रवण किया । उसके सारे पाप विनष्ट हो गये ॥३३॥ उसके बाद एक वर्ष के बीच में ही सबों से पूजित उसका पुत्र हुआ । वह सुन्दर बालक अपने वंश को बढ़ाने वाला सार्वभौम राजा हुआ ॥३४॥ **सूतजी ने कहा**— जो इस प्रसङ्ग को भक्ति पूर्वक सुनता है और उत्तम दान करता है, वह सूत्र हीन हो तो पुत्र को प्राप्त करता है । इस बात को मैंने संक्षेप में कहा है ॥३५॥ जो नारी इस प्रसङ्ग को भक्तिपूर्वक सुनकर ब्राह्मण की पूजा शास्त्रोक्त विधि से करती है तो वह सदैव पुत्रवती होती है ॥३६॥ सुवर्ण, चाँदी और वस्त्र, पुष्प, माला, चन्दन

सुवर्णं रजतं वस्त्रं पुष्पमाल्यं च चन्दनम्। यो दद्यात्पुस्तके भक्त्या सर्वपापप्रणाशनम् ॥३७॥
पूर्वजन्मनि यो मूढो ब्रह्मबालकघातकः। तस्य क्रूरो भवेत्पुत्रः सप्तजन्मान्तरैर्द्विज ! ॥३८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मानारदसंवादे कर्मविपाककथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठा अध्याय

शौनक उवाच

केन पुण्येन भो सूत ! वैकुण्ठं समवाप्यते।
तद्वदस्व शृण्वतो मे पोतो हि भवसागरे ॥१॥

सूत उवााच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ ! सर्वमङ्गलकारक ! ।
कथयामि समासेन शृण्वतां पापनाशनम् ॥२॥
विष्णवे ब्राह्मणायैव मृदा वेश्मविनिर्मितम्। यो वै दद्याद् द्विजश्रेष्ठ ! तस्य पुण्यं निशामय॥३॥
विष्णुलोके च विप्रः स सर्वपापविवर्जितः।
सौधवासी भवेन्नित्यं विष्णुलोके प्रपूज्यते ॥४॥
विष्णवे सौधगेहं यो दद्याद्वै ब्राह्मणाय च। हरेर्निकेतनं प्राप्य स्वर्गवासी भवेद्ध्रुवम्॥५॥
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा युक्तः कोटिकुलैर्द्विज ! ।
स्वर्णसौधे गृहे स्थित्वा कुर्याद्भोगं यथासुखम् ॥६॥

तथा दो पुस्तक दान करती है, तो उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥३७॥ जो मूर्ख पूर्व जन्म में बालक का वध किए रहता है उसके सात जन्मों तक क्रूर पुत्र होते हैं ॥३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के ब्रह्मानन्द संवादान्तर्गत कर्म विपाक वर्णन नामक पाँचवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

वैकुण्ठ प्राप्ति के साधन का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! आप तो संसार रूपी सागर से पार जाने के लिए नौका के समान हैं। आप यह बतलाएँ कि किस पुण्य कर्म के करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। **सूतजी ने कहा—** हे सबों का मङ्गल करने वाले शौनक महर्षि ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। मैं इसे संक्षेप में बतलाता हूँ। यह प्रसङ्ग सुनने वालों के पाप का विनाश करने वाला है ॥२॥ ब्राह्मण रूपी विष्णु को मिट्टी से बने गृह को जो ब्राह्मण श्रेष्ठ प्रदान करता है, उसके प्राप्त होने वाले पुण्य को आप सुनें ॥३॥ वह ब्राह्मण समस्त पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के लोक में सुवर्ण रचित भवन में नित्य ही निवास करता है और विष्णु लोक में वह पूजित होता है ॥४॥ जो भगवान् विष्णु

ब्राह्मणस्थापने पुण्यं यद्वै भवति भो मुने। सङ्ख्यां कर्तुमशक्तस्तु तद्वैधाः सर्वकारकः ॥७॥
गण्यन्ते रेणवश्चैव गण्यन्ते वृष्टिबिन्दवः। न गण्यते विधात्रादि ब्रह्मसंस्थापने फलम् ॥८॥
नारदेन पुरा ब्रह्मा पृष्टः संसारसम्भवः। वेधास्तं कथयामास तच्छृणुष्व महामुने !॥९॥
पुराऽऽसीद्द्वापरे ब्रह्मन्वारनारी सुशोभना। सुकेशी हरिणीनेत्रा सुमध्या चारुहासिनी॥१०॥
नाम्ना सा चञ्चलापाङ्गी ययौ देशान्तरं कदा।
सर्वपापसमायुक्ता नरके पातयन्ति च ॥११॥
सह जारेण सा वित्तकामा देवालयं गता। तत्र क्षणं सोपविष्टा ताम्बूलभक्षणं कृतम् ॥१२॥
शेषं चूर्णं सौधभित्तौ दत्त्वा निम्ने कुतूहलात्।
ततो गता जारकाङ्क्षी धनार्थं नगरं प्रति ॥१३॥
जारेण केनचित्सार्द्धं सङ्केत सहसा कृतः। सङ्केतं तु गता वेश्या वनं रात्रौ विमोहिता ॥१४॥
सङ्केतं नागतो वैश्यो व्यशङ्किष्ट विलोकिता।
कथं कान्तो नागतो मे सर्पव्याघ्रैश्च भक्षितः ॥१५॥
सङ्केतनं कथं हित्वा गतःकिं कामविह्वलः।
अन्यया ज्ञातया सार्द्धमभिलाषी भवेत्किमु ॥१६॥
परामृश्येति हृद्यन्तः कोटपालभयाद् द्विज !।
नगरं नागता सा हि लोकमार्गे तमोवृते ॥१७॥

को तथा ब्राह्मण को भवन का दान करता है वह श्रीभगवान् के लोक में जाकर स्वर्ग में निवास करता है ॥५॥ अन्त में वह अपने करोड़ों पूर्वजों के साथ भगवान् विष्णु के लोक में जाकर स्वर्ण निर्मित भवन में अपने मनोऽनुकूल सुख को भोगता है ॥६॥ हे मुने ! ब्राह्मण को बसाने में जो पुण्य होता है उसकी गणना सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते हैं। पृथिवी के धूलिकणों को तथा वर्षा की बिन्दुओं को गिना जा सकता है; किन्तु ब्राह्मण को बसाने से होने वाले पुण्यों की गणना तो ब्रह्मा जी भी नहीं कर सकते हैं ॥८॥ प्राचीन काल में नारदजी ने ब्रह्माजी से इस विषय में पूछा तो उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा उसे आप सुनें ॥९॥ प्राचीनकाल में एक चंचलापाङ्गी नाम की वेश्या थी, वह सुन्दरी थी उसके केश सुन्दर थे, नेत्र हरिणी के नेत्र के समान बड़े थे, कमर पतली थी और उसकी हँसी मनोहर थी। जब वह दूसरे देश में गयी वह नरक में डाल देने वाले समस्त पापों से युक्त थी। वह जार से धन कमाने की इच्छा से देवालय (मन्दिर) में गयी वहाँ पर वह क्षणभर बैठी तथा वह पान भी खायी ॥१०-११॥ बचे हुए चूने को उसने मंदिर के दिवाल में कुतूहल वशात् पोत दिया। उसके बाद वह जार को प्राप्त करने की इच्छा से नगर में धन प्राप्त करने के लिए गयी। उसने किसी जार (प्रेमी) के साथ मिलने का सङ्केत स्थान निश्चित किया। वह गणिका लालचवशात् रात्रि होने पर भी उस सङ्केत स्थान में गयी ॥१३-१४॥ किन्तु उसका प्रेमी उस सङ्केत स्थान पर नहीं आया तो उसको शङ्का होने लगी। मेरा प्रेमी क्यों नहीं आया ? क्या उसको किसी सर्प अथवा बाध ने तो नहीं खा लिया ?॥१५॥ वह काम से विह्वल था किन्तु सङ्केत स्थान में क्यों नहीं आया, अथवा किसी दूसरी स्त्री के साथ वह चला गया क्या ?॥१६॥ अपने हृदय में इस तरह से विचार करके वह कोतवाल

एतस्मिन्नन्तरे व्याघ्रः कामरूपी क्षुधातुरः । प्रेषितः कालदेवेनाग्रसदागत्य तां द्विज ! ॥१८॥
ततस्तु यमुनाभ्रातुर्दूतास्ते भीमवर्ष्मिणः । आगता गिरिकूटाङ्गा नेतुं तां पापकर्मणा ॥१९॥
वक्रपादा वक्रमुखा उन्नासा बहुदंष्ट्रिणः । चर्मरज्जूर्मुद्गरांश्च गृहीत्वा पांसुलान्द्विज ! ॥२०॥
बन्धयामासुरुन्मत्ता गणिकां चर्मरज्जुभिः । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः ॥२१॥
प्रेषिता देवदेवेन तद्भक्तवत्सलेन च । कृष्णाजीमूतसङ्काशाः स्फुरद्वदनपङ्कजाः ॥२२॥
श्रेणीधराश्चारुनासा दिव्यकुण्डलभूषिताः । ददृशुः पथि गच्छन्तो विष्णोर्दूताःमहाबलाः ॥२३॥

विष्णुदूता ऊचुः

के यूयं विकृताकारा लक्ष्यध्वे कुर्बरा इव ।
इमां विष्णोः प्रियतमां नीत्वा क्व व्रजथोत्तमाम् ॥२४॥

इदं वचनमाकर्ण्य तेषां ते तु द्रुतं ययुः । अथ ते क्रोधसम्पन्ना विष्णोर्दूता महाबलाः ॥२५॥
जघ्नुस्ते सन्देशहरान्यमस्य जगतः प्रभोः । चक्रादिशस्त्रसङ्घैश्च सूर्यकोटिसमप्रभैः ॥२६॥

कृतान्तस्य भटाः सर्वे रुदन्तस्ते पलायिताः ।
यमं प्रोचुःसुभीताश्च वृत्तान्तं सकलं द्विज ! ॥
यमोऽपि तत्कथां श्रुत्वा चित्रगुप्तमुवाच ह ॥२७॥

धर्म उवाच

केन पुण्येन भो मन्त्रिन्वेश्या मुक्तिं समागता ।
एतन्मे पृच्छतःसर्वं कथयस्व यथार्हतः ॥२८॥

के भय से अन्धकारच्छन्न मार्ग से नगर में नहीं गयीं ॥१७॥ हे द्विज ! इसी बीच काल देवता के द्वारा प्रेषित एक भूख से व्याकुल बाघ आया और उसको खा लिया ॥१८॥ उसके बाद भयङ्कर शरीर वाले यमराज के दूत उसके पाप कर्मों के कारण उसे लेने के लिए आये । उन यमदूतों के शरीर पर्वत समूह के समान थे ॥१९॥ उनके पैर टेढ़े थे तथा मुख भी टेढ़े थे । नाक उठी थी और दाँत बड़े-बड़े थे। हाथ में चमड़े की रस्सी तथा मुद्गर लिए थे । उस पापिनी गणिका को उन उन्मत्तों ने चमड़े की रस्सी में बाँध दिया । उसी समय देवाराध्य भक्तवत्सल श्रीहरि से भेजे गये, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा वनमाला धारण किए हुए नील मेघ के समान शरीर वाले तथा जिनके मुख कमल के समान चमक रहे थे ॥२०-२२॥ उनकी नाक सुन्दर थी, ऐसे पंक्तिबद्ध, दिव्य कुण्डलोंसे अलंकृत महाबलवान्, भगवान् विष्णु के दूतों ने जाते हुए यमदूतों को मार्ग में देखा ॥२३॥ **भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा—** विकृत आकार वाले धूएँ के समान दिखाने वाले तुमलोग कौन हो ? इस भगवान् के उत्तम भक्त को लेकर कहाँ जा रहे हो ? विष्णुभक्तों की उस वाणी को सुनकर वे विष्णुदूतों पर टूट पड़े ॥२४॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर महावलवान् भगवान् विष्णु के दूतों ने यमराज के दूतों को मारा ॥२५॥ करोड़ों सूर्य की कान्ति वाले चक्र आदि शस्त्र समूह से मारे गये यमराज के दूत रोते हुए यमराज के पास गये ॥२६॥ भयभीत हुए उन सबों ने सारा वृत्तान्त यमराज को सुनाया । उस बात को यमराज ने चित्रगुप्त से कहा॥२७॥ **धर्मराज ने कहा—** हे मन्त्रिन् किस पुण्य के कारण वेश्या ने मुक्ति प्राप्त कर लिया ? मैं आपसे पूछता हूँ उसे ठीक-ठीक आप बतलायें ॥२८॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** उसने जन्म से ही अनेक पापों को किया

चित्रगुप्त उवाच

तया पापान्यर्जितानि जन्मतःसुबहून्यपि ।
किंत्वाकर्णय लोकेश ! यदस्याः पुण्यमस्ति तत् ॥२९॥
गणिकैकदा धर्मराज सर्वालङ्कारभूषिता । काञ्चितुरीं जगामाशु जारकामा धनर्थिनी ॥३०॥
तत्र देवालये तस्मिन्स्थित्वा ताम्बूलभक्षणम् ।
कृत्वा तच्छेषचूर्णं तु ददौ भित्तौ तु कौतुकात् ॥३१॥
तेन पुण्यप्रभावेण गणिका गतपातका। वैकुण्ठं प्रति सा याति निर्गता तव दण्डतः॥३२॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा ततो दूता यमोऽपि वचनं द्विज ।
व्यापारे चान्यतश्चितं ददुःसा गणिकापि च ॥३३॥
आरूढा स्यन्दने दिव्ये राजहंसयुते तथा । विष्णुलोकं ययौ सा च वेष्टिता विष्णुकिङ्करैः॥३४॥
श्रीविष्णोराज्ञया साथ कुलकोटियुताऽपि च ।
तस्थौ सौधगृहे विप्र ! नानाभोगं चकार ह ॥३५॥
भक्त्या यो वौ हरेर्गेहे दद्याच्चूर्णं प्रयत्नतः ।
पुण्यं किं वा भवेत्तस्य न जाने द्विजपुङ्गव ! ॥३६॥
भक्त्याऽध्यायं पठेद्यो वै शृणोति सादरोऽपि च ।
सर्वपापविनिमुक्तो यात्यसौ हरिमन्दिरम् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मानारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

है । किन्तु उसका जो पुण्य है उसको आप सुनें ॥२९॥ हे धर्मराज ! वह वेश्या सभी अलङ्कारो से भूषित होकर किसी जार पुरुष को प्राप्त कर उससे धन प्राप्त करने की इच्छा से किसी नगर में गयी॥३०॥ वहाँ पर वह देवालय में रुककर पान खाया और खाने से बचे हुए चूने को दिवाल में पोत दिया ॥३१॥ उस पुण्य के प्रभाव से उस गणिका के पाप विनष्ट हो गये और वह यम के दण्ड से बाहर निकल कर वैकुण्ठ नगर में चली गयी ॥३२॥ **सूतजी ने कहा—** हे द्विज ! इस बात को सुनकर यम और उनके दूत दूसरे व्यापार में अपने मन को लगा लिए और वह वेश्या भी ॥३३॥ राजहंस से युक्त दिव्य रथ पर सवार होकर भगवान् विष्णु के दूतों से घिरी हुयी विष्णुलोक में चली गयी ॥३४॥ भगवान् विष्णु की आज्ञा से वह अपने करोड़ों वंश वालें के साथ वहाँ के भवन में स्थित हो गयी और अनेक प्रकार के भोगों का अनुभव किया ॥३५॥ जो मनुष्य भगवान् के मंदिर को चूने से पोतवाता है उसको कितना पुण्य होता है, इस बात को मैं नहीं जानता हूँ ॥३६॥ जो भक्ति और आदर पूर्वक इस अध्याय को पढता है वह समस्त पापों से रहित होकर श्रीभगवान् के लोक में जाता है ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के ब्रह्मानारद संवादान्गर्त छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

सातवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कथयस्व महाप्राज्ञ ! गोलोकं याति कर्मणा ।
सुमते दुस्तरात्केन जनः संसारसागरात् ॥
राधायाश्चाष्टमी सूत तस्या माहात्म्यमुत्तमम् ॥१॥

सूत उवाच

ब्रह्माणं नारदोऽपृच्छत्पुरा चैतन्महामुने । तच्छृणुष्व समासेन पृष्टवान्स यथा द्विज !॥२॥

नारद उवाच

पितामह ! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविदांवर। राधाजन्माष्टमी तात कथयस्व ममाग्रतः ॥३॥
तस्याःपुण्यफलं किं वा कृतं केन पुरा विभो ! ।
अकुर्वतां जनानां हि किल्विषं किं भवेद्विभो !॥४॥
केनैव तु विधानेन कर्तव्यं तद्व्रतं कदा ।
कस्माज्जाता च सा राधा तन्मे कथय मूलतः ॥५॥

ब्रह्मोवाच

राधाजन्माष्टमीं वत्स ! श्रृणुष्व सुसमाहितः ।
कथयामि समासेन समग्रं हरिणा बिना ॥६॥
कथितुं तत्फलं पुण्यं न शक्नोत्यपि नारद ।
कोटिजन्मार्जितं पापं ब्रह्महत्यादिकं महत् ॥७॥
कुर्वन्ति ये सकृद्भक्त्या तेषां नश्यति तत्क्षणात् ।
एकादश्याःसहस्रेण यत्फलं लभते नरः ॥८॥

गोलोक प्राप्ति के साधनभूत राधाष्टमी व्रत का माहात्म्य

शौनक महर्षि ने कहा— हे महाप्राज्ञ ! सूतजी आप मुझे यह बलायें कि मनुष्य किस पुण्य कर्म को करके इस दुस्तर संसार से गोलोक में जाता है ? तथा आप राधाष्टमी व्रत की भी उत्तम महिमा को मुझे बतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे महामुने ! इस बात को प्राचीन काल में नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा था और नारदजी ने जो पूछा था उसको आप समास में सुनें ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** हे समस्त शास्त्रों को जानने वालों में श्रेष्ठ पितामह ब्रह्माजी आप मुझे राधाष्टमी के विषय में बतलायें ॥३॥ उसके करने से किस पुण्य फल की प्राप्ति होती है ? जो लोग राधाष्टमी का व्रत नहीं करते है, उनको होने वाले पापों को भी आप बतलायें ॥४॥ उस व्रत को कब तथा किस विधि से करना चाहिए । आप मुझे यह भी बतलायें कि राधा किससे उत्पन्न हुयी थीं ॥५॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे वत्स ! सावधान होकर राधाष्टमी को सुनें । उसको मैं संक्षेप में कहता हूँ श्रीहरि के बिना कोई भी पूर्ण रूप से ॥६॥ उसके पुण्य फल को नहीं कह सकता है । हे नारद ! करोड़ों जन्मों में किए गये ब्रह्महत्या आदि पाप॥७॥ भी उन लोगों के विनष्ट हो जाते हैं जो लोग भक्ति पूर्वक राधाष्टमी व्रत को करते हैं । हजार बार एकादशी

राधाजन्माष्टमी पुण्यं तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्त्वा यत्फलमाप्यते ॥९॥
सकृद्राधाष्टमीं कृत्वा तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
कन्यादानसहस्रेण यत्पुण्यं प्राप्यते जनैः ॥१०॥

वृषभानुसुताष्टम्या तत्फलं प्राप्यते जनैः । गङ्गादिषु च तीर्थेषु स्नात्वा तु यत्फलं लभेत्॥११॥
कृष्णप्राणप्रियाष्टम्या फलं प्राप्नोति मानवः । एतद्व्रतं तु यः पापी हेलया श्रद्धयाऽपि वा॥१२॥
करोति विष्णुसदनं गच्छेत्कोटिकुलान्वितः । पुरा कृतयुगे वत्स ! वारनारी सुशोभना ॥१३॥
सुमध्या हरिणीनेत्रा शुभाङ्गी चारुहासिनी । सुकेशी चारुकर्णी नाम्रा लीलवती स्मृता ॥१४॥
तया बहूनि पापानि कृतानि सुदृढानि च । धनाशया चैकदा सा निस्सृत्य पुरतःस्वतः ॥१५॥
गतान्यनगरं तत्र दृष्ट्वा सुज्ञजनान्बहून् । राधाष्टमी व्रतपरान्सुन्दरे देवतालये ॥१६॥
गन्धपुष्पैर्धूपदीर्वस्त्रैर्नानाविधैःफलैः । भक्तिभावैः पूजयतो राधाया मूर्तिमुत्तमाम्॥१७॥
केचिद्गायन्ति नृत्यन्ति पठन्ति स्तवमुत्तमम् । तालवेणुमृदङ्गांश्च वादयन्ति च के मुदा॥१८॥
तांस्तांस्तथाविधान्दृष्ट्वा कौतूहलसमन्विता । जगाम तत्समीपं सा पप्रच्छ विनयान्विता॥१९॥

भोभोःपुण्यात्मानो यूयं किं कुर्वन्तो मुदान्विताः ।
कथयध्वं पुण्यवन्तो मां चैव विनयान्विताम् ॥२०॥

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा परकार्यहिते रताः । अरेभिरे तदा वक्तुं वैष्णवा व्रततत्पराः ॥२१॥

व्रत करने से मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है । राधाजन्माष्टमी का फल उसके सौ गुना अधिक होता है । सुमेरु पर्वत के समान सुवर्ण का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥९॥ उसके सौ गुना अधिक फल एक बार राधाष्टमी का व्रत करने से होता है । हजारों कन्यादान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥१०॥ उस फल की प्राप्ति वृषभानु की पुत्री राधाजी की अष्टमी का व्रत करने से होती हैं । गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति भगवान् कृष्ण की प्राणप्रिया राधा की अष्टमी का व्रत करने से होती है । यदि कोई पापी अनादर अथवा अश्रद्धा पूर्वक भी इस व्रत को करता है, वह अपने करोड़ों वंश वालों के साथ भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । हे वत्स ! पहले के सत्ययुग में एक सुन्दर नारी थी ॥१२-१३॥ उसकी कमर पतली थी, नेत्र हरिणी के समान थे, वह मनोहर मुस्कान करती थी । उसके केश सुन्दर थे, नाक मनोहर थी और उसका नाम लीलावती था ॥१४॥ उसने अनेक प्रकार के वहुत से पाप किए थे । एक वार वह धन प्राप्त करने की इच्छा से स्वयं नगर से वाहर निकली ॥१५॥ और दूसरे नगर में चली गयी । वहाँ बहुत से सज्जनों को सुन्दर मन्दिर में राधाष्टमी वहाँ व्रत को करते हुए उसने देखा ॥१६॥ वे लोग चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र तथा अनेक प्रकार के फलों से राधाजी की मूर्ति की पूजा भक्तिभाव से कर रहे थे ॥१७॥ कुछ लोग उत्तम स्तोत्र को पढते गाते और नृत्य करते थे । कुछ लोग प्रसन्नता पूर्वक ताल पूर्वक, वेणु तथा मृदङ्गों को बजाते थे ॥१८॥ विभिन्न प्रकार के उन लोगों को देखकर वह उन लोगों के पास जाकर नम्रता पूर्वक पूछी ॥१९॥ हे पुण्ययात्मा पुरुषों आपलोग प्रसन्न्ता पूर्वक क्या कर रहे हैं? हे पुण्यवान् पुरुषों ! आपलोग मुझे बतलायें मैं आपलोगों के समक्ष विनयावनत हूँ ॥२०॥ उसकी वाणी

राधाव्रतिन ऊचुः

भाद्रे मासि सिताष्टम्यां जाता श्रीराधिका यतः ।
अष्टमी साद्य सम्प्राप्ताकुर्महे तां प्रयत्नतः ॥२२॥
गोघातजनितं पापं स्तेयजं ब्रह्मघातजम्। परस्त्रीहरणाच्चैव तथा च गुरुतत्पजम्॥२३॥
विश्वासघातजं चैव स्त्रीहत्याजनितं तथा । एतानिनाशयत्याशु कृताया चाष्टमीनृणाम् ॥२४॥
तेषां च वचनं श्रुत्वा सर्वपापतकनाशनम् । करिष्याम्यहमित्येव परामृश्य पुनः पुनः॥२५॥
तत्रैव व्रतिभिः सार्द्धं कृत्वा सा व्रतमुत्तमम् ।
दैवात्सा पञ्चतां याता सर्पघातेन निर्मला ॥२६॥
ततो यमाज्ञया दूताःपाशमुद्गरपाणयः । आगतास्तां समानेतुं बबन्धुरतिकृच्छ्रतः ॥२७॥
यदानेतुं मनश्चक्रुर्यमस्य सदनं प्रति । तदाऽऽगता विष्णुदूताःशङ्खचक्रगदाधराः ॥२८॥
हिरण्मयं विमानं च राजहंसयुतं शुभम्। छिन्नं च चक्रधाराभिः पाशं कृत्वा त्वरान्विताः॥२९॥
रथे चारोपयामासुस्तां नारीं गतकिल्विषाम् ।
निन्युर्विष्णुपुरं ते च गोलोकाख्यं मनोहरम् ॥३०॥
कृष्णेन राधया तत्र स्थिता व्रतप्रसादतः। राधाष्टमी व्रतं तात यो न कुर्याच्च मूढधीः ॥३१॥
नरकान्निष्कृतिर्नास्ति कोटिकल्पशतैरपि। स्त्रियश्च या न कुर्वन्ति व्रतमेतच्छुभप्रदम् ॥३२॥
राधाविष्णोःप्रीतिकरं सर्वपापप्रणाशनम्। अन्ते यमपुरीं गत्वा पतन्ति नरके चिरम्॥३३॥

को सुनकर दूसरे के कार्य में कल्याण करने वाले, वैष्णव व्रत करने वाले उन लोगों ने कहना प्रारम्भ किया ॥२१॥ **राधा व्रत करने वालों ने कहा—** चूकि भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन राधाजी का जन्म हुआ था वही अष्टमी आज है और हमलोग उसी का व्रत उत्साह पूर्वक कर रहे हैं ॥२२॥ इसका व्रत करने से यह अष्टमी मनुष्यों के गोहत्या जन्य पाप, चोरी, ब्रह्महत्या, परस्त्री गमन, भ्रूण हत्या जन्य पाप तथा गुरु की शय्या पर सोने से होने वाले पाप ॥२३॥ विश्वासघात करने से होने वाले पाप तथा स्त्री का वध करने से होने वाले पाप इन सभी पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है ॥२४॥ उन लोगों के समस्त पाप विनाशक वाणी को सुनकर उसने अपने मन में यह बारम्बार विचार किया कि मैं भी इस व्रत को करूँगी ॥२५॥ उसने वहीं पर उस व्रत करने वालों के साथ व्रत किया, दैववशात् उसको वही सर्प ने काट लिया और वह मर गयी ॥२६॥ उसके बाद यमराज की आज्ञा से उनके दूत हाथ में पाश तथा मुद्गर लेकर आये और उसको अत्यन्त कष्ट देकर बाँध दिये ॥२७॥ जब वे सब उसके लेकर यमलोक जाने के लिए तैयार हुए उसी समय शङ्ख, चक्र तथ गदा धारण किए भगवान् विष्णु के भी दूत आ गये ॥२८॥ उनका विमान सुवर्णमय था और उसमें राजहंस लगे हुए थे । उन लोगों ने चक्र की धारा से यमदूतों के पाश को काट दिया और शीघ्रता पूर्वक ॥२९॥ उस निष्पाप नारी को रथ पर बैठाया और गोलोक नामक भगवान् विष्णु के मनोहर लोक में लाये ॥३०॥ वहाँ पर राधा और कृष्ण विद्यमान थे, यह व्रत के प्रभाव से हुआ । हे तात ! जो मूर्ख राधाष्टमी का व्रत नहीं करता है ॥३१॥ वह करोड़ों सौ कल्पों में भी नरक से बाहर नहीं निकलता है । जो स्त्रियाँ इस कल्याणकारी व्रत को नहीं करती हैं ॥३२॥ यह व्रत सभी पापों का नाश करता है तथा राधा एवं

कदाचिज्जन्म चासाद्य पृथिव्यां विधवा ध्रुवम् ।
एकदा पृथिवी वत्स ! दुष्टसङ्घैश्च ताडिता ॥३४॥
गौभूत्वा च भृशं दीना चाययौ सा ममान्तिकम् ।
निवेदयामास दुखं रुदन्ती च पुनः पुनः ॥३५॥
तद्वाक्यं च समाकर्ण्य गतोऽहं विष्णुसन्निधिम् ।
कृष्णे निवेदितश्चाशु पृथिव्या दुःखसञ्चयः ॥३६॥
तेनोक्तं गच्छ भोब्रह्मन्देवैःसार्द्धं च भूतले। अहं तत्रापि गच्छामि पश्चान्ममगणैः सह ॥३७॥
तच्छ्रुत्वा सहितो देवैरागतः पृथिवीतलम् । ततः कृष्णः समाहूय राधां प्राणगरीयसीम् ॥३८॥
उवाच वचनं देवि ! गच्छेऽहं पृथिवीतलम् ।
पृथिवीभारनाशाय गच्छत्वं मर्त्यमण्डलम् ॥३९॥
इति श्रुत्वाऽपि सा राधाऽप्यागता पृथिवीं ततः ।
भाद्रे मासि सिते पक्षे अष्टमीसंज्ञके तिथौ ॥४०॥
वृषभानोर्यज्ञभूमौ जाता सा राधिका दिवा ।
यज्ञार्थं शोधितायां च दृष्टा सा दिव्यरूपिणी ॥४१॥
राजाऽऽनन्दमना भूत्वा तां प्राप्य निजमन्दिरम् ।
दत्तवान्महिषीहस्ते सा च तां पर्यपालयम् ॥४२॥
इति ते कथितं वत्स ! त्वया पृष्टं च यद्वचः ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥४३॥

भगवान् को प्रसन्न करने वाला है । इस व्रत को नहीं करने वाली स्त्रियाँ अन्त में यमलोक में जाकर अपवित्र नरक में गिर जाती हैं ॥३३॥ जब कभी वे पृथिवी पर जन्म लेती हैं तो वे निश्चित रूप से विधवा होती है । हे वत्स ! एक बार पृथिवी को दुष्टों ने प्रताड़ित किया ॥३४॥ तब दीन बनी हुयी वह गौ का रूप धारण करके मेरे (ब्रह्माजी के) पास आयी । उसने बार-बार रोकर अपने दुःख को बतलाया॥३५॥ उसकी बातों को सुनकर मैं भगवान् विष्णु के पास गया और भगवान् कृष्ण को पृथिवी के दुःख समूह को बतलाया ॥३६॥ भगवान् ने कहा ब्रह्मन् आप देवताओं के साथ भूलोक में जायँ । मैं भी वहाँ अपने गणों के साथ जाऊँगा ॥३७॥ भगवान् की वाणी को सुनकर मैं देवताअहों के साथ पृथिवी पर आ गया। उसके बाद भगवान् ने अपने प्राणों से भी प्यारी राधा को बुलाकर ॥३८॥ कहा— हे देवि ! मैं पृथिवी पर पृथिवी के भार का नाश करने के लिए जा रहा हूँ । तुम भी पृथिवी मण्डल पर चलो ॥३९॥ इस बात को सुनकर राधाजी भी पृथिवी पर आयीं । भाद्रमास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को ॥३९-४०॥ वृषभानु की यज्ञ भूमि से राधाजी दिन में उत्पन्न हुयीं । जब यज्ञ के लिए भूमि का शोधन हो रहा था उसी समय दिव्य रूप वाली राधाजी दिखायी दीं ॥४१॥ राजा वृषभानु प्रसन्न मन से उनको अपने घर लाये । उन्होंने उनको अपनी पत्नी को प्रदान कर दिया और उन्होंने राधाजी का पालन किया ॥४२॥ हे वत्स ! तुमने जो पूछा था उसे मैंने तुम्हें सुना दिया । इस बात को प्रयत्न

सूत उवाच

य इदं शृणुयाद्भक्त्या चतुर्वर्गफलप्रदम्। सर्वपापविनिर्मुक्तश्चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥४४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मानारदसंवादे श्रीराधाष्टमी माहात्म्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

आठवाँ अध्याय

शौनक उवाच

समुद्रमंथन सूत पुराकस्मात्कृतं गुरो। हृदये कौतुकं जातं श्रोतुं मे वद चामरैः ॥१॥

सूत उवाच

ब्रह्मन्वच्मि समासेन सिन्धोर्मथनकारणम्। दुर्वाससेन्द्रसंवादमितिहासं शृणुष्व तत् ॥२॥
महातपा महातेजा दुर्वासा ईश्वरांशजः। ब्रह्मर्हर्षिः प्रययौ स्वर्गमिन्द्रं द्रष्टुं स चैकदा॥३॥
तस्मिन्ददर्शकाले तं गजारूढं शचीपतिम्। दृष्ट्वा स्रजं पारिजातां ददौ तस्मै महामुनिः ॥४॥

गृहीत्वा तां स्रजं चेन्द्रो विन्यस्य गजमूर्द्धनि।
देवराट् प्रययौ ब्रह्मन्ससैन्यो नन्दनं प्रति ॥५॥
हस्ती चादाय तां मालां छित्त्वा तु धरणीतले।
चिक्षेप च महाक्रुद्धस्तमित्याह महामुनिः ॥६॥

पूर्वक छिपाये रखना चाहिए ॥४३॥ **सूतजी ने कहा—** जो मनुष्य इस धर्मार्थ काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रसङ्ग का भक्तिपूर्वक श्रवण करता है वह सभी पापों से रहित होकर अन्त में श्रीहरि के लोक में जाता है ॥४४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के राधाष्टमी माहात्म्य वर्णन नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

समुद्र मन्थन के उद्योग का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी समुद्र मन्थन क्यों किया गया ? इस विषय में मेरे हृदय में उत्कण्ठा है, उसे आप वतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! मैं संक्षेप में समुद्र मन्थन के कारण को वतलाता हूँ। दुर्वासा और इन्द्र के संवाद को आप सुनें ॥२॥ भगवान् शिव के अंश से उत्पन्न महर्षि दुर्वासा महातपस्वी और अत्यन्त तेजस्वी थे। वे ब्रह्मर्षि इन्द्र से मिलने के लिए स्वर्ग गये। उस समय उन्होंने हाथी पर बैठे हुए शची के पति इन्द्र को देखा। उनको देखकर महर्षि ने इन्द्र को पारिजात पुष्प से निर्मित माला प्रदान किया ॥४॥ इन्द्र ने उस माला को लेकर उसे हाथी के शिर पर पहना दिया इसके वाद इन्द्र अपनी सेना के साथ नन्दन वन में चले गये ॥५॥ हाथी ने उस माला को तोड़कर पृथिवी पर फेंक दिया उसको देखकर महामुनि दुर्वासा अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥६॥ उन्होंने कहा

त्रैलोक्यैकश्रिया युक्तो यस्मात्त्वमवमन्यसे ।
तव त्रैलोक्यश्रीर्नष्टा भवत्येव न संशयः ॥७॥
ततः शक्रो जगामाशु सुप्तश्च स्वपुरं पुनः ।
ददर्श जगतां माता चान्तर्द्धानं गता स्वयम् ॥८॥
तस्यामन्तर्हितायां तु सर्वं नष्टं जगत्त्रयम् । क्षुत्पिपासान्विताःसर्वे चुकुशुर्वैनिरन्तरम् ॥९॥
न ववर्षुर्वारिवाहाः शुष्काश्चैव जलाशयाः। सर्वे ते शाखिनःशुष्काःफलपुष्पविवर्जिताः ॥१०॥
क्षुप्तिपासार्दिताःसर्वे ब्रह्मणःसन्निधिं ययुः । तं सर्वे कथयामासुर्दुःखशोकं पितामहम् ॥११॥
देवानां वचनं श्रुत्वा धाता देवगणैः सह। भृग्वादिमुनिभिश्चैव प्रययौ क्षीरसागरम् ॥१२॥
विष्णुं समर्चयामास क्षीराब्धेरुत्तरे तटे। मन्त्रमष्टाक्षरं वेधा जपन्ध्यायन्जगत्पतिम् ॥१३॥
ततः प्रसन्नो भगवान्सर्वेषां च दिवौकसाम् ।
वैनतेयं समारूह्य चागतः सदयः प्रभुः ॥१४॥
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् । दृष्ट्वा तं जगतामीशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥१५॥
विष्णुं भवोदधेःपोतं वनमालाविभूषितम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कमानन्दाश्रुपरिप्लुताः ॥
तुष्टुवुर्जयशब्देन नमश्चकुर्निरन्तरम् ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

वरंवृणीध्वं भो देवाः कस्माद्यूयं समागताः ।
वरदोऽस्मि तद्वदत वो ददामि च नान्यथा ॥१७॥

देवा ऊचुः

कृपालो ब्रह्मशापेन सम्पद्धीनं जगत्त्रयम्। क्षुत्पिपासार्दितं नाथ ! स देवासुरमानुषम् ॥

कि चूँकि तुम त्रैलोक्य की लक्ष्मी के अकेले स्वामी हो अतएव तुम अपमान कर रहे हो । अतएव तुम्हारी त्रैलोक्य श्री अवश्य नष्ट हो जायेगी ॥७॥ उसके बाद इन्द्र शीघ्र ही अपने नगर में चले गये और सो गये । उन्होंने देखा कि संसार की माता लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी हैं ॥८॥ लक्ष्मीजी के अन्तर्धान होते ही त्रैलोक्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया । भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर सबलोग चिल्लाने लगे ॥९॥ मेघों ने वर्षा करना बन्द कर दिया और जलाशय सूख गये । सभी वृक्ष सूख कर फल तथा पुष्प से हीन हो गये ॥१०॥ भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर सबलोग ब्रह्माजी के पास गये । सबों ने ब्रह्माजी को अपने-अपने दुःख तथा शोक को सुनाया ॥११॥ देव समूह के साथ विद्यमान ब्रह्माजी देवताओं की वाणी को सुनकर, भृगु आदि मुनियों के साथ क्षीरसागर पर गये ॥१२॥ उन्होंने क्षीरसागर के उत्तर तट पर भगवान् विष्णु की पूजा की अष्टाक्षर मन्त्र का जप करके जगत् के स्वामी श्रीभगवान् का ध्यान किए॥१३॥ उसके बाद प्रसन्न होकर गरुड़ पर सवार होकर श्रीभगवान् दया करके वहाँ आ गये ॥१४॥ पीताम्बर धारी वे अपने हाथ में शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए थे । कमल के समान मनोहर नेत्र वाले तथा संसार सागर के लिए नौका स्वरूप तथा वनमाला से विभूषित श्रीभगवान् विष्णु को तथा कौस्तुभ मणि से सुशोभित वक्षःस्थल वाले एवं आनन्दाश्रु से परिप्लुत भगवान् विष्णु को देखकर ॥१५-१६॥ देवताओं ने उनका जय-जयकार करके स्तुति की एवं नमस्कार किया । **श्रीभगवान् ने कहा—** देवगण आपलोग वरदान माँगें आपलोग किसलिए आये हुए हैं ? आपलोग वरदान माँगे मैं उसे दूँगा । आपलोगों का

रक्ष सर्वानिमाँल्लोकान्याताः स्म शरणं तव ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

इन्दिरा ब्रह्मशापेन चान्तर्द्धानं गता सुराः। यस्याः कटाक्षमात्रेण जगदैश्वर्यसंयुतम्॥१९॥

तदा यूयं सुराः सर्वे चोत्पाट्यस्वर्णपर्वतम् ।
मन्दरं घर्घरंकृत्वा सर्पराजेन वेष्टितम् ॥२०॥
कुरुष्व मन्थनं देवाः सदैत्याः क्षीरवारिधेः ।
तस्मादुत्पत्स्यते लक्ष्मीर्जगन्माता च भोः सुराः ॥२१॥
तया हृष्टा महाभागा भविष्यति न संशयः ।
धारयाम्यहमेवाद्रिं कूर्मरूपेण सर्वतः ॥२२॥

इत्युक्त्वा भगवान्विणुरन्तर्द्धानं जगामसयः। जग्मुः सुरासुराः सर्वे समुद्रं द्विजपुङ्गव ! ॥२३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे समुद्रमन्थनोद्योगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवाँ अध्याय

सूत उवाच

ततोऽमरगणास्ते च सगन्धर्वाः सदानवाः। उत्पाट्य मन्दरं शैलं चिक्षिपुः पयसांनिधौ ॥१॥
ततः सनातनः श्रीमान्दयालुर्जगदीश्वरः। अधारयद् गिरेर्मूलं कूर्मरूपेण पृष्ठतः॥२॥

आना व्यर्थ नहीं होगा ॥१७॥ **देवताओं ने कहा—** हे कृपालों ! ब्राह्मण के शाप से त्रैलोक्य संपत्ति विहीन हो गया है । देवता, असुर तथा मनुष्य सबके सब भूख तथा प्यास से व्याकुल हो गये हैं ॥१८॥ आप इन सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करें हमलोग आपके शरण में हैं । **श्रीभगवान् ने कहा—** देवताओं ब्राह्मण के शाप के कारण लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयीं हैं ॥१९॥ लक्ष्मी के कृपा-कटाक्ष से जगत् सम्पत्ति से सम्पन्न हो जाता है । आपलोग सुवर्ण पर्वत मन्दराचल को उखाड़ कर उसे मथानी बनायें उसे सर्पराज वासुकी से वेष्टित करें । हे देवताओं आपलोग दैत्यों के साथ मिलकर क्षीरसागर का मन्थन करें ॥२०-२१॥ देवताओं उससे जगत् की माता लक्ष्मी उत्पन्न होंगी । महाभागों उसके द्वारा आप सभी प्रसन्न हो जायेंगे इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२२॥ मैं स्वयं कूर्म का रूप धारण करके पर्वत को धारण किए रहूँगा । इसतरह से कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये । हे द्विज ! देवता और असुर भी समुद्र मन्थन करने के लिए चले गये ॥२३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ खण्ड के समुद्र मन्थन उद्योग वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

देवताओं और दैत्यों द्वारा क्षीरसागर का मन्थन और दारिद्रा देवी के स्थान का वर्णन

सूतजी ने कहा— उसके बाद सभी देवता, गन्धर्व तथा दानवों ने मंदराचल को उखाड़कर क्षीरसागर

अनन्तं तत्र संवेष्ट्य ममन्थुर्दुग्धसागरम्। एकादश्यां मथ्यमाने चोद्भूतं प्रथमं द्विज !॥३॥
कालकूटविषं ते तु दृष्ट्वा सर्वे प्रदुद्रुवुः। ततस्तान्विद्रुतान्दृष्ट्वा शङ्करश्चोक्तवानिदम्॥४॥
भोभोऽमरगणा यूयं विषं कुरुत मे करे। वारयिष्याम्यहं तूर्णं कालकूटं महाविषम्॥५॥
इत्युक्त्वा पार्वतीनाथो ध्यायन्नारायणं हृदि।
महामन्त्रं समुच्चार्य विषमादद्भयङ्करम्॥६॥
महामन्त्रप्रभावेण विषं जीर्णमभून्महत्। अच्युतानन्तगोविन्द इतिनामत्रयं हरेः॥७॥
यो जपेत्प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तिकम्।
विषभोगाग्निजं तस्य नास्ति मृत्योर्भयं तथा॥८॥
प्रहृष्टमनसो देवा ममन्थुः क्षीरसागरम्। ततोऽलक्ष्मीः समुत्पन्ना कालास्यारक्तलोचना॥९॥
रूक्षपिङ्गलकेशा च जरतीं बिभ्रती तनुम्। सा च ज्येष्ठाऽब्रवीद्देवान्किंकर्तव्यं मयेति वै॥१०॥
देवास्तथाऽब्रुवंस्तां च देवीं दुःखस्य भाजनम्।
येषां नृणां गृहे देवि कलहः सम्प्रवर्तते॥११॥
तत्र स्थानं प्रयच्छामो वस ज्येष्ठे ! शुभान्विता।
निष्ठुरं वचनं ये च वदन्ति येऽनृतं नराः॥१२॥
सन्ध्यायां ये हि चाश्नन्ति दुःखदा तिष्ठ तद् गृहे।
कपालकेशभस्मास्थितुषाङ्गाराणि यत्र तु॥१३॥
स्थानं ज्येष्ठे ! तत्र तव भविष्यति न संशयः।
अकृत्वा पादयोर्धौतिं ये चाश्नन्ति नराधमाः॥१४॥

में डाल दिया ॥१॥ उसके बाद दयालु, अगदीश्वर सनातन श्रीभगवान् ने कूर्म रूप से उस पर्वत के मूल को अपने पीठ पर धारण किया ॥२॥ उसमें अनन्त को लपेट कर सबों ने क्षीरसागर का मन्थन किया। एकादशी के दिन मथे जाते हुए हे द्विज ! उस सागर से सर्वप्रथम कालकूट विष पैदा हुआ। उसको देखकर सब वहाँ से भाग चले। उन सबों को भगे हुए देखकर शङ्करजी ने कहा देवताओं विष को आप लोग मेरे हाथ पर रख दें। मैं शीघ्र ही इस कालकूट नामक विष को दूर कर दूँगा ॥३-५॥ यह कहकर पार्वतीजी के स्वामी अपने हृदय में भगवान् नारायण का ध्यान करते हुए महामन्त्र का उच्चारण करके भयङ्कर विष को खा गये ॥६॥ महामंत्र के प्रभाव से वह विष पच गया। **ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः तथा ॐ गोविन्दाय नमः** श्रीभगवान् के इन तीन नामों को भक्ति पूर्वक जो जपते हैं उनको विषाग्नि भोग से मृत्यु का भय नहीं होता है ॥८॥ उसके बाद प्रसन्न होकर सभी देवताओं ने क्षीर समुद्र का मन्थन किया। उससे अलक्ष्मी (दरिद्रा) देवी उत्पन्न हुयीं उनका मुख काला और नेत्र लाल थे ॥९॥ उनके केश रूखे तथा पीले थे। शरीर में बुढापा छायी थी उस ज्येष्ठा देवी ने देवताओं से पूछा मैं क्या करूँ ॥१०॥ देवताओं ने दुःख के भाजन स्वरूप उस देवी से कहा हे देवि ! जिन मनुष्यों के घर में कलह होता हो ॥११॥ हे ज्येष्ठे ! हमलोग तुम्हें उसी घर में स्थान देते हैं; तुम वहीं निवास करो। जो मनुष्य निष्ठुर तथा झूठी वाणी बोलते हैं ॥१२॥ जो सायंकाल में भोजन करते हैं, हे दुख देने वाली देवि ! उसी के घर में तुम रहो। कपाल (खोपड़ी) केश, भस्म, हड्डी, भूस्सी

तद्‌गृहे सर्वदा तिष्ठ दुःखदारिद्र्यदायिनी। बालुकालवणाङ्गारैः कुर्वन्ति दन्तधावनम् ॥१५॥
तेषां गेहे सदा तिष्ठ दुःखदा कलिना सह ।
छत्राकं श्रीफलं शिष्टं ये खादन्ति नराधमाः ॥१६॥
गेहे तेषां तव स्थानं ज्येष्ठे कलुष दायिनि ।
तिलपिष्टमलाबुं ये गृञ्जनं पोतिकादलम् ॥१७॥
कलम्बुकं पलाण्डुं ये चाश्नन्ति पापवुद्धयः ।
तेषां गृहे तव स्थानं भविष्यति न संशयः ॥१८॥
गुरुदेवातिथीनां च यत्र पूजा न विद्यते। यत्र वेदध्वनिर्नास्ति तत्र तिष्ठ सदाऽशुभे ! ॥१९॥
दम्पत्योः कलहो यत्र पितृदेवार्चनं न वै। दुरोदररता यत्र तत्र तिष्ठ सदाऽशुभे ! ॥२०॥
परदाररता यत्र परद्रव्यापहारिणः। विप्रसज्जनवृद्धानां यत्र पूजा न विद्यते ॥२१॥
तत्र स्थाने सदा तिष्ठ पापदारिद्र्यदायिनी ।
इत्यादिश्य सुरा ज्येष्ठां सर्वे तां कलिवल्लभाम् ॥
क्षीराब्धेर्मथनं चक्रुः पुनस्ते सुसमाहिताः ॥२२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे समुद्रमंथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

की आग जहाँ गिरे रहते हैं ॥१३॥ हे ज्येष्ठे ! तुम्हारा वहीं पर निवास होगा, इसमें कोई संशय नहीं है । जो नराधम अपने पैरों को धोए विना ही भोजन करते हैं ॥१४॥ हे दुःख और दरिद्रता देने वाली देवि ! उसी घर में तुम निवास करो । जो लोग वालू, नमक तथा राख से दांत साफ करते हैं ॥१५॥ उन लोगों के ही घर में तुम दुःख देने के लिए कलियुग में निवास करो । जो नराधाम, कुकुरमुत्ता (छत्रक) और जूठा श्रीफल खाते हैं ॥१६॥ हे पाप प्रदान करने वाली ज्येष्ठे देवि ! उन लोगों के ही घर में तुम्हारा निवास हो । तिल की खली, लौकी, गृंजन (गाजर) पोई की साग जो लोग खाते हैं ॥१७॥ कलम्बू (काँजी) तथा प्याज जो लोग खाते हैं उन पापियों के ही घर में तुम्हारा निवास होगा इसमें कोई संशय नहीं है ॥१८॥ हे अशुभ स्वरूपिणि ! गुरु, देवता, अतिथि, यज्ञ, दान तथा वेदध्वनि से रहित जो घर होता है उसी घर में तुम रहो ॥१९॥ जिस घर में पति तथा पत्नी में कलह होता हो; पितरों तथा देवताओं की पूजा नहीं होती हो, जहाँ जुआ खेला जाता हो तुम उसी स्थान में रहो । जिस घर के लोग दूसरी की पत्नी में आसक्त हों तथा दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण करते हों, जिस घर में ब्राह्मण, सज्जन पुरुष तथा वृद्ध पुरुष की पूजा नहीं होती हो; हे पाप तथा दरिद्रता प्रदान करने वाली देवि ! तुम ऐसे ही लोगों के घर में निवास करो ॥२१॥ इसतरह से कलि की प्रियतमा ज्येष्ठा देवी को आदेश देकर देवता सावधानी पूर्वक क्षीर सागर का मन्थन करने लगे ॥२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

दशवाँ अध्याय

सूत उवाच

ऐरावतस्ततो जज्ञे तथैवोच्चैःश्रवा हयः । धन्वन्तरिःपारिजातःसुरभीश्चाप्सरोगणः ॥१॥
ततःप्रभातसमये द्वादश्यामुदिते रवौ। उत्पन्ना श्रीर्महालक्ष्मीःसर्वलक्षणशोभिता ॥२॥
ददृशुस्तां महादेवीं मातरं धर्मदेवताः। प्रहृष्टाःसर्वजन्तूनां श्रीकृष्णहृदयालयाम् ॥३॥
लक्ष्मीभ्राता शीतरश्मिर्जातश्च सुधया ततः। उत्पन्ना सा हरेर्जाया तुलसी लोकपावनी ॥४॥
तं शैलं पूर्ववत्स्थाप्य परिपूर्णमनोरथाः । समेत्य मातरं स्तुत्वा जेपुःश्रीसूक्तमुत्तमम् ॥५॥
ततःप्रसन्ना सा देवी सर्वान्देवानुवाच ह। वरं वृणीध्वं भद्रं वो वरदाऽहं सुरोत्तमाः ॥६॥

देवा ऊचुः

सीद कमले देवि सर्वमातर्हरिप्रिये। त्वया विना जगच्छून्यं कुरु प्राणप्ररक्षणम् ॥७॥

इत्युक्ता सा महालक्ष्मीः प्राह नारायणप्रिया ।
इदानीं सर्वजन्तूनां प्राणरक्षां करोम्यहम् ॥८॥

ततो नारायणश्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः। आविर्बभूव सहसा दयालुर्जगदीश्वरः॥९॥
ततस्ते तुष्टुवुर्देवाः प्रणम्य जगतांपतिम्। कृताञ्जलिपुटाःप्रोचुर्हर्षगद्गदभाषिणः ॥१०॥

गृहाण मातरं विष्णो ! महिषीं वल्लभां तव ।
संसाररक्षणार्थाय लक्ष्मीमनपगामिनीम् ॥
यावत्प्रतिज्ञां नो चक्रे तावत्प्राहेन्दिरा हरिम् ॥११॥

क्षीर सागर से लक्ष्मी देवी का प्राकट्य वर्णन

सूतजी ने कहा— उसके बाद क्षीर सागर से ऐरावत हाथी निकला, उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला, धन्वन्तरि, पारिजात, सुरभि गौ, अप्सराएँ ॥१॥ उसके बाद द्वादशी के दिन सवेरा होने पर जब सूर्योदय हुआ उस समय शुभ लक्षणों से युक्त महालक्ष्मी श्रीदेवी का प्राकट्य हुआ ॥२॥ देवताओं ने लोकमाता लक्ष्मी को देखा । सभी देवता प्रसन्न हो गये । लक्ष्मीजी श्रीभगवान् के तथा सभी जीवों के हृदय में निवास करती हैं ॥३॥ लक्ष्मीजी का भाई चन्द्रमा अमृत के साथ उत्पन्न हुआ । श्रीलक्ष्मीजी तथा तुलसीजी श्रीहरि की पत्नी तथा संसार को पवित्र बनाने वाली हैं ॥४॥ उस मन्दराचल को पहले के ही समान स्थापित करके पूर्ण मनोरथ वाले देवता जगन्माता लक्ष्मी से मिलकर उनके समक्ष श्रीसूक्त का पाठ किए॥५॥ उसके बाद प्रसन्न होकर लक्ष्मीजी ने सभी देवताओं से कहा हे देवताओं ! आपलोग वरदान माँगे मैं वरदान देना चाहती हूँ ॥६॥ **देवताओं ने कहा—** हे सम्पूर्ण जगत् की माता कमले देवि ! हरिप्रिये! आप प्रसन्न होइये । आपके बिना संसार सूना हो गया है, इसके प्राणों की रक्षा आप करें ॥७॥ इसतरह से कहे जाने पर भगवान् नारायण की प्रियतमा महालक्ष्मी ने कहा मैं सम्पूर्ण जीवों के प्राणों की रक्षा करूँगी ॥८॥ उसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा धारण करने वाले, दयालु तथा जगत् के स्वामी भगवान् नारायण वहाँ पर सहसा आविर्भूत हो गये ॥९॥ उसके बाद संसार के स्वामी भगवान् नारायण को प्रणाम करके सभी देवताओं ने उनकी स्तुति की । हर्ष के कारण गद्गद वाणी बोलने वाले वे देवता हाथ जोड़

लक्ष्मीरुवाच

अविवाह्य कथं ज्येष्ठामलक्ष्मीं मधुसूदन ।
तस्याः कनिष्ठां मां नाथव्युदूढां कर्तुमिच्छसि ॥
ज्येष्ठायां च स्थितायां वै कनिष्ठा परिणीयते ॥१२॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा ततो विष्णुर्ददौ चोद्दालकाय च ।
वेदवाक्यानुरूपेण ह्यलक्ष्मीं निर्जरैःसह ॥१३॥
ततो नारायणःश्रीमाल्लँक्ष्मीमङ्गीचकार ह। ततः सुरगणाः सर्वे नमश्चक्रुः पुनः पुनः ॥१४॥
अथ ते चा सुरान्सर्वाञ्जध्नु सर्वे बलाधिकाः ।
सर्वे ते क्रन्दमानाश्च गताश्चैव दिशोदश ॥१५॥
सुधां तत्खादितुं चक्रुर्देवा पङ्क्तिं यथाक्रमम् ।
श्रीविष्णोराज्ञया सर्वे चोचुश्चैव परस्परम् ॥१६॥
त्वं च देहि त्वं च देहि त्वं च देहीति चाब्रुवन् ।
न शक्तोऽस्मि न शक्तोऽस्मि न शक्तोऽस्मीति चाब्रुवन् ॥१७॥
ततो विष्णुःसमुत्तस्थौ स्त्रीरूपं च दधार ह ।
चकार स्वर्णपात्रेण पीयूषपरिवेषणम् ॥१८॥
पीयूषभक्षणं राहुर्यावत्कुर्याद् द्विजोत्तम ! । चन्द्रसूर्यौ चोक्तवन्तौ राक्षसोऽसौ छलागतः॥१९॥
ततःक्रुद्धो जगन्नाथो जघान स्वर्णपात्रतः। शिरस्तस्य पपातोर्व्यां केतुर्नाम्ना बभूव ह॥२०॥

कर कहे ॥१०॥ हे भगवन् ! विष्णों ! जगन्माता तथा अपनी पटरानी श्रीलक्ष्मीजी को आप स्वीकार करें ये आपकी प्रियतमा हैं । संसार की रक्षा करने के लिए, अनपगमिनी (कभी भी अलग नहीं होने वाली) लक्ष्मीजी को जब तक भगवान् स्वीकार नहीं किए थे उससे पहले ही लक्ष्मजी ने भगवान् विष्णु से कहा ॥११॥ **लक्ष्मीजी ने कहा—** हे मधुसूदन ! ज्येष्ठा अलक्ष्मी (दरिद्रा) देवी का विवाह हुए बिना, उसकी छोटी बहन मुझसे आप कैसे विवाह करना चाहते हैं । बड़ी बहन का विवाह हो जाने के बाद ही छोटी बहन का विवाह होता है ॥१२॥ **सूतजी ने कहा—** लक्ष्मी देवी के इस वाक्य को सुनकर श्रीभगवान् ने ज्येष्ठा देवी का विवाह देवताओं के समक्ष ही वेदवाक्यानुसार उद्दालक महर्षि से कर दिया॥१३॥ उसके बाद भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी के साथ विवाह किया । उसके बाद सभी देवताओं ने लक्ष्मीजी तथा भगवान् नारायण को बार-बार नमस्कार किया ॥१४॥ उसके बाद अधिक बलवान् वने देवता सभी दैत्यों पर आक्रमण कर दिए वे सब रोते हुए विभिन्न दिशाओं में भाग गये ॥१५॥ उसके बाद भगवान् विष्णु की आज्ञा से देवता पंक्तिबद्ध होकर क्रमशः अमृत का पान किए । वे परस्पर में कह रहे थे ॥१६॥ तुम मुझको दो, तुम मुझको दो और दूसरे कहते थे मैं देने में समर्थ नहीं हूँ मैं समर्थ नहीं हूँ ॥१७॥ उस समय भगवान् स्त्री का रूप धारण करके वहाँ पर उपस्थित हो गये । उन्होंने सुवर्ण के पात्र से उस अमृत को परोस दिया ॥१८॥ उस समय जब राहु देवपंक्ति में आकर अमृत पी रहा था उसी समय चन्द्रमा और सूर्य ने कहा है, यह राक्षस है, छलपूर्वक आ गया है ॥१९॥ उस समय क्रुद्ध होकर भगवान्

राहुकेतू ततस्तूर्णं गतौ तो भयविह्वलौ । इदानीं तद्दिनेप्राप्ते चन्द्रसूर्यौ स युध्यति ॥२१॥
कुर्याद्ग्रासं सैंहिकेयस्तत्क्षणं दुर्लभं भवेत्। सर्वं गङ्गासमं तोयं वेदव्याससमाद्विजाः ॥२२॥
स्नाति वायसतीर्थे यो गङ्गास्नानफलं लभेत् ।
दानमक्षयपुण्यं स्यात्कोटिजन्मार्जितं तथा ॥२३॥
पापं नश्येत्समूलं च किं पुनःक्रतुकोटिभिः ।
विद्यार्थी लभते विद्यां पुत्रार्थीपुत्रामाप्नुयात् ॥२४॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
इति ते कथितं विप्र समुद्रमन्थनं तु तत् ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे समुद्रमंथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

इदानीं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व यथार्थतः । हरिस्वरूपिणा साक्षाद्वेदव्यासेन शासित !॥१॥
निरहङ्कार हे सूत ! लोकानुग्रहकारक। केन स्यात्सुभगानारी पापिनी च सुदुर्भगा ॥२॥

ने उसको सुवर्ण के पात्र से ही मारा और उसका शिर पृथिवी पर गिरा, उसका नाम केतु हुआ ॥२०॥ उस समय भयभीत होकर राहु और केतु शीघ्र ही वहाँ से भाग गये । इस समय जब उस दिन की तिथि आती है तो वे दोनों सूर्य और चन्द्रमा से युद्ध करते हैं ॥२१॥ उस समय (ग्रहण के समय) वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए उस समय का राहु दुर्लभ है । उस समय सभी जल गङ्गा जल के समान पवित्र होते हैं और सभी ब्राह्मण महर्षि व्यास के समान पवित्र होते हैं ॥२२॥ उस समय जो व्यास तीर्थ में भी स्नान करता है उसको गङ्गा स्नान का फल मिलता है । उस समय दिया गया ब्राह्मणों को दान करोड़ों जन्मों में अर्जित पुण्य के समान अक्षय होता है ॥२३॥ उससे सभी पाप समूल नष्ट हो जाते है, फिर करोड़ों यज्ञों को करने से कोई लाभ नहीं है । विद्यार्थी विद्या को प्राप्त कर लेता है और पुत्रार्थी पुत्र को प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ मोक्ष चाहने वाला मोक्ष प्राप्त कर लेता है तथा मंत्र की सिद्धि उस समय हो जाती है । हे विप्र ! इस तरह से मैंने आपको समुद्र मंथन के प्रसङ्ग को सुनाया ॥२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के समुद्र मंथन वर्णन नामक दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

गुरुवार व्रत की महिमा

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! आप तो साक्षात् श्रीहरि स्वरूप महर्षि व्यास के द्वारा अनुशासित हैं, अतएव अहङ्कार रहित हैं, हे संसारी जीवों पर कृप करने वाले ! मैं इस समय यह जानना चाहता

पतिप्रियाऽङ्ग ! केनस्याद्रूपिता चक्षुषोः सुधा ।
केन वा जायते लक्ष्मीस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ! ॥३॥

सूत उवाच

यदि पुण्यमिदं विप्र वृत्तं परमदुर्लभम्। शृणुष्व भोःसमासेन कथयामि विधानतः ॥४॥
आसीद्भद्रश्रवा राजा युगे द्वापरसंज्ञके। सौराष्ट्रवदेशवासी च वेदवेदाङ्गपारगः ॥५॥
भार्या तस्य च सञ्जाता नाम्ना सुरतिचन्द्रिका ।
तस्यां बभूवुःश्रीराज्ञःसप्त पुत्रा मनोरमाः ॥६॥
ततोऽभिजाता दुहिता सुन्दरी सत्यवादिनी। श्यामाबला च विप्रेन्द्र ! नाम्ना प्रीतिकरी पितुः॥७॥
अथैकदा श्यामबाला सुवर्णसिकतासु च। गूढैर्मनोहरै रत्नैःसखीभिः क्रीडितुं मुदा॥८॥
जगाम नीपवृक्षस्य तलं परदुर्लभम्। एतस्मिन्नन्तरे विप्र लक्ष्मीःसंसारतारिणी ॥९॥
लोकानां नीतिदा साथ समायाता स्वयम्पुरः ।
धृत्वा च ब्राह्मणीरूपं पतिताङ्गी च भूसुर ॥१०॥
अखिलानां च लोकानां शास्तू राज्ञः क्षयं विना ।
केषां क्षुद्रतराणां हि गृहे गच्छामि साम्प्रतम् ॥११॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा गता राजनिकेतनम्। सुवर्णभित्तिभिर्युक्तं पताकाभिरलंकृतम्॥१२॥
सिंहद्वारमतिक्रम्य प्राह दौवारिकं ततः। द्वारं जहिहि भो द्वारि नियुक्ते शुभलक्षणे ॥१३॥
यामि वेगेन पश्यामि राज्ञीं सुरतिचन्द्रिकाम् ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या रत्नदण्डकरा च सा ॥
कोकिला वाक्यवन्मुक्तं परमं हर्षमाययौ ॥१४॥

हूँ कि कोई भी सुभगा नारी किस कारण से दुर्भगा और पापिनी हो जाती है ॥१-२॥ और किस साधन के द्वारा वह अपने पति की प्रियतमा तथा नेत्रों में सुधा बरसाने वाली हो जाती है । किस साधन के द्वारा वह लक्ष्मी हो जाती है ? हे तपोधन ! इसे आप मुझे बतलाएँ ॥३॥ **सूतजी ने कहा—** हे विप्र! यह वृत्तान्त अत्यन्त पुण्यप्रद तथा दुर्लभ है । आप इसे सुनें; मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥४॥ द्वापर युग में भद्रश्रवा नामक राजा थे । वे सौराष्ट्र देश वासी और वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत थे ॥५॥ उनकी पत्नी का नाम सुरतिचन्द्रिका था । राजा के उसके गर्भ से मनोहर सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥६॥ उसके बाद राजा की एक सुन्दर तथा सत्यवादिनी पुत्री हुयी । हे विप्रेन्द्र ! उसका नाम श्यामाबाला था । वह अपने पिता को प्रसन्न रखने वाली थी ॥७॥ एक बार श्यामाबाला सुवर्ण की बालुका में छिपे हुए मनोहर रत्नों से खेलने के लिए सखियों के साथ गयी ॥८॥ वह परम दुर्लभ कदम्ब वृक्ष के नीचे गयी । हे विप्र ! उसी समय संसार का उद्धार करने वाली तथा संसारियों को नीति प्रदान करने वाली लक्ष्मीदेवी वहाँ स्वयं आयीं । उन्होंने ब्राह्मणी का रूप बनाया था और उनके शरीर के अङ्ग पके हुए बालों वाले थे ॥९-१०॥ सम्पूर्ण लोकों के प्रशासक राजा के घर को छोड़कर इस समय मैं किसी अत्यन्त छोटे मनुष्य के घर में चलूं यह सोचकर राजा के भवन में गयीं । राजा का भवन सुवर्ण की दिवालों से युक्त तथा पताकाओं से अलंकृत था ॥११-१२॥ सिंहद्वार को पार करके उन्होंने द्वारपाली से कहा—

द्वारनियुक्तोवाच

किं नाम वहसे वृद्धे कः पतिस्तावकः पुनः ।
आगताऽसि कथं किं ते कार्यं राज्याश्चदर्शने ॥
कस्मात्किं ब्रूहि विप्रे ! त्वं श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥१५॥

वृद्धोवाच

शृणु पोष्ये महाराज पत्न्या दण्डकरे यदा ।
श्रोतुं कोतूहलं तेऽस्ति मदागमनकारणम् ॥१६॥
प्रसिद्धा कमला नाम्ना चाहं प्राणेश्वरोत्तमम् ।
भुवनेश इति ख्यातो नाम्ना द्वारवतीपुरी ॥१७॥
तस्यां वै वर्तते पोष्ये मम प्राणेश्वरस्ततः । आगताहं रत्नवेत्रकरे शृणु सकौतुकम् ॥१८॥
ममागमनकार्यं हि वच्मीदानीं तवाग्रतः । पुरासीद्वैश्यकुलजा राज्ञी तव च दुःखिनी ॥१९॥
एकस्मिन्दिवसे पोष्ये ! पतिना कलहःकृतः ।
तयानार्या च दुःखिन्या ततो वैभर्तृपीडिता ॥२०॥
बहिर्भूय द्रुतं गेहाद्रुदन्ती च पुनः पुनः । तस्याश्च रोदनं श्रुत्वा चागताऽहं समीपतः ॥२१॥
अपृच्छं सर्ववृत्तान्तं कथितो वै यथार्थतः । तया ततो व्रतवरस्योपदेशं ददाम्यहम् ॥२२॥
ममोपदेशतःसा वै चक्रेव्रतवरं मुदा ।
तस्य प्रसादाद्धो द्वाःस्थे सञ्जाता सुखिता च सा ॥२३॥
कदाचिद्वैश्यकुलजा पत्यामृत्योर्वशंगता । समानेतुं ततस्तौ तु विहिताखिलघातकौ ॥२४॥

हे द्वार पर नियुक्त शुभ लक्षण वाली मुझे जाने के लिए रास्ता दो; मैं शीघ्रता से रानी सुरतिचन्द्रिका से मिलने जा रही हूँ । उनकी उस वाणी को सुनकर अपने हाथ में रत्न निर्मित दण्ड ली हुयी कोयल की ध्वनि के समान उनकी मनोहर वाणी को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुयी ॥१३-१४॥ **द्वारपालिका ने कहा—** हे वृद्धे ! आपका नाम क्या है ? आपके पति कौन हैं ? क्यों आप आयी हैं ? आपका रानी से मिलने का क्या प्रयोजन हैं ? हे विप्रे ! मेरे मन में सुनने की उत्कण्ठा हैं इसे आप मुझे बतलायें ॥१५॥ **वृद्धा ने कहा—** ऐ नौकरानी; जब तक तुम्हारे हाथ में रानी का दण्ड है तब तक ही मेरे आने का कारण जानने की तुम्हारी मन में उत्कण्ठा है ॥१६॥ मेरा नाम कमला देवी है, मेरे प्राणेश्वर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं मेरी पुरी का नाम द्वारवती है ॥१७॥ उसी नगरी में मेरे प्राणेश्वर रहते हैं, मैं वहीं से आयी हूँ । हे रत्न का दण्डा हाथ में धारण करने वाली ! सुनों मैं अपने आने का कारण तुम्हारे समक्ष बतला रही हूँ । पूर्वकाल में तुम्हारी रानी वैश्य वंश में उत्पन्न दुखिनी थी ॥१८-१९॥ हे पोष्ये ! एक दिन उसके पति ने अपनी दुःखिनी पत्नी से झगड़ा किया और उसके पति ने उसको कष्ट दिया ॥२०॥ वह घर से बाहर निकल कर बार-वार रोयी उसके रुदन को सुनकर मैं उसके पास आयी ॥२१॥ मैंने उससे सारा वृत्तान्त पूछा तो उसने ठीक-ठीक बतला दिया; तो मैंने उसे एक श्रेष्ठ व्रत का उपदेश दिया ॥२२॥ मेरे उपदेश को पाकर उसने उस श्रेष्ठ व्रत को किया । हे द्वारपालिके ! उस व्रत की ही कृपा से वह सुखी हो गयी ॥२३॥ समयानुसार वह वैश्य तथा वह

किङ्करान्प्रेषयामास चण्डाद्यान्धर्मराट् प्रभुः । यमाज्ञया समायाता यमदूता भयङ्कराः ॥२५॥
बद्ध्वातौ चर्मपाशेन लोहमुद्गरपाणयः । उद्यमं चक्रिरे गन्तुं यमस्य शरणं प्रति ॥२६॥
अत्रान्तरे च लक्ष्म्यास्ते दूता विष्णुपरायणाः ।
समानेतुं समायाताःशङ्खचक्रगदाधरा ॥२७॥
दृष्ट्वा तथाविधांस्तांश्च यमदूताः पलायिताः ।
लक्ष्मीदूता महात्मानः स्वप्रकाशादयस्तथा ॥२८॥
पाशं छित्वा समारोप्य राजहंसयुते रथे । जग्मुर्लक्ष्मीपुरं सर्वे सहसाऽऽकाशवर्त्मना ॥२९॥
यावद्वारि व्रतं चक्र पुरावैश्या च सा तदा ।
तावत्कल्पसहस्राणि तस्थतुः कमलापुरे ॥३०॥
पुण्यशेषस्य भोगार्थं जातौ राजन्वयेऽधुना। व्रतं च विस्मृतौ द्वाःस्थे ! राजसम्पत्तिगर्वितौ॥
तस्माच्च तव तस्यापि चोपदेशार्थमागता ॥३१॥

द्वाःस्थोवाच

केनैव तु विधानेन वृद्धे व्रतवरं कृतम् । कस्मिन्मासे व्रतं श्रेष्ठं देवता का च पूज्यते॥
एतत्सर्वं महाभागे यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३२॥

कमलोवाच

कार्त्तिके च व्यतिक्रान्ते मार्गशीर्षेसमागते । तस्मिन्मासे च भो पोष्ये ! वासरेगुरुसंज्ञके ॥३३॥
ततःपूर्वाह्णसमये सकलैर्व्रतिभिर्वृता । नारायणेन सहितां लक्ष्मीं सम्पूजयेत्ततः ॥३४॥
मिष्टैःपायसयुक्तैश्च भुक्तैश्च खण्डमिश्रितैः । लक्ष्मीं सन्तोषयेत्प्रेष्ये ततःसम्प्रार्थयेदिदम् ॥३५॥

वैश्या दोनों मर गये । उसके बाद समस्त विहित वस्तु का विनाश करने वाले उन दोनों को लेने के लिए यमराज ने चण्ड आदि अपने दूतों को भेजा । यम की आज्ञा से भयङ्कर यमदूत आ गये ॥२४-२५॥ उन दोनों को चमड़े की रस्सी से बाँधकर हाथ में लौहे की मुद्गर लिए हुए जब वे यमराज के घर जाने के लिए तैयार हुए ॥२६॥ इसीबीच भगवान् विष्णु के भक्त तथा लक्ष्मीजी के दूत हाथ में शङ्ख, चक्र और गदा धारण करके उसे लाने के लिए आये ॥२७॥ उन लक्ष्मीदूतों को देखकर यमदूत भाग गये । स्वप्रकाश आदि महात्मा लक्ष्मी के दूत ॥२८॥ पाश को काटकर उन दोनों के हंसयुक्त विमान पर बैठाकर सहसा आकाश मार्ग से लक्ष्मीपुर में चले गये ॥२९॥ उस श्रेष्ठ व्रत को उस वैश्या ने जितने बार किया था उतने हजार कल्प तक उसने लक्ष्मीपुर में निवास किया ॥३०॥ बचे हुए पुण्य का भोग करने के लिए वे दोनों राजा के वंश में उत्पन्न हुए हैं । इसीलिए उस व्रत का तुम्हें उपदेश देने के लिए मैं आयी हूँ ॥३१॥ **द्वारपालिका ने कहा**— हे वृद्धे ! किस विधान से उस श्रेष्ठव्रत को किया जाता है ? किस मास में उस श्रेष्ठ व्रत को करके किस देवता की पूजा की जाती है ?॥३२॥ हे माँ ! इन सारी बातों को आप मुझे ठीक-ठीक बतलाएँ । **लक्ष्मीजी ने कहा**— जब कार्तिक का महिना बीत जाय और मार्गशीर्ष का महीना आ जाय तो उस महीने में गुरुवार के दिन ॥३३॥ पूर्वाह्ण में सभी व्रत करने वालों के साथ भगवान् नारायण के साथ लक्ष्मीजी की पूजा करे ॥३४॥ मिठाई, खीर तथा मिश्री के टुकड़ों का लक्ष्मीजी को भोग लगाये उसके बाद लक्ष्मीजी से प्रार्थना करे ॥३५॥ हे त्रैलोक्य

त्रैलोक्पूजिते देवि ! कमले विष्णुवल्लभे। यथा त्वमचलाकृष्णे तथा भव मयि स्थिता॥३६॥
ईश्वरी कमले देवि शरणं च भवानघे। नानोपहारद्रव्यैश्च लक्ष्मीमाज्ञाप्य तोषयेत्॥३७॥
शास्त्रैश्च पूजयेद्देवीं महोत्सवसमन्विताम्। ततो नैवेद्यशेषान्सम्भोज्यब्राह्मणसत्तमम्॥३८॥
आत्मानं स्वपतिं पुत्रान्पोष्येऽन्यानपि सेवकान्।
द्वितीये तु गुरोर्वारे विशेषं शृणु सुन्दरि !॥३९॥
चित्रधूलीप्रशस्तैश्च भ्राष्ट्रैवैर्गोधूमनिर्मितैः। तोषणं कमलादेव्याः कुर्याद्वैभक्तिभावतः॥४०॥
तृतीये खण्डसंयुक्तं दध्योदननिवेदनम्। शामाकशालिकासारैश्चतुर्थे पूजयेन्मुदा॥४१॥
लक्ष्मीदेवीं प्रयत्नेन रत्नदण्डकरे ! ततः। लक्ष्मीदेवी प्रीयते तु ब्राह्मणान्पूजयेद्धनैः॥४२॥
वस्त्रालङ्कारभोज्यैश्च फलैर्नानाविधैस्तथा ॥४३॥

पोष्योवाच

अत्रैवतिष्ठ भो वृद्धे ! राज्ञीं सुरतिचन्द्रिकाम्।
विज्ञाप्य त्वां नयिष्यामि मा क्रोधं कुरु सत्तमे॥४४॥
इत्युक्त्वा सा तु चार्वङ्गी गता राज्ञीसमीपतः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय पोष्या ब्रह्मन्समूलतः॥४५॥
आरभ्य साङ्गपर्यन्तं यदूचे कमलालया। तत्सर्वं कथयामास राज्ञीं सुरतिचन्द्रिकाम्॥४६॥
द्वारपालीवचःश्रुत्वा राज्ञी सुरतिचन्द्रिका। जगाम ब्राह्मणीपार्श्वं सगर्वा प्राह सुन्दरी॥४७॥

पूजित विष्णु भगवान् की प्रियतमे देवि लक्ष्मीजी ! आप जिस तरह से भगवान् कृष्ण के साथ अचल रूप से रहती हैं, उसी तरह से आप मेरे घर में रहें ॥३६॥ हे ईश्वरी कमलादेवि ! आप मेरी रक्षा करें अनेक प्रकार के उपहारों को लक्ष्मीजी को समर्पित करके उन्हें सन्तुष्ट करें ॥३७॥ उसके बाद शास्त्र के अनुसार लक्ष्मीदेवी की पूजा करे और महोत्सव मनाये। उसके बाद नैवेद्य से बचे हुए पदार्थों को श्रेष्ठ ब्राह्मण को समर्पित करे ॥३८॥ अपने स्वयं अपने पति तथा पुत्रों तथा सेवकों को भी उसे दे। हे सुन्दरि! दूसरे गुरुवार को होने वाले विशेष को तुम सुनो ॥३९॥ अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धूलियों के चूर्णों (बालू) से जो भांड़ में भूंज कर गेहूँ से निर्मित किया गया हो उसका लक्ष्मीजी को भोग लगाये और भक्तिभाव से लक्ष्मीजी की पूजा करे ॥४०॥ तीसरे गुरुवार को खाँड से युक्त दध्योदन का भोग लक्ष्मीजी को लगाये। चौथे गुरुवार को सावां के चावल से निर्मित कसार से लक्ष्मीजी की पूजा करे। लक्ष्मीदेवी की प्रसन्नता के लिए उनके हाथ में विद्यमान रत्न निर्मित दण्डे की पूजा करे। लक्ष्मी देवी की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मणों की पूजा धन से करनी चाहिए ॥४१-४२॥ वस्त्र, अलङ्कार तथा भोज्य पदार्थों से तथा अनेक प्रकार के फलों से पूजा करे। **पोष्या द्वारपालिका ने कहा—** हे वृद्धे ! आप यहीं पर ठहरें मैं रानी सुरतिचन्द्रिका को बतलाकर आपको ले चलती हूँ, आप क्रोध न करें। इस तरह से कहकर वह सुन्दरी रानी के पास गयी ॥४४॥ हे ब्रह्मन् ! पोष्या ने हाथ जोड़कर तथा उसे शिर से लगाकर शुरु से लेकर अन्त तक उन सारी बातों को रानी सुरतिचन्द्रिका को बतलाया जो लक्ष्मीजी ने कहा था। द्वारपालिका की वाणी सुनकर रानी सुरतिचन्द्रिका ॥४५-४६॥ गर्व के साथ उस ब्राह्मणी के पास गयी। **रानी ने कहा—** हे वृद्धे ब्राह्मणि ! तुम मुझे कौन सा उपदेश देने आयी हो॥४७॥ तुम निर्भय होकर उन

राज्ञ्युवाच

वृद्धे ! ब्राह्मणि ! किं वृत्तं चोपदेशार्थमागता ।
कथयस्व चिरं मह्यं भयं त्यक्त्वा यथासुखम् ॥४८॥

ब्राह्मण्युवाच

तवानीतिमहं दृष्ट्वा गन्तुमिच्छामि चञ्चला। कथयिष्यामि किं दुष्टे ! व्रतं परमदुर्लभम्॥४९॥
इन्दिरावासरे चाद्य चाण्डालेन करोषि यत् ।
तद्दृष्टं मयि कादुष्टे तद्गेहे गर्वितेऽधुना ॥५०॥
तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणीवाक्यं क्रोधसंरक्तलोचना। जरन्तीं ब्राह्मणीं चैव प्रजहार तदा च सा॥५१॥
ततः सा कमला वृद्धा क्रन्दमाना पलायिता ।
क्रीडमाना ततःश्यामा ब्राह्मणी क्रन्दनध्वनिम् ॥
आगतास्याः समीपं तु श्रुत्वा बाला तपोधना ॥५२॥

श्यामाबालोवाच

वृद्धे ! व्यथेदृशी केन दत्ता तुभ्यं वदस्व मे ।
तस्या वचनमाकर्ण्य शोकगद्गदयागिरा ॥५३॥
कमला कथितं सर्वं वृत्तान्तं द्विजसत्तम !। श्यामा बाला ततः श्रुत्वा व्रतं परमदुर्लभम् ॥५४॥
शास्त्रोक्तविधिना चक्रे सश्रद्धं च स भक्तितः ।
त्रिवारे परिपूर्णे तु तुर्यवारे समागते ॥५५॥
विवाहकर्म संसिद्धं द्विज लक्ष्मीप्रसादतः। श्रीसिद्धेश्वरदेवस्य नृपतेर्भूपतेजसः॥५६॥
मालाधरो नाम सुतो गृहीत्वा तां गृहं गतः ।
अथ तस्यां गतायां तु ब्रह्मञ्छृणुष्व कौतुकम् ॥५७॥
राज्ञीगृहे च सर्वाणि स्थितानि सुबूहनि च ।
द्रव्याणि केन नीतानि न ज्ञातान्यपि भूसुर! ॥५८॥

सारी बातों को मुझे सुनाओ । **ब्राह्मणी ने कहा—** मैं तुम्हारी अनीति को देखकर जाना चहती हूँ ॥४८॥ अरी दुष्टे ! मैं तुम्हें परम दुर्लभ व्रत क्या बतलाऊँ ? आज लक्ष्मीजी के दिन तुमने जो चाण्डाल घर में किया है उसे मैंने देख लिया है । उसी के घर में तुम आज गर्वित हो । उस ब्राह्मणी के वचन को सुनकर रानी ने आँखे लाल करके ॥४८-५०॥ उस बुढ़िया ब्राह्मणी को मारा । उसके बाद वृद्धा कमला देवी रोती हुयी वहाँ से भाग गयीं ॥५१॥ उसके बाद खेलती हुयी ब्राह्मणी को रोने की ध्वनि को सुनकर श्यामाबाला ब्राह्मणी के समीप आयी ॥५२॥ **श्यामाबाला ने कहा—** हे वृद्धें ! आप बतलायें कि आपको इतना कष्ट किसने दिया है । उसकी वाणी को सुनकर शोक भरी वणी से ॥५३॥ लक्ष्मी देवी ने सारा वृतान्त कह सुनाया । उस अत्यन्त दुर्लभ वृत्तान्त को सुनकर वह श्यामाबाला ने श्रद्धा तथा भक्ति के साथ शास्त्रोक्त विधि से उस व्रत को किया । तीन बार व्रत के पूरा हो जाने के बाद जब चौथा बार आया ॥५४-५५॥ उस समय लक्ष्मीजी की कृपा से उसका विवाह हो गया । श्रीसिद्धेश्वर नामक तेजस्वी राजा का ॥५६॥ उसका मालाधर नामक पुत्र उसको अपनी पत्नी बनाकर अपने घर लेकर

निर्वित्ता बुद्धिहीना सा चान्नवस्त्रविवर्जिता । उपदिष्टा च केनापि गन्तुं चदुहितुर्गृहम् ॥५९॥
प्रेषयामास भर्त्तारं किञ्चित्प्रार्थनहेतवे । तस्य मालाधरस्यापि ग्रामे च सरसीतटे ॥६०॥
कालेन कियता विप्र ! प्रविवेश च कष्टतः ।
तस्माज्जलं समानेतुं तस्या दास्यः समागताः ॥
तं दृष्ट्वा दुःखिनां श्रेष्ठं पप्रच्छुः सानुकम्पिताः ॥६१॥

दास्य ऊचुः

कस्त्वं कुतःसमायातो मांसरक्तविवर्जितः । रूक्षाङ्गो रूक्षकेशश्च तत्सर्वं कथयस्व नः ॥६२॥

दरिद्र उवाच

श्यामाबालापिता चाहं सौराष्ट्रनगरागतः । कथयध्वं च भो दास्यःश्यामाबाला समीपतः॥६३॥
तच्छुत्वा वचनं तस्य कौतूहलसमन्विताः। परस्परमुखाःसर्वा जहसुःस्वपुरं गताः ॥६४॥
श्यामाबालायै कथितं सर्ववृत्तं च भो द्विज ! ।
श्रुत्वैतद्वचनं तासां प्रेषयामास सेवकान् ॥६५॥
पुष्पतैलं दिव्यवस्त्रं चन्दनं पर्णवीटिकाम्। घोटकं च तथा दत्त्वा पितरं प्रति सुन्दरी ॥६६॥
गत्वाऽथ सर्वे ते भृत्याःकृत्वा सुवेषमुत्तमम् ।
श्यामाबाला गृहं निन्युर्देवराजगृहोपमम् ॥६७॥
श्यामाबाला ततश्चैव पितरं दुखिनां वरम्। शाल्यन्नं सघृतं चैव भोजयामास यत्नतः ॥६८॥
तुर्येषु समतीतेषु दिवसेषु तपोधन ! । प्रेषयामास तं दत्त्वा गुप्तपात्रस्थितं धनम् ॥६९॥

चला गया । उसके चले जाने पर जो हुआ उस कौतुक को हे ब्रह्मन् ! आप सुनें ॥५७॥ रानी के घर में विद्यमान बहुत सी वस्तुए कौन ले गया ? इस बात को कोई नहीं जान सका ॥५८॥ धनहीन वह मूर्खा अन्न और वस्त्र से भी रहित बैठी हुयी किसी से पुत्री के घर जाने के लिए ॥५९॥ अपने पति को भेजी कि वे कुछ मांग लायें । मालाधर भी नदी के तट पर स्थित ग्राम में ॥५९-६०॥ कुछ समय के बाद बड़े कष्ट से पहुँच पाये । नदी से जल लाने के लिए उसकी (श्यामा बाला की) दासियाँ आयीं। उस दुःखी मनुष्य को देखकर उन सबों ने करुणा करके कहा ॥६१॥ **दासियों ने कहा—** तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? तुम्हारे शरीर में न मांस है न रक्त । तुम्हारा शरीर रुक्ष है, केश भी रूखे है, इन सारी बातों को तुम हमलोगों को बतलाओ ॥६२॥ **दरिद्र ने कहा—** मैं श्यामाबाला का पिता हूँ, सौराष्ट्र नगर से आया हूँ । हे दासियों ! तुमलोग श्यामाबाला को बतला दो ॥६३॥ उसकी उस वाणी को सुनकर कौतूहल से युक्त वे सब एक दूसरे का मुँह देखने लगीं और जोर से हँसती हुयी अपने नगर में चली गयीं । हे द्विज ! उन सबों ने श्यामाबाला को सारा वृत्तान्त सुनाया । उन सबों की वाणी को सुनकर श्यामाबाला ने अपने सेवकों को भेजा ॥६५॥ उस सुन्दरी ने अपने पिता के लिए पुष्प, तेल, दिव्यवस्त्र, दिव्य चन्दन तथा ताम्बूल की वीटिका तथा घोड़ा भेजवाया ॥६६॥ उसके बाद जाकर उन सेवकों ने उसको सुन्दर वेष में सजाया और इन्द्र के घर के समान सुन्दर श्यामाबाला के घर उस दरिद्र को वे सब लाये ॥६७॥ श्यामाबाला उसके बाद अपने दुःखी पिता को घी से युक्त सुन्दर भोजन कराया ॥६८॥ चार दिनों के बीत जाने पर हे तपोधन ! गुप्त पात्र में धन देकर उसने अपने

ततःप्रविश्य स्वगृहे धनं पात्रान्तरस्थितम् । ददर्शाङ्गारनिचयं रुरोद भृशदुःखितः ॥७०॥
दुहितुःसदनं यातुं निःससार गृहागतः । तत्रैव सरसीकूले प्रविवेश च दुःखिनी ॥७१॥
तथैनां च समानीतां यथाऽस्याःप्राणबल्लभाम् ।
तथैव पूजयामास मातृस्नेहात्पतिव्रता ॥७२॥
एतस्मिन्समये विप्र लक्ष्मीवासरमुत्तमम् । श्यामाबाला कारयितुं मनश्चके च मातरम् ॥७३॥
तस्या माता दरिद्राणि भुक्त्वा वैकान्तिकेऽपि च ।
शावकानां तु चोच्छिष्टं लक्ष्मीकोपसमन्विता ॥७४॥
इन्दिरायास्तृतीयानि वासराणि गतान्यपि । चतुर्थवासरे तां तत्कारयामास सा दृढम् ॥७५॥
आगता नगरं सा वै राज्ञी सुरतिचन्द्रिका। दृष्ट्वा गृहं तथादिव्यमिन्दिरायाः प्रसादतः ॥७६॥
श्यामाबाला च विप्रेन्द्र ! कदाचित्समये पुनः ।
मातुर्गृहं गता चाथ ऐश्वर्यस्य दिदृक्षया ॥७७॥
श्यामाबालां ततो दूराद् दृष्ट्वा संकुपिता च सा ।
न पश्यामि मुखं तस्या इत्युक्त्वाऽलक्षिता स्थिता ॥७८॥
गत्वा गृहान्तरालं च गृहीत्वा सैन्धवं च सा ।
आगता स्वगृहं किञ्चित्तूष्णीं लक्ष्मीसमाश्रितम् ॥७९॥
राजा स्वामी च पप्रच्छ तां साध्वीं पतिदेवताम् ।
किमानीतं त्वया कान्ते ! कथयस्व ममाग्रतः ॥८०॥

पिता को भेज दिया ॥६९॥ उसके बाद श्यामाबाला के पिता अपने घर आकर जब उस पात्र में स्थित धन को देखा तो वह सब राख हो गया था । यह देखकर वे अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे ॥७०॥ अत्यन्त दुःखी होकर वे अपनी पुत्री के ही घर जाने के लिए अपने घर से निकल पड़े । वह दुखिनी रानी भी उसी नदी के तट पर आयी ॥७१॥ श्यामाबाला उसको भी उसीतरह से लायी जिसतरह अपने पिता को लायी थी । उस पतिव्रता ने अपनी माता के प्रेम से भरकर उसकी पूजा की ॥७२॥ हे विप्र! उसी समय श्यामाबाला अपनी माता से लक्ष्मीजी का उत्तम व्रत कराने का मन बनाया ॥७३॥ उसकी माता दरिद्रा थी । उसने एकान्त में उन सभी वस्तुओं को खा लिया और अपने बच्चों की जूठी वस्तुओं का भोग लगाया । उसके कारण लक्ष्मीजी कुपित हो गयीं ॥७४॥ लक्ष्मी व्रत करते हुए तीसरा दिन भी बीत गया । उसके बाद उसने चौथे दिन व्रत कराया ॥७५॥ रानी सुरतिचन्द्रिका अपने नगर में आयीं। उन्होंने लक्ष्मीजी की कृपा से अपने दिव्य भवन को पहले के ही समान दिव्य देखा ॥७६॥ हे विप्रेन्द्र! एक बार श्यामाबाला भी फिर अपनी माता के घर उनके ऐश्वर्य को देखने की इच्छा से गयी ॥७७॥ श्यामा बाला को दूर से ही आती हुयी देखकर वह क्रुद्ध हो गयी । उसने कहा मैं उसका मुँह नहीं देखूँगी । यह कहकर चुपचाप देखती रह गयी ॥७८॥ घर के भीतर जाकर तथा उस घोड़े को लेकर श्यामाबाला अपने घर चुपचाप अपने घर लौट आयी ॥७९॥ उसके स्वामी राजा ने उस पतिव्रता से पूछा हे कान्ते ! तुम क्या लायी हो ? इसे मुझे बतलाओ ॥८०॥ **कान्ता ने कहा—** मैं राज्य का सारांश लायी हूँ उसे भोजन के समय दिखाऊँगी । इस तरह से कहकर उसने बिना नमक का भोजन बनाया॥८१॥

कान्तोवाच

राज्यसारं समानीतं दर्शयिष्यामि भोजने। इत्युक्त्वा सा तदा पाकं कृत्वा च लवणं विना॥८१॥
अन्नादिकं ततो दत्त्वा मालाधराय भूभुजे। ततो मालाधरो राजा व्यञ्जनं लवणं बिना॥८२॥
भुक्त्वा वैगुण्यतां प्राप्तो राज्यसारं ददौ च सा ।
तदा हृष्टमना राजा भोजनं कृतवान्द्विज ॥८३॥
प्रशशंस च तां नारीं धन्याधन्या इति ब्रुवन् ।
एतद्व्रतं च या नारी न करोति महादरात् ॥८४॥
जन्मजन्मनि सा नारी दरिद्रा दुर्भगा भवेत् ।
इदं या शृणुयाद्भक्त्या पठेद्यो वा समाहितः ॥८५॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो लक्ष्मीलोकं लभेच्च सः ।
इमां व्रतकथां या तु न श्रुत्वा कुरुते व्रतम् ॥
तस्या व्रतफलं चैव नश्यत्येव न संशयः ॥८६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवाद एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

केनपुण्येन भो सूत ! चान्येन गतपातकः ।
नरो याति हरेःस्थानं तद्वदस्वानुकम्पया ॥१॥

उसने नमक रहित अन्न इत्यादि मालाधर को दिया । उसके बाद नमक रहित व्यंजन खाकर वे वैगुण्यता को प्राप्त कर लिए और श्यामाबाला ने उन्हें राज्य का सार प्रदान किया । उसके बाद राजा ने प्रसन्न मन से भोजन किया ॥८२-८३॥ उसके बाद धन्य-धन्य कहते हुए उन्होंने श्यामाबाला की प्रशंसा की। जो नारी अत्यन्त आदर के साथ इस व्रत को नहीं करती है ॥८४॥ वह नारी प्रत्येक जन्मों में दरिद्रा और दुर्भगा होती है । इस प्रसङ्ग को जो नारी अथवा पुरुष भक्तिपूर्वक पढ़ते अथवा सुनते हैं ॥८५॥ वे सभी पापों से रहित होकर लक्ष्मीजी के लोक में जाते हैं । इस व्रत कथा को सुनकर भी जो नारी इस व्रत को नहीं करती है, उसके व्रतों के सारे फल विनष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है॥८६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूतशौनक संवाद के अन्तर्गत ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

ब्राह्मण प्राणरक्षक राजा दीननाथ का वृत्तान्त

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! किस पुण्य अथवा दूसरे साधन से मनुष्य निष्पाप होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥१॥ सूतजी ने कहा— जो व्यक्ति धन तथा प्राण के द्वारा अथवा प्राण

सूत उवाच

ब्राह्मणस्य धनैरन्यैः प्राणैर्वाऽपि द्विजोत्तम ! ।
रक्षां करोति यो मर्त्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२॥

पुरा राजा दीननाथो युगे द्वापरसंज्ञके। आसीदपुत्रो बलवान्वैष्णवः स तु याजकः ॥३॥
एकदा गालवं राजा पप्रच्छ विनयान्वितः। केन पुण्येन जायेत पुत्रो वै करुणार्णव !॥४॥
वदस्व मुनिशार्दूल ! करिष्यामि तवाज्ञया। येषां नृणां नास्ति सुतो जीवनं हि निरर्थकम् ॥५॥

गालव उवाच

राजञ्छृणुष्वावहितो यत्पृष्टोऽस्मि तवाग्रतः। कथयामि समासेन पुत्रस्योद्भवकारणम् ॥६॥
क्रतुं च नरमेधाख्यं कुरुष्व राजसत्तम। तदा ते सन्ततिःस्याद्वै सर्वलक्षणसंयुता ॥७॥

राजोवाच

नरमेधं महायज्ञं यज्ञानां प्रवरं द्विज !। कीदृशं नरमानीय करिष्यामि गुरो वद ॥८॥

गालव उवाच

सुन्दराङ्गसुवदनःसमस्तशास्त्रविद्भवेत् । सत्कुले यदि जातः स तदा यज्ञाय कल्पते ॥९॥
अङ्गहीनःकृष्णवर्णो मूर्खोऽयोग्यो भवेन्नहि। एवमुक्तो गालवेन स राजा मनुजेश्वरः ॥१०॥
प्रेषयामास दूतांश्च कथयित्वा मुनेर्वचः। द्रविणं बहु दत्त्वा च गालवप्रमुखान्द्विजान् ॥११॥
यज्ञार्थे वरयामास समस्तशास्त्रपारगान्। ततो राजाज्ञया दूता देशं देशं मुदा गताः ॥१२॥
ग्रामेग्रामे द्विजश्रेष्ठ ! पत्तनेऽपि समाहिताः। कुत्राऽपि न प्राप्तवन्तो गता जनपदं ततः ॥१३॥

के द्वारा ब्राह्मण की रक्षा करता है, वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२॥ पहले के द्वापर युग में दीननाथ नामक एक राजा थे। वे महान् वैष्णव, पुत्रहीन और यज्ञ करने वाले थे ॥३॥ एक बार राजा ने गालव नामक ब्राह्मण से पूछा— हे करुणासागर ! किस पुण्य के करने से पुत्र की प्राप्ति हो सकती है ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इसे आप बतलाइये आपकी आज्ञा के अनुसार मैं उसे करूँगा। पुत्रहीन मनुष्यों का जीवन निरर्थक होता है ॥५॥ **गालव महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! आपने जो पूछा है उसका उत्तर सावधानी पूर्वक सुनें; मैं संक्षेप में तुम्हारे पुत्र प्राप्ति के साधन को बतलाता हूँ ॥६॥ हे राजश्रेष्ठ! आप नरमेध नामक याग करें उससे आपको सभी लक्षणों से सम्पन्न सन्तान की प्राप्ति होगी ॥७॥ **राजा ने कहा—** हे द्विज ! नरमेध यज्ञ सभी यज्ञों में श्रेष्ठ होता है। हे गुरो ! आप बतलाएँ कि किस प्रकार के नर को लाकर मैं यह यज्ञ करूँ ॥८॥ **गालव महर्षि ने कहा—** उसके अङ्ग और मुख सुन्दर हों वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो। उसे सद्वंश में उत्पन्न होना चाहिए। ऐसा होने पर वह यज्ञ के योग्य होता है ॥९॥ उसे अङ्गहीन, काले वर्ण का, मूर्ख तथा अयोग्य नहीं होना चाहिए। हे विप्र ! इस तरह गालव महर्षि के कहने पर राजा ॥१०॥ मुनि की वाणी को सुनकर दूतों को भेजा। गालव आदि प्रमुख विप्रों को बहुत दक्षिणा देकर ॥११॥ यज्ञ में कार्य करने के लिए ब्राह्मणों का वरण किया। उसके बाद राजा की आज्ञा से दूत अनेक देशों में गये। वे गावों और नगरों में भी गये। जब कहीं भी वे वैसे नर को नहीं पाये तो जनपद में गये ॥१२-१३॥ दशपुर नामक जनपद में गुणवान् द्विज भरे पड़े हैं। वहाँ की नारियाँ सुकेशी और मृगशावकों के समान बड़े नेत्रों वाली है ॥१४॥ उन चन्द्रमुखियों

नाम्ना दशपुरं विप्र ! प्रकीर्णं गुणिभिर्द्विजैः ।
यत्र नारीःसुकेशीश्च मृगशावकचक्षुषः ॥१४॥
दृष्ट्वा मुह्यन्ति पुरुषाश्चन्द्रमुख्यश्च ता यतः ।
तस्मिन्पुरे मनोरम्ये कृष्णदेव इति द्विजः ॥१५॥
आसीत्पुत्रैस्त्रिभिःसार्द्धं भार्यया व सुशीलया ।
वैष्णवः प्रियवादी च विष्णुपूजारतः सदा ॥१६॥
साग्निकःपितृभक्तश्च वैष्णवानां प्रियङ्करः । प्रार्थनां चक्रुरथ ते राज्ञो दूता द्विजोत्तम !॥१७॥
पुत्रं देहीति देहीति वदन्तो ब्राह्मणर्षभ ! । नास्ति राज्ञो द्विजश्रेष्ठ ! पुत्रःसन्तापनाशनः ॥१८॥
तदर्थं नरमेधाख्ये यज्ञे भवति दीक्षितः । नेष्यामस्तव पुत्रं वै बलिं दातुं महाक्रतौ ॥१९॥
सुवर्णानां चतुर्लक्षं ब्रह्मन्त्रय समाहितः । सुखेन यदि दातव्यो नो पुत्रःपुत्रलालसात् ॥२०॥
तदा बलेन नेष्यामो राजाज्ञाकारिणो वयम् ।
दूतानां वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणौ शोकविह्वलौ ॥२१॥
अभूतां विगतप्राणाविव संशयमानसौ ।
किं धनेन सुवर्णेन जीवनेनापि सद्मना ॥
प्रोवाचेदं वचः सोऽपि ब्राह्मणो राजपूरुषान् ॥२२॥

ब्राह्मण उवाच

यदि दूताःसमानेतुं पुत्रं शोकतमोऽपहम् । आगता निश्चितं यूयं श्रृणुध्वं वचनं मम ॥२३॥
स्थित्वा पृथिव्यां को भ्रष्टां राजाज्ञां कर्तुमिच्छति ।
पुत्रं हित्वा किंतु यूयं वृद्धं मां नयत द्विजम् ॥२४॥

को ही देखकर पुरुष मोहित हो जाते हैं । उस मनोहर नगर में कृष्णदेव नामक द्विज थे ॥१५॥ उनके तीन पुत्र और सुन्दर शीलगुण सम्पन्न स्त्री थी । वे वैष्णव, प्रिय बोलने वाले तथा सदा भगवान् विष्णु की पूजा करते रहते थे ॥१६॥ वे अग्निहोत्री, अपने माता-पिता के भक्त और वैष्णवों का कल्याण करने वाले थे । राजा के उन दूतों ने उन ब्राह्मण श्रेष्ठ से प्रार्थना किया ॥१७॥ हे ब्रह्मण श्रेष्ठ ! आप अपने एक पुत्र को दे दें । राजा के संताप को नष्ट करने वाला उनका कोई पुत्र नहीं है ॥१८॥ उसके लिए नरमेध याग में आप दीक्षित हों । हमलोग आप के पुत्र को उस महान् यज्ञ में बलि देने के लिए ले जायेंगे ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! उसके बादले में आप चार लाख सुवर्ण ले लें । यदि पुत्र मोह के कारण आप सुख पूर्वक पुत्र को नहीं देंगे ॥२०॥ तो हमलोग उसे बलपूर्वक ले जायेंगे क्योंकि हमलोग राजा की आज्ञा का पालन करने वाले हैं । दूतों की वाणी को सुनकर दोनों ब्राह्मण शोक सन्तप्त हो गये॥२१॥ प्राण सङ्कटापन्न वे विह्वल होकर मेरे हुए के समान हो गये । धन, सुवर्ण, जीवन तथा गृह से कौन सा लाभ है ? इसतरह से उस ब्राह्मण ने राजा के पुरुषों से कहा ॥२२॥ **ब्राह्मण ने कहा—** दूतों! यदि तुमलोग शोक तथा अज्ञान को विनष्ट करने वाले पुत्र को लाने के लिए आये हो तो तुमलोग मेरी बात सुनो ॥२३॥ पृथिवी पर राजा की उल्लंघन कौन कर सकता है ? अतएव तुमलोग मेरे पुत्र को छोड़ दो और मुझ को ही ले चलो ॥२४॥ उनकी इस वाणी को सुनकर दूत क्रुद्ध हो गये । उन सबों

इति तस्य वचःश्रुत्वा दूताःक्रोधसमन्विताः ।
बलात्कारेण तद्गेहे सुवर्णानि च तत्यजुः ॥२५॥
यदानेतुं मनश्चक्रुस्तं पुत्रं किल ते क्रुधा । बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा रुदन्प्रोवाच स द्विजः ॥२६॥
पुत्राणां ज्येष्ठपुत्रं मे हित्वाऽन्यं पुत्रमुत्तमम् ।
नयतेति वचो वक्तुं वक्त्रे नायाति हेजनाः ॥२७॥
द्विजस्य वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणीं रुदतीं सतीम् ।
प्रोचुर्दूताः कनीयांसं पुत्रं देहीति सत्तम ! ॥२८॥
तेषामिति वचःश्रुत्वा ब्राह्मणी भूमितस्तदा । पपात वात्ययासार्द्धं रम्भेव भृशदुःखिनी ॥२९॥
मुद्गरं सा समादाय मौली चाताडयद्बलात् । कनिष्ठं मत्सुतं दूता नापि दास्यामि सर्वथा ॥३०॥
एतस्मिन्समये विप्र ! विप्रस्य मध्यमःसुतः ।
प्रोवाच विनयाविष्टःप्रणम्य पितरौ रुदन् ॥३१॥
माता यदि विषं दद्यात्पित्रा विक्रीयते सुतः ।
राजा हरति सर्वस्वं कस्तत्र पालको भवेत् ॥३२॥
इत्युक्त्वा तत्सुतो मूर्ध्ना प्रणम्य पितरौ सह ।
दूतैर्जगाम त्वरितै राज्ञोऽस्य दीक्षितस्य च ॥३३॥
अथ तौ ब्राह्मणौ पुत्रविच्छेदक्लिष्टमानसौ । रुदित्वा च रुदित्वा च अन्धभावं प्रजग्मतुः ॥३४॥
अथ ते पथ्यगच्छन्त विश्वामित्रमुनेःकिल। आश्रमं शिष्ययुक्तं च सेवितं मृगशावकैः ॥३५॥
समुनी राजपुरुषान्दृष्ट्वा पप्रच्छसादरम् । के यूयं भो कुत्र गता यथा का वृत्तिरुच्यताम्॥३६॥

राजदूता ऊचुः

शृणुष्वावहितो विप्र राज्ञःपुत्रो न जायते। तदर्थं नरमेधाख्ये यज्ञे राजा सुदीक्षितः॥३७॥

ने बलपूर्वक उस ब्राह्मण के घर में उस सुवर्ण को रख दिया ॥२५॥ क्रुद्ध हुए उन सबों ने उस पुत्र को ले जाने का मन बनाया तो हाथ जोड़कर रोते हुए उस ब्राह्मण ने कहा ॥२६॥ तीनों पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर दूसरे किसी उत्तम पुत्र को ले जाओ ॥२७॥ ब्राह्मण की वाणी को सुनकर सती साध्वी ब्राह्मणी को दूतों ने कहा तो फिर छोटे ही पुत्र को दे दो । उन सवों की वाणी सुनकर ब्राह्मणी चक्कर खाकर पृथिवी पर गिर पड़ी ॥२९॥ उसने मुद्गर उठाकर उससे अपने शिर पर प्रहार किया और कहा दूतों सबसे छोटा पुत्र मेरा है, उसे मैं नहीं दे सकती हूँ ॥३०॥ उसी समय हे विप्र ! उस ब्राह्मणी का मध्यम पुत्र अपने माता-पिता को प्रणाम करके नम्रतापूर्वक कहा ॥३१॥ यदि माता विष देने वाली हो जाय, पिता पुत्र को बेंचने वाला हो जाय, राजा प्रजा का सर्वस्व छिन लेने वाला हो जाय, तो इन सबों से भिन्न पालन करने वाला कौन हो सकता है ॥३२॥ इस तरह से कहकर वह पुत्र माता-पिता को प्रणाम करके शीघ्र वहाँ से दूतों के साथ उस दीक्षित राजा के यज्ञ में चल दिया ॥३३॥ उसके बाद पुत्र का विच्छेद हो जाने से उसके माता-पिता दुःखी हो गये । वे बार-बार रोकर अंधे हो गये॥३४॥ इसके बाद वे सब रास्ते में विश्वामित्र मुनि के आश्रम में आयें । उस आश्रम में विश्वामित्र मुनि के शिष्य और मृग शावक थे ॥३५॥ वे मुनि राजपुरुषों को देखकर आदर पूर्वक पूछे, तुमलोग कौन हो ? कहाँ

नयामस्तत्र बल्यर्थमिमं ब्राह्मणपुत्रकम् । इति तेषां वचः श्रुत्वा सविप्रःसदयोऽभवत् ॥३८॥

प्राणा ममापि गच्छन्तु सुखी भवतु बालकः ।
बालकार्थेद्विजार्थे च स्वाम्यर्थे ये जना इह ॥३९॥
त्यजन्ति तृणवत्प्राणांस्तेषां लोकाः सनातनाः ।
विमृश्येति मुनिः स्वान्ते स प्रोवाच द्विजर्षभः ॥४०॥

यज्ञे बलिं समादातुमिमं ब्राह्मणबालकम् । हित्वा मां नयथाथाशु ह्ययं बालक उत्तमः ॥४१॥
संसारे जन्मसम्प्राप्य न लब्धं सुखमत्र च। अनेन बालकेनापि मरिष्यति कथं त्वयम्॥४२॥

आगतेऽस्मिन्गृहाद् दूताःपितरावस्य दुःखितौ ।
हतभाग्यौ गतो नूनं यमस्येव गृहं प्रति ॥४३॥
एवं तस्य वचःश्रुत्वा दूताःप्रोचुरथ द्विजम् ।
भूपालस्य विनाज्ञां वै दीननाथस्य भूसुर ॥४४॥
नेतुं त्वां पलितं प्राज्ञ ! नेष्यामो हि कथं वरम् ।
एवमुक्तवा च ते दूता जग्मू राज्ञः पुरीं तदा ॥४५॥

समुनिर्दूतसङ्घैश्च गतवान्यज्ञमन्दिरम् । राजानं कथयामासुर्दूता विप्रस्य चेष्टितम् ॥४६॥

तच्छ्रुत्वा शङ्कितमनाःप्रोवाचेदं वचः स तम् ।
मुने यदि तु मे यज्ञे कृते पुत्रो भविष्यति ॥४७॥

बलिं विनापि भो ब्रह्मंस्तदा विप्रसुतं नय ॥४८॥

मुनिरुवाच

यज्ञे त्वया कृते राजन्महापुत्रो भविष्यति । अत्र ते संशयो माभूदमोघमपिदर्शनम् ॥४९॥

गये थे ? तुमलोगों की वृत्ति क्या है ?। इन बातों को बतलाओ ॥३६॥ राजदूतों ने कहा हे विप्र ! हमलोगों की बात आप सुनें, राजा को पुत्र नहीं है । उसके लिए राजा नरमेध की दीक्षा ले चुके हैं॥३७॥ उस यज्ञ में बलि देने के लिए हमलोग इस ब्राह्मण पुत्र को ले जा रहे हैं । उन सबों की इस वाणी को सुनकर मुनि को दया आ गयी ॥३८॥ इसके बदले में मेरे ही प्राणों को ले चलो यह बालक सुखी हो जाय । इसलोक में जो लोग ब्राह्मण के लिए, बालक के लिए तथा स्वामी के लिए ॥३९॥ अपने प्राणों का तृण के समान त्याग कर देते हैं, वे सनातन लोकों में जाते हैं । इस तरह से अपने अन्तःकरण में विचार करके वे ब्राह्मण श्रेष्ठ कहे ॥४०॥ यज्ञ में बलि देने के लिए इस ब्राह्मण को छोड़कर मुझे ले चलो, यह उत्तम बालक है ॥४१॥ इस संसार में जन्म प्राप्त करके इसे कोई सुख नहीं मिला, अतएव यह बालक कैसे मरेगा ?॥४२॥ इस बालक के चले जाने पर तो इसके माता-पिता दुःखी होकर निश्चित रूप से मर गये होंगे ॥४३॥ उस मुनि की इस तरह की वाणी सुनकर दूतों ने ब्राह्मण से कहा— हे ब्राह्मण ! महाराज दीननाथ की आज्ञा के बिना हमलोग आप बूढ़े को कैसे ले जा सकते हैं । इस तरह से कहकर वे सब राजा के नगर में चले गये ॥४४-४५॥ वे मुनिश्रेष्ठ भी राजा की यज्ञशाला में चले गये । दूतों ने उन मुनि की चेष्टाओं को राजा से बतलाया ॥४६॥ उसको सुनकर राजा भयभीत हो गये और मुनि से कहे— हे मुने ! बिना बलि के भी यज्ञ करने पर यदि पुत्र हो जाय तो हे ब्रह्मन्!

इति तस्य वचःश्रुत्वा राजाऽत्यन्तसहर्षकः। चक्रे पूर्णाहुतिं यज्ञे समस्तैर्मुनिभिःसह ॥५०॥

अथातः स मुनिःश्रेष्ठो ब्राह्मणस्य सुतं च तम् ।
गृह्य दशपुरं नाम नगरं गतवांस्तदा ॥५१॥

भवनं तस्य गत्वा च उक्तवान्वचनं मुनिः। गृहे त्वं तिष्ठसे विप्र ! तिष्ठामि मृतवन्मुने ॥५२॥

राजा बलेन मे पुत्रं नीतवान्किं करोम्यहम् ।
पुत्रे गते च भो विप्र ! दम्पत्योरावयो पुनः ॥५३॥

गतानि चान्धभावं वै क्रन्दनैर्लोचनान्यपि। अथासौ मुनिशार्दूलः पुत्रं पश्य नयेति च ॥५४॥
उक्तवांस्तौ यदा विप्र ब्राह्मणौ जातहर्षकौ। पुत्रायाकारणं कृत्वा गतावेतौ बहिः क्षणात् ॥५५॥
मुनेर्वचनसिद्धित्वात्तत्क्षणं लोचनं तयोः। आलोकं तु गतं तूर्णं पुत्रस्य दर्शनादपि ॥५६॥
पुत्रस्य मुखपद्मं तौ लोचनैरलिसन्निभैः। पीत्वा मुनिं चिरं तं च नमस्कृत्य पुनःपुनः ॥५७॥
प्रोचतुर्वचनं विप्रा ब्राह्मणौ प्रियवादिनौ। अहो मुने ! जीवदानमावयोः सुकृतं किल ॥५८॥

तयोरेवं वचःश्रुत्वा स मुनिः करुणार्णवः ।
दत्त्वाऽऽशिषं च तौ विप्र जगाम निजमाश्रमम् ॥५९॥

मुनिःकरगतं चैव कृत्वा विष्णोःपरंपदम् । तपस्तेपे महाभागो दैवतैरपि दुर्ल्लभम् ॥६०॥

किञ्चित्काले गते विप्र तस्य राज्ञोऽभवत्सुतः ।
सुन्दरो राजयोग्यश्च इन्दुः क्षीरनिधाविव ॥६१॥

आप इस बालक को ले जायँ ॥४७-४८॥ **मुनि ने कहा—** हे राजन् ! आपके यज्ञ करने पर महान् पुत्र होगा, इस विषय में आपको शङ्का नहीं होनी चाहिए, यह मेरा अमोघ दर्शन है ॥४९॥ उन मुनि की बातों को सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुए । उन्होंने समस्त मुनियों के साथ पूर्णाहुति कर दी ॥५०॥ उसके बाद वे मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मण के उस पुत्र को लेकर दशपुर नामक नगर में गये॥५१॥ उसके घर जाकर मुनि ने कहा हे विप्र ! आप अपने घर में स्थित हैं **ब्राह्मण ने कहा—** मैं तो मरे हुए के समान स्थित हूँ ॥५२॥ राजा बल पूर्वक मेरे पुत्र को ले गया मैं क्या करूँ ?। हे विप्र ! पुत्र के चले जाने पर हम दोनों पति-पत्नी अंधे हो गये हैं और रोने के कारण आँखें भी चली गयीं । उसके बाद वे मुनिश्रेष्ठ कहे आप अपने पुत्र को देखिये और इसे ले जाइये ॥५३-५४॥ मुनि की बातों को सुनकर दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणी प्रसन्न हो गये । वे दोनों पुत्र को पुकारकर शीघ्र ही घर से बाहर निकले ॥५५॥ मुनि की वाणी की सिद्धि होने से उन दोनों के नेत्रों में उसी क्षण ज्योति आ गयी और पुत्र के देखने से भी नेत्रों में ज्योति आ गयी ॥५५-५६॥ वे दोनों अपने नेत्रों से अपने पुत्र के मुखकमल को देर से देखते रहे उसके बाद वे बार-बार मुनि को प्रणाम किए ॥५७॥ प्रिय बोलने वाले उन दोनों ने मुनि से कहा— मुने ! हमदोनों के जीवन दान करने का पुण्य आपने किया है ॥५८॥ उन दोनों की वाणी को सुनकर करुणासागर मुनि उन दोनों को आशीर्वाद देकर अपने आश्रम में चले गये ॥५९॥ मुनि भी भगवान् विष्णु के परमपद प्राप्ति के अधिकारी होकर देवताओं के लिए भी दुर्लभ तपस्या किए ॥६०॥ थोड़े समय बाद राजा को भी पुत्र हुआ । वह क्षीरसागर से उत्पन्न चन्द्रमा के समान सुन्दर और योग्य था । हे विप्र ! पुत्रोत्सव के अवसर पर राजा भी धनों का दान करके ॥६१॥ पृथिवी पर विद्यमान

पुत्रोत्सवे सोऽपि विप्र राजा दत्त्वा धनानि वै ।
बुभुजे देववद्भूम्यां विशोको जातकौतुकः ॥६२॥
विप्रान्पालयते यस्तु प्राणान्दत्त्वा धनान्यपि। स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्ल्लभम् ॥६३॥
पठन्ति येऽत्र भक्त्या च शृण्वन्ति विप्रतः कथाम् ।
आख्यानं श्लोकमेकं वा गच्छन्ति विष्णुमन्दिरम् ॥६४॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे ब्राह्मणपालनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कृष्णजन्माष्टमी सूत ! तस्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
कथयस्व महाप्राज्ञ चोद्धरस्व भवार्णवात् ॥१॥

सूत उवाच

कृष्णजन्माष्टमीं ब्रह्मन्भक्त्या करोति यो नरः ।
अन्ते विष्णुपुरं याति कुलकोटियुजोद्विज !॥२॥
अष्टमीबुधवारे च सोमे चैव द्विजोत्तम ! । रोहिणीऋक्षसंयुक्ता कुलकोटिविमुक्तिदा ॥३॥
महापातकसंयुक्तः करोति व्रतमुत्तमम्। सर्वपापविनिर्मुक्तश्चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥४॥

देवता के समान उत्कण्ठा से युक्त तथा शोक रहित होकर भोगों को भोगे । जो मनुष्य अपने प्राणों तथा धनों के द्वारा ब्राह्मणों की रक्षा करता है ॥६२॥ वह पुनरावृत्ति से रहित भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । जो लोग स्वयं इस कथा को पढ़ते हैं अथवा ब्राह्मण से सुनते हैं ॥६३॥ इस पूरे प्रसङ्ग को अथवा इसका एक श्लोक को ही पढ़ते हैं, वे भगवान् विष्णु के परमपद में जाते हैं ॥६४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के ब्राह्मण रक्षण नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

कृष्णजन्माष्टमी व्रत का माहात्म्य वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! आप कृष्ण जन्माष्टमी व्रत के माहात्म्य का वर्णन करके हमारा उद्धार संसार महासागर से करें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य कृष्ण जन्माष्टमी व्रत को भक्तिपूर्वक करता है वह मृत्यु के बाद अपने करोड़ों वंश वालों के साथ भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! सोमवार अथवा बुधवार को होने वाली अष्टमी तिथि यदि रोहिणी नक्षत्र से युक्त होती है तो वह व्रत करने वाले के करोड़ों वंशों का उद्धार कर देती है ॥३॥ यदि कोई महापातकी भी इस उत्तम व्रत को करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥४॥ हे

कृष्णजन्माष्टमीं ब्रह्मन्न करोति नराधमः। इह दुःखमवाप्नोति स प्रेत्य नरकं व्रजेत् ॥५॥
न करोति च या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
वर्षे वर्षे तु सा मूढा नरकं याति दारुणम् ॥६॥
जन्माष्टमीदिने यो वै नरोऽश्नाति विमूढधीः ।
महानरकमश्नाति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥७॥
दिलीपेन पुरापृष्टो वसिष्ठोमुनिसत्तमः। तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ ! सर्वपातकनाशनम्॥८॥

दिलीप उवाच

भाद्रे मास्यसिताष्टम्यां यस्यां जातो जनार्दनः ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ॥९॥
कथं वा भगवाञ्जातः शङ्खचक्रगदाधरः। देवकीजठरे विष्णुः किं कर्तुं केन हेतुना ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि कस्माज्जातोजनार्दनः। पृथिव्यां त्रिदिवं त्यक्त्वा भवते कथयाम्यहम्॥११॥
पुरा वसुन्धरा ह्यासीत्कंसादिनृपपीडिता। स्वाधिकारप्रमत्तेन कंसदूतेन ताडिता ॥१२॥
क्रन्दती क्रन्दती सा तु ययौ घूर्णितलोचना ।
यत्र तिष्ठति देवेश उमाकान्तो वृषध्वजः ॥१३॥
कंसेन ताडिता नाथ इति तस्मै निवेदितुम् ।
वाष्पवारीणि वर्षन्ती विवर्णा सा विमानिता ॥१४॥
क्रदन्तीं तां समालोक्य कोपेन स्फुरिताधरः ।
उमया सहितः स वै दैववृन्दैरनुद्रुतः ॥१५॥

ब्रह्मन् जो नराधाम कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत नहीं करता है, वह इस लोक में दुःखी होता है और मरने के बाद नरक में जाता है ॥५॥ जो नारी कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत प्रतिवर्ष नहीं करती है, वह मूर्खा भयङ्कर नरक में जाती है ॥६॥ जो मूर्ख मनुष्य जन्माष्टमी के दिन भोजन करता है वह महानरक में जाता है यह मैं सत्य कहता हूँ ॥७॥ महाराज दिलीप ने प्राचीन काल में महर्षि वसिष्ठ से पूछा हे महाप्राज्ञ! समस्त पापों को विनष्ट करने वाले प्रसङ्ग को आप मुझे सुनायें ॥८॥ **दिलीप ने कहा—** भाद्रमास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को जो भगवान् ने अवतार ग्रहण किया उसे मैं सुनना चाहता हूँ, हे महामुने! उसे आप बतलायें ॥९॥ शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु क्या करने के लिए देवकी के गर्भ में आये उनके आने का कारण क्या था ?॥१०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** राजन् ! आप सुनें मैं बतलाता हूँ कि क्यों भगवान् जनार्दन सवर्गलोक का परित्याग करके पृथिवी पर अवतार ग्रहण किए ॥११॥ प्राचीनकाल में पृथिवी कंस आदि राजाओं से पीड़ित थी । अपने अधिकार के कारण प्रमत बने हुए कंस के दूत ने उसको (पृथिवी को) प्रताड़ित भी किया था ॥१२॥ उसके कारण उसके नेत्र घूम रहे थे, वह रोती चिल्लाती हुयी भगवान् शिव के पास यह बतलाने के लिए गयीं कि हे नाथ! कंस ने मुझे प्रताड़ित किया है । अपमानित हुयी पृथिवी आँखों से आँसू बारसाती हुयी वहाँ गयी ॥१४॥ रोती हुयी पृथिवी को देखकर देवताओं से घिरे हुए शङ्करजी के क्रोध से ओष्ठ फड़फड़ाने लगा ॥१५॥

आजगाम महादेवो विधातृभवनं रुषा । गत्वा चोवाच ब्रह्माणं कंसध्वंसनहेतवे ॥१६॥
उपाय: सृज्यतां ब्रह्मन्भवता विष्णुना सह। ऐश्वरं तद्वच:श्रुत्वा देववृन्दैर्हरादिभि: ॥१७॥
क्षीरोदे यत्र वैकुण्ठ: सुप्तोऽस्ति भुजगोपरि ।
हंसपृष्ठं समारूह्य हरेरन्तिकमाययौ ॥१८॥
तत्र गत्वा च तं धाता देववृन्दैर्हरादिभि: । संयुक्त:प्रास्तवीद्वाग्भि: कोमलं वाग्विदांवर: ॥१९॥
नम: कमलनेत्राय हरये परमात्मने । जगत: पालयित्रे च लक्ष्मीकान्त नमोऽस्तुते ॥२०॥
इति तेभ्य: स्तुतिं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्द्दन: ।
देवान्क्लिष्टमुखान्सर्वान्भवद्भिरागतं कथम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

शृणु देवजन्नाथ यस्मादस्माकमागतम्। कथयामि सुरश्रेष्ठ ! तदहं लोकभावन ! ॥२२॥
शूलिदत्तवरोन्मत: कंसो राजा दुरासद: । वसुधा ताडिता तेन करघातेन पीडिता ॥२३॥
वरं दत्त्वा पुराप्यग्रे मायया तु प्रवञ्चित: । भागिनेयं विना शम्भो मरणं भविता न मे ॥२४॥
तस्माद् गच्छ स्वयं देव ! कंसं हन्तं दुरासदम् ।
देवकीजठरे जन्म लब्ध्वा गत्वा च गोकुलम् ॥२५॥
ब्रह्मणा प्रेरितो देव: प्रत्युवाच च शूलिनम् ।
पार्वतीं देहि देवेश अब्दं स्थित्वाऽऽगमिष्यति ॥२६॥
उमया रक्षया सार्द्ध शङ्खचक्रगदाधर: । उद्दिश्य मथुरां चक्रे प्रयाणं कमलासन: ॥२७॥

क्रोध से भरे हुए शङ्करजी ब्रह्माजी के भवन में आये ओर उनसे कंस का विनाश करने के लिए कहे॥१६॥ उन्होंने कहा— हे ब्रह्मन् ! आप भगवान् विष्णु के साथ मिलकर ऐसा उपाय करें कि कंस की मृत्यु हो । शङ्करजी की वाणी सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि हमलोग क्षीरसागर में जहाँ भगवान् शेषशय्या पर सोये हैं, वहाँ चलें । और वे हंस पर बैठकर श्रीहरि के सन्निकट आये ॥१७-१८॥ वहाँ पर जाकर शङ्कर आदि देवसमूह के साथ वाणी के तत्त्व को जानने वालों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने कोमल वाणी से भगवान् की स्तुति की ॥१९॥ **उनलोगों ने कहा**— कमल के समान नेत्र वाले परमात्मा श्रीहरि को नमस्कार है, जगत् की रक्षा करने वाले लक्ष्मीकान्त को नमस्कार है ॥२०॥ इस तरह से देवताओं की स्तुति सुनकर भगवान् जनार्दन सूखे हुए दु:खी देवताओं से कहा— आपलोगों के आने का प्रयोजन क्या है?॥२१॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— हे लोकों की रक्षा करने वाले भगवन् जगन्नाथ ! हमलोगों के आने का प्रयोजन मैं कहता हूँ उसे आप सुनें ॥२२॥ शङ्करजी का वरदान पाकर राजा कंस दुर्दम्य हो गया है । उसने पृथिवी को थप्पड़ मारा है । उसके कारण पृथिवी दु:खी है ॥२३॥ शङ्करजी ने पहले वरदान तो दे दिया, उसके बाद माया से मोहित होकर उसने कहा कि मुझे मेरे भाँजे के अतिरिक्त दूसरा कोई मुझे मार न सके ॥२४॥ अतएव हे देव ! स्वयं आप दुराधर्ष कंस को मारने के लिए देवकी के गर्भ में जाकर जन्म लेकर गोकुल में जायँ ॥२५॥ ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित होकर भगवान् विष्णु ने शङ्करजी से कहा— हे देव ! आप मुझे पार्वतीजी को दीजिये, वे वहाँ वर्ष भर रहकर लौट आयेंगी ॥२६॥ पार्वती के रक्षकत्व में शङ्ख, चक्र, गदाधारी श्रीभगवान् उनके साथ मथुरा के लिए प्रस्थान किए और ब्रह्माजी

देवकीजठरे जन्म लेभे तत्र गदाधरः । यशोदा कुक्षिमध्यास्ते शर्वाणी मृगलोचना ॥२८॥
नवमासांश्च विश्रम्य कुक्षौ नवदिनान्तकान्। भाद्रे मास्यसितेपक्षे चाष्टमी संज्ञका तिथिः ॥२९॥
रोहिणी तारकायुक्ता रजनी घनघोषिता । तस्यां जातो जगन्नाथः कंसारिर्वसुदेवजः ॥३०॥
वैराटी नन्दपत्नी च यशोदाऽजीजनत्सुताम्। पुत्रं पद्मकरं पद्मनाभं पद्मदलेक्षणम् ॥३१॥
तदा हर्षितुमारेभे दृष्ट्वा ह्यानकदुन्दुभिः । कंसासुरभयत्रस्ता प्रोवाच देवकी तदा ॥३२॥

वैराटीं गच्छ भो नाथ सुतं प्रत्यर्पितुं किल ।
पुत्रं दत्त्वा यशोदायै सुतां तस्याःसमानय ॥३३॥
तस्या वचः समाकर्ण्य वसुदेवोऽपि दुःखितः ।
अङ्के कुमारमादाय वैराट्यभिमुखं ययौ ॥३४॥

यमुनाजलसम्पूर्णा तत्पथेमध्यवर्त्मनि। आसीद्घोरा महादीर्घा गम्भीरोदकपूरभाक् ॥३५॥

एवं दृष्ट्वा तटे स्थित्वा यमुनामवलोकयन् ।
वसुदेवोऽपि दुःखार्तोविललापातिचिन्तया ॥३६॥
किंकरोमि क्व गच्छामि विधिनाऽपि हि वञ्चितः ।
कथमत्र गमिष्यामि वैराटीं नन्दमन्दिरम् ॥३७॥
हरिणा तत्र सानन्दं मायया वञ्चितः पिता ।
क्षणमात्रं तटे स्थित्वा यमुनामवलोकयन् ॥३८॥

तेन दृष्टा पुनःसापि क्षणाज्जानुवहाऽभवत्। तां दृष्ट्वा हृष्ट उत्तस्थौ प्रस्थानमकरोद्यथा ॥३९॥
मायां कृत्वा जगन्नाथःपितुरङ्काज्जलेऽपतत्। तं पुत्रं पतितं दृष्ट्वा हाहाकृत्वा सुदुःखितः ॥४०॥

भी चले गये ॥२७॥ वहाँ पर भगवान् गदाधर ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया और पार्वतीजी यशोदाजी के गर्भ में चली गयीं ॥२८॥ नवमास तरुके दिन के अन्त तक गर्भ में रहने के बाद भाद्रपदमास के कृष्णापक्ष में अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र से युक्त जब आयी, उस दिन रात्रि में मेघ गरज रहे थे । उसी रात्रि में कंस के शत्रु जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवजी के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किए ॥२९-३०॥ विराट की पुत्री तथा नन्द की पत्नी यशोदा ने पुत्री को जन्म दिया । उस समय वसुदेवजी हाथ में कमल लिए पद्मनाथ तथा कमल के समान नेत्र वाले पुत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । उस समय कंस के भय से भयभीत देवकी ने वसुदेवजी से कहा ॥३१-३२॥ हे नाथ ! आप यशोदा के पास जायँ उन्हें पुत्र को प्रदान करके उनकी पुत्री को लाइये ॥३३॥ देवकी की वाणी सुनकर दुःखी वसुदेवजी अपने पुत्र को गोद में लेकर यशोदा के पास गये ॥३४॥ उनके मार्ग के बीच में जल से भरी हुयी यमुना नदी थी । अत्यन्त भयङ्कर तथा अत्यन्त बड़ी वह नदी जल प्रवाह से भरी थी ॥३५॥ इस तरह से नदी को देखकर यमुना के तट पर यमुना को देखते हुए अत्यन्त चिन्तित तथा दुखार्त बने हुए वसुदेवजी विलाप करने लगे ॥३६॥ मुझे भाग्य ने भी धोखा दिया है अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ । मैं नंद यशोदा के घर कैसे जा पाऊँगा ॥३७॥ उस समय श्रीहरि ने आनन्द पूर्वक पिता को ठग लिया। वसुदेवजी ने क्षणमात्र तट पर खड़ा होकर यमुना को देखा कि यमुना में तो घुटना भर ही पानी है। उसे देखकर वसुदेवजी प्रसन्नता पूर्वक खड़े हो गये और प्रस्थान किए ॥३८-३९॥ माया करके जगन्नाथ

महोपायं पुनः कर्त्तुं विधिना तेन वञ्चितः। त्राहि मां जगतां नाथ ! सुतं रक्ष सुरोत्तम ॥४१॥
जनकक्रन्दितं दृष्ट्वा कंसारिः कृपया मुहुः। जलक्रीडां समाचर्य पितुः क्रोडमगात्पुनः ॥४२॥
यथा तेन यदुश्रेष्ठो जगाम नन्दमन्दिरम्। सुतं दत्त्वा यशोदयै सुतां तस्याः समानयत् ॥४३॥
निजागारं ततः प्राप्य पत्न्यै प्रत्यर्पिता सुता। देवकी च प्रसूतेति वार्ता प्राप्ता सुरारिणा ॥४४॥
आनेतुं प्रस्थिता दूताः सुतं दुहितरं तदा। आगत्य कंसदूतास्ते सुतां नेतुं प्रचक्रमुः ॥४५॥
बलादेनां समाकृष्य देवकीवसुदेवयोः। कंसदूतैर्गृहीत्वा सा अर्पिता तु सुरारये ॥४६॥

स धृत्वा तां महाराजः सभयोऽभूद् दुरासदः।
शुद्धकाञ्चनवर्णाभां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥४७॥
कंसो हसन्तीं तां दृष्ट्वा विद्युत्स्फुरितलोचनाम्।
आदिदेशासुरश्रेष्ठो जहि नीत्वा शिलोपरि ॥४८॥
आज्ञां लब्ध्वाऽसुरास्ते वै निष्पेष्टुं तां प्रवर्तिताः।
विद्युच्छीघ्रतया गौरी जगाम शङ्करान्तिकम् ॥४९॥

गौर्युवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यत्रास्ते शत्रुरुत्तमः। नन्दस्य निलये गुप्तस्तव हन्ताऽसुरोत्तम ! ॥५०॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्त्वा तु सा देवी जगाम निजमन्दिरम्।
श्रुत्वा वाक्यं ततो देव्याः कंसो राजा सुदुःखितः ॥५१॥

भागिनीं पूतनामाह गच्छ त्वं नन्दमन्दिरम्। छद्मना तं सुतं हत्वाऽऽगच्छ ते वाञ्छितं बहु॥५२॥

अपने पिता की गोद से जल में गिर पड़े। अपने पुत्र को गिरे हुए देखकर वसुदेवजी हाय-हाय कहकर दुःखी हो गये ॥४०॥ फिर बड़ा उपाय करने के लिए विधि ने उनको ठग लिया। वे कहने लगे हे जगन्नाथ आप मेरी रक्षा करें देवश्रेष्ठ मेरे पुत्र की रक्षा करें ॥४१॥ पिता को रोते हुए देखकर श्रीभगवान् कृपा करके जल कीडा करके अपने पिता की गोद में आ गये ॥४२॥ जब वे यदुश्रेष्ठ नन्द के घर गये तो पुत्र को यशोदा को देकर उनकी पुत्री को लाये ॥४३॥ अपने घर आकर उन्होंने पत्नी को उस लड़की को समर्पित कर दिया। देवकी ने सन्तान को जन्म दिया है यह समाचार कंस तक पहुँच गया ॥४४॥ उसको लाने के लिए कंस ने दूतों को भेजा। कंस के दूत आकर उस बलिका को लेने लगे। उन सबों ने देवकी तथा वसुदेव से उसको बलपूर्वक छिन लिया। कंस के दूत उसको लाकर कंस को दे दिए ॥४६॥ उसको लेकर दुर्धर्ष कंस भयभीत हो गया। उस बालिका की कान्ति शुद्ध सुवर्ण के समान थी उसका मुख पूर्णचन्द्रमा के समान था, उसके नेत्र बिजली के समान चमक रहे थे और कंस को देखकर वह हँस रहीं थी। कंस ने दूतों को आदेश दिया कि इसको पत्थर पर पटककर मार दो ॥४७-४८॥ आज्ञा पाकर वे राक्षस उस बालिका को मसल डालना चाहे; किन्तु वह गौराङ्गी बिजली के समान शीघ्र ही भगवान् शिव के पास चली गयी ॥४९॥ **गौरी ने कहा—** हे राजन् ! सुनों जहाँ पर तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु है उसे मैं बतलाती हूँ। असुर श्रेष्ठ ! वह नंद के घर में है, वही तुम्हें मारेगा ॥५०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस तरह से कहकर वह देवी अपने घर चली गयी।

दास्यामि शत्रुं हन्तुं मे व्रज शीघ्रतरं शुभे ।
आज्ञां प्राप्य राक्षसी सा गोकुलाभिमुखं गता ॥५३॥
मायया सुन्दरीरूपा प्रविष्टा तत्र गोकुले। पयोधरे गरं सा तु धृत्वा हन्तुमुपागता॥५४॥
पशुपानां गृहद्वारि प्रविष्टा लक्षितेति च ।
गत्वाऽन्तरुत्थाप्य शिशुं स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिम् ॥५५॥
ततस्तु शकटं क्षिप्त्वा तृणावर्तादि मर्दनम्। कालीयदमनं कृत्वा गतो मधुपुरींततः॥५६॥
गत्वा कंसो हत क्रूरःकंसमल्लानजीजयत्। एतत्ते कथितं राजन्विष्णोर्जन्मदिनव्रतम् ॥५७॥
श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति कुर्यात्किं वा भविष्यति ।
य इदं कुरुते मर्त्यो या च नारी हरेर्व्रतम् ॥५८॥
ऐश्वर्यमतुलं प्राप्य जन्मन्यत्र यथेप्सितम् । पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या तृतीया षष्ठिरेव च ॥५९॥
अष्टम्येकादशीभूता धर्मकामार्थवाञ्छुभिः । वर्जयित्वा प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमीम्॥६०॥
विना ऋक्षेऽपि कर्तव्या नवमी संयुताष्टमी ।
उदये चाष्टमी किञ्चित्सकला नवमी यदि ॥६१॥
मुहूर्तरोहिणीयुक्ता सम्पूर्णा चाष्टमी भवेत् । अष्टमी बुधवारेण रोहिणी सहिता यदि ॥६२॥
सोमेनैव भवेद्राजन्किं कृतैर्व्रतकोटिभिः। नवम्यामुदयात्किञ्चित्सोमे सापि बुधेऽपि च॥६३॥
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते। विना ऋक्षं न कर्त्तव्या नवमीसंयुताष्टमी ॥६४॥

देवी की वाणी को सुनकर राजा कंस अत्यन्त दुःखी हुआ ॥५१॥ उसने अपनी वहन पूतना से कहा कि तुम नंद के घर जाओ । छल पूर्वक उस बालक को मार कर चली आओ । तुम्हारी बहुत सी अभिलषित वस्तुएँ मैं तुम्हें प्रदान करूँगा । हे शुभे ! मेरे शत्रु को मारने के लिए तुम शीघ्र जाओ । कंस की आज्ञा पाकर वह राक्षसी गोकुल चली गयी ॥५२-५३॥ उसने माया से अपना सुन्दर रूप बनाकर गोकुल में प्रवेश किया । उस बालक को मारने के लिए उसने अपने स्तन में विष भर लिया था ॥५४॥ वह ग्वालों के घर में किसी के देखे बिना ही प्रवेश कर गयी । भीतर जाकर उस बालक को उठाकर उसके मुख में अपना स्तन डाल दिया । फिर भी भगवान् ने उसे सद्गति प्रदान की ॥५५॥ उसके बाद शकटासुर, तृणावर्त आदि को भगवान् ने मारा । फिर कालिय दमन करके भगवान् मथुरा पुरी में गये ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने कंस के पहलवानों को जीत लिया और कंस को मार दिया । हे राजन् ! मैंने आपको भगवान् विष्णु के जन्म दिन का व्रत बतलाया हे ॥५७॥ इसका श्रवण करने से व्रती के भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान कालिक पापों का नाश होता है । श्रीहरि के इस व्रत को जो पुरुष अथवा जो नारी करती है ॥५८॥ वह इस जन्म में अभीप्सित अतुलनीय ऐश्वर्य प्राप्त करता है । तृतीया, षष्ठी, अष्टमी तथा एकादशी का पूर्व विद्ध व्रत; धर्म, अर्थ और काम चाहने वाले को नहीं करना चाहिए । सप्तमी से युक्त अष्टमी व्रत का प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिए ॥५९-६०॥ नवमी से युक्त अष्टमी यदि बिना रोहिणी नक्षत्र के भी हो तो उसका व्रत करना चाहिए । यदि उदयकाल थोड़ी सी अष्टमी हो और पूरे दिन में नवमी हो ॥६१॥ और उस दिन यदि मुहूर्त भर भी रोहिणी हो तो उस दिन सम्पूर्ण दिन अष्टमी होती है । यदि अष्टमी बुधवार और रोहिणी से युक्त हो अथवा सोमवार से युक्त हो तो हे राजन् ! उसका

कार्या विद्धापि सप्तम्यां रोहिणी संयुताष्टमी ।
कला काष्ठा मुहूर्तेऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ॥६५॥
नवम्यां सैव वा ग्राह्या सप्तमीसंयुता न हि ।
किंपुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः ॥६६॥
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ।
पलवेधेन राजेन्द्र सप्तम्या अष्टमीं त्यजेत् ॥
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भःकलशं यथा ॥६७॥

दिलीप उवाच

केन चादौ कृतं चेदं केन वा तत्प्रकाशितम् ।
किं पुण्यं किं फलं देव कथयस्व महामुने ॥६८॥

वसिष्ठ उवाच

चित्रसेनो महाराजो महापापपरो महान्। अगम्यागमनं कृत्वा स्वर्णास्तेयं द्विजस्य च ॥६९॥
सुरायां च सदा तृप्तो वृथा मांसे सदारतः ।
एवं पापसमायुक्तो नित्यं प्राणिबधेरतः ॥७०॥
चाण्डालैःपतितैःसार्द्धमालापं सर्वदाऽकरोत् ।
एतदेवं विधो राजा मृगयायां मनो दधे ॥७१॥
अरण्ये द्वीपिनं ज्ञात्वा वेष्टयित्वा च सर्वतः ।
सावधानं भटान्सर्वान्वाक्यमेतदुवाच ह ॥७२॥

फल करोड़ों व्रतों के फल से भी अधिक होता है । नवमी तिथि को अष्टमी थोड़ी सी हो और उसका सोमवार और बुधवार भी संयोग हो तो ऐसी अष्टमी का सैकड़ों वर्ष में भी मिलना मुश्किल होता है। बिना रोहिणी नक्षत्र के नवमी से युक्त अष्टमी व्रत नहीं करना चाहिए ॥६२-६४॥ यदि रोहिणी से युक्त अष्टमी सप्तमी विद्धा हो तो भी उसका व्रत करना चाहिए । कला, काष्ठा या मूहुर्त भर भी यदि श्रीकृष्णाष्टमी तिथि ॥६५॥ नवमी तिथि में हो तो उसका व्रत करना चाहिए, सप्तमी से युक्त अष्टमी को नहीं करना चाहिए । यदि वह सोमवार अथवा बुधवार से युक्त हो तो फिर उसके बारे में क्या कहना है ॥६६॥ ऐसा होकर भी अष्टमी का यदि नवमी से संयोग हो तो वह करोड़ों वंश का उद्धार करने वाली होती है । हे राजेन्द्र ! यदि अष्टमी का सप्तमी से पल भर का भी वेध हो तो उस अष्टमी को नहीं करना चाहिए ॥६७॥ एक विन्दु भी मदिरा से जिसका सम्बन्ध हो गया हो इसतरह के गङ्गाजल के समान वह अष्टमी अपवित्र होती है । **राजा दिलीप ने कहा—** इस अष्टमी व्रत को सर्वप्रथम किसने किया तथा किसने इस व्रत का प्रकाश किया ? हे देव ! इस व्रत को करने से कौन पुण्य होता है तथा किस फल की प्राप्ति होती हैं ? इसे आप मुझे बतलायें ॥६८॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** एक चित्रसेन नामक राजा था । वह महापापी था । उसने अगम्या गमन करके, ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी की ॥६९॥ वह सदैव मदिरा पीता था और मांस खाता रहता था । इस तरह से पापकर्म में व्यापृत वह जीवों का वध करता रहता था ॥७०॥ वह सदा चाण्डालों तथा पतितों के साथ बातें करता था । इस प्रकार का

अहमेव निहन्म्येनं योऽन्योऽस्मिन्प्रहरिष्यति ।
स वध्यो नात्र सन्देहो व्याघ्रो राज्ञः पथा ययौ ॥७३॥
सलज्जोऽपि ततो राजा व्याघ्रं पश्चाज्जगाम ह ।
अनेकक्लेशदुःखेन व्याघ्रं हन्तुं समाहितः ॥७४॥
क्षुत्पिपासाकुलक्लेशः सन्ध्यायां यमुनातटे। अष्टमी रोहिणीयुक्ता तद्दिनंजन्मवासरम् ॥७५॥
स्वःकन्या यमुनायां वै व्रतं चक्रुर्नराधिप । नानोपहारैर्द्रव्यैश्च धूपदीपैःसुशोभनैः ॥७६॥
गन्धपुष्पं तथा द्रव्यं कुङ्कुमादि मनोहरम्। अन्नं बहुगुणं दृष्ट्वा भोक्तुंतन्मानसङ्कृतम् ॥७७॥

राजोवाच

अन्नाभावान्ममाद्याशु प्राणा यास्यन्ति निश्चितम् ॥७८॥

स्त्रिय ऊचुः

जन्माष्टम्यां हरे राजन्नभोक्तव्यं त्वयाऽनघ। गृध्रमांसं खरं काकं गोमांसमन्नमेवच ॥७९॥
भुक्तवान्नात्र सन्देहो यो भुङ्क्ते कृष्णजन्मनि। किं किं छिद्रं न सञ्जातं संसारे वसतां नृणम् ॥८०॥
येन देहे स्थिते प्राणे जयन्ती न कृता नृप ।
तत्राकृतोपवासस्य शासनं यममन्दिरम् ॥८१॥
यद्दत्तं पितरो नित्यं न गृह्णन्ति यथाविधि। पितरःपातिताः सर्वे जयन्त्यां भोजने कृते ॥८२॥
इति श्रुत्वा ततो राजा व्रतं चक्रे नराधिप ! ।
किञ्चित्पुष्पं कियद् गन्धं वस्त्रं चानीय हर्षितः ॥८३॥

वह राजा सदा आखेट करता रहता था। उसने एक बार जाना कि इस अरण्य में सिंह रहता है, उसने उसको चारों तरफ से घेरकर अपने सावधान सिपाहियों से कहा, कि मैं ही इसे मारूँगा, जो कोई भी इस पर प्रहार करेगा मैं उसका वध कर दूँगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उसके बाद राजा के सामने बाघ आ गया ॥७१-७३॥ लज्जा युक्त भी राजा ने उस व्याघ्र का पीछा किया। व्याघ्र को मारने के लिए उसने बड़ी सावधानी की ॥७४॥ भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह सायंकाल यमुना तट पर गया। उस दिन रोहिणी युक्त अष्टमी का व्रत था। देव कन्याओं ने यमुना में अनेक प्रकार के उपहारों, द्रव्यों तथा मनोहर धूपों तथा द्वीपों से व्रत किया था ॥७५-७६॥ चन्दन, पुष्प तथा मनोहर कुंकुम आदि द्रव्य तथा अनेक प्रकार के गुण युक्त अन्न को देखकर उसे खाने का विचार राजा ने किया ॥७७॥ **राजा ने कहा**— अन्न के अभाव में आज मेरे प्राण अवश्य निकल जायेंगे ॥७८॥ **स्त्रियों ने कहा**— हे निष्पाप राजन् ! आपको जन्माष्टमी के दिन अन्न नहीं खाना चाहिए। उस दिन का अन्न खाना गृध्र के मासं, गधे या कौए के मासं या गोमांस के समान अपवित्र होता है। अतएव कृष्ण जन्म के अवसर पर जो अन्न खाता है उस संसारी मनुष्य को सारे पाप लग जाते हैं ॥७९-८०॥ हे राजन् ! शरीर में प्राण रहने पर जो मनुष्य जयन्ती व्रत नहीं करता है, उस दिन अन्न खाने वाले मनुष्य को यमलोक में जाना पड़ता है ॥८१॥ उसके द्वारा प्रदत्त वस्तुओं को पितृगण भी नहीं स्वीकार करते हैं। जयन्ती के दिन भोजन करने वाले के पितृगण पतित हो जाते हैं। इस बात को सुनकर राजा ने भी व्रत कर लिया ॥८२॥ वह भी थोड़े से पुष्प थोड़ा गन्ध तथा थोड़ा सा वस्त्र लाकर व्रत किया और तिथि एवं

एतद्व्रतं समायुक्तं तिथिभान्ते च पारणाम् ।
व्रतस्यास्य प्रभावेण चित्रसेनो हरेर्गृहम् ॥८४॥
दिव्यं विमानमारुह्य गतवान्पितृभिःसह। यत्फलं मथुरां गत्वा दृष्ट्वा कृष्णमुखाम्बुजम्॥८५॥
तत्फलं प्राप्यते पुंसा कृष्णजन्माष्टमीव्रतात्। यत्फलं द्वारकां गत्वा दृष्टे विश्वेश्वरे हरौ ॥
तत्फलं प्राप्यते दीनैः कृत्वा जन्माष्टमीव्रतम् ॥८६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे हरिजन्माष्टमीव्रतमाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कथयस्व महाप्राज्ञ ब्राह्मणस्य कृपार्णव !। माहात्म्यं सर्ववर्णानां श्रेष्ठस्य कृपया च मे ॥१॥

सूत उवाच

ब्राह्मणः सर्ववर्णानां गुरुरेव द्विजोत्तम। सर्वामराश्रयो ज्ञेयःसाक्षान्नारायणःप्रभुः॥२॥
कुर्यात्प्रणामं यो विप्रं हरिबुद्ध्या तु भूसुरम् ।
भक्त्या तस्य द्विजश्रेष्ठ ! वर्द्धते सम्पदादिकम् ॥३॥
न नमेद्ब्राह्मणं दृष्ट्वा हेलयापि च गर्वितः ।
छेदनं तस्य शिरसःकर्तुमिच्छेत्सदा हरिः ॥४॥
कृतापराधं विप्रं ये द्विषन्ति पापबुद्धयः। हरिद्विषो हि ते ज्ञेया निरयं यान्ति दारुणम्॥५॥

नक्षत्र के अन्त में उसने पारण किया। इस व्रत के प्रभाव से राजा चित्रसेन श्रीहरि के लोक में ॥८३॥ दिव्य विमान पर आरुढ होकर अपने पितरों के साथ गया। मथुरा में जाकर भगवान् श्रीकृष्ण के मुख कमल का दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति जन्माष्टमी का व्रत करने से होती है ॥८४-८५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के जन्माष्टमी व्रत महात्म्य वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

ब्राह्मण के माहात्म्य का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे कृपासागर सूतजी ! आप कृपा करके मुझे सभी वर्णों से श्रेष्ठ ब्राह्मण के माहात्म्य को सुनायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मण सभी वर्णो का गुरु होता है, सभी देवताओं के आश्रय भगवान् नारायण हैं ॥२॥ जो मनुष्य श्रीहरि के समान समझ कर ब्राह्मण को प्रणाम करता है; हे द्विजश्रेष्ठ ! भक्ति के कारण उसकी सम्पत्ति आदि की वृद्धि होती है ॥३॥ ब्राह्मण को देखकर जो गर्वित मनुष्य उसको प्रणाम नहीं करता है, श्रीहरि उसका शिर काट देना चाहते हैं ॥४॥

य: कर्तुं प्रार्थनां विप्रं पश्येत्क्रोधेन चागतम् ।
कृतान्तश्चक्षुषोस्तस्य तप्तसूचीं ददाति वै ॥६॥
कुरुते भूसुरं मूढो भर्त्सितं यो नराधमः । यमदूता विक्षिपन्ति तन्मुखे तप्तलोहकम् ॥७॥
येषां निकेतने भुङ्क्ते क्ष्मासुरो वै तपोधनः। सुपर्वभिःस्वयं कृष्णो भुङ्क्ते तेषां निकेतने ॥८॥
नश्यन्ति सर्वपापानि द्विजहत्यादिकानि च । कणमात्रं पिबेद्यस्तु विप्राङ्घ्रिसलिलं नरः ॥९॥
यो नरश्चरणौ धौतौ कुर्याद्धस्तेन भक्तितः। द्विजातेर्वच्मि स्वयं ते स मुक्तः सर्वपातकैः ॥१०॥
पुत्रहीना च या नारी मृतवत्सा च याऽङ्गना ।
सपुत्रा जीववत्सा सा द्विजपद्माङ्घ्रिसेवनात् ॥११॥
ब्रह्माण्डेयानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे ।
उदधौ यानि तीर्थानि तिष्ठन्ति द्विजपादयोः ॥१२॥
द्विजाङ्घ्रिसलिलैर्नित्यं सेचितं यस्य मस्तकम् ।
स स्नातःसर्वतीर्थेषु समुक्तःसर्वपातकैः ॥१३॥
शृणु शौनकवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ।
विप्रपादोदकस्याहमितिहासं तपोधन ॥१४॥
आसीत्पुरा द्विजश्रेष्ठ वैश्यवृत्तिपरायणः । शूद्रो भीमो द्वापरे च ब्रह्महत्या सहस्त्रकृत् ॥१५॥
निष्ठुरः सर्वदा तुष्टः समहान्वैश्यया पुनः। शूद्राचारपरिभ्रष्टो भीमोऽसौ गुरुतल्पगः ॥१६॥
प्रत्येकं वच्मि किं तस्य दस्योस्सङ्ख्या न विद्यते ।
पापानां मुनिशार्दूल ! भीमस्य दुष्टचेतसः ॥१७॥

जो लोग अपराधी विप्र से द्वेष करते हैं, वे लोग श्रीहरि से ही द्वेष करते हैं, और नरक में जाते हैं।।५।। जो लोग याचना करने के लिए आये हुए ब्राह्मण को क्रोध भरी दृष्टि से देखते हैं, उनकी आँखों में यमराज के दूत सूई चुभो देते हैं ।।६।। जो नराधम ब्राह्मण की भर्त्सना करते हैं उसके मुख में यमदूत लोहा डाल देते हैं ।।७।। जिसके घर में तपस्वी ब्राह्मण भोजन करते हैं, उनके घर में देवताओं में श्रेष्ठ साक्षात् श्रीभगवान् भोजन करते हैं ।।८।। जो मनुष्य ब्राह्मण के चरणोदक का कणमात्र भी पान करता है उसके ब्रह्महत्या आदि सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ।।९।। जो मनुष्य अपने हाथों से ब्राह्मण के चरणों को भक्तिपूर्वक घोता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है, यह मैं सत्य कह रहा हूँ ।।१०।। ब्राह्मण के चरणों की सेवा करने वाली पुत्रहीन तथा मृतवत्सा भी नारी सुन्दर पुत्रवाली तथा जीवितवत्सा हो जाती है ।।११।। जितने तीर्थ ब्रह्माण्ड में है, सागर और समुद्र में है वे सबके सब ब्राह्मण के चरणों में निवास करते हैं । जो मनुष्य अपने शिर पर ब्राह्मण के चरणोदक को चढ़ाता है ।।१२।। उसको सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है और वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । हे शौनकजी! आप सुनें मैं सभी पापों को विनष्ट करने वाले माहात्म्य को सुनाता हूँ ।।१३।। हे तपोधन ! मैं ब्राह्मण के चरणोदक का इतिहास बतलाता हूँ । हे द्विजश्रेष्ठ ! प्राचीन काल में एक वैश्य वृत्ति से रहने वाला भीम नामक शूद्र था । उसने हजारों ब्राह्मणों को मारा था । वह निष्ठुर तथा किसी वैश्या में आसक्त था ।।१४-१५।। वह भीम शूद्र के आचार का परित्याग कर दिया था, तथा गुरु की शय्या पर सोता

एकदा स गतःकिञ्चिद् ब्राह्मणस्य निवेशनम् ।
गत्वा स तस्य गेहात्तु द्रव्यं नेतु मनो दधे ॥१८॥
तत्रोवास ब्राह्मणस्य बहिर्द्वारसमीपतः। दैन्ययुक्तं वचःप्राह क्षमासुरं स तपोधनम् ॥१९॥
भो स्वामिञ्छृणु मे वाक्यं दयालुरिव दृश्यते ।
क्षुधार्तोऽहं देहि चान्नं प्राणा यास्यन्ति मे द्रुतम् ॥२०॥

ब्राह्मण उवाच

क्षुधार्त्त ! शृणु मे कश्चिद्वाक्यं कर्तुं न विद्यते ।
पाकं मे तण्डुलानि त्वं नीत्वा भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥२१॥
नास्ति मे जनको माता नास्ति सूनुः सहोदरः ।
नास्ति जाया मातृबन्धुर्मृताःसर्वे विहाय माम् ॥२२॥
तिष्ठाम्येको गृहेऽकर्मा भाग्यहीनोऽतिथे ! हरिः ।
एको मे वसतौ चास्ति न जाने तद्विना किल ॥२३॥

भीम उवाच

मम कश्चिद् द्विजश्रेष्ठ नस्ति सेवां तवापि च ।
शूद्रोऽहं निलये जात्या कृत्वा स्थास्यमि ते सदा ॥२४॥

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सानन्दःक्षमासुरस्तदा ।
पाकं विधाय तूर्णं स ददावन्नन्तपोधन ! ॥२५॥
सोऽपि हर्षसमायुक्तस्तस्थौ तत्र द्विजालये। सेवां कुर्वन्स्नेहयुक्तां भूसुरस्य मनोहराम् ॥२६॥

था । मैं प्रत्येक पापों को क्या बतलाऊँ उस चोर के पापों की कोई संख्या नहीं थी । वह भीम दुष्ट विचारों वाला था । एक बार वह किसी ब्राह्मण के घर में गया ॥१६-१७॥ उसने ब्राह्मण के घर से द्रव्य चुराने का मन बनाया । वह वहीं पर ब्राह्मण के द्वार के समीप रुक गया ॥१८॥ उसने उन तपस्वी ब्राह्मण से दीनतामयी वाणी में कहा । हे ब्रह्मन् ! आप दयालु हैं, मेरी बात सुनें ॥१९॥ मैं भूख से व्याकुल हूँ मुझे खाने के लिए अन्न दे दीजिये अन्यथा मेरे प्राण निकलने वाले हैं ॥२०॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे भूखे व्यक्ति ! मेरी बात सुनो मैं तुम्हे कुछ बतलाता हूँ तुम्हें कुछ नहीं करना है । मेरे पकाये हुए चावल हैं, उन सबों को लेकर अपनी इच्छा भर खा लो ॥२१॥ मेरे न तो पिता हैं, न माता, न पुत्र न तो सहोदर भाई, मेरी पत्नी मौसी तथा बान्धव भी नहीं है । ये सबके सब मुझे छोड़कर मर गये हैं ॥२२॥ भाग्यहीन मैं अकेले घर में रहता हूँ, श्रीहरि ही मेरे अतिथि हैं । मैं समझता हूँ आप वहीं हैं ॥२३॥ **भीम ने कहा**— हे द्विज श्रेष्ठ न तो मेरा कोई सेवक है और न आपका । मै शूद्र हूँ, अतएव आपकी जाति का होकर आपके घर में सदा रहूँगा ॥२४॥ **सूतजी ने कहा**— इस बात को सुनकर वे ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने पाक बनाकर उसे खाने को दिया ॥२५॥ वह शूद्र ही हर्षित होकर उस ब्राह्मण के घर में रहने लगा और वह प्रेम पूर्वक उन ब्राह्मण की खूब अच्छी तरह से सेवा करता था ॥२६॥ मैं आज अथवा कल इसको मार दूँगा और इसका द्रव्य मेरा हो जायेगा।

अद्य श्वो वा हनिष्यामि द्रव्यमस्य ममापि च ।
नेतुं यदा करिष्यामि नेष्यामि नात्र संशयः ॥२७॥
परामृश्य च हृद्यन्तः कृत्वा तस्य क्रियां वदेत् ।
पादधौतादिकं चासौ शिरसा गतपातकः ॥२८॥
आचम्याङ्घ्रिजलं दध्रे च्छद्मना प्रत्यहं द्विज ! ।
एकदा हारकः कश्चिद्द्रव्यं नेतुं समागतः ॥२९॥
उत्पाट्य रात्रावररं गतोऽसौ तद्गृहान्तरम्। दृष्ट्वाभीमं प्रहारार्थं दडहस्तः समागतः ॥३०॥
हारको मस्तकं तस्य छित्त्वा तूर्णं पलायितः ।
अथ तस्य भटा विष्णोःशङ्खचक्रगदाधराः ॥३१॥
समायातास्तथा नेतुं भीमं तं वीतकिल्विषम् ।
स्यन्दनं चागतं दिव्यं राजहंसयुतं द्विज ! ॥३२॥
तत्रारूढो ययौ विष्णोर्भवनं दुर्लभं किल ।
माहात्म्यं भूमिदेवस्य मया ते तत्प्रकीर्तितम् ॥
शृणुयाद्यो नरो भक्त्या तस्य पातकनाशनम् ॥३३॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे ब्राह्मणमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

इसके द्रव्यों के लेने के लिए इन सब कर्मों को करूँगा तो निश्चित रूप से इसके धन को लेकर चला जाऊँगा ॥२७॥ इस तरह से हृदय में विचार करके वह अपने कार्यों को बतलाता था और ब्राह्मण के पैर इत्यादि को धोने का काम करता था। उसके कारण उसके शिर पर से पाप उतर गया ॥२८॥ वह छल पूर्वक ब्राह्मण के चरणोदक का आचमन करके प्रतिदिन अपने शिर पर उसे रखता था । एक दिन कोई द्रव्य चुनाने वाला वहाँ आया ॥२९॥ उसने किवाड़ को उखाड़ दिया और घर में घुस गया । भीम को देखकर वह हाथ में दण्डा लेकर आया ॥३०॥ वह चोर उसके शिर को काटकर शीघ्रता से भाग गया । उसके बाद भगवान् विष्णु के शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले दूत उस निष्पाप भीम को लेने के लिए आये । हे द्विज ! वहाँ पर राजहंस से युक्त रथ भी आया ॥३१-३२॥ वह उस रथ पर सवार होकर श्रीभगवान् के दुर्लभ लोक में चला गया । मैंने आपको यह ब्राह्मण की महिमा सुनायी। जो इस प्रसङ्ग को भक्ति पूर्वक सुनता है, उसके सारे पापों का नाश हो जाता है ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के ब्राह्मण माहात्म्य वर्णन नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कथयस्व महाभाग ! माहात्म्यं पापनाशनम् ।
एकादश्या:फलं किं वा किल्विषं स्यादकुर्वतः ॥१॥

सूत उवाच

एकादश्यास्तु माहात्म्यं किमहं वच्मि साम्प्रतम् ।
श्रुत्वा चैकादशी नाम यमदूताश्च शङ्किताः ॥२॥
भवन्ति नात्र सन्देह:सर्वप्राणिभयङ्कराः। व्रतानां चैव सर्वेषां श्रेष्ठां चैकादशीं शुभाम्॥३॥
उपोष्य जागृयाद्विष्णोः कुर्याच्च मण्डनं महत् ।
तुलसीदलैस्तु यो मर्त्यो हरिपूजां करोति वै ॥४॥
दलेनैकेन लभते कोटियज्ञफलं द्विज ! । अगम्यागमने चैव यत्पापं समुदाहृतम् ॥५॥
तत्पापं याति विलयं चैकादश्यामुपोषणात्। घृतपूर्णं प्रदीपं यो दद्याद्विष्णुदिने द्विज !॥६॥
अन्ते विष्णुपुरं याति तमो हत्वा स्वतेजसा ।
धन्या जनपदास्ते वै धन्य:स च महीपतिः ॥७॥
हरेर्दिने यस्य राज्ये चैकादश्या महोत्सवः ।
नारायणस्य शयने पार्श्वस्य परिवर्त्तने ॥८॥
विशेषेण प्रबोधिन्यां निराहारा भवन्ति ये। मदन्तिकं नानयध्वंप्राणिन:पुण्यभागिनः॥९॥
अहर्निशं पितृपति:समादिशति दूतकान्। एकादशी जगन्नाथ वल्लभा पुण्यवर्धिनी॥१०॥

एकादशी व्रत का माहात्म्य

शौनक महर्षि ने कहा— हे महाभाग ! आप एकादशी के पाप विनाशक माहात्म्य का वर्णन करें । एकादशी व्रत करने वाले को कौन सा फल होता है और व्रत नहीं करने वालों को कौन सा पाप होता है ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** मैं एकादशी का माहात्म्य बतलाता हूँ । एकादशी का नाम सुनकर सभी जीवों के लिए भयङ्कर यमदूत भयभीत हो जाते हैं । सभी व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ है और कल्याण करने वाली है ॥२-३॥ उस दिन उपवास करके रात्रि में जागरण करे और भगवान् विष्णु को खूब सजाये । जो मनुष्य उस दिन श्रीहरि की पूजा करता है ॥४॥ वह तुलसी के एक दल को भी चढाकर करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त करता है । एकादशी व्रत करने से अगम्यागमन जन्य पाप विनष्ट हो जाता है । हे द्विज ! जो मनुष्य भगवान् को एकादशी के दिन घृतपूर्ण दीप दान करता है ॥५-६॥ अन्त में वह अपने महान् तेज से पापान्धकर को विनष्ट करके भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । जिस राजा के राज्य में एकादशी व्रत महोत्सव मनाया जाता है, वह राज्य और उस राज्य के राजा धन्य हैं । भगवान् नारायण के शयन करने और उनके पार्श्व परिवर्तन के दिन विशेष रूप से प्रबोधिनी एकादशी के दिन जो मनुष्य निराहार रहते हैं, उसके विषय में यमराज कहते हैं कि ऐसे पुण्यवान् पुरुषों को मेरे पास नहीं लाना ॥७-९॥ इस तरह से यमराज अपने दूतों को दिन-रात उपदेश दिया करते हैं । एकादशी

विष्णुर्देहं दहत्येव तस्यामन्नस्य भक्षणे। तेषां धिग्जीवनं सम्पद्धिक्सौन्दर्यं च वर्तनम् ॥११॥
येऽन्नमश्नन्ति पापिष्ठाश्चैकादश्यां हि विड्भुजः ।
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ ! भुक्तिमाश्रित्य केवलम् ॥१२॥
बहूनि विविधान्येव तिष्ठन्ति दुरितानि च। दर्शकाले यथा स्त्रीणां सङ्गमे कलुषं महत् ॥१३॥
एकादश्यां तथैवान्नभक्षणे वृजिनं भवेत्। रोगिणश्च तथा खञ्जकाससोदरकुष्ठकाः ॥१४॥
भवन्ति प्राणिनस्ते वै तस्यामन्नस्य भक्षणे। ग्रामसूकरतां यान्ति दारिद्र्य च प्रयान्ति वै ॥१५॥
राजबद्धा द्विजश्रेष्ठ ! तस्यामन्नस्य भक्षणे। संसारे यानि पापानि तानि विप्र हरेर्दिने ॥१६॥
भुक्तिमाश्रित्य तिष्ठन्ति जलभक्षणमाज्ञया । कुर्वतां सर्वपापानि नरकान्निष्कृतिर्भवेत् ॥१७॥
न निष्कृतिर्भवेन्नृणां भुञ्जतां च हरेर्दिने । नरा यावन्ति चान्नानि भुञ्जते च हरेर्दिने ॥१८॥
प्रत्यन्नं च ब्रह्महत्याकोटिजं वृजिनं भवेत्। पुनर्वच्मि पुनर्वच्मि श्रूयतां श्रूयतां नराः॥१९॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने ।
गङ्गादिषु च तीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमाप्यते ॥२०॥
चन्द्रसूर्योपरागे च चैकादश्यामुपोषितः। अर्चित्वोत्पलमालाभिस्तस्यां च कमलापतिम् ॥२१॥
विधिवत्पारणं कृत्वा न मातुर्गर्भभाजनम् । एकादश्यां हरेर्गेहे करोति मण्डनं द्विज ! ॥२२॥
परमां गतिमासाद्य तिष्ठेद्विष्णुनिकेतने। एकादशीं समासाद्य निराहारा भवन्ति ये॥२३॥

जगत् के स्वामी श्रीभगवान् की वल्लभा तिथि है । वह पुण्य को बढाने वाली है ॥१०॥ जो उस दिन अन्न का भक्षण करता है उसके देह को भगवान् विष्णु जलाते हैं । ऐसे लोगों के जीवन, सम्पत्ति, सौन्दर्य और व्यवहार को धिक्कार है ॥११॥ जो लोग एकादशी के दिन अन्न खाते हैं वे महापापी विष्ठा खाते हैं । जो लोग एकादशी के दिन हे द्विजश्रेष्ठ ! केवल भोजन करने वाले हैं ॥१२॥ वे अनेक प्रकार के बहुत से पापों को अपनाते हैं । जैसे अमावस्या के दिन स्त्री के साथ सङ्गम करने से महान् पाप होता है ॥१३॥ उसी तरह से एकादशी के दिन भोजन करने से महान् पाप होता है । वे लोग रोगी, लूले और पेट पर्यन्त कोढ़ वाले होते है । जो लोग एकादशी के दिन अन्न खाने वाले होते हैं; वे मरकर ग्राम शूकर होते हैं और दरिद्र हो जाते हैं ॥१५॥ उस दिन भोजन करने वाले को जेल जाना पड़ता है । हे विप्र जितने भी पाप हैं, वे सबके सब एकादशी के दिन अन्न खाने वाले को लगते हैं। जो मनुष्य एकादशी के दिन केवल जल पीकर रहता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह नरक से बाहर निकल जाता है ॥१६-१७॥ जो मनुष्य एकादशी के दिन अन्न खाते हैं उनका नरक से कभी निस्तार नहीं होता है । एकादशी के दिन मनुष्य जितने अन्नों को खाता है ॥१८॥ उतनी ही संख्या में उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है । हे मनुष्यों ! मैं बार-बार कहता हूँ उसे आपलोग सुनें एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए, नहीं करना चाहिए । सूर्यग्रहण और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर गङ्गा आदि के जल में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥१९-२०॥ उस फल की प्राप्ति एकादशी के दिन उपवास करने से होती है । एकादशी के दिन कमल की मालाओं से भगवान् लक्ष्मीपति की पूजा करके ॥२१॥ जो मनुष्य विधि पूर्वक एकादशी का पारण करता है, वह माता के गर्भ में कभी नहीं जाता है । हे द्विज जो एकादशी के दिन श्रीहरि के मन्दिर को सजाता है ॥२२॥ वह मोक्ष को

तेषां विष्णुपुरे शश्वन्निवासोऽपि न संशयः ।
तुलसीभक्तिसंलीनं मनो येषां विराजते ॥२४॥
ये यान्ति परमं विष्णोःस्थानमेव न संशयः ।
परद्रव्येष्वभिरुचिर्येषां चैव न विद्यते ॥२५॥
सन्तुष्टमनसो येऽपि तेषां विष्णुपुरं ध्रुवम् । दुर्भिक्षकालमासाद्य प्राणिभ्यो ये नरोत्तमाः ॥२६॥
ददत्यन्नं हरेःसद्मतेषां चैव न संशयः । गवां द्विजानां त्राणाय स्वामिनो योषितस्तथा ॥२७॥
प्राणान्मुञ्चन्ति ये मर्त्यास्तेषां विष्णुपुरं ध्रुवम् ।
प्राणिभिर्दशमी विद्धा न चोपोष्या कदाचना ॥२८॥
परिहार्यं द्विजश्रेष्ठ दुर्जनस्यान्तिकं यथा । अरुणोदयवेलायां दशमी सङ्गतां यदि ॥२९॥
तत्रोपोष्या द्वादशीस्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ।
दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ॥३०॥
वैष्णवेन न कर्त्तव्यं तद्दिनैकादशीव्रतम् । चतस्रो घटिकाःप्रातररुणोदय उच्यते ॥३१॥
यतीनां स्नानकालोऽयं गङ्गाम्भःसदृशःस्मृतः ।
अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते ॥३२॥
न तत्रैकादशी कार्या धर्मकामार्थनाशिनी । स्वल्पां च दशमीविद्धां त्यजेदेकादशीं बुधः ॥३३॥
सुराबिन्दोस्तु सम्पर्काद् घृतकुम्भं त्यजेद्यथा ।
सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादश्यां पुनरेव सा ॥३४॥

प्राप्त करके भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है । जो लोग एकादशी के दिन निराहार रहते हैं ॥२३॥ उनका भगवान् विष्णु के लोक में शाश्वत निवास होता है । जिनका मन तुलसी की भक्ति में लीन रहता है ॥२४॥ वे भगवान् विष्णु के परमपद में ही जाते हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । जिन लोगों की अभिरुचि परद्रव्य में नहीं होती है ॥२५॥ जिनका मन सन्तुष्ट है, वे निश्चित रूप से भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं । दुर्भिक्ष काल के आने पर जो लोग दूसरों को अन्न वितरित करते है, वे भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है । जो लोग, गौ, ब्राह्मण, स्वामी तथा स्त्रियों की रक्षा में अपने प्राणों को गवाँ देते हैं, वे भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं। मनुष्यों को दशमी विद्धा एकादशी कभी नहीं करनी चाहिए ॥२६-२७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसका परित्याग उसी तरह कर देना चाहिए जिस तरह दुर्जन के सङ्ग का परित्याग कर दिया जाता है । यदि अरुणोदय की बेला में एकादशी से दशमी का सम्बन्ध हो गया हो तो ॥२९॥ उस दिन द्वादशी का व्रत करके त्रयोदशी में पारण करना चाहिए । जिस दिन दशमी के अन्तिम भाग में अरुणोदय काल में एकादशी का सम्बन्ध हुआ हो तो ॥३०॥ वैष्णव को उस दिन एकादशी नहीं करना चाहिए । प्रात:काल की चार घड़ियों को अरुणोदय काल कहते हैं ॥३१॥ यह यतियों के स्नान का काल है । इस काल में स्नान करना गङ्गा स्नान के समान होता है । यदि अरुणोदयकाल में दशमी हो तो ॥३२॥ तो उस दिन एकादशी न करे, क्योंकि वह एकादशी धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का नाश करती है । विद्वान् को चाहिए कि जिस एकादशी का थोड़ा सा भी दशमी से सम्बन्ध हो उसका त्याग उसी तरह कर दे ॥३३॥

उत्तरा यतिभिःकार्या पूर्वामुपवसेद्गृही। एकादशी कला यत्र द्वादशी परतो न चेत् ॥३५॥
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्। एकादशी विलुप्ताचेत्परतो द्वादशीयुता ॥३६॥
उपोष्या द्वादशीपूर्णा यदीच्छेत्परमां गतिम्। सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ॥३७॥
सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि। एकादशीव्रते येषां मनःसंलीयते नृणाम् ॥३८॥
तेषां स्वर्गे हि वासोऽथ यान्ति ते सदनं हरेः।
एकादश्याः परं नास्ति परलोकस्य साधनम् ॥३९॥
वहुपापसमायुक्तः करोति हरिवासरम्। सर्वपापविनिर्मुक्तःस याति हरिमन्दिरम् ॥४०॥
पतिसहिता या योषित्करोति हरिवासरम्। सुपुत्रा स्वामिसुभगा याति प्रेत्य हरेर्गृहम् ॥४१॥
यो यच्छति हरेरग्रे प्रदीपं भक्तिभावतः। हरेर्दिने द्विजश्रेष्ठ पुण्यसङ्ख्या न विद्यते ॥४२॥
याऽङ्गना भर्तृसहिता कुरुते जागरं हरेः। हरेर्निकेतने तिष्ठेच्चिरं पत्या सह द्विज ! ॥४३॥
यत्किञ्चिद्धरये वस्तु भक्त्या यच्छति यो द्विज।
हरेर्दिने तस्य पुण्यमक्षयं चैव सर्वदा ॥४४॥
पुरासीद्वल्लभो नाम्ना नगरे काञ्चनाह्वये। धनेन पुष्कलेनापि राजते स धनेश्वरः ॥४५॥
तस्य प्रिया महारूपा नाम्ना हेमप्रभा द्विज। गरीयान्मुखरस्तत्र बाधते च कलेर्गुणः ॥४६॥

जिस तरह से मदिरा की विन्दु से संपृक्त घी का घड़ा त्याग दिया जाता है। जिस दिन पूरे दिन भर एकादशी हो और वह दूसरे दिन भी हो तो ॥३४॥ पहले दिन की एकादशी गृहस्थ करें और संन्यासियों को दूसरे दिन की एकादशी करनी चाहिए। यदि द्वादशी के दिन एकादशी एक कला भी रहे और उसके वाद न रहे तो द्वादशी में व्रत करके त्रयोदशी में पारण करने से सैकड़ों क्रतुओं को करने का फल प्राप्त होता है। यदि एकादशी का लोप हो, उसके वाद द्वादशी ही तिथि आये तो मोक्ष चाहने वाले को द्वादशी ही व्रत करना चाहिए ॥३५-३६॥ यदि दिन भर के वाद प्रातःकाल में भी एकादशी तिथि हो तो ॥३७॥ सवों को वाद वाली ही एकादशी करनी चाहिए। यदि उसके वाद द्वादशी तिथि हो तव जिन मनुष्यों का मन एकादशी में लगा रहता है ॥३८॥ उन लोगों का स्वर्ग में ही निवास होता है। वे श्रीहरि के ही लोक में जाते हैं। एकादशी व्रत से बढ़कर परलोक का दूसरा कोई साधन नहीं है॥३९॥ अनेक पापों से युक्त व्यक्ति भी यदि एकादशी व्रत करता है तो वह समस्त पापों से रहित होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥४०॥ जो नारी अपने पति के साथ एकादशी व्रत करती हैं वह अपने सुन्दर पति तथा पुत्र के साथ श्रीहरि के लोक में जाती है ॥४१॥ जो एकादशी के दिन भक्ति-भाव से श्रीभगवान् के समक्ष घी का दीपक जलाता है उसके पुण्यों की कोई भी संख्या नहीं है, उसे असंख्य पुण्यों की प्राप्ति होती है ॥४२॥ जो नारी एकादशी के दिन अपने पति के साथ जागरण करती है हे द्विज वह चिरकाल तक अपने पति के साथ श्रीहरि के लोक में निवास करती है ॥४३॥ हे द्विज ! जो कोई एकादशी के दिन श्रीभगवान् को भक्तिपूर्वक कुछ समर्पित करता है उसका पुण्य सदैव अक्षय वना रहता है ॥४४॥ प्राचीन काल में काञ्चन नामक नगर में एक वल्लभ नामक धनिक था। उसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी थी और उसका नाम हेमप्रभा था। वह अत्यन्त मुखर (वोलने वाली) थी और कलि के गुणों से युक्त थी ॥४६॥ हे तपोधन ! सदैव वह अपने पति से कलह किया करती थी और वह अपने गुरुजनों

सा सदा कलहं कुर्यात्पत्यासह तपोधन ! ।
श्वश्रुगुरुजनान्कामं भर्त्सनान्नीचभाषया ॥४७॥
पाकपात्रे सदाऽश्नीयाद् गुप्ता सैकान्तिके मला ।
उच्छिष्टं गुरुजनेभ्यो दद्याद्वै प्रतिवासरम् ॥४८॥
जारे सदा स्थितं चित्तमहं साध्वीति सा वदेत् ।
स्वामिनः कलहैर्ब्रह्मश्चित्तोद्वेगकरा सदा ॥४९॥
एकदा चागतां दृष्ट्वा चकार भर्त्सनां च ताम् ।
भर्त्ता तस्याः प्रहारं च सर्वपापयुतां द्विज ॥५०॥

सैव रोषसमायुक्ता गता शून्यगृहे तु वै। सुप्ता ज्ञाता स्थिता कस्मिञ्जलान्नं न चखाद ह॥५१॥
दैवात्तत्रदिने विष्णोः पार्श्वस्य परिवर्तनम्। एकादशीव्रतं विप्र ! सर्वपापप्रणाशनम् ॥५२॥
ततः प्रभाते रजनी द्वादशी श्रवणान्विता । आगता तत्र सा नारी रोषनिर्भरमानसा ॥५३॥

निराहारौ कृतौ द्वौ च निर्मला सा बभूव ह ।
रात्रौ च पञ्चतां याता जयन्तीवासरे द्विज ! ॥५४॥
यमाज्ञया ततो दूता आगतास्तां तथाविधाम् ।
नेतुं भयङ्करास्ते च पाशमुद्गरपाणयः ॥५५॥

बद्ध्वानेतुं मनश्चक्रुः कृतान्तसदनं यदा । तदाऽऽगता विष्णुदूताः शङ्खचक्रगदाधराः ॥५६॥

छित्त्वा पाशं ततो दिव्ये स्यन्दने तां गतैनसाम् ।
ते वै चारोहयामासुर्निर्मलां भवनं हरेः ॥५७॥
गता तैर्वेष्टिता साऽथ दुर्ल्लभं निर्जरैः शुभम् ।
विष्णोर्दिवसमाहात्म्यं कथितं ते द्विजर्षभ ॥५८॥

की नीच भाषा में भर्त्सना (निन्दा) किया करती थी ॥४७॥ वह अकेले में बैठकर भोजन बनाने के पात्र में ही खा लेती थी और सबलोगों को अपना जूठा भोजन दिया करती थी ॥४८॥ उसका मन सदा जार (अपने प्रेमी) में ही लगा रहता था और अपने पति के साथ कलह करके वह उनको सदा उद्विग्न बनाये रहती थी ॥४९॥ एक बार उसको आये हुए देखकर उसके पति ने उसको खूब डाँटा और उस महापापिनी को मारा भी ॥५०॥ उसके कारण क्रुद्ध होकर वह एक सुनसान घर में चली गयी सबों से अज्ञात स्थल में रात में सो गयी और उसने कुछ भी नहीं खाया ॥५१॥ भाग्यवशात् उस दिन हरि प्रबोधिनी एकादशी का दिन था । वह एकादशी सभी पापों का नाश करने वाली है ॥५२॥ उसके बाद प्रातः श्रवण नक्षत्र में युक्त द्वादशी तिथि थी । क्रोध से भरकर वह उस समय वहाँ आयी ॥५३॥ उसने दो उपवास किया था अतएव वह निष्पाप हो गयी थी वह रात्रि में जयन्ती के समय मर गयी ॥५४॥ यमराज की आज्ञा से उसको ले जाने के लिए यमदूत आये उनका आकार भयङ्कर था और वे हाथ में पाश और मुद्गर लिए थे ॥५५॥ उसको बाँधकर जब वे यमलोक ले जाने के लिए तैयार हुए उसी समय भगवान् विष्णु के शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए दूत आये ॥५६॥ उन लोगों ने पाश को काटकर उस पाप रहित नारी को रथ पर बैठाकर उसको श्रीभगवान् के लोक में लाये ॥५७॥ उन

अनिच्छयाऽपि यःकुर्यात्स याति हरिमन्दिरम् ।
एकादश्या दिने मर्त्यो दीपं दातुं हरेर्गृहे ॥५९॥
गच्छेत्प्रतिपदं सोऽपि चाश्वमेधफलाधिकम्। शृण्वन्ति च पुराणानि पठन्ति च हरेर्दिने ॥६०॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे हरिवासरमाहात्म्यकथनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कर्मणा केन भोःसूत ! चैनसां संक्षयो भवेत् ।
श्रीहरेश्च कृपा भूयात्तद्वदस्वानुकम्पया ॥१॥

सूत उवाच

शृणु शौनक ! वक्ष्यामि शृण्वतां पापनाशनम् ।
येन विष्णोः कृपा स्याद्वै वृजिनक्षयकारिणी ॥२॥
पौर्णमास्यां तु यो विप्रो भक्तिभावसमन्वितः ।
कुर्यान्नानाविधानेन सपर्यां श्रीजगद्विभोः ॥३॥
कलुषं तस्य नश्येत कोटिजन्मार्जितं मुने ! ।
तस्मिञ्छ्रीरमणस्यास्य कृपा जाता भवेद्ध्रुवम् ॥४॥

सबों से घिरी हुयी वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ भगवान् विष्णु के लोक में चली गयी । हे द्विजर्षभ मैंने आपको एकादशी का माहात्म्य सुनाया ॥५८॥ जो बिना इच्छा के भी एकादशी के दिन व्रत करता है वह श्री हरि के लोक में जाता है । एकादशी के दिन श्रीभगवान् के मन्दिर में दीपदान करने के लिए जाने वाले को प्रत्येक पग में अश्वमेध याग से भी अधिक फल प्राप्त होता है । जो लोग एकादशी के दिन पुराणों को पढ़ते और सुनते हैं वे पुराणों को प्रत्येक अक्षर के बदले में कपिला गौ के दान करने का फल प्राप्त करते हैं ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के एकादशी माहात्म्य वर्णन नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

पूर्णिमा के दिन विष्णु पूजा का माहात्म्य वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! किस कर्म के करने से पापों का नाश होता है और श्रीहरि की कृपा प्राप्त होती है, उसे आप हमलोगों को कृपा करके बतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे शौनक! आप सुनें मैं सुनने वालों के पापों को विनष्ट करने वाले कर्म को बतलाता हूँ उन सबों से पापों को विनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु की कृपा प्राप्त होती है ॥२॥ जो ब्राह्मण पूर्णिमा के दिन भक्ति-भाव

द्वादश्यामन्नदानं यो भक्त्या कुर्याद् द्विजातये ।
तस्य नश्यन्ति पापानि तमांसीवारुणोदये ॥५॥
यो नरः श्रीहरेः कुर्यात्स्नपनं पयसा द्विज ! ।
तत्प्रीतिः श्रीहरेः सद्यो द्वादश्यां शर्करादिभिः ॥६॥
मन्त्रं बिना तु यो विप्र दद्याच्छ्रीहरये किल ।
पाषाणसदृशं पुष्पं दाता याति त्वधोगतिम् ॥७॥
क्ष्मासुराय च मूर्खाय पाषाणसदृशं तु यत् ।
दद्याद्दानं नरो यो वै तस्य पुण्यं न विद्यते ॥८॥
विद्याहीनो द्विजो मोहाद् दानं गृह्णाति मूढधीः ।
कालानलं यथाजीर्णं स तेन निरयं व्रजेत् ॥९॥
यथा दारुमयो हस्ती मृगश्चित्रमयो यथा। विद्याहीनो द्विजो विप्रत्र्यस्ते नामधारकाः ॥१०॥
यथाऽध्वनि स्थितं वारि पवनार्केण शुद्ध्यति ।
भक्त्या तु पार्षदं दृष्ट्वा तस्य नश्यति कल्मषम् ॥११॥
यो नरश्चाश्विने मासि सघृतान्पूर्णिमा दिने। दद्याच्छ्रीहरये लाजान्क्रीडार्थं तु वराटिकाम्॥१२॥
भक्त्या याति हरेः स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितः ।
न दद्याद्यो नरो मोहात्तस्मिन्न तुष्टिदो हरिः ॥१३॥
वराटिकां यावतीं यो हरये पौर्णिमादिने। तावद्दिनं हरेः स्थानं चाश्विने संवसेद्ध्रुवम् ॥१४॥
करवीरपुरे ह्यासीत्पुराशूद्रोऽपि निर्दयः। कालद्विजो द्विजश्रेष्ठ ! नाम्ना पापी भयङ्करः॥१५॥

पूर्वक श्रीभगवान् की पूजा अनेक विधानों से करता है ॥३॥ उसके करोड़ों जन्म में अर्जित पाप विनष्ट हो जाते हैं, उसके करने से लक्ष्मी पति की कृपा अवश्य होती है ॥४॥ जो द्वादशी के दिन भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को अन्न दान करता है उसके पाप उसी तरह विनष्ट हो जाते है जिस तरह सूर्योदय होने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है ॥५॥ हे द्विज ! जो व्यक्ति शर्करादि मिश्रित दुग्ध से श्रीहरि को द्वादशी के दिन स्नान करता है उससे श्रीहरि की सद्यः प्रसन्नता होती है ॥६॥ विप्र जो बिना मन्त्रों के ही श्रीहरि पर पाषाण इत्यादि के समान पुष्प चढाता है वह दाता अधोगति को प्राप्त करता है ॥७॥ जो मूर्ख ब्राह्मण को दान देता है, वह पाषाण के सदृश होता है, उस दान का कोई भी फल नहीं होता है ॥८॥ अज्ञान से मोहित होकर जो विद्या विहीन ब्राह्मण दान ग्रहण करता है, वह कालरूपी अग्नि से जीर्ण होकर नरक में जाता है ॥९॥ काष्ठ से निर्मित हाथी, चित्र निर्मित मृग तथा विद्याहीन ब्राह्मण ये तीनों केवल नाम मात्र के होते हैं ॥१०॥ जिस तरह मार्ग में विद्यमान जल, वायु तथा सूर्य के सम्पर्क के शुद्ध हो जाता है उसी तरह भक्ति पूर्वक भगवान् के पार्षद का दर्शन करने से पाप का विनाश हो जाता है ॥११॥ जो मनुष्य आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन लावा और उनको खेलने के लिए कौड़ी समर्पित करता है वह अपनी भक्ति के कारण श्रीहरि के लोक में जाता है । पुनः इसलोक में नहीं आता है। जो मनुष्य अज्ञान वशात् श्रीहरि को कौड़ी नहीं प्रदान करता है, उससे श्रीहरि को तुष्टि नहीं प्रदान करते हैं ॥१२-१३॥ पूर्णिमा के दिन मनुष्य जितनी कौड़ियाँ श्रीहरि को प्रदान करता है उतने दिन वह आश्विन

स्वकार्यनिरत: सोऽपि स्वामिकार्यप्रणाशक: ।
एकदा पञ्चतां यातो यमदूता भयङ्करा: ॥१६॥
आगतास्तं समानेतुं यमस्य तु निकेतनम् । बद्ध्वा निन्युश्च तं दृष्ट्वा पृष्टवान्सचिवं यम:॥१७॥

यम उवाच

अस्य किं विद्यतेऽमात्य ! कर्माऽपि च शुभाशुभम् ।
कथयस्व समूलं तु चित्रगुप्त ! विचक्षण ! ॥१८॥

चित्रगुप्त उवाच

असौ पापी दुराचार: स्वामिकार्यप्रणाशक: ।
नास्ति पुण्यं चाणुमात्रं नरके परिपच्यताम् ॥१९॥
शतमन्वन्तरं राजन्नागयोनौ च निष्ठुर:। पाषाणे जन्म चासाद्य गृहे स्थातुं निरन्तरम् ॥२०॥

सूत उवाच

तावत्कालं ततो विप्र ! निरये स पपात ह ।
ततोऽप्यश्मगृहे नागयोनौ जात: सुदु:खित: ॥२१॥
एकदा चाश्विने मासि पौर्णमासीदिने द्विज ! ।
लाजान्वराटिका नागो बिलात्प्राक्षेपयद् बहि: ॥२२॥
पतिता सा हरेरग्रे पापमस्य स्वयं हरि: । तूर्णं तु नाशयामास दयालुर्दु:खनाशक: ॥२३॥
कदाचित्प्राप्तकालस्तु पञ्चत्वं स जगाम ह। यमदूतास्तमानेतुं चागता बहुशो द्विज !॥२४॥
बद्ध्वा नेतुं यदा चक्रुर्यमस्य सदनं प्रति। तदाऽऽगता विष्णुदूता: शङ्खचक्रदाधरा: ॥२५॥
पाशं छित्त्वा रथे दिव्ये तमाशु गतकिल्विषम् ।
तत्र चारोपयमासुर्यमदूता:पलायिता: ॥२६॥

के महीने में श्रीहरि के लोक में अवश्य निवास करता है ॥१४॥ करबीर पुनर नामक नगर में एक अत्यन्त निर्दय शूद्र रहता था उसका नाम कालद्विज था और वह भयङ्कर पापी था ॥१५॥ वह अपना काम करता रहता था और स्वामी के कार्य को बिगाड़ देता था । जब उसकी मृत्यु हुयी तो भयङ्कर यमदूत उसे लेने के लिए आये । वे उसको बाँधकर यमलोक ले गये उसको देखकर यम ने चित्रगुप्त से पूछा ॥१६-१७॥ **यम ने कहा—** हे आमात्य ! इसका शुभ तथा अशुभ कर्म कैसा है ? चतुर चित्रगुप्त इन सारी बातों को आप कहें ॥१८॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** यह पापी दुराचारी तथा अपने स्वामी के सिद्ध कार्य का भी विनाश करने वाला है । इसका अणु मात्र भी पुण्य नहीं है । इसको नरक में डाल दें ॥१९॥ यह सौ मन्वन्तरों तक निष्ठुर नागयोनि में रहे । यह पत्थर के ऊपर जन्म प्राप्त करके, वहीं के घर में रहने योग्य है ॥२०॥ **सूतजी ने कहा—** हे विप्र ! वह उतने समय तक नरक में पड़ा रहा उसके बाद वह नाग योनि में जाकर अत्यन्त दु:खी बना रहा ॥२१॥ हे द्विज ! एक दिन आश्विन के महीने में उस नाग ने लावा और कौड़ी बिल से बाहर फेंक दिया ॥२२॥ वह श्रीहरि के सामने आकर गिरा । उसको देखकर दु:खों का नाश करने वाले दयालु भगवान् उसके पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर दिए । उसके बाद समयानुसार उसकी मृत्यु हो गयी । हे द्विज ! उसको लेने के लिए अनेक यमदूत आये ॥२३-२४॥

ततो निकेतनं विष्णोर्नागस्तैर्वेष्टितो ययौ। तत्र तस्थौ हरेरग्रे पुनरावर्त्तिवर्जितः ॥२७॥

भक्त्या यो हरये दद्याल्लाजांश्च स घृतान्द्विज ।

वराटिकां तस्य पुण्यं न जाने किं भवेद्ध्रुवम् ॥२८॥

य इमं शृणुयाद्विप्र चाध्यायं पापनाशनम्। तस्य नश्यन्ति पापानि श्रीहरेःकृपयाऽपि च ॥२९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे पौर्णमास्यां विष्णुपूजनमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

विष्णुपादोदकस्यापि माहात्म्यं पापनाशनम्। कथयस्व महाप्राज्ञ ! समूलं मे कृपार्णव ! ॥१॥

सूत उवाच

समस्तपातकध्वंसि विष्णुपादोदकं शुभम्। कणमात्रं वहेद्यस्तु सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥२॥

विष्णुपादोदकं ब्रह्मन्स्पर्शतः पापनाशनम्। अकालमरणं नास्ति गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥३॥

उसको बाँधकर वे जब यमलोक जाने लगे उसी समय शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु के दूत वहाँ आयें ॥२५॥ उनलोगों ने यमपाश को काट दिया और उस निष्पाप जीव को रथ पर बैठा लिया, यम के दूत वहाँ से भाग गये ॥२६॥ उन सबों के साथ वह नाग; भगवान् विष्णु के लोक में गया और श्रीहरि के समक्ष ही वह रहने लगा । वह संसार में नहीं आया ॥२७॥ हे द्विज! जो भक्तिपूर्वक आश्विन मास में श्रीभगवान् को घी, लावा और कौड़ी समर्पित करता है उसको न जाने कितना पुण्य होता है ॥२८॥ हे विप्र ! जो मनुष्य इस पाप विनाशक अध्याय का श्रवण करता है श्रीहरि की कृपा से उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के पूर्णिमा के दिन श्रीहरि की पूजा करने के माहात्म्य वर्णन नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

श्रीभगवान् विष्णु के चरणोदक का माहात्म्य

शौनक महर्षि ने कहा— हे कृपा सागर ! महाप्राज्ञ आप भगवान् विष्णु के पाप नाशक चरणोदक का भी माहात्म्य बतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** भगवान् विष्णु का पादोदक समस्त पापों का विनाश करने वाला तथा कल्याणकारी है । इसके कण मात्र को भी धारण करने वाले के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीभगवान् के चरणोदक का स्पर्श करने मात्र से पाप का नाश हो जाता है, उससे अकाल मृत्यु नहीं होती है और उससे गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! जो

विष्णुपादोदकं पापी यः पिबेत्तस्य किल्विषम् ।
शरीरस्थं क्षयं याति कृतं ब्रह्मत्र संशयः ॥४॥
तुलसीपर्णसंयुक्तं विष्णुपादोदकं द्विज । यो वहेच्छिरसा भक्त्या चान्ते याति हरेर्गृहन् ॥५॥
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्त्वा यत्फलमाप्यते । हरिपादोदकं स्पृष्ट्वा प्राप्यते तत्फलं नरैः ॥६॥
धेनुकोटिसहस्राणि यत्फलं लभ्यते नरैः । दत्त्वा पादोदकं स्पृष्ट्वा तत्फलं प्राप्यते ध्रुवम् ॥७॥
यज्ञकोटिसहस्राणि कृत्वा यत्फलमाप्यते । हरिपादोदकं स्पृष्ट्वा तस्मात्कोटिगुणं नरैः ॥८॥
कोटिकन्याप्रदानेन यत्फलं लभ्यते जनैः । विष्णुपादोदकं स्पृष्ट्वा फलं तस्माद् द्विजाधिकम् ॥९॥
दन्तिकोटिप्रदानेन सप्तिकोटिप्रदानतः । यत्फलं लभते मर्त्यःस्पृष्ट्वा पादोदकं हरेः ॥१०॥
दत्त्वा मर्त्यः सप्तद्वीपां ससस्यां यत्फलं लभेत् ।
विष्णुपादोदकं स्पृष्ट्वा तस्माद्विप्राधिकं लभेत् ॥११॥
शृणु विप्र ! प्रवक्ष्यामि संक्षेपेणाधिकं किमु ।
विष्णुपादोदकं स्पृष्ट्वा पापी याति हरेर्गृहम् ॥१२॥

शौनक उवाच

स्पृष्ट्वा पीत्वा पुरा केन प्राणिनाऽप्राप वै गृहम् ।
कथयस्व हरेः सूत ! ममत्वं चानुकम्पया ॥१३॥

सूत उवाच

पुरा त्रेतायुगे पापी नाम्ना विप्रःसुदर्शनः । जनार्दनदिने नित्यमश्नीयात्स द्विजोत्तम ! ॥१४॥

पापी भगवान् के चरणोदक का पान करता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसके शरीर में पाप नहीं रह जाता है ॥४॥ हे द्विज ! तुलसीदल से युक्त श्रीभगवान् के चरणोदक को जो अपने शिर पर भक्ति पूर्वक धारण करता है वह अन्त में श्रीहरि के लोक में जाता है ॥५॥ सुमेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण दान करने का जो फल होता है, उस फल को मनुष्य श्रीहरि के चरणोदक का स्पर्श करके प्राप्त कर लेता है ॥६॥ एक करोड़ हजार गायों का दान करने से होने वाली पुण्य की प्राप्ति श्रीहरि के चरणोदक का स्पर्श करने मात्र से मनुष्य को हो जाती हैं ॥७॥ करोड़ों यज्ञों को करने से जिस फल की प्राप्ति होती है श्रीहरि के चरणोदक का स्पर्श करने मात्र से उसके करोड़ गुणा फल प्राप्त होता है॥८॥ करोड़ों कन्यादान करने का जो फल होता है हे द्विज ! उससे अधिक पुण्य श्रीहरि के चरणोदक का स्पर्श करने मात्र से होती है ॥९॥ करोड़ों हाथी और करोड़ों घोड़ों का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल को मनुष्य श्रीहरि के चरणोदक का स्पर्श करके प्राप्त कर लेता है ॥१०॥ मनुष्य खेती से भरी हुयी सप्तद्वीपा पृथिवी का दान करके जिस फल को प्राप्त करता है, उस फल को वह श्रीहरि के चरणोदक का स्पर्श करके प्राप्त कर लेता है ॥११॥ हे विप्र ! मैं अधिक क्या कहूँ? भगवान् विष्णु के चरणोदक का स्पर्श करने वाला पापी मनुष्य श्रीहरि के लोक में जाता है ॥१२॥ **शौनक महर्षि ने कहा—** हे सूतजी ! आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि श्रीहरि के चरणोदक का स्पर्श करके तथा पान करके कौन से लोग श्रीहरि के लोक में गये ॥१३॥ **सूतजी ने कहा—** पहले के त्रेतायुग में सुदर्शन नामक पापी ब्राह्मण था । वह एकादशी के दिन सदैव भोजन करता था ॥१४॥ वह सदा

शास्त्रनिन्दाकरो नित्यं व्रतनिन्दाकरः सदा। असावन्यं न जानाति केवलं स्वोदरं बिना॥१५॥
एकदा प्राप्तकालस्तु निधनं प्राप्तवान्द्विज । यमदूताःसमायाताः बद्ध्वानीतो यमालयम् ॥१६॥
तं दृष्ट्वा यमुनाभ्राता पप्रच्छ सचिवं रुषा ।
भोऽमात्य ! चास्य यत्पुण्यं पापं वद समूलतः ॥१७॥
असौ विप्रो महापापी क्रूरकर्मेव दृश्यते ॥१८॥

चित्रगुप्त उवाच

आकर्णय चास्य पापं पुण्यं नास्त्यणुमात्रकम् ।
वासरेऽपि हरेर्नित्यमकरोद् भोजनं विभो ॥१९॥
वासरे कमलाभर्तुश्चाश्नीयाद्यो नराधमः । पुरीषं सोऽश्नीयाद्राजन्निरयं याति दारुणम्॥२०॥
मन्वन्तरशतं देहि स्थानं तु निरयेऽस्य वै। ग्रामकोडस्य योनौ हि ततो जन्म भविष्यति ॥२१॥

सूत उवाच

यमाज्ञया ततो विप्र स च दूतैर्भयङ्करैः । पातितस्तु पुरीषे वै मन्वन्तरशताधिकम् ॥२२॥
ततो मुक्तोऽभवच्चासौ पृथिव्यां ग्रामसूकरः ।
चिरं नरकमश्नीयाद्धरिवासरभोजनात् ॥२३॥
ततो विप्रप्राप्तकालःपञ्चत्वं स जगाम ह!। काकयोनौ पुनर्जन्म लेभेऽसौ विड्भुजःसदा ॥२४॥
एकस्मिन्दिवसे विप्र ! श्रीहरेश्चरणोदकम्। द्वारदेशे स्थितं पीत्वा सर्वपापविवर्जितः॥२५॥
तस्मिन्नेवदिने काकःपतितःशबरस्य च। काले मृत्युदशां प्राप्तो व्याधेन वायसोऽपि च॥२६॥
आगते स्यन्दने दिव्ये राजहंसयुते शुभे। आरुह्य बलिभुग्विप्र ! ययौ स हरिमन्दिरम्॥२७॥

शास्त्रों तथा व्रतों की निन्दा करता था । वह अपने पेट भरने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता था॥१५॥ हे द्विज ! समयानुसार एक बार उसकी मृत्यु हो गयी । यम के दूत आये और उसे बाँधकर यमलोक ले गये ॥१६॥ उसको देखकर यमराज ने अपने मन्त्री चित्रगुप्त से कहा हे आमात्य ! इसका जो पुण्य हो उसे आप मुझे बतलाइये ॥१७॥ यह ब्राह्मण तो महापापी तथा क्रूर कर्म करने वाले के समान दिखता है ॥१८॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** आप इसके पापों को सुनें । इसका अणुमात्र भी पुण्य नहीं है । हे विभो ! यह एकादशी के भी दिन भोजन करता था ॥१९॥ जो नराधम एकादशी के दिन भोजन करता है, वह विष्ठा का भोजन करता है और वह नरक में जाता है ॥२०॥ इसको सौ मन्वन्तर के लिए नरक में भेज दीजिये । उसके बाद इसका जन्म ग्राम शूकर की योनि में होगा ॥२१॥ **सूतजी ने कहा—** हे विप्र ! उसके बाद यमराज की आज्ञा प्राप्त करके भयङ्कर यम दूतों ने उसे सौ वर्ष से भी अधिक के लिए विष्ठा के नरक में डाल दिया ॥२२॥ उससे मुक्त होने के बाद वह ग्राम शूकर हुआ । अतएव जो मनुष्य एकादशी के दिन भोजन करता है, वह दीर्घकाल तक नरक में जाता है ॥२३॥ उसके बाद वह ब्राह्मण विष्ठा खाने वाले कौऐ की योनि में गया ॥२४॥ हे विप्र ! वह एक दिन दरवाजे पर रखे हुए श्रीहरि का चरणोदक पीकर सभी पापों से रहित हो गया ॥२५॥ उसी दिन वह कौआ एक भिल्ल के ऊपर गिरा, उससे वह व्याध मर गया और उस व्याघ के द्वारा वह कौआ भी मर गया ॥२६॥ हे विप्र ! जब राजहंस से युक्त रथ आया तो वह कौआ उस पर चढकर श्रीहरि के लोक में चला गया॥२७॥

पादोदकस्य माहात्म्यं कथितं पापनाशनम्। यः श्रृणोति नरः पापी तस्य पापं विनश्यति॥२८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे श्रीविष्णुचरणोदकमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

शौनक उवाच

अगम्यागमनं सूत ! कुर्याद्यो वै विमोहितः ।
तस्य शुद्धिर्भवेत्केन कथयस्व समूलतः ॥१॥

सूत उवाच

अभिगच्छति चाण्डालीं श्वपाकीं यो द्विजोत्तमः ।
उपवासत्रयं कुर्जात्प्राजापत्यं चरेत्ततः ॥२॥
सशिखं वपनं चैव दद्याद्गोद्वयमेव च। यथार्थदक्षिणां दत्त्वा शुद्धिमाप्नोति सद्विजः ॥३॥
क्षत्रियो वापि चाण्डालीं वैश्यो वा यदि गच्छति ।
प्राजापत्यं सकृच्छ्रं च दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥४॥
अनुगच्छति शूद्रो हि श्वपाकीं च तपोधन ! ।
चतुर्गोमिथुनं दद्यात्प्राजापत्यं व्रतं चरेत् ॥५॥
मातरं यदि वा गच्छेद्भगिनीं स्वसुतामपि ।
वधूं च मोहितो गछंस्त्रीणि कृच्छ्राण्यथाऽऽचरेत् ॥६॥

इस तरह मैंने आपको श्रीभगवान् के पापनाशक चरणोदक के माहात्म्य को सुनाया । जो मनुष्य इस प्रसङ्ग का श्रवण करता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥२८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के श्रीविष्णुचरणोदक माहात्म्य वर्णन नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

अगम्यागमन जन्य दोष के प्रायश्चित का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— जो अज्ञानी जीव अगम्या गमन करता है उसकी शुद्धि किस कर्म को करने से होती है इसे आप बतलाइये ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— जो ब्राह्मण किसी चाण्डली अथवा श्वपाकी के साथ सङ्गम करता है वह पहले तीन दिन उपवास करे और उसके बाद प्राजापत्य व्रत करे ॥२॥ वह अपनी शिखा के साथ क्षौर कर्म कराकर दो गायों का दान ब्राह्मण को दे । उसके बाद वह उचित दक्षिणा देकर शुद्ध हो जाता है ॥३॥ कोई क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी चाण्डाली के साथ सङ्गम करता है तो वह कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करे और दो गोदान करे ॥४॥ हे तपोधन ! यदि कोई शूद्र श्वपाकी के साथ सङ्गम करता है तो उसे चार गोदान करना चाहिए तथा प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥५॥ यदि

चान्द्रायणत्रयं कृत्वा दद्याद्गोमिथुनत्रयम्। सशिखं वपनं कृत्वा पञ्चगव्यं पिबेत्ततः ॥७॥
हुते हाग्नौ तथाप्यत्र शुद्ध्यत्येवं तपोधन। पितृदारान्द्विजश्रेष्ठ ! मातुश्च भगिनीं तथा ॥८॥
गुरुपत्नीं मातुलानीं भ्रातुर्भार्यां स्वगोत्रजाम् ।
यदि गच्छति मोहेन प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥९॥
चन्द्रायणत्रयं ब्रह्मन्पञ्च गोमिथुनानि च। विप्रेभ्यो दक्षिणांदद्याच्छुध्यते नात्र संशयः ॥१०॥
गां च गच्छति यो मूढ उपवासत्रयं चरेत् ।
धेनुं दत्त्वा तथा चाऽन्नं शुद्ध्यत्यत्र न संशयः ॥११॥
वेश्यां खरीं सूकरीं च कपिं च महिषीं द्विज ।
आकण्ठतः समाक्षिप्य गोमयोदककर्दमे ॥१२॥
तत्र तिष्ठेन्निराहारो त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति। सशिखं वपनं कृत्वा त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥१३॥
तत्र तिष्ठेन्निराहारो त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति। सशिखं वपनं कृत्वा त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥१४॥
एकरात्रं जले स्थित्वा शुद्ध्यत्येव न संशयः ।
ब्राह्मणीं तु यदा गच्छेद्यो नरः काममोहितः ॥१५॥
प्राजापत्यत्रयं कुर्याच्चान्द्रायणत्रयं तथा। गोत्रयं तु तथादद्याच्छुद्ध्यत्येव तपोधन !॥१६॥
ब्राह्मणीं पञ्चगव्यं तु पञ्चरात्रं पिबेद्द्विज । गो द्वयं दक्षिणां दद्याच्छुध्यत्यत्र न संशयः ॥१७॥
पराङ्गनां यदा गच्छेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।
यथाऽर्गला तथा योषित्तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥१८॥

कोई अपनी माता या बहन या अपनी पुत्री के साथ सङ्गम करता है या पुत्रवधू के साथ सङ्गम करता है तो उसको तीन कृछ्र करना चाहिए उसके बाद वह तीन चान्द्रायण व्रत करके तीन गौ तथा तीन बैल का दान करे । उसके बाद सशिख वपन कराकर पञ्चगव्य का पान करे ॥६-७॥ उसके बाद वह अग्नि में होम करे तो वह शुद्ध होता हे । यदि कोई अज्ञानवशात् पिता की पत्नियों, मौसी, गुरु की पत्नी, मामी, भौजाई अथवा किसी अपने गोत्र की नारी के साथ सङ्गम करता है तो उसे प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥९॥ उसके बाद वह तीन चान्द्रायण व्रत करे तथा पाँच गौ तथा पाँच बैल दान करे। उसके बाद ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करे । ऐसा करके वह शुद्ध हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥१०॥ जो मूर्ख गौ के साथ सङ्गम करता है उसको तीन दिन का उपवास करना चाहिए । उसके बाद वह गौ का दान करे और अन्न का दान करे । ऐसा करके वह शुद्ध हो जाता है ॥११। यदि कोई गदही, वेश्या, या शूकरी या भैंसी के साथ सङ्गम करता है तो वह अपने को गोबर के पानी के कीचड़ में गले तक डुबाकर तीन दिन तक निराहार रहे तब जाकर शुद्ध होता है । उसके बाद सशिख वपन कराकर तीन रात तक उपवास करे ॥१३॥ फिर एक दिन और एक रात जल में खड़ा रहे तब जाकर वह शुद्ध होता है । यदि कोई काम मोहित पुरुष किसी ब्राह्मणी के साथ सङ्गम करता है तो॥१४॥ उसे तीन प्राजापत्य व्रत तीन चन्द्रायण और तीन गौ का दान करना चाहिए; ऐसा करके वह शुद्ध होता है ॥१५॥ उस ब्राह्मणी को पाँच रात तक पञ्चगव्य पीकर रहना चाहिए । वह भी दो गायों का दान करे तथा दक्षिणा प्रदान करे तब वह जाकर शुद्ध होती है ॥१६॥ यदि कोई दूसरे की स्त्री के साथ

वर्णबाह्यां तथा नीचामनुगच्छेत्सकृन्नरः। प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं शुद्ध्यत्येव न संशयः॥१९॥
अङ्गारसदृशी योषित्सर्पिष्कुम्भसमः पुमान्। तस्याः परिसरे ब्रह्मन्न स्थातव्यं कदाचन॥२०॥
जारेण जनयेद्गर्भं या च नारी कुलान्तका। त्याज्या सा सर्वथा ब्रह्मंस्तत्र दोषो न विद्यते॥२१॥

या च नारी गृहाद्गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धूस्वकानपि ।
नष्टा सा च कुलभ्रष्टा न तस्याः सङ्गमः पुनः ॥२२॥

या च नारी यदा गच्छेन्मोहिता परपूरुषम् । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं पञ्चगव्यं पिबेत्ततः॥२३॥
गोद्वयं तु ततो दद्याच्छुध्यत्येव न संशयः । ब्राह्मणी बालिशा ब्रह्मन्मोहिता परपूरुषम् ॥२४॥

यदा गच्छेत्तदा त्याज्या जनैर्दोषो न विद्यते ।
यो गच्छेद् ब्राह्मणीं विप्र ! भूसुरःकाममोहितः ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादेऽगम्यागमनप्रायश्चितकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

सङ्गम करता है तो उसे कृछ्र संतापन व्रत करना चाहिए । नारी अर्गला के समान है अतएव उससे वचना चाहिए ॥१७॥ वर्ण बाह्य अथवा नीच जाति की नारी के साथ सङ्गम करने पर मनुष्य को एक वार प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ऐसा करके वह शुद्ध हो जाता है ॥१८॥ नारी आग के अङ्गारे के समान होती है और पुरुष घी के घड़े के समान होता है । अतएव हे ब्रह्मन् ! स्त्री के निकट नहीं खड़ा होना चाहिए ॥१९॥ यदि कोई जार पुरुष से पुत्र पैदा करती है तो उसका पूर्णरूप से त्याग कर देना चाहिए ऐसा करने में कोई नारी दोष नहीं है ॥२०॥ जो नारी अपने बांधवों का परित्याग करके चली जाती है वह नष्ट-भष्ट हो जाती है, उसके साथ फिर सङ्गम न करे ॥२१॥ जो नारी दूसरे पुरुष पर मोहित होकर घर से चली जाती है, उसको कृछ्र प्राजापत्य व्रत करना चाहिए उसके बाद वह पञ्चगव्य का पान करे॥२२॥ उसके बाद वह दो गौओं का दान करे तो शुद्ध हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। हे ब्रह्मन्! यदि कोई मूर्ख ब्राह्मणी दूसरे पुरुष पर मोहित हो जाती है ॥२३॥ उसके बाद यदि वह घर से निकल जाती है तो उसको त्याग देना चाहिए, इसमें कोई दोष नहीं होता है । यदि कोई ब्राह्मण काम मोहित होकर किसी ब्राह्मणी के साथ सङ्गम करता है तो वह गौ और तिलों का दान करके शुद्ध हो जाता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२४-२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूत शौनक संवादान्तर्गत अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरां संस्पृश्य वा पुनः ।
यथाशुद्धिर्भवेत्तेषां कथयामि शृणु द्विज ! ॥१॥
प्राजापत्यद्वयं कुर्यात्तीर्थाभिगमनं मुने !। वृषैकादश गोदानं सशिखं वपनं ततः ॥२॥
गत्वा चतुष्पथं सर्वं प्राजापत्यव्रतं तथा। गोद्वयं तु ततो दद्यात्पञ्चगव्यं पिबेत्ततः ॥३॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु शुध्यत्यत्र न संशयः ।
चाण्डालान्नं जलं चैव ज्ञानतोऽपि विपत्तिषु ॥४॥
यदि भुङ्क्ते नरःकश्चित्कृच्छ्र चान्द्रायणं चरेत् ।
सशिखं वपनं कृत्वा पञ्चगव्यं ततः पिबेत् ॥५॥
एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद् विप्रेष्वनुक्रमात्। वृषलान्नं सूतकान्नमभोज्यान्नं जलं च वै ॥६॥
शूद्रोच्छिष्टं यदा भुङ्क्ते ज्ञानतो वा विपत्तिषु ।
प्राजापत्यद्वयं कुर्याच्चान्द्रायणत्रयन्तथा ॥७॥
गोद्वयं तु ततो दद्यात्पञ्चगव्यं पिबेद् द्विज ! ।
हुत्वा हाग्नौ बहून्विप्रान्भोज्यशुद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥८॥
आखुनकुलमार्जारैरन्नं चेद्भक्षितं द्विज। तिलदर्भोदकैःप्रोक्ष्य शुध्यत्येव न संशयः ॥९॥
पलाण्डुं लशुनं शिग्रुमलाम्बुं गृञ्जनं पलम्। भुङ्क्ते यो वै नरो ब्रह्मन्व्रतं चान्द्रायणं चरेत् ॥१०॥

अभक्ष्य भक्षण के प्रायश्चित्त का वर्णन

सूतजी ने कहा— यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानवशात् विष्ठा, मूत्र अथवा मदिरा को पी लेता है तो उसकी जिस प्रकार से शुद्धि होती है, उसे मैं बतला रहा हूँ, उसे आपलोग सुनें ॥१॥ उसको दो प्राजापत्य व्रत करके तीर्थ यात्रा करनी चाहिए । उसे ग्यारह बैल और गोदान करना चाहिए एवं सशिख वपन करना चाहिए ॥२॥ उसे सभी चौराहों पर जाकर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए उसके बाद वह गो गोदान करे और पञ्चगव्य का पान करे ॥३॥ उसके बाद वह ब्राह्मण भोजन कराकर शुद्ध होता है, इसमें कोई संशय नहीं है । यदि कोई विपत्ति आने पर अज्ञानवशात् चाण्डाल का अन्न और जल लेता है और खा लेता है तो उसको कृच्छ्र चान्द्रायण करना चाहिए । फिर वह सशिख वपन कराकर पञ्चगव्य को पिए ॥५॥ उसके बाद वह क्रमशः ब्राह्मणों को एक, दो, तीन तथा चार गोदान करे । यदि कोई वृषण (चाण्डाल) का अन्न, सूतक का अन्न अथवा अभोज्य अन्न और जल ॥६॥ तथा विपत्ति के कारण बिना जाने ही शूद्र का उच्छिष्ट अन्न खा लेता है तो उसे दो प्राजापत्य और तीन चान्द्रायण करना चाहिए ॥७॥ उसके बाद वह दो गौ का दान करे तथा पञ्चगव्य का पान करे । उसके बाद वह अग्नि में होम करके बहूत ब्राह्मणों को भोजन कराकर शुद्ध हो जाता है ॥८॥ यदि चूहा, नेवला या बिल्ली अन्न को खा ले तो उसको कुश के जल से प्रोक्षण करने से वह अन्न शुद्ध हो जाता है ॥९॥ प्याज, लशून, कुकुरमुत्ता, लौकी, गृजनं तथा मांस खा ले उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥१०॥ मद्य, मांस, जिसको प्रिय

मद्यमांसप्रियं शूद्रं नीचकर्मानुवर्त्तिनैः। तं शूद्रं वर्जयेद्विप्र ! श्वपाकमिव दूरतः ॥११॥
द्विजसेवानुरक्ता ये मद्यमांसविवर्जिताः । दानस्वकर्मनिरतास्ते ज्ञेया वृषलोत्तमाः ॥१२॥
अज्ञानाद्भुञ्जते विप्र ! सूतके मृतके यदि । गायत्री दशभिर्विप्रःसहस्त्रैश्च शुचिर्भवेत् ॥१३॥
सहस्त्रैःक्षत्रियश्चैव वैश्यःपञ्चसहस्त्रकैः। पञ्चगव्यैर्भवेच्छुद्धो वृषलोऽपि तपोधन ! ॥१४॥
आज्यं तु तोयं नीचस्य भाण्डस्थं दधि यः पिबेत् ।
अज्ञानतोऽपि यो वर्णः प्राजापत्यव्रतं चरेत् ॥१५॥
दानं बहुतरं दद्याच्छुद्धो ह्यग्नौ यथाविधि । शूद्राणां नोपवासोऽपि दानेनैव विशुद्ध्यति ॥१६॥
सशिखं वपनं कुर्यादहोरात्रोपवासतः। नीचैर्दण्डादिभिश्चैव ताडितो यो नरो द्विज !॥१७॥
प्राजापत्यव्रतं कुर्याच्चान्द्रायणव्रतं तु वा। सशिखं वपनं चैव पञ्चगव्यं पिबेत्ततः ॥१८॥
गोद्वयं तु ततो दद्यादग्नौ चान्नादिकं हुतम्। मद्यपानं गृहे विप्र ! ज्ञानतोऽपि यदृच्छया ॥१९॥
यदि भुङ्क्ते नरः कश्चित्पात्यःसोऽपि कुलान्नरः ।
गोबीजहन्ता यो विप्रच्छेदकश्च दलस्य च ॥२०॥
स्वर्णस्तेयी भवेत्कृच्छ्रं प्राजापत्यत्रयं चरेत् ।
सशिख वपनं कृत्वा पञ्चगव्यं तथा पिबेत् ॥२१॥
यथाविधि हुतं चाग्नौ दद्याद्धेनुत्रयं तथा। तस्य भुक्तं जलं चैव ग्राह्यं स्याद्वै तपोधन॥२२॥
प्रातस्त्र्यहं तु चाश्नीयत्र्यहं सायमयाचितम् । त्र्यहश्चैव तु नाऽश्नीयात्प्राजापत्यमिदं व्रतम् ॥२३॥

हो ऐसे नीच कर्म करने वाले शूद्र से ब्राह्मण को उसी तरह से दूर रहना चाहिए जैसे श्वपाक से दूर रहा जाता है ॥११॥ वे शूद्र उत्तम कोटि के हैं जो ब्राह्मणों की सेवा में अनुराग रखते है, तथा मद्य एवं मांस से दूर रहते हैं ॥१२॥ यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानवशात् मृतकाशौच में भोजन कर लेता है तो वह दश हजार गायत्री जप करके पवित्र हो जाता है ॥१३॥ क्षत्रिय एक हजार जप करके पवित्र होता है और वैश्य पाँच हजार जप करके पवित्र होता है । हे तपोधन ! शूद्र भी पञ्चगव्य का पान करने मात्र से पवित्र हो जाता है ॥१४॥ नीच के पात्र में रखे हुए घी, जल या दधि को कोई अज्ञान वशात् पी लेता है तो वह प्राजापत्य व्रत करे । उसे अनेक प्रकार का दान देना चाहिए और अग्नि में होम करना चाहिए ऐसा करके वह शुद्ध हो जाता है यह शूद्रों के लिए नहीं है, वे तो दान करने मात्र से ही शुद्ध हो जाते है ॥१५-१६॥ उनको सशिख वपन कराकर एक दिन और एक रात का उपवास करना चाहिए । जिस विप्र को नीच मनुष्य दण्डे इत्यादि से मार दे उस ब्राह्मण को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥१७॥ वह प्राजापत्य व्रत करे या चान्द्रायण करे । उसके बाद उसे सशिख वपन कराकर पञ्चगव्य पीना चाहिए ॥१८॥ यदि कोई ब्राह्मण अपने घर में अज्ञानवशात् मदिरा पान कर लेता है तो उसको दो गौओं का दान करके अग्नि में अन्न आदि का होम करना चाहिए ॥१९॥ गो बीज का हवन करने वाले तथा ब्राह्मण को काटने वाले को वंश से बहिष्कृत कर देना चाहिए ॥२०॥ सोना चुराने वाले को तीन कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करना चाहिए उसके बाद वह सशिख वपन कराकर पञ्चगव्य पान करे ॥२१॥ उसके बाद विधि पूर्वक अग्नि में हवन करके वह तीन दूध देने वाली गौ का दान करे । ऐसा करने वाले का अन्न और जल ग्रहण करने योग्य होता है ॥२२॥ वह तीन दिन तक केवल सबेरे भोजन

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिः सर्पिः कुशोदकम् ।
दिनद्वयं पिबेद्विप्र ! चैकरात्रमुपोषितः ॥२४॥
सर्वपापहरं कृच्छ्रं मुने ! सान्तापनं स्मृतम् ।
ग्रासं त्र्यहं तु चैकैकं प्रातःसायमयाचितम् ॥२५॥
अद्यात्त्र्यहं चोपवसेदतिकृच्छ्रमिदं व्रतम्। प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णं जलं क्षीरं घृतं द्विज !॥२६॥
सकृत्स्नायी तप्तकृच्छं स्मृतं पापहरं मुने । अभोजनं द्वादशाहं कृच्छ्रोऽयं पापनाशनः॥२७॥
पराको नाम विज्ञेयःप्रसिद्धश्च तपोधन ! । एकैकं वर्द्धयेत्पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्॥२८॥
इन्दुक्षये न भुञ्जीत चान्द्रायणव्रतं स्मृतम् । अश्नीयाच्चतुरःप्रातःपिण्डान्विप्र ! समाहितः॥२९॥
चतुरोऽस्तमिते चार्के शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ।
कृष्मण्डघातिनी नारी पञ्चगव्यं पिबेत्त्र्यहम् ॥३०॥
कुष्माण्डपञ्चकं दद्यात्ससुवर्णं सवस्त्रकम्। तस्या वारि तथा भक्तं ग्राह्यं स्याद्वै तपोधन॥३१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादेऽभक्ष्यभक्षणप्रायश्चितकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

करे तथा तीन दिन शाम को अयचित (अपने से प्राप्त) अन्न खाय फिर वह तीन दिन उपवास करे इसी को प्राजापत्य व्रत कहते हैं ॥२३॥ हे मुने ! गोमूत्र, गोबर, गो दुग्ध, गोदधि, गोघृत तथा कुशोदक मिलाकर दो दिन तक वह पिये और उसके बाद एक दिन-रात का उपवास करे, यह समस्त पापों को विनष्ट करने वाला कृछ्र संतापन व्रत कहलाता है ॥२४॥ तीन दिन तक एक-एक ग्रास भोजन सबेरी एवं शाम को अयाचित अन्न का करे, उसके बाद तीन दिन तक उपवास करे तो उसे अतिकृछ्र व्रत कहते हैं ॥२५॥ हे मुने ! ब्राह्मण को प्रत्येक तीसरे दिन गर्म जल, दुग्ध, तथा घी पीना चाहिए और एक बार वह स्नान करे तो इसको तप्त कृच्छ व्रत कहते हैं । यह समस्त पापों को विनष्ट करने वाला है ॥२६॥ हे तपोधन ! बारह दिन भोजन न करे तो यह परमकृछ्र व्रत कहलाता है, यह समस्त पापों का विनाश करता है ॥२७॥ शुक्ल पक्ष में एक-एक ग्रास भोजन बढाता जाय और कृष्ण पक्ष में एक-एक ग्रास भोजन घटाता जाय तथा अमावास्या के दिन भोजन न करे इसी को चान्द्रायण व्रत कहते हैं ॥२८॥ ब्राह्मण शान्तमन से प्रातःकाल चार ग्रास भोजन करे और चार ग्रास शाम को सूर्यास्त हो जाने के बाद भोजन करे इसको शिशु चान्द्रायण व्रत कहते हैं । जो नारी कूष्माण्ड को काटने का काम करती है उसको तीन दिन तक पञ्चगव्य पीकर पाञ्च कुष्माण्ड में सोना डालकर उसका वस्त्र के साथ दान करना चाहिए । ऐसा करने पर ही उसके हाथ का अन्न और जल लेना चाहिए ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूतशौनक संवादान्तर्गत उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

सुकृतं किं तथा प्राहुः कृत्वा संसारसागरात् ।
तरिष्यन्ति कलौ सूत ! तमोऽन्यकूपमण्डुकाः ॥१॥

सूत उवाच

राधाकृष्णप्रिये चोर्जे प्रातःस्नानं समाचरेत्। राधादामोदरं भक्त्या कुर्यात्पूजां समाहितः ॥२॥
त्यक्त्वाऽऽमिषादिकं ब्रह्मन्पतिसेवापरायणा। सा याति श्रीहरेःस्थानं गोलोकाख्यं सुदुर्ल्लभम्॥३॥
राधादामोदराभ्यां यां धूपदीपं तु कार्तिके। दद्यात्सा भवनं विष्णोर्याति वै त्यक्तपातका॥४॥
योषिद्या कार्तिके विप्र दद्याद्वस्त्रं निकेतने । राधादामोदराभ्यां तु वसेत्सा श्रीहरेश्चिरम्॥५॥

राधादामोदराभ्यां या पुष्पं माल्यं सुवासितम् ।
कार्तिके मासि सा दद्याद्याति वैकुण्ठमन्दिरम् ॥६॥
गन्धं वा चापि नैवेद्यं दद्याद्वै शर्करादिकम् ।
राधादामोदराभ्यां सा गच्छेद्वै विष्णुमन्दिरम् ॥७॥
यत्किञ्चिद्यच्छति ब्रह्मन्कार्तिके च द्विजातये ।
राधादामोदरप्रीत्यै तस्याः पुण्योऽक्षयोभवेत् ॥८॥
या नारी कार्त्तिके भक्त्या राधादामोदरं द्विज ! ।
प्रातः सपर्यां सा याति न कुर्यान्निरयं चिरम् ॥९॥
कदाचिज्जन्मभूमौ सा विधवा प्रति जन्मनि ।
भवेच्चासाद्य पूर्वं वै चाप्रिया स्वामिनोऽपि च ॥१०॥

कार्तिक माहात्म्य, कार्तिक के अनेक प्रकार के नियम, राधादामोदरपूजा तथा कलिप्रिया सहित शङ्कर वृषल का वृत्तान्त वर्णन

शौनक महर्षि ने पूछा— हे सूत ! यह कौन सा पुण्य कर्म है जिसको करके कलियुग में संसार रूपी औंधे कूप से जीवों का उद्धार हो पायेगा ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— भगवान् राधाकृष्ण के प्रिय कार्तिक मास में प्रातःकाल स्नान करे और भक्तिपूर्वक राधा दामोदर की पूजा करें ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! पति की सेवा करने वाली नारी मांस इत्यादि का परित्याग करके दुर्लभ श्रीहरि के स्थान गोलोक में जाती है ॥३॥ जो नारी कार्तिक मास में राधा और भगवान् दामोदर को सुन्दर धूप प्रदान करती है, वह समस्त पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाती है ॥४॥ जो नारी कार्तिक मास में राधा और दामोदर को वस्त्र प्रदान करती है वह श्रीभगवान् के लोक में चिरकाल तक निवास करती है ॥५॥ जो नारी कार्तिक के महीने में भगवान् राधा-दामोदर को सुगन्धित माला समर्पित करती है वह वैकुण्ठ लोक में जाती है ॥६॥ जो राधा दामोदर को धूप एवं मिठाई का नैवेद्य निवेदित करती है । वह भगवान् विष्णु के लोक में जाती है ॥७॥ कार्तिक मास में भगवान् राधा कृष्ण की प्रसन्नता के लिए जो कुछ भी ब्राह्मण को दान दिया जाता है उसका अक्षय फल होता है ॥८॥ जो नारी प्रातःकाल भगवान् राधा दामोदर की पूजा करती है, वह यदि प्रत्येक पूर्वजन्मों में विधवा भी रही हो तथा अपने पति को अप्रिय भी

पुरा त्रेतायुगे विप्र बृषलो नाम शङ्करः। सौराष्ट्रदेशवासी च तस्य जाया कलिप्रिया ॥११॥
जारकामा सदा नाम्ना तृणवन्मन्यते पतिम्। असौ पतिर्न मे योग्यो मे स्वामी परपूरुषः ॥१२॥
इति मत्वा सदा तस्मै चोच्छिष्टं तु ददाति वै ।
नीचसङ्गान्महामूढा मद्यमांसं चखाद ह ॥१३॥
स्वामिनो भर्त्सनां नित्यं कुर्यात्कामं तु निष्ठरा ।
पापरज्जुर्भवेच्चासौ कस्माद्वै न मृतोऽपि च ॥१४॥
मृते तस्मिन्नहं भोगं करिष्यामि यदृच्छया। विचार्येति हृदा मूढा जारेणैकेन सा तदा ॥१५॥
अन्यदेशं गमिष्याव:सङ्केतमकरोद् द्विज । सुप्तस्य स्वामिनो रात्रौ चासिना तद्गलं द्विज !॥१६॥
छित्त्वा जारकृते सापि सङ्केतस्य स्थलं गता ।
आगतं जारपुरुषं द्वीपिना भक्षितं द्विज ! ॥१७॥
दृष्ट्वा सा रोदनं कृत्वा मूर्च्छिता निपपात ह ।
चिरादाश्वस्य सा मूढा करुणं विललाप ह ॥१८॥

कलिप्रियोवाच

स्वकीयं स्वामिनं हत्वा चागता परपूरुषम् ।
तं जारं स्वामिनं दैवाच्छार्दूलोऽभक्षयन्मम ॥
किं करोमि क्व गच्छामि विधात्रा वञ्चिताऽस्म्यहम् ॥१९॥

सूत उवाच

ततः कलिप्रिया ब्रह्मन्नागता स्वगृहम्प्रति। लपने स्वामिनोदत्त्वा मुखं च विललाप सा ॥२०॥

रही हो; तो भी नरक में नहीं जाती है ॥९-१०॥ पहले के त्रेतायुग में एक शङ्कर नामक वृषल था। वह सौराष्ट्र देश का निवासी था तथा उसकी पत्नी का नाम कलिप्रिया था ॥११॥ वह अपने जार (प्रेमी) को ही चाहती थी और अपने पति को बिलकुल नहीं मानती थी । वह कहती थी कि यह मेरे योग्य पति नहीं है, मेरा पति तो मेरा प्रेमी ही है ॥१२॥ इस तरह से मानकर वह अपने पति को सदा जूठा भोजन देती थी । वह नीच के साथ सदा मदिरा पीती थी और मांस खाती थी ॥१३॥ वह निष्ठुरता पूर्वक अपने पति की निन्दा किया करती थी वह कहती थी कि यह मेरा पति मेरे पति का बन्धन है, यह मर क्यों नहीं जाती हैं ?॥१४॥ इसके मर जाने पर मैं अपनी इच्छा के अनुसार भोग करूँगी । इस तरह से अपने मन में विचार करके उसने एक जार के साथ निश्चित किया कि हमलोग दूसरे देश में चले जायेंगे । हे द्विज ! जब उसका पति सोया था तो उसने कृपाण से उसके गले से काट दिया और ॥१५-१६॥ वहाँ चली गयी जहाँ कि उसके जार का सङ्केत स्थल था । जब उसका जार वहाँ आया तो उसको एक बाध ने मार दिया ॥१७॥ यह देखकर वह रोती हुयी मूर्छित होकर गिर पड़ी। दीर्घकाल के बाद होश में आकर वह करुण क्रन्दन करने लगी ॥१८॥ कलिप्रिया ने कहा कि मैं अपने पति को मारकर दूसरे पुरुष के पास आयी और उस जार पुरुष को बाघ ने मार दिया अब मैं क्या करूँ ? मुझे तो भाग्य ने ही धोखा दिया है ॥१९॥ **सूतजी ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! उसके बाद वह कलिप्रिया अपने घर आयी । वह अपने स्वामी के मुख पर अपना मुख रखकर विलाप करने लगी॥२०॥

कलिप्रियोवाच

हा ! नाथ किं कृतं कर्म मया हन्तातिदारुणम् ।
कं लोकं वा गमिष्यामि वद स्वामिन्मनाग्गिरम् ॥२१॥
भर्त्सनां तु यथाकामं कुर्य्यां चाहं सुनिन्दिता ।
किञ्चिन्न वदसि स्वामिन्नेनो यन्मे न विद्यते ॥२२॥

सूत उवाच

ननाम चरणे तस्य गतान्यनगरं प्रति। तत्र प्रविष्टा सायोषिद् दृष्ट्वा पुण्यजनान्बहून्॥२३॥
ऊर्जे स्नानपरान्प्रातर्नर्मदायां च वैष्णवान्। तत्र नद्यां स्त्रियश्चापि राधादामोदरं द्विज ॥२४॥
सपर्यां च कृतां चैव शङ्खनादैर्महोत्सवैः। गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्वस्त्रैर्नानाविधैः फलैः ॥२५॥
मुखवासैर्भक्तियुक्ता दृष्ट्वा सा विनयान्विता ।
पप्रच्छ ब्रूत यूयं मे किमेतत्क्रियते स्त्रियः ॥२६॥

स्त्रिय ऊचुः

सर्वमासोत्तमे चोर्जे राधादामोदरौ शुभौ। पूजयामो वयं मातः सर्वपापहरौ शुभौ॥२७॥
कोटिजन्मार्जितं पापं नष्टं प्राप्तं निकेतनम्। सपर्यामामिषं त्यक्त्वा कृत्वा सा च हरेर्दिने॥२८॥
निधनं वै पौर्णमास्यां गता सा निर्मला द्विज ।
किङ्कराश्चागता तूर्णं यमस्य निलयं प्रति ॥२९॥
नेतुं तां क्रोधसंयुक्ता बबन्धुश्चर्मरज्जुभिः। तदाऽऽगता विष्णुदूता विमानं स्वर्णनिर्मितम्॥३०॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। निजघ्नुश्चक्रधाराभिर्यमदूताः पलायिताः ॥३१॥
राजहंसयुते विप्र ! विमाने स्वर्णनिर्मिते। आरूढा सा गतातैस्तु वेष्टिताविष्णुमन्दिरम्॥३२॥

कलिप्रिया ने कहा— हाय नाथ ! मैंने यह भयङ्कर कर्म किया है । हे स्वामिन् ! आप बतलायें कि मैं किस लोक में जाऊँगी ॥२१॥ मैंने अपनी इच्छानुसार आपकी भर्त्सना की है । हे स्वामिन् ! आप कुछ नहीं बोल रहे हैं, मुझसे कोई पाप नहीं हुआ है ॥२२॥ **सूतजी ने कहा—** उसने अपने पति के चरणों में नमस्कार किया और दूसरे नगर में चली गयी वहाँ जाकर उसने अनेक पुण्य पुरुषों को देखा॥२३॥ वे सभी वैष्णव कार्तिक मास में प्रातःकाल नर्मदा नदी में स्नान करते थे । हे द्विज ! वहाँ पर स्त्रियों ने नदी में राधा दामोदर की पूजा की तथा शंङ्ख नाद के द्वारा महोत्सव मनाया । उन सबों ने चन्दन, पुष्प, धूप, द्वीप, वस्त्र तथा अनेक प्रकार के फलों से ॥२३-२५॥ तथा मुखवास के द्वारा पूजा करती हुयी उन सबों को देखकर उसने नम्रता पूर्वक उन स्त्रियों से पूछा कि आपलोग बतलायें कि यह क्या करती हैं ?॥२६॥ स्त्रियों ने कहा हे माँ ! हमलोग सभी महीनों में उत्तम कार्तिक के महीने में सभी पापों को हरने वाले राधा दामोदर की पूजा करती हैं ॥२७॥ उसके बाद वह घर जाकर एकादशी के दिन मांस का परित्याग करके श्रीहरि की पूजा की उसके कारण उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो गये ॥२८॥ हे द्विज ! वह निर्मल होकर पूर्णिमा के दिन मर गयी उस समय यमराज के दूत क्रोध पूर्वक उसको लेने के लिए आये ॥२९॥ उन सबों ने उसको चमड़े की रस्सी में बाँध दिया । उस समय विष्णु के दूत स्वर्ण का विमान लेकर वहाँ आये ॥३०॥ वे शंङ्ख, चक्र, गदा और वनमाला धारण

तत्र तस्थौ चिरं भोगं कृत्वा सा वै यथेप्सितम् ।
या कुर्यात्कार्त्तिके विप्र ! राधादामोदरार्चनम् ॥३३॥
याति पूजा त्यक्तपापा गोलोकाख्यं मनोहरम् ।
यह इदं शृणुयाद्भक्त्या या च नारी समाहिता ॥
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य तस्या विनश्यति ॥३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे राधादामोदरपूजामाहात्म्यकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कथयस्व मुने ! सूत ! सर्वमासोत्तमस्य च ।
कार्त्तिकस्य विधिंसम्यङ्नियमान्वक्तुमर्हसि ॥१॥

सूत उवाच

आश्विनस्यद्विजश्रेष्ठ ! पौर्णमास्यां समाहितः ।
कार्त्तिकस्य व्रतं कुर्याद्यावदुद्बोधिनी भवेत् ॥२॥
दिवा विप्र नरः कुर्यान्मलमूत्रमुदङ्मुखः। भवेन्मौनी च सर्वज्ञ रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः॥३॥

किए हुए थे । उन लोगों ने चक्र की धारा से प्रहार किया तो यमदूत भाग गये ॥३१॥ राजहंसों से युक्त सुवर्ण के विमान पर उसको बैठाकर वे अपने साथ भगवान् विष्णु के लोक में ले गये ॥३२॥ वहाँ वह दीर्घकाल तक अपने मनोनुकूल भोगों को भोगी । हे विप्र कार्तिक मास में जो राधा दामोदर की अर्चना करता है ॥३३॥ उस पूजा के कारण पाप रहित होकर वह मनोहर गोलोक में जाता है । जो कोई सावधानी पूर्वक इस प्रसङ्ग का श्रवण करती है, वह चाहे पुरुष हो या नारी उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूतशौनक संवादान्तर्गत राधादामोदर पूजन माहात्म्य वर्णन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

कार्तिक मास के व्रत का विधान और नियम

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! आप सभी मासों में उत्तम कार्तिक मास के व्रत की विधि और नियमों का वर्णन करें । **सूतजी ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! आश्विन मास की पूर्णिमा को सावधानी पूर्वक व्रत करें । फिर कार्तिक मास का व्रत उद्बोधिनी एकादशी पर्यन्त करें ॥२॥ हे विप्र ! मनुष्य दिन में उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्र का त्याग करें । मल-मूत्र त्याग करते समय मौन रहें । रात्रि में दक्षिणाभिमुख

पथ्यम्भसि च गोष्ठेषु श्मशाने वल्मिके द्विज ।
कुर्यादुत्सर्जनं नैव व्रती मूत्रपुरीषयोः ॥४॥
अत्युत्तमेषु स्थानेषु मलमूत्रं न कारयेत् । शुद्धां मृदं गृहीत्वाऽथ वामं प्रक्षालयेत्करम् ॥५॥
अद्भिर्मृदापि शुद्ध्यर्थं पूर्वं विंशतिसङ्ख्यया ।
एका लिङ्गे गुदे पञ्च तथा वामकरे दश ॥६॥
उभयोर्दश दातव्या पादयोश्च त्रिभिस्त्रिभिः । मुखशुद्धिं ततः कुर्यात्सङ्कल्पं स्नपनस्य च ॥७॥
हृदि दामोदरं ध्यात्वा इमं मन्त्रं ततो वदेत् ।
कार्त्तिकेऽहंकरिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥८॥
दामोदरस्य प्रीत्यर्थं राधया पापनाशनम् । नमः पङ्कजनाभाय कृष्णाय जलशायिने॥९॥
नमस्ते राधया सार्द्धं गृहाणार्घं प्रसीद मे । स्नानं कुर्यात्ततो विप्र तिलकं तु यथाविधि ॥१०॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु किञ्चित्कर्म करोति यः ।
निष्फलं कर्म तत्सर्वं सत्यमेतन्मयोच्यते ॥११॥
यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविना कृतम् । तद्दर्शनं न कर्तव्यं दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षयेत् ॥१२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा शुभ्रं ललाटे यस्य दृश्यते ।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ॥१३॥
अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः ।
तेषां ललाटे सततं शुनःपादो न संशयः ॥१४॥
प्रातःकालोदितं कर्म समाप्य हरिवल्लभाम् ।
पूजयेद्भक्तितो विप्र तुलसीं पापनाशिनीम् ॥१५॥

होकर मल-मूत्र त्याग करें ॥३॥ व्रती पुरुष, रास्ते में, जल में, गोशाले में, श्मशान में और वल्मीक पर मल-मूत्र का त्याग न करे ॥४॥ अत्यन्त उत्तम स्थानों पर भी मल-मूत्र न करें । शुद्ध मिट्टी लेकर बायाँ हाथ धोएँ ॥५॥ इसके बाद शुद्धि के लिए वह जल और मिट्टी से बीस बार हाथ धोए। एक बार लिङ्ग में मिट्टी लगायें । मलद्वार पर पाँच बार मिट्टी लगायें उसके बाद दश बार बायें हाथ में मिट्टी लगायें ॥६॥ उसके बाद दोनों हाथों में दश बार मिट्टी लगायें दोनों पैरों में तीन-तीन बार मिट्टी लगायें। उसके बाद मुँह धोएँ और स्नान का सङ्कल्प करे ॥७॥ हृदय में दामोदर का ध्यान करके उसके बाद इस मंत्र को पढ़े— हे जनार्दन ! मैं कार्तिक में प्रातःस्नान करूँगा ॥८॥ यह व्रत मैं पाप नाशक राधा और दामोदर की प्रसन्नता के लिए करूँगा । पकजनाम जलशायी भगवान् को नमस्कार है ॥८-९॥ हे भगवन्! आपको राधा के साथ नमस्कार है आप इस अर्घ को स्वीकार करें और प्रसन्न हों । इसके बाद स्नान करके विधिपूर्वक तिलक लगायें ॥१०॥ उर्ध्वपुण्ड्र लगाये विना व्रती जो कोई भी कर्म करता है, उसका सबकुछ किया हुआ व्यर्थ हो जाता है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥११॥ उर्ध्वपुण्ड्र से रहित मनुष्य के शरीर को वह न देखे, यदि देख ले तो सूर्य का दर्शन करे ॥१२॥ श्वेतमृत्तिका से निर्मित उर्ध्वपुण्ड्र जिसके ललाट पर दिखता है वह चाण्डाल भी शुद्ध शरीर वाला होता है और वह पूजनीय है ॥१३॥ जो नराधम छिद्र रहित उर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं उनका ललाट सदा कुत्ते के पैर के समान अशुद्ध

पौराणीं तु कथां श्रुत्वा श्रीहरे:स्थिरमानसः ।
ततो विप्रं व्रती भक्त्यापूजयेत्तं यथाविधि ॥१६॥
परासनं परान्नंच परशय्यां पराङ्गनाम्। सर्वदा वर्जयेद्विप्र कार्त्तिके च विशेषतः ॥१७॥
सौवीरकं तथा माषानामिषं च तथा मधु। राजमाषादिकं नित्यं वर्जयेत्कार्त्तिकेव्रती ॥१८॥
जम्बीरमामिषं चूर्णमन्नं पर्युषितं द्विज !। धान्ये मसूरिका प्रोक्ता गवां दुग्धमनामिषम् ॥१९॥
लवणं भूमिजं विप्र ! प्राण्यङ्गमामिषं खलु ।
द्विजक्रीता रसा:सर्वे जलं चाल्पसर:स्थितम् ॥२०॥
ब्रह्मचर्यं तुर्यकाले पत्रावल्यां च भोजनम्। कुर्याद्वै द्विजाशार्दूल तैलाभ्यङ्गं च वर्जयेत् ॥२१॥
छत्राकं नालिकं हिङ्गु पलाण्डुं पूतिकादलम् ।
लशुनं मूलकं शिग्रुं तथैव तुम्बिकाफलम् ॥२२॥
कपित्थं चैव वृन्ताकं कृष्माण्डं कांस्यभोजनम् ।
द्विष्पाचितं सूतिकान्नं मत्स्यं शय्यां रजस्वलाम् ॥२३॥
द्विस्त्रिश्चान्नं स्त्रियः सङ्गं वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ।
धात्रीफलं गृही विप्र रवौ तत्सर्वदा त्यजेत् ॥२४॥
कृष्माण्डे धनहानिः स्याद् बृहत्यां न स्मरेद्धरिम् ।
पटोले तु न वृद्धि:स्याद् बलहानिश्च मूलके ॥२५॥
कलङ्की जायते बिल्वे तिर्यग्योनिश्च निम्बुके ।
ताले शरीरनाशः स्यान्नारिकेले च मूर्खता ॥२६॥
तुम्बी गोमांसतुल्या स्याद् गोवधं स्यात्कलिन्दके ।
शिम्बी पापकरा प्रोक्ता पूतिका ब्रह्मघातिका ॥२७॥

होता है ॥१४॥ व्रती को चाहिए कि प्रात:काल के कृत्य को पूरा करके श्रीहरि की प्रियतमा तुलसी की पूजा भक्ति पूर्वक करे। तुलसी पापों का विनाश करने वाली हैं ॥१५॥ उसके वाद स्थिर मन से श्रीहरि की पुराण की कथा सुनकर उस कथा वाचक ब्राह्मण की विधि पूर्वक पूजा करे ॥१६॥ हे विप्र ! कार्तिक के महीने में दूसरे के आसन, दूसरे के अन्न, दूसरे की शय्या तथा दूसरे की नारी का विशेष रूप से त्याग करना चाहिए ॥१७॥ व्रती को चाहिए कि वह कार्तिक के महीने में सौवीरक, उड़द, मांस और काली उड़द का सदैव त्याग करे ॥१८॥ जम्वीर, मांस, चूना, वासी अन्न, मसूर तथ गो दुग्ध एवं मांस॥१९॥ पृथिवी से उत्पन्न नमक, प्राणियों के अङ्ग से वने मांस, ब्राह्मण के द्वारा खरीदे गये सभी प्रकार के रस तथा बावली का जल इन सबों का त्याग करे ॥२०॥ वह ब्रह्मचर्य का पालन करे, चौथे प्रहर में भोजन करे और शरीर में तेल न लगाये ॥२१॥ कुकुरमुत्ता की साग, कमल की जड, प्याज, पोई का पत्ता, लशून मूली, शिग्रू तथा लौकी ॥२२॥ कैंथ, बैगन, कुम्हड़ा, कांस की थाली में भोजन, दोवार पकाया हुआ वासी अन्न, मछली, विस्तर तथा रजस्वला नारी ॥२३॥ दो तीन बार अन्न खाना, और स्त्री सङ्गम; कार्तिक के व्रती को त्याग देना चाहिए । हे विप्र ! गृहस्थ को रविवार के दिन आँवले के फल को बिल्कुल त्याग देना चाहिए ॥२४॥ कुष्माण्ड खाने से वल की हानि होती है, वृहती खाकर श्रीहरि का स्मरण न करे, परवल खाने से वृद्धि नहीं होती है और मूली खाने से वल की हानि होती है । कार्तिक में बिल्व खाने वाले को कलङ्क लगता है, निम्बू खाने वाले को पशु-पक्षी की योनि मिलती है, ताड़ का फल खाने वाले के शरीर का नाश होता है और नारियल खाने से मूर्खता होती है । कार्तिक में तुम्वी (गोल लौकी) गोमांस के सदृश होती है और छत्राक (कुकुरमुत्ता) गोवध के समान होता है । शिम्वी

वार्ताक्यां सुतनाशः स्याच्चिररोगी च माषके ।
मांसेच बहुपापं स्यात्त्यजेत्प्रातिपदादिषु ॥२८॥
यत्किञ्चिद्वर्जयेद्योऽन्नं श्रीहरेः प्रीयते द्विज । तत्पुनर्भूसुरे दत्त्वा व्रतान्ते तस्य भोजनम् ॥२९॥
कार्त्तिकव्रतिनं विप्र यथोक्तकारिणं नरम् । यमदूताः पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥३०॥
श्रेष्ठं विष्णुव्रतं विप्र तत्तुल्या न शतं मखाः ।
कृत्वा क्रतुं व्रजेत्स्वर्गं वैकुण्ठं कार्त्तिकव्रती ॥३१॥
यत्किञ्चिद् दुष्कृतं विप्र मनोवाक्कायकर्मजम् ।
दृष्ट्वा तु विलयं याति कार्त्तिकव्रतिनं क्षणात् ॥३२॥
कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं ब्रह्मा चैव चतुर्मुखः । न समर्थोभवेद्वक्तुं यथोक्तव्रतकारिणः ॥३३॥
यत्कृत्वा कलुषं सर्वं व्रजेद्विप्र दिशो दश ।
क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि कार्त्तिकव्रतिनो भयात् ॥३४॥
पौर्णमास्यां यथाशक्ति चान्नवस्त्रादिकं द्विज ।
दद्याद्वै श्रीहरेः प्रीत्यै ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥३५॥
रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतादिभिर्व्रती । य इदं शृणुयाद्भक्त्या तस्य पापं प्रणश्यति ॥३६॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे कार्तिकव्रतविधान कथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

पाप बढ़ाने वाली होती है और पोई ब्रह्म हत्या के समान होती है । वार्ताकी खाने से पुत्र का नाश होता है, कार्तिक में उड़द खाने वाला दीर्घ काल तक रोगी बना रहता है । मांस खाने वाले को बहुत पाप लगता है, अतएव उसका प्रतिपदा आदि तिथियों में त्याग कर देना चाहिए ॥२५-२८॥ भगवान् की प्रसन्नता के लिए जो जिस अन्न का परित्याग करता है वह व्रत की समाप्ति होने पर उस अन्न का ब्राह्मण को दान करके फिर खाना प्रारम्भ करना चाहिए ॥२९॥ उपुर्यक्त प्रकार से कार्तिक का व्रत करने वाले को देखकर यमदूत उसी तरह से उससे दूर भागते हैं जिस तरह सिंह को देखकर हाथी भाग चलते हैं ॥३०॥ हे विप्र ! भगवान् विष्णु का व्रत श्रेष्ठ है, उसके समान सैकड़ों यज्ञ नहीं हो सकते हैं । यज्ञ करने वाला स्वर्ग में जाता है और कार्तिक व्रत करने वाला मुक्ति पाता है ॥३१॥ कार्तिक व्रत करने वाले को देखकर जो कायिक, वाचिक और मानसिक पाप होते हैं वे क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं ॥३२॥ उपर्युक्त प्रकार से कार्तिक व्रत करने वाले को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन ब्रह्माजी भी करने में समर्थ नहीं है ॥३३॥ उस कार्तिक व्रत करने वाले के भय से दशों दिशाओं में भागते हुए समस्त पाप सोच नहीं पाते है कि मैं कहाँ जाकर रुकूँ ?॥३४॥ पूर्णिमा के दिन श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए अन्न तथा वस्त्र ब्राह्मण को दान देना चाहिए और ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए॥३५॥ व्रती को उस दिन नृत्य, गीत आदि के द्वारा रात्रि में जागरण करना चाहिए । जो इस प्रसङ्ग को भक्ति पूर्वक सुनता है उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥३६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूत शौनक संवादान्तर्गत कार्तिक व्रत विधान कथन नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

बाइसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

माहात्म्यं ब्रूहि सर्वज्ञ शृण्वतां पापनाशनम् ।
सर्वप्राणिहितार्थाय तुलस्या अनुकम्पया ॥१॥

सूत उवाच

तुलस्याःपरिसरे यस्य काननं तिष्ठति द्विज ।
गृहस्य तीर्थरूपत्वान्नायान्ति यमकिङ्कराः ॥२॥

तुलस्याः काननं विप्र सर्वपापहरं शुभम् । रोपयन्ति नराःश्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥३॥
रोपणं पालनं सेवां दर्शनं स्पर्शनं तु यः । कुर्यात्तस्य प्रनष्टं स्यात्सर्वपापं द्विजोत्तम !॥४॥
कोमलैस्तुलसीपत्रैरर्चयन्ति हरिं तु ये । कालस्य सदनं विप्र ! ते न यान्ति महाशयाः॥५॥
गङ्गाद्याःसरितःश्रेष्ठा विष्णुब्रह्ममहेश्वराः । देवैस्तीर्थैःपुष्कराद्यैस्तिष्ठन्ति तुलसीदले ॥६॥
यो युक्तस्तुलसीपत्रैः पापी प्राणान्विमुञ्चति । विष्णोर्निकेतनं याति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥७॥
तुलसी मृत्तिकालिप्तो युक्तःपापशतैरपि । विमुञ्चति नरःप्राणान्स याति हरिमन्दिरम् ॥८॥
यो नरो धारयेद्विप्र तुलसिकाष्ठ चन्दनम् । तस्याङ्गं न स्पृशेत्पापं स याति परमं पदम् ॥९॥

तुलसीकाष्ठमालां तु कण्ठस्थां वहते तु यः ।
अप्यशौचोऽप्यनाचारो भक्त्या याति हरेर्गृहम् ॥१०॥

धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसम्भवा । दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतोःनरः ॥११॥

तुलसी और आँवला का माहात्म्य वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे सर्वज्ञ सूतजी ! सुनने वालों के पाप को विनष्ट करने वाले सभी प्राणियों का कल्याण करने के लिए आप तुलसी के माहात्म्य को बतलायें । **सूतजी ने कहा—** जिसके गृह के परिसर में तुलसी का वन रहता है उसका घर तीर्थ रूप हो जाता है, वहाँ यमदूत नहीं आते हैं ॥२॥ हे विप्र ! तुलसी का वन सभी पापों को विनष्ट करने वाला है, जो श्रेष्ठ मनुष्य तुलसी को रोपते हैं वे यमराज का दर्शन नहीं करते हैं ॥३॥ जो मनुष्य तुलसी को रोपता है, पालता है, उसकी सेवा करता है उसका दर्शन और स्पर्श करता है उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥४॥ हे विप्र ! जो महापुरुष कोमल तुलसी के पत्तों से श्रीहरि की अर्चना करते हैं, वे यमलोक में नहीं जाते हैं ॥५॥ तुलसी दल में गङ्गा आदि श्रेष्ठ नदियों तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवताओं तथा पुष्कर आदि तीर्थों के साथ निवास होता हैं ॥६॥ मैं यह सत्य कहता हूँ कि तुलसी दल को साथ लेकर जो पापी भी जीव अपने प्राणों का परित्याग करता है वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥७॥ सैकड़ों प्रकार के पापों को करने वाला जो मनुष्य अपने शरीर में तुलसी की जड़ की मिट्टी को पोतकर अपने प्राणों का परित्याग करता है, वह श्रीहरि के लोक में जाता है ॥८॥ जो मनुष्य तुलसी के काष्ठ का चन्दन धारण करता है, उसके शरीर का स्पर्श पाप नहीं करता है वह परम पद को प्राप्त करता है ॥९॥ जो मनुष्य अपने गले में तुलसी के काष्ठ की माला को भक्ति पूर्वक धारण करता है, वह अपवित्र और

तुलसीदलजां मालां कण्ठस्थां बहते तु यः ।
विष्णूच्छिष्टां विशेषेण स नमस्यो दिवौकसाम् ॥१२॥
यः पुनस्तुलसीमालां कण्ठे कृत्वा जनार्दनम् ।
पूजयेत्पुण्यमाप्नोति प्रतिपुष्पं गवायुतम् ॥१३॥
धारयन्ति न ये मालां हैतुकाःपापबुद्धयः । नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाःकोपाग्निना हरेः ॥१४॥
नजह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः । महापातकसंहर्त्रीं धर्मकामार्थदायिनीम् ॥१५॥
स्पृशेद्यावन्ति लोमानि धात्रीमाला कलौ नृणाम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि वसते केशवालये ॥१६॥
निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥१७॥
तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः । दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्धूतं यथादलम् ॥१८॥
तुलस्या विपिने धात्र्याश्छायासु यो नरोत्तमः ।
पिण्डं ददाति पितरो मुक्तिं यान्ति द्विजोत्तम ! ॥१९॥
पाणौ मूर्ध्नि गले चैव कर्णयोश्च मुखे द्विज ! ।
धात्रीफलं यस्तु धत्ते स विज्ञेयो हरिः स्वयम् ॥२०॥
धात्रीपत्रैःफलैर्विप्र श्रीहरिंचार्चयेद् द्विज। कोटिजन्मार्जितं पापं पूजया नश्यति क्षणात् ॥२१॥
यज्ञा देवाश्च मुनयस्तीर्थानि कार्त्तिके द्विज। धात्रीवृक्षं समाश्रित्य तिष्ठन्ति कार्त्तिके सदा ॥२२॥

अत्याचारी मनुष्य भी श्रीहरि के लोक में जाता है ॥१०॥ जो अपने कण्ठ में भगवान् विष्णु पर चढ़ायी गयी तुलसी दल की माला को धारण करता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं ॥१२॥ जो अपने गले में तुलसी की माला धारण करके भगवान् विष्णु की पूजा करता है, वह तुलसी के प्रत्येक पुष्प के द्वारा दश हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है ॥१३॥ जो पापी तथा कुतार्किक भी तुलसी की माला को नहीं धारण करते हैं, वे श्रीहरि की कोपाग्नि से दग्ध होने के कारण नरक में ही सदा पड़े रहते हैं ॥१४॥ मनुष्य को तुलसी की माला और विशेष रूप से आँवला की माला को कभी त्याग नहीं चाहिए । आँवला की माला महापातकों को विनष्ट करने वाली, धर्म, अर्थ और काम को प्रदान करने वाली होती है ॥१५॥ कलियुग में आँवला की माला का जितने रोमों में स्पर्श होता है, वह मनुष्य उतने हजार वर्ष तक विष्णु लोक में निवास करता है ॥१६॥ तुलसी के काष्ठ से बनी हुयी माला को भगवान् विष्णु को चढ़ाकर जो मनुष्य धारण करता है, उसको कोई पाप नहीं लगता है ॥१७॥ तुलसी के काष्ठ की माला को देखकर यमराज के दूत उसी तरह से दूर भाग जाते हैं जैसे वायु से पत्ते उड़कर दूर चले जाते हैं ॥१८॥ जो मनुष्य तुलसी के वन में तथा आँवला की छाया में पिण्डदान करता है उस मनुष्य के पितृगण मुक्त हो जाते हैं ॥१९॥ जो मनुष्य हाथ में, ललाट पर, गले में कानों में तथा मुख में आँवला के फल को धारण करते हैं, उनको विष्णु स्वरूप जानना चाहिए ॥२०॥ हे विप्र ! जो आँवले के फलों और पत्तों से श्रीहरि की पूजा करता है, उसके करोड़ों जन्मों में अर्जित पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं ॥२१॥ हे द्विज ! कार्तिक के महीनें में, यज्ञ, देवता, मुनिजन, तीर्थ ये सबके सब

धात्रीपत्रं कार्त्तिके च द्वादश्यां तुलसी दलम् ।
चिनोति यो नरो गच्छेन्निरयं यातनामयम् ॥२३॥
धात्रीच्छायासु यो विप्र चान्नं भुनक्ति कार्त्तिके ।
अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य नश्यति ॥२४॥
तुलसीवनमध्ये च धात्रीमूले च कार्त्तिके । कुर्याद्धर्यर्चनं विप्र वैकुण्ठं याति स ध्रुवम्॥२५॥
तुलसीमूलदेशेऽपि स्थितं वारि द्विजोत्तम । गृह्णाति मस्तके भक्त्या पापी याति हरेर्गृहम्॥२६॥
तुलसीपत्रगलितं यस्तोयं शिरसा वहेत् । सर्वतीर्थेषु स स्नातश्चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥२७॥
पुरा कश्चिद् द्विजश्रेष्ठो द्वापरेऽभून्महामुने । स्नात्वैकदा तुलस्यै स वनं दत्त्वा गृहं गतः ॥२८॥
आदित्यो वर्चसा नाम्ना मार्त्तण्ड इव पुण्यतः ।
तृषार्तो भक्षकःकश्चिदागतो बहुकल्मषः ॥२९॥
तुलस्या मूलतस्तोयं पीत्वाऽसौ हतकल्मषः ।
त्वरयाप्यागतो व्याधो नाम्ना यश्चासिमर्दनः ॥३०॥
उवाच भुक्तं चान्नं च भुक्त्वा भग्नं गतः किमु ।
कृत्वा मे पाकभाण्डस्थं चागतो हिंसकस्य ते ॥३१॥
विव्याध तं गतप्राणं नेतुं वै शमनाज्ञया। आगताः किङ्कराः क्रुद्धाः पाशमुद्गरपाणयः ॥३२॥
बद्ध्वानेतुं मनश्चक्रुरागता विष्णुकिङ्कराः। यदा छित्त्वा चर्मपाशं स्यन्दने तं मनोहरे॥३३॥
तूर्णमारोहयामासुः पप्रच्छुर्विनयान्विताः। तेऽपि पुण्येन भोःसन्तःकेन वै नीयतेऽप्यसौ॥३४॥

कार्तिक भर आँवले के जड़ में सदैव निवास करते हैं ॥२२॥ कार्तिक के द्वादशी तिथि को जो मनुष्य आँवले के पत्ते को तथा तुलसी के पत्ते को तोड़ता है, वह यातनामय नरकों में जाता है ॥२३॥ जो ब्राह्मण कार्तिक के महिने में आँवले की छाया में अन्न का भोजन करते हैं, उनको, अन्न से उत्पन्न होने वाले दोष वर्ष भर नहीं लगते हैं ॥२४॥ कार्तिक के महीने में तुलसी वन में तथा आँवले की जड़ में श्रीहरि की अर्चना करने वाले वैकुण्ठ लोक में अवश्य जाते हैं ॥२५॥ हे द्विज ! तुलसी के जड़ में विद्यमान् जल को यदि कोई पापी भी अपने शिर पर धारण करता है तो वह विष्णुलोक में जाता है ॥२६॥ तुलसी के पत्ते पर से गिरे हुए जल को जो अपने शिर पर धारण करता है, उसको सभी तीर्थो में स्नान करने का फल प्राप्त होता है और अन्त में वह श्रीहरि के लोक में जाता है ॥२७॥ प्राचीन काल में हे महामुने ! कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण स्नान करके तथा तुलसी में जल देकर घर गये ॥२८॥ सूर्य के समान कान्तिमान और सूर्य के समान पुण्य के कारण कोई प्यासा हुआ पापी भक्षक वहाँ आया॥२९॥ तुलसी के जड़ में विद्यमान जल को पीने से उसके सारे पाप विनष्ट हो गये थे इस प्रकार का कोई व्याघ वहाँ शीघ्र ही आया उसका नाम असिमर्दन था ॥३०॥ उसने कहा कि खाये हुए तथा पात्र में अवशिष्ट अन्न को खाकर तथा पात्र को फोड़कर वह कहाँ गया है । यह कहकर उसने उसको बाणों से बेध दिया । उसके बाद उसको लेने के लिए यम की आज्ञा से यमदूत हाथ में पाश और मुद्गर लेकर आये ॥३१-३२॥ उसको बाँधकर जब वे ले जाने का मन बनाये तो वहाँ भगवान् विष्णु के दूत आ गये । जब वे पाश को काटकर उसको सुन्दर रथ पर बैठा लिए तो यमदूतों ने विष्णुदूतों से पूछा

ऊचुस्तेऽसौ पुरा राजा पुण्यं बहुतरं कृतम् ।
अहरत्सुन्दरीं काञ्चिच्चाङ्गनामेव वै तदा ॥३५॥
अनेन चांहसा राजा गतो वै शमनक्षयम्। तत्र क्लेशं तु युष्माभिर्दत्तं वै शमनाज्ञया ॥३६॥
ताम्रमय्या स्त्रिया सुप्त्वा सार्द्धं क्रीडां चकार सः ।
तप्तायां लोहशय्यायां वैक्लव्यं कर्मणा नृप ॥३७॥
तप्तायोभीषणं तप्तं लोहस्तम्भं यमाज्ञया ।
ततःस्थितः समालिङ्ग्य भुक्त्वा दुःखं चिरं नृपः ॥३८॥
सिक्तःक्षाराम्बुधाराभिरन्यैर्वै शमनालये। ततो नरकशेषे च पापयोनौ मुहुर्मुहुः ॥३९॥
जन्मासाद्यचिरं दुःखमनुभूतं स्वकर्मणा। तुलसीमूलजं वारि पीत्वा याति हरेर्गृहम्॥४०॥
इदानीं तद्वचःश्रुत्वा गता दूता यथागता। तेन सार्द्धं विष्णुदूता गता वैकुण्ठमन्दिरम् ॥४१॥
माहात्म्यं कथितं ब्रह्मंस्तुलस्याः पापनाशनम् ।
कुर्वन्ति सेवां ये भक्त्या न जाने किं भवेन्मुने ॥४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे तुलस्या माहात्म्यं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

आपलोग इसको किस पुण्य के कारण ले जा रहे हैं ?॥३३-३४॥ विष्णुदूतों ने कहा कि यह पहले राजा था, इसने बहुत अधिक पुण्य किया था; किन्तु इसने किसी सुन्दरी नारी का अपहरण कर लिया॥३५॥ इस पाप के कारण यह यमलोक में चला गया वहाँ पर तुमलोगों ने यम की आज्ञा से इसको बहुत दुःख दिया । यह ताम्बे की स्त्री के साथ सोकर उसके साथ रति क्रीड़ा किया फिर यह लोहे की स्त्री के साथ कष्ट भोगा । उस लोहे की जलती हुयी स्त्री का अलिङ्गन करके इसने बहुत समय तक कष्ट भोगा ॥३६-३८॥ उसके बाद इसको यमलोक में नमक के पानी की धारा में नहलाया गया । उसके बाद इसको बार-बार दूसरे नरकों में जाना पड़ा ॥३९॥ फिर मनुष्य का जन्म प्राप्त करके इसने बहुत अधिक कष्ट भोगा । अब यह तुलसी की जड़ में विद्यमान पानी को पीकर विष्णुलोक जा रहा है ॥४०॥ विष्णुदूतों की वाणी को सुनकर यमदूत जैसे आये थे वैसे लौट गये और उस व्याध के साथ विष्णुदूत भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥४१॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने आपको तुलसी का माहात्म्य सुनाया यह पापों का नाश करने वाला है । जो लोग तुलसी की सेवा करते हैं उनको न जाने कौन सा पुण्य होता है इसको नहीं कहा जा सकता है॥४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूतशौनकसंवादान्तर्गत तुलसी का माहात्म्य वर्णन नामक बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

तेइसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

कथयस्व मुने सूत माहात्म्यं कलुषक्षयम् । शेष पञ्च दिनस्यापि कार्त्तिकस्यानुकम्पया ॥१॥

सूत उवाच

शृणु शौनक यत्पृष्टं माहात्म्यं पापनाशनम् ।
वक्ष्याम्यहं वै चोर्जस्य शेषपञ्चदिनस्य च ॥२॥

व्रतानां मुनिशार्दूल प्रवरं विष्णुपञ्चकम् । तस्मिन्यः पूजयेद्भक्त्या श्रीहरिं राधया सह ॥३॥
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्वस्त्रैर्नानाविधैःफलैः । स याति विष्णुसदनं सर्वपापविवर्जितः ॥४॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ।
न प्राप्नोति परं स्थानमकृत्वा विष्णुपञ्चकम् ॥५॥

सर्वपापहरं पुण्यं विख्यातं विष्णुपञ्चकम् । तत्र स्नानं तु यःकुर्यात्सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥६॥
श्रीहरेःपुरतो विप्र तुलस्याश्च समीपतः । प्रदीपं सर्पिषा पूर्णं दद्याद् यो भक्तिभावतः ॥७॥

नभसि श्रीहरेः प्रीत्यै यात्यसौ विष्णुमन्दिरम् ।
पापी याति हरेर्धाम सत्यमेतन्मयोदितम् ॥८॥

स्नापयेच्चाच्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतादिभिः । दद्यात्किं नो हरिः प्रीतस्तस्मै साधुजनाय वै ॥९॥
नैवेद्यं देवदेवेशं परमान्नं निवेदयेत् । तस्य पुण्यं प्रसङ्ख्यातुं न शक्तो वै चतुर्मुखः ॥१०॥
अर्चयित्वा हृषीकेशमेकादश्यां समाहितः । निष्प्राश्य गोमयं सम्यगुपास्ते मन्त्रवच्च यः ॥११॥

विष्णुपञ्चक का माहात्म्य

शौनक महर्षि ने कहा— हे सूतजी ! कार्तिक मास के बचे हुए पाँच दिनों के माहात्म्य को आप कृपा करके सुनाइये ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— हे शौनक ! कार्तिक मास के अन्तिम पाञ्च दिनों के माहात्म्य का मैं वर्णन करता हूँ उसे आप सुनें ॥२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह विष्णुपञ्चक सभी व्रतों में श्रेष्ठ है । इसमें जो राधाजी के साथ भगवान् दामोदर की पूजा ॥३॥ गन्ध पुष्प, धूप, द्वीप, वस्त्र तथा अनेक प्रकार के फलों से करता है । वह समस्त पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥४॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी इनमें से कोई भी विष्णु पञ्चक का व्रत किए बिना मुक्ति को नहीं प्राप्त करता है ॥५॥ विष्णुपञ्चक सर्वपाप विनाशक रूप से विख्यात है । उसमें प्रातःकाल में स्नान करने वाला सभी तोर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त करता है ॥६॥ हे विप्र ! श्रीहरि के समक्ष तथा तुलसी के सन्निकट जो घी से भरकर भक्ति भाव से आकाश दीप श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए प्रदान करता है, वह विष्णुलोक में जाता है । वह यदि पापी है तो भी श्रीहरि के धाम में जाता है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥७-८॥ जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक कार्तिक मास में पञ्चामृत से श्रीहरि को स्नान कराता है, उस सज्जन पर प्रसन्न होकर श्रीहरि क्या नहीं प्रदान करते हैं ॥९॥ जो श्रीभगवान् को परमान्न (खीर) का भोग लगाता है, उसको प्राप्त होने वाले पुण्यों की गणना ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते हैं ॥१०॥ एकादशी तिथि को शान्त मन से अर्चना करके गोबर चाटकर श्रीभगवान् के मन्त्र से उपासना करे ॥११॥

गोमूत्रं मन्त्रवद् भूयो द्वादश्यां प्राशयेद् व्रती ।
क्षीरं तथा त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ॥१२॥
सम्प्राप्य पापशुद्ध्यर्थं लङ्घयित्वा चतुर्दिनम् ।
पञ्चमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥१३॥
भोजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।
ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यं सुमन्त्रितम् ॥१४॥
एवं कर्तुमशक्तो यः फलमूलस्य भोजनम् ।
कुर्याद्धविष्यं वा विप्र यथोक्तविधिना ह वै ॥१५॥
श्रीहरेः पञ्चकं विप्र कुर्याद्यस्तुलसीदलैः। पूजयेत्तं स विज्ञेयः स्वयं नारायणः प्रभुः ॥१६॥
पुरा त्रेतायुगे शूद्रो दस्युवृत्तिपरायणः । नाम्ना दण्डकरो नित्यं धर्मनिन्दां करोति यः॥१७॥
असत्यभाषी मित्रघ्नो वेश्या विभ्रमलोलुपः ।
ब्रह्मस्वहारी क्रूरश्च परस्त्रीगमने रतः ॥१८॥
शरणागतहन्ता च पाखण्डजनसङ्गभाक् । गोमांसाशी सुरापश्च परनिन्दाकरः सदा॥१९॥
विश्वासघाती ज्ञातीनां वृत्तिच्छेदी द्विजोत्तम!। दुष्टं सर्वे समालोक्य तादृशं तद्गृहेद्विज !॥
आगता ज्ञातयः क्रुद्धास्तं च पापपरायणम् ॥२०॥

ज्ञातय ऊचुः

रे रे मूढ दुराचार विनाशं प्रति नीयते। या प्रतिष्ठाऽर्जिता पूर्वैरस्माकं निर्मलेऽन्वये॥२१॥
इति क्रुद्धा द्विजश्रेष्ठ ! अपकीर्तिभयादपि। पापिनां प्रवरं सर्वे तत्यजुस्तं कुलादरम्॥२२॥
ततो गतो महारण्यं विनष्टाखिलवैभवः । कुर्यात्स दस्युभिः सार्द्धं दस्युकर्म निरन्तरम् ॥२३॥
पथि प्रगच्छतां तेषां भयाद्विप्र न खादितुम् ।
प्राप्तं किञ्चित्क्षुधार्त्तास्ते गताश्चान्यस्थलं प्रति ॥२४॥

और द्वादशी के दिन व्रती पुरुष गोमूत्र से आचमन करे, त्रयोदशी के दिन दुग्ध, चतुर्दशी के दिन दही, इस तरह से चार दिनों तक शुद्धि के लिए प्राशन करके उपवास करे, फिर पाँचवे दिन स्नान करके विधि पूर्वक श्रीहरि की अर्चना करे ॥११-१३॥ फिर ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन सबों को दक्षिणा प्रदान करे । उसके बाद सायंकाल नक्त की वेला में अभिमन्त्रित पञ्चगव्य का पान करे ॥१४॥ इस तरह से व्रत करने में जो असमर्थ हो वह फल मूल का भोजन करे, अथवा विधिपूर्वक हविष्य का भोजन करे॥१५॥ हे विप्र ! जो तुलसी दल के द्वारा विष्णु पञ्चक का व्रत करता है और श्रीहरि की पूजा करता है, उसको साक्षात् नारायण समझना चाहिए ॥१६॥ पहले के त्रेतायुग में दण्डक नामक एक शूद्र था वह लूट-पाट का काम करता था और सदैव धर्म की निन्दा करता था ॥१७॥ वह असत्यभाषी, मित्रों को मारने वाल, वेश्या का प्रेमी, ब्राह्मणों की सम्पत्ति को चुराने वाला, क्रूर, परस्त्रीगामी, शरण में आये हुए जीवों को मारने वाला, पाखण्डियों के साथ रहने वाला, गोमांस खाने वाला, मदिरापायी, सदैव दूसरों की निन्दा करने वाला, विश्वासघाती और अपने बान्धवों की वृत्ति को विनष्ट करने वाला था । हे द्विज! इस तरह के उस दुष्ट को देखकर उसके सभी बान्धव उसके घर आये । वे सब उस पापी पर क्रुद्ध थे ॥१८-२०॥ **बान्धवों ने कहा—** अरे दुष्ट ! हमलोगों के निर्दोष वंश में पूर्वजों ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी उस प्रतिष्ठा को तुम विनष्ट कर रहे हो ॥२१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस तरह से कहकर उन सबों ने अयश के भय से उस पापी को अपने वंश से बहिष्कृत कर दिया ॥२२॥ उसके बाद सम्पूर्ण वैभव के विनष्ट हो जाने के कारण वह वन में चला गया और दस्युओं के साथ सदैव दस्युकर्म (लूटपाट) करने लगा॥२३॥

तत्र प्रविष्टास्ते सर्वे दृष्ट्वा पुण्यजनान्बहून्। धात्रीमूले स्थितान्ब्रह्मन्वैष्णवान्द्विजसत्तमान् ॥२५॥

सर्वे ते दस्यवो विप्र गता दण्डकरोऽपि सः ।
तेषां परिसरं गत्वा प्रणामं वै चकार ह ॥२६॥

दण्डकर उवाच

क्षुधार्तोऽहं द्विजश्रेष्ठाः ! प्राणा यास्यन्ति मे ध्रुवम् ।
मेदध्वं खादितुं किञ्चिद्युष्मांस्तु शरणं गतः ॥२७॥
आकर्ण्य वचनं तस्य चोचुस्ते धर्मतत्पराः ।
सर्वपापहरे त्वं च विख्याते विष्णुपञ्चके ॥२८॥
कथमन्नं खादितुं ते वाञ्छात्वद्य हरेर्दिने। विशेषं ते ब्रूहि संज्ञा का ते भवति साम्प्रतम्॥२९॥
स उवाच मुदा विप्रान्नाम्ना दण्डकरोऽप्यहम् ।
सर्वपापसमायुक्तश्चोद्धारो मे कथं भवेत् ॥३०॥
ऊचुस्ते वै व्रतं श्रेष्ठं कुरुष्व विष्णुपञ्चकम् ।
विप्राणामाज्ञया विप्र चकार विष्णुपञ्चकम् ॥३१॥
से प्रेत्य च हरेः स्थानमारुह्य स्यन्दनेवरे। आसाद्य श्रीहरेरूपं तस्थौ जन्मविवर्जितः ॥३२॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या चाख्यानं पापनाशनम् ।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति तत्क्षणात् ॥३३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थेब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे विष्णुपञ्चकमाहात्म्यं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

उन सबों के भय से यात्रीगण खाने के लिए भी नहीं पाने के कारण दूसरे स्थान पर चले गये ॥२४॥ वे भी उस स्थान पर चले गये जहाँ पर आँवले के नीचे श्रेष्ठ धार्मिक वैष्णव थे । उन पुरुषों को देखकर वहीं चले गये ॥२५॥ हे विप्र ! वे सभी दस्यु तथा दण्डकर भी उन श्रीवैष्णव के सन्निकट चला गया॥२६॥ **दण्डकर ने कहा—** ब्राह्मणवर्यों मैं भूखा हूँ, हमारे प्राण निकल जायेंगे । हमलोगों को खाने के लिए कुछ दे दीजिये । मैं आपलोगों के शरण में हूँ ॥२७॥ उसकी वाणी को सुनकर उन वैष्णवों ने कहा यह सर्वपाप विनाशक विष्णु पञ्चक का दिन है, आज तुम्हारी भोजन में प्रवृत्ति कैसे हो रही है ? तुम विशेष रूप से बतलाओ कि तुम्हारा नाम क्या है ?॥२८-२९॥ उसने प्रसन्नता पूर्वक कहा— मेरा नाम दण्डकर है । मैंने सभी प्रकार के पापों को किया है, मेरा उद्धार कैसे होगा ?॥३०॥ उन ब्राह्मणों ने कहा कि तुम विष्णुपञ्चक का व्रत करो । उन ब्राह्मणों की आज्ञा से उसने विष्णुपञ्चक व्रत किया । मृत्यु के पश्चात् वह श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ होकर श्रीभगवान् का रूप धारण करके जन्म और मृत्यु से रहित श्रीहरि के लोक में चला गया ॥३१-३२॥ जो भक्ति पूर्वक इस पवित्र आख्यान का श्रवण करता है उसके करोड़ों जन्मों में अर्जित पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूत-शौनक संवादान्तगर्त विष्णु पञ्चक माहात्म्य वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

चौबीसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

विदुषांवर ! तत्त्वज्ञ ! कथयस्व महामते ! ।
इदानीं मम दानानां माहात्म्यं क्रमतो मुने ॥१॥

सूत उवाच

क्षितिदानं मुनिश्रेष्ठ दानानामुत्तमं मतम्। येन वै तत्कृतं दानं सर्वदानफलं मतम्॥२॥
क्षितिं ससस्यां यो दद्याद् ब्राह्मणाय द्विजोत्तम ! ।
विष्णुलोके सुखं भुङ्क्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३॥
पृथिव्यां जन्म चासाद्य सार्वभौमस्ततो नृप ! ।
महीं सर्वां चिरं भुक्त्वा व्रजेद्वै श्रीहरेर्गृहम् ॥४॥
गोचर्ममात्रां भूमिं यः प्रयच्छति द्विजातये। स गच्छति हरेर्गेहं सर्वपापविवर्जितः ॥५॥
शतं गावो वृषश्चैको यत्र तिष्ठन्त्ययन्त्रिताः ।
गोचर्ममात्रां तां भूमिं प्रवदन्ति महर्षयः ॥६॥
भूमिनेता भूमिदाता द्वौ चापि स्वर्गगामिनौ ।
ग्राह्या भूमिर्द्विजैः प्राज्ञैस्त्यक्त्वा दानशतान्यपि ॥७॥
अज्ञानी भूसुरो यस्तु त्यजेद्भूमिं विमोहितः ।
प्रतिजन्मन्यसौ विप्रो भवेच्चात्यन्तदुःखभाक् ॥८॥
अन्यतो यः समासाद्य दद्याद्भूमिं द्विजातये। तस्मै विप्र जगन्नाथो ददाति परमं पदम् ॥९॥
स्वदत्तां परदत्तां च मेदिनीं यो हरेद् द्विज ! ।
युक्तःकोटिकुलैर्याति नरकं चाति दारुणम् ॥१०॥

पृथिवी आदि अनेक प्रकार के दानों के माहात्म्य और उनके फल का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे विद्वत् श्रेष्ठ तत्त्वज्ञ सूतजी ! अब आप क्रमशः दानों का माहात्म्य बतलायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! सभी दानों में पृथिवी का दान उत्तम दान है । भूदान करने से सभी दानों के करने का फल प्राप्त होता है ॥२॥ हे द्विजोत्तम ! खेती से भरी पृथिवी का दान जो ब्राह्मण को देता है वह विष्णुलोक में तब तक सुखभोग करता है, जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं ॥३॥ उसके वाद पृथिवी पर जन्म प्राप्त करके वह सार्वभौम राजा होता है, वह दीर्घकाल तक पृथिवी का राज्य करके श्रीहरि के लोक में जाता है ॥४॥ जो मनुष्य गोचर्म के बराबर भूमि का दान ब्राह्मण को करता है, वह सभी पापों से रहित होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥५॥ जहाँ पर सौ गौ और एक वृष सुख पूर्वक रह सकते हैं, ऐसी भूमि को महर्षियों ने गोचर्म मात्र भूमि कहा है ॥६॥ भूमि को लेने वाले तथा भूमि को देने वाले दोनों स्वर्ग में जाते हैं । अतएव विप्रों को सैकड़ों दानों का त्याग करके भूमि का दान लेना चाहिए ॥७॥ जो अज्ञानी ब्राह्मण भूमि का दान त्याग देता है वह ब्राह्मण प्रत्येक जन्म में दुःखी होता है ॥८॥ जो मनुष्य दूसरे से भूमि को दान में पाकर उसका दान करता

हरेद्यो वै महीं विप्र ! देवब्राह्मणयोरपि। न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कोटिकल्पशतैर्मुने ॥११॥
भूमिं यो परदत्तां च रक्षति क्ष्मापतिर्द्विज। पुण्यं कोटिगुणं स्याद्वै तस्य दातृजनादपि ॥१२॥
सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा यत्पुण्यं प्राप्यते द्विज ! ।
तत्पुण्यं प्राप्नुयान्मर्त्यो धेनुं यच्छन्द्विजायते ॥१३॥
ददाति वृषभं यस्तु दरिद्राय कुटुम्बिने। सर्वपापविनिर्मुक्तश्शिवलोकं स गच्छति ॥१४॥
तिलप्रमाणं स्वर्णं यो ब्राह्मणाय प्रयच्छति। हरेर्निकेतनं याति युक्तःकोटिकुलैरपि ॥१५॥
यो दद्याद्रजतं विप्र साधवे भूसुराय वै। प्राप्नोति चन्द्रलोकं च पिबेत्तत्रामृतं सदा ॥१६॥
प्रवालं मौक्तिकं चैव हीरकं च मणिं तथा ।
यो ददाति द्विजश्रेष्ठ स्वर्गलोकं स गच्छति ॥१७॥
तुलापुरुषदानेन यत्पुण्यं लभते जनः। शालग्रामशिला दत्त्वा तस्मात्कोटिगुणं लभेत्॥१८॥
सप्तद्वीपां क्षितिं दत्त्वा सशैलवनकाननाम्। यत्पुण्यं लभते तद्वै शालग्रामशिलाप्रदः ॥१९॥
शालग्रामशिलां यो वै दद्याद्भूमिसुराय च। तेन विप्र प्रदत्तानि भुवनानि चतुर्दश ॥२०॥
तुलापुरुषदानं यःकरोति द्विजपुङ्गव। जनन्याश्चोदरे तस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥२१॥
सालङ्कारां द्विजश्रेष्ठ कन्यां यच्छति यो नरः ।
सगच्छेद्ब्रह्मसदनं पुनर्जन्म न विद्यते ॥२२॥
कन्याविक्रयिणो नास्ति नरकान्निष्कृतिः पुनः ।
कन्यादानं कृती नास्ति स्वर्गादागमनं पुनः ॥२३॥

है, उसको भगवान् विष्णु परमपद प्रदान करते हैं ॥९॥ अपने से दी गयी अथवा दूसरे द्वारा दान दी गयी भूमि का जो हरण करता है वह अपने करोड़ों पीढ़ी के पूर्वजों के साथ भयङ्कर नरक में चला जाता है ॥१०॥ हे विप्र ! जो देवता तथा ब्राह्मण की पृथिवी का हरण करता है उसका करोड़ों कल्पों में भी कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥११॥ हे द्विज ! जो दूसरे के द्वारा दी गयी भूमि की रक्षा करता है, उसको भूमि दान करने वाले की अपेक्षा करोड़ गुना पुण्य होता है ॥१२॥ हे द्विज ! सप्तद्वीपा पृथिवी का दान करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उस पुण्य की प्राप्ति ब्राह्मण को दुधारू गौ का दान देने से होती है ॥१३॥ जो दरिनद्र कुटुम्बी (परिवारदार) ब्राह्मण को बैल का दान देता है वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक में जाता है ॥१४॥ जो ब्राह्मण को तिलमात्र भी सुवर्ण दान देता है, वह अपने करोड़ों पूर्वजों के साथ श्रीहरि के धाम में जाता है ॥१५॥ हे विप्र ! जो सज्जन ब्राह्मण को चाँदी का दान देता है, वह चन्द्रलोक में जाकर वहाँ अमृत का पान करता है ॥१६॥ हे द्विजश्रेष्ठ! जो मूंगा, मोती, हीरा तथा मणि का दान करता है वह स्वर्गलोक में जाता है ॥१७॥ तुलापुरुष का दान करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, शालग्राम शिला का दान करने से उसके करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होता है । पर्वत तथा वन से युक्त सप्तद्वीपा पृथिवी का दान करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उस पुण्य की प्राप्ति शालग्राम शिला का दान करने से होती है ॥१८-१९॥ जो ब्राह्मण को शालग्राम शिला का दान करता है, हे विप्र ! वह चौदहो भुवनों का दान कर देता है ॥२०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो तुलापुरुष का दान करता है, वह पुनः माता के गर्भ में नहीं आता है ॥२१॥ जो अलङ्कारों से अलंकृत

उपानहौ वाऽऽतपत्रं यो ददाति द्विजातये। प्रेत्य चेन्द्रपुरं गत्वा वसेत्कल्पचतुष्टयम् ॥२४॥

वस्त्रं यच्छति यो दिव्यं साधवे वै द्विजातये।
स्वर्गे दिव्याम्बरधरश्चिरंतिष्ठेद्द्विजोत्तम ॥२५॥

धेनुं पुरातनीं यच्छेद्वस्त्रं च जरितं द्विज। नूत्नां रजोवतीं कन्यां सगच्छेन्निरयं तथा॥२६॥

कन्याविक्रयिणो ब्रह्मन्नपश्येल्लपनं बुधः। दृष्ट्वा चाज्ञानतो वापि कुर्यान्मार्तण्डदर्शनम्॥२७॥

फलदाता नरो गच्छेत्त्रिदिवं च द्विजोत्तम !।
भुङ्क्ते कल्प सहस्राणि फलं तत्रामृतोपमम् ॥२८॥
शाकं यच्छति यो मर्त्यश्शिवस्य भवनं द्विज।
याति कल्पद्वयं भुङ्क्ते दुर्ल्लभं पायसं सुरैः ॥२९॥

घृतदो दधिदश्चैव तक्रदो दुग्धदस्तथा। विष्णोर्निकेतनं गत्वा सुधापानं करोति सः ॥३०॥

गन्धदःपुष्पदश्चैव मर्त्यो याति सुरालयम्। तिष्ठेद्युगसहस्राणि गन्धपुष्पविभूषितः ॥३१॥

शय्यादानं दानसारं ब्राह्मणाय ददाति यः। स याति ब्रह्मसदनं पर्य्यङ्के शेष्यते चिरम् ॥३२॥

पीठदाता दीपदाता सर्वदुष्कृतवर्जितः। स्वर्गे सिंहासने तिष्ठेज्ज्वलद्दीपावलीवृतः ॥३३॥

ताम्बूलं यो नरो दद्याद् भूमिं भुङ्क्तेऽखिलां सुखम्।
स्वर्गे देवाङ्गना क्रोडे सुप्तस्ताम्बूलमत्ति वै ॥३४॥

विद्यादानं दानवरं करोति यो नरोत्तमः। प्रेत्य स सन्निधिं विष्णोस्तिष्ठेद्युगशतत्रयम् ॥३५॥

कन्या का दान करता है, वह ब्रह्मलोक में जाता है, उसका पुनः जन्म नहीं होता है ॥२२॥ जो कन्या को बेंचने का काम करता है, उसका नरक से कभी उद्धार नहीं होता है और जो कन्यादान करता है वह स्वर्ग से लौटता नहीं है ॥२३॥ जो ब्राह्मण को जूता तथा छाता दान देता है वह मृत्यु के पश्चात् इन्द्र लोक में जाकर चार कल्पों तक निवास करता है ॥२४॥ जो सज्जन ब्राह्मण को दिव्य वस्त्र प्रदान करता है, हे द्विजोत्तम ! वह स्वर्ग में दिव्य वस्त्र धारण किए हुए दीर्घ काल तक निवास करता है ॥२५॥ जो बूढ़ी गौ, पुराना वस्त्र तथा नवीन रजस्वला कन्या का दान करता है, वह नरक में जाता है ॥२६॥ कन्या वेचने वाले का मुख नहीं देखना चाहिए। यदि अज्ञानवशात् उसका मुख दिख जाय तो फिर सूर्य का दर्शन करना चाहिए ॥२७॥ हे द्विजोत्तम ! फल का दान करने वाला स्वर्ग लोक में जाता है। वह हजारों कल्प पर्यन्त अमृत के समान फलों का भोग करता है ॥२८॥ जो मनुष्य शाक का दान करता है, वह शिव लोक में जाकर दो कल्प तक देवदुर्लभ दुग्ध का पान करता है ॥२९॥ जो घी, या दधि, या तक्र, या दुग्ध का दान करता है, वह भगवान् विष्णु के लोक में जाकर अमृत का पान करता है ॥३०॥ चन्दन तथा पुष्प का दान करने वाला मनुष्य देवलोक में जाता है, वह वहाँ चन्दन तथा पुष्प से अलंकृत होकर हजार युगों तक निवास करता है ॥३१॥ दानों के सार भूत जो ब्राह्मण को शय्या का दान करता है वह ब्रह्मलोक में जाकर चिरकाल तक शय्या पर शयन करता है ॥३२॥ चौकी तथा दीपक का दान करने वाला सभी पापों से रहित होकर स्वर्ग में जाकर सिंहासन पर बैठता है और उसके चारों ओर दीप जलते रहते हैं ॥३३॥ ताम्बूल दान करने वाला सुख पूर्वक सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करता है। वह स्वर्ग में जाकर देवाङ्गना की गोद में सोकर ताम्बूल खाता रहता है ॥३४॥

प्राप्यज्ञानं ततस्तत्र दुर्ल्लभं वै द्विजर्षभ। दुर्ल्लभं मोक्षमाप्नोति श्रीहरेः कृपया द्विज ! ॥३६॥
अनाथं दुःखितं विप्रं पाठयेद्वै नरोत्तमः। श्रीहरेर्भवनं याति पुनर्जन्मविवर्जितः ॥३७॥
यो नरःपुस्तकं दद्याद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः। प्रतिवर्णं लभेत्पुण्यं कपिलाकोटिदानजम् ॥३८॥
मधुदो गुडदश्चैव मर्त्यो यातीक्षुसागरम्। लवणदो नरो याति वारुणं लोकमेव च ॥३९॥
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं द्विजोत्तम। तत्त्वज्ञैर्मुनिभिस्सर्वैःप्रवरं वै प्रकीर्तितम् ॥४०॥
अन्नं वारि द्विजश्रेष्ठ ! येन दत्तं महीतले। तेन दत्तानि दानानि सर्वाणि च द्विजर्षभ॥४१॥
अन्नदो यो नरो विप्र प्राणदश्च प्रकीर्तितः। तस्मात्समस्तदानानामन्नदो लभते फलम्॥४२॥

यथा चान्नं तथा वारि द्वे तुल्ये च प्रकीर्तिते ।
वारिणा च विना चान्नं सिद्धं न स्याद् द्विजोत्तम ! ॥४३॥
क्षुधातृषा द्विजव्याघ्र ! द्वे च तुल्ये प्रकीर्तिते ।
अतश्चान्नं च तोयं च श्रेष्ठं प्रोक्तं बुधैरपि ॥४४॥

अन्नदानं क्षितौ ब्रह्मन्ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः। सर्वपापविनिर्मुक्ता गच्छन्ति हरिमन्दिरम्॥४५॥

यावन्त्यन्नानि भो विप्रयच्छति क्षितिमण्डले ।
ब्रह्महत्याश्च तावन्त्यो नश्यन्त्येव तपोधन ॥४६॥
यच्छतां चान्नदानानि शरीराणि च पातकम् ।
गात्राणि गृह्णतां त्यक्त्वा सहसा यान्ति शौनक ! ॥४७॥
अतः पापीयसोऽन्नानि न गृह्णन्ति मनीषिणः ।
गृह्णन्ति मोहाद्ये मूढा भवन्ति पापभागिनः ॥४८॥

जो श्रेष्ठ पुरुष विद्यादान करता है वह मृत्यु के बाद तीन सौ युग पर्यन्त भगवान् विष्णु की सन्निधि में रहता है ॥३५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ पर दुर्लभ ज्ञान प्राप्त करके श्रीभगवान् की कृपा से दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है ॥३६॥ जो अनाथ और दुःखी ब्राह्मण को पढ़ाता है वह श्रीभगवान् के धाम में जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥३७॥ जो मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक पुस्तक का दान करता हैं वह उस पुस्तक के प्रत्येक अक्षर के बदले में करोड़ों कपिला गौ के दान का फल प्राप्त काता है॥३८॥ शहद तथा गुड़ का दान करने वाला मनुष्य इक्षुसागर में जाता है नमक का दान करने वाला वरुण लोक में जाता है ॥३९॥ हे द्विजोत्तम ! तत्त्वज्ञ श्रेष्ठ मुनियों ने अन्नदान को श्रेष्ठ दान बतलाया है ॥४०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! भूलोक में जो अन्न एवं जल का दान करता है उसने सभी प्रकार के दानों को कर लिया॥४१॥ हे विप्र ! अन्न का दान करने वाले को प्राण दान करने वाला कहा गया है, अतएव अन्न दान करने वाला सभी दानों के फल को प्राप्त कर लेता है ॥४२॥ अन्न तथा जल इन दोनों को एक समान कहा गया है अतएव हे द्विजोत्तम ! जल के बिना अन्न सिद्ध नहीं होता है ॥४६॥ भूख और प्यास दोनों देवता के समान बतलायी गयी है इसीलिए विद्वानों ने भी अन्न और जल दोनों को श्रेष्ठ कहा है ॥४४॥ हे ब्रह्मन् ! पृथिवी पर जो श्रेष्ठ पुरुष अन्न दान करते हैं वे सभी पापों से रहित होकर श्रीभगवान् के लोक में जाते हैं ॥४५॥ हे तपोधन ! मनुष्य पृथिवी पर जितना अन्न दान करता है वह उतनी ब्रह्महत्या को विनष्ट करता है ॥४६॥ अन्न दान देने वालों के शरीर को तथा अन्न दान लेने वालों के अङ्ग को छोड़कर पाप भाग जाता है ॥४७॥ इसीलिए मनीषी पुरुष पापियों के अन्न को नहीं लेते हैं । जो अज्ञानी जीव पापियों के अन्न को लेते हैं वे पाप के भागी होते हैं ॥४८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो व्यक्ति एक कुआँ

कुर्याद्भूमिष्ठमुदकं चैकं भो द्विजसत्तम !। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो व्रजेत्स हरिमन्दिरम् ॥४९॥
प्रयत्नेन द्विजश्रेष्ठ ! कर्तव्यो धनसञ्चयः । सञ्चितं न धनं ब्रह्मन्दानकर्मणि विक्षिपेत् ॥५०॥

रक्षन्ति ये च कार्पण्याद्धनं ते चातिदुःखिनः ।
अन्ते सर्वधनं त्यक्त्वा निःस्वा गच्छन्ति भो मुने ॥५१॥
मानवा ये सदा दानं दत्त्वा दत्वा दरिद्रति ।
दरिद्रास्ते न विज्ञेया नरलोके महेश्वराः ॥५२॥

परलोके द्विजव्याघ्र ! साधुसंयमवर्जिते । निर्दये बन्धुहीने च न दत्तं नोपतिष्ठते ॥५३॥

स्थिते धने नरो यो वै नाश्नाति न ददाति सः ।
दरिद्र इव विज्ञेयः प्रेत्य निश्वासमुत्सृजेत् ॥५४॥
तपसोऽपि वरं दानं प्रोक्तं च तत्त्वदर्शिभिः ।
अतो यत्नाद् द्विजश्रेष्ठ दानकर्म समाचरेत् ॥५५॥

दाता न दद्याद्वै समुत्सृज्य द्विजातये । सयाति निरयं घोरं सर्वजन्तुभयावहम् ॥५६॥

दानं दाता प्रतिग्राहि न स्मरेच्च न याचते ।
निरये चोभयोर्वासो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५७॥

ब्रह्महत्यादि पापानि यानि वै द्विजसत्तम । तानि दानेन हन्यन्ते तस्माद्दानं समाचरेत् ॥५८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे पृथिव्याद्यनेकविधदानमाहात्म्यकथनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

बनवाता है वह समस्त पापों से रहित होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥४९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रयत्न पूर्वक धन का संचय करना चाहिए और उस संचित धन को दान कर्म में लगाना चाहिए ॥५०॥ हे मुने ! जो कृपणता के कारण धन को विटोरते हैं वे अत्यन्त दुःखी है और अन्त में सारा धन त्याग कर वे धन रहित होकर चले जाते हैं ॥५१॥ जो लोग मनुष्य लोक में बार-बार दान देकर दरिद्र हो जाते हैं उनको दरिद्र नहीं जानना चाहिए वे नरलोक में महेश्वर हैं ॥५२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! सज्जनों की सङ्गति से रहित परलोक में उन निर्दय तथा बन्धुहीन जीव को वे वस्तुएँ नहीं प्राप्त होती है, जिन वस्तुओं को वह दान नहीं दिए रहता है ॥५३॥ धन के रहने पर भी जो मनुष्य न तो दान देता है औन न खाता है, उसको ही दरिद्र समझना चाहिए । वह मरकर केवल पछताता है ॥५४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तत्त्वज्ञ पुरुषों ने तपस्या से भी दान को श्रेष्ठ बतलाया है, अतएव प्रयत्न पूर्वक दान कर्म करना चाहिए ॥५५॥ जो दाता सङ्कल्प करके भी ब्राह्मण को दान नहीं देता है, वह सबों को भयभीत करने वाले घोर नरक में जाता है ॥५६॥ देने वाला दान को न तो याद करता है और दान लेने वाला उसको न तो माँगता है, ऐसे दाता एवं ग्राही दोनों तब तक नरक में निवास करते हैं जब तक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं॥५७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जितने भी ब्रह्महत्या आदि पाप हैं, वे सबके सब दानों के द्वारा विनष्ट कर दिए जाते हैं इसीलिए दान करना चाहिए ॥५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूतशौनक संवादान्तर्गत पृथिवी आदि अनेक दानों के माहात्म्य का वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

पचीसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

श्रीप्रदं विष्णुचरितं सर्वोपद्रवनाशनम् । सर्वपापक्षयकरं दुष्टग्रहनिवारणम् ॥१॥
विष्णुसान्निध्यदं चैव चतुर्वर्ग फलप्रदम् । यः शृणोति नरो भक्त्या चान्ते याति हरेगृहम्॥२॥
नामोच्चारणमाहात्म्यं श्रूयते महदद्भुतम् । यदुच्चारणमात्रेण नरो यायात्परंपदम्॥३॥
तद्वदस्वाधुना सूत ! विधानं नाम कीर्तने ॥४॥

सूत उवाच

शृणु शौनक ! वक्ष्यामि संवादं मोक्षसाधनम् ।
नारदःपृष्टवान्पूर्वं कुमारं तद्वदामि ते ॥५॥
कदा यमुनातीरे निविष्टं शान्तमानसम् । सनत्कुमारं पप्रच्छ नारदो रचिताञ्जलिः ॥
त्वा नानाविधान्धर्मान्धर्मव्यतिकरांस्तथा ॥६॥

श्रीनारद उवाच

योऽसौ भगवता प्रोक्तो धर्मव्यतिकरो नृणाम् ।
कथं तस्य विनाशःस्यादुच्यतां भगवत्प्रिय ! ॥७॥

श्रीसनत्कुमार उवाच

शृणु नारद ! गोविन्दप्रिय ! गोविन्दधर्मवित् ।
यत्पृष्टं लोकनिर्मुक्तिकारणं तमसःपरम् ॥८॥
सर्वाचारविवर्जिताः शठधियो व्रात्या जगद्वञ्चका,
दम्भाहङ्कृतिपानपैशुनपराःपापाश्च ये निष्ठुराः ॥
ये चान्ये धनदारपुत्रनिरताः सर्वेऽधमास्तेऽपि हि,
श्रीगोविन्दपदारविन्दशरणाः शुद्धा भवन्ति द्विज ! ॥९॥

भगवन्नाम का माहात्म्य वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— भगवान् विष्णु का चरित्र ऐश्वर्य प्रदान करने वाला, सभी उपद्रवों का नाश करने वाला, समस्त पापों का विनाश करने वाला तथा दुष्ट ग्रहों को दूर करने वाला है ॥१॥ वह भगवान् विष्णु के सान्निध्य को प्रदान करता है एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है । जो इसे भक्ति पूर्वक सुनता है, वह श्रीहरि के धाम में जाता है ॥२॥ भगवन्नामोच्चारण का अत्यन्त अद्भुत माहात्म्य सुना जाता है, उसका उच्चारण करने मात्र से मनुष्य परं पद को प्राप्त कर लेता है ॥३॥ अतएव हे सूतजी ! श्रीभगवान् के नामोच्चारण की विधि को आप बतलायें ॥४॥ **सूतजी ने कहा—** हे शौनक मैं मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत संवाद का वर्णन करता हूँ । पूर्वकाल में नारदजी ने सनत्कुमार महर्षि से जो पूछा था उसी को मैं बतला रहा हूँ ॥५॥ एक बार यमुना के तट में बैठे हुए शान्तमना सनत्कुमार महर्षि से अनेक प्रकार के धर्मो को तथा धर्मो के बाधकों को सुनकर नारदजी ने हाथ जोड़कर पूछा ॥६॥ **नारदजी ने कहा—** आपने जो मनुष्यों के धर्मो का बाधक बतलाया है उसका विनाश कैसे होता है हे भगवत्प्रिय ! उसे आप बतलाएँ ॥७॥ **श्रीसनत् कुमार महर्षि ने कहा—**

तमपि देवकरं करुणाकरं स्थविरजङ्गममुक्तिकरं परम् ।
अतिचरन्त्यपराधपरा जना य इह तान्हरिनाम पुनाति हि ॥१०॥
सर्वापराधकृदपि मुच्यते हरिसंश्रयः । हरेरप्यपराधान्यः कुर्याद् द्विपदपासंनः ॥११॥
नामाश्रयःकदाचित्स्यात्तरत्येव स नामतः । नाम्नो हि सर्वसुहृदो ह्यपराधात्पतत्यधः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

के तेऽपराधा विप्रेन्द ! नाम्नो भगवतः कृताः ।
विनिघ्नन्ति नृणां कृत्यं प्राकृतं ह्यानयन्ति च ॥१३॥

श्रीसनत्कुमार उवाच

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं बुधजना,
वदन्त्येनां कर्तुं न खलु मनुजः कोऽपि यतते ।
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं,
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः ॥१४॥
गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं तथाऽर्थवादो हरिनाम्नि कल्प्यते ।
नामापराधस्य हि पापबुद्धेर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ॥१५॥
धर्मव्रतत्यागहुतादि सर्वशुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः ।
अश्रद्दधानो विमुखोऽप्यश्रृण्वन्यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥१६॥

हे गोविन्द्र प्रिय ! तथा गोविन्द धर्म के वेत्ता नारदजी आप सुनें, आपने जो लोगों की मुक्ति के साधन जो प्रकृति से परे हैं, उसको पूछा है, उसे भी आप सुनें ॥८॥ जो सभी सदाचारों से रहित, शठ, व्रात्य, संसार को धोखा देने वाले, दम्भ तथा अहङ्कार से युक्त, मद्यप, चुगुलखोर तथा निष्ठुर पापी जीव है, जो अपने धन, पत्नी, पुत्र में ही मग्न हैं, तथा सभी जो अधम कोटि के जीव हैं, वे सब-के-सब भगवान् श्रीगोविन्द के चरणों की शरणागति करके शुद्ध हो जाते हैं ॥९॥ ऐसे पापी जीवों को करुणा करके उन्हें देवता बना देने वाला जो इस संसार में निरन्तर अत्यन्त अपराध ही करते रहते है, ऐसे जीवों पर भी करुणा करने वाला तथा स्थावर एवं जङ्गम जीवों को भी मुक्ति प्रदान करने वाला है । श्रीहरि का नाम वह उन्हें पवित्र बना देता है ॥१०॥ सभी प्रकार के अपराधों को करने वाला भी श्रीहरि के शरण में आकर मुक्त हो जाता है तथा श्रीहरि का भी जो अपराध करता है, इस प्रकार का नराधम भी जब भगवान् नाम का आश्रय ले लेता है तो उसका भी उद्धार हो जाता है । जो सबों के सुहृद नाम का भी अपराध करता है, उसका पतन हो जाता है ॥११-१२॥ **श्रीनारदजी ने कहा—** हे विप्रश्रेष्ठ! नाम भगवान् के वे अपराध कौन हैं ? जो मनुष्यों के समस्त कृत्यों को विनष्ट करके उसे प्रकृत बना देते हैं ?॥१३॥ **श्रीसनत्कुमार महर्षि ने कहा—** विज्ञ पुरुष सज्जन पुरुषों की निन्दा को नाम का सर्वश्रेष्ठ अपराध बतलाते हैं, अतएव उस अपराध को करने के लिए कोई भी मनुष्य प्रयास नहीं करता है । शिवजी तथा भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण गुण, नाम आदि को जो भिन्न-भिन्न जानता है, वह श्रीहरि के नामों का अपराधी है ॥१४॥ गुरु का अपमान, वेद शास्त्र की निन्दा तथा श्रीहरि के नामों के विषय में अर्थवाद की कल्पना ये सब पापबुद्धि वाले पुरुष के द्वारा किए जाने वाले नामापराध हैं ऐसे पापी

श्रुत्वाऽपि नाम माहात्म्यं यः प्रीतिरहितोऽधमः ।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥१७॥
एवं नारद शङ्करेण कृपया मह्यं मुनीनां परं ।
प्रोक्तं नाम सुखावहं भगवतो वर्ज्यं सदा यत्नतः ॥
ये ज्ञात्वाऽपि न वर्जयन्ति सहसा नाम्नोऽपराधान्दश ।
क्रुद्धा मातरमप्यभोजनपराः खिद्यन्ति ते बालवत् ॥१८॥
अपराधविमुक्तो हि नाम्नि जप्ते सदा चर! ।
नाम्नैव तव देवर्षे ! सर्वं सेत्स्यति नान्यतः ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

सनत्कुमार ! प्रियसाहसानां विवेकवैरागयविवर्जितानाम् ।
देहप्रियार्थात्मपरायणानां मुक्तापराधाः प्रभवन्ति नः कथम् ॥२०॥

श्रीसनत्कुमार उवाच

जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथञ्चन । सदा सङ्कीर्तयन्नाम तदेकशरणो भवेत्॥२१॥
नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्। अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि तत्॥२२॥
नामैकं यस्य चिह्नं स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा ।
शुद्धं वाऽशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम् ॥२३॥
तच्चेद्देहद्रविणवनितालोभपाखण्डमध्ये । निक्षिप्तं स्यान्नफलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र !॥२४॥
इदं रहस्यं परमं पुरा नारद ! शङ्करात् । श्रुतं सर्वाशुभहरमपराधिनिवारकम् ॥२५॥

की यम के दण्डों द्वारा भी शुद्धि नहीं होती है ॥१५॥ यज्ञ, व्रत, होम, सभी कल्याणकारी कृत्यों तथा उसके सदृश कर्मों का त्याग तथा उसके विषय में प्रमाद, उन सबों के उपदेश को सुनकर भी श्रद्धा न करना और उन सबों से विमुख रहना भी कल्याणकारी नाम का अपराध है ॥१६॥ जो अधम प्राणी नाम के माहात्म्य को सुनकर भी उससे प्रेम नहीं करता है, अहङ्कार तथा ममकार परायण वह नाम का अपराधी है ॥१७॥ हे नारद ! इस प्रकार से मुनियों में श्रेष्ठ मुझको कृपा करके शङ्करजी ने सुखप्रद भगवान् के नामापराध को बतलाया है अतएव उससे प्रयास पूर्वक बचना चाहिए । जो लोग जानकर के भी भगवान् के नाम के दश अपराधों से नहीं बचते हैं, उन पर नाम उसी तरह से क्रोध करते हैं जिस तरह से क्रोध करके माता भी अपने बच्चे को भोजन नहीं देती है ॥१८॥ नाम का जप करने से मनुष्य अपराध से छूट जाता है तुम भी नाम का जप करो । हे देवर्षे ! तुम्हें नाम से ही सब कुछ प्राप्त हो जायेगा॥१९॥ **श्रीनारदजी ने कहा—** हे सनत्कुमार ! साहस प्रिय, विवेक एवं वैराग्य से रहित अदेह का ही प्रिय करने वाले तथा शरीर के पोषण में ही लगे रहने वाले हमलोगों को अपराध से मुक्ति कैसे मिलेगी ?॥२०॥ **श्रीसनत्कुमार महर्षि ने कहा—** नामापराध करने वाले के पाप को नाम ही दूर करते हैं । निरन्तर नाम जप करने से वे समस्त पापों को विनष्ट कर देते हैं ॥२२॥ जिन श्रीहरि का नाम ही केवल चिह्न है, वह स्मरण करने अथवा सुनने मात्र से चाहे उसका शुद्ध उच्चारण हो अथवा अशुद्ध; व्यवधान रहित उच्चारण करने से उच्चारण कर्ता का नाम उद्धार कर ही देता है ॥२३॥ यदि उस नाम का शरीर,

विदुर्विष्ण्वभिधानं ये ह्यपराधपरानराः । तेषामपि भवेन्मुक्तिःपठनादेव नारद !॥२६॥
नाम्नो माहात्म्यमखिलं पुराणे परिगीयते। ततः पुराणमखिलं श्रोतुमर्हसि मानद !॥२७॥
पुराणश्रवणे श्रद्धा यस्य स्याद् भ्रातरन्वहम् ।
तस्य साक्षात्प्रसन्नः स्याच्छिवो विष्णुश्च सानुगः ॥२८॥
यत्स्नात्वा पुष्करेतीर्थे प्रयागे सिन्धुसङ्गमे। तत्फलं द्विगुणं तस्य श्रद्धया वैश्रृणोति यः ॥२९॥
ये पठन्ति पुराणानि श्रृण्वन्ति च समाहिताः ।
प्रत्यक्षरं लभन्त्येते कपिलादानजंफलम् ॥३०॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्। विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्॥३१॥
ये श्रृण्वन्ति पुराणानि कोटिजन्मार्जितं खलु ।
पापजालं तु ते हित्वा गच्छन्ति हरिमन्दिरम् ॥३२॥
पुराणवाचकं विप्रं पूययेद्भक्तिभावतः। गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च गन्धपुष्पादिभिर्मुने ! ॥३३॥
कांस्यैर्विनिर्मितं पात्रं जलपात्रं मुदान्वितः । कर्णकुण्डलकंचैव मुद्रिकां स्वर्णनिर्मिताम्॥३४॥
आसनं तु तथा दद्यात्पुष्पं माल्यं तपोधन। वित्तशाठ्यं न कुर्वीत दानं हीनफलं यतः ॥३५॥
पुराणं वाचयेद्विप्र सर्वकामार्थसिद्धये ! । सुवर्णं रजतं वस्त्रं पुष्पमाल्यं तु चन्दनम्॥३६॥

धन सम्पत्ति, पत्नी आदि के लोभ से या पाखण्ड पूर्वक जप किया जाता है तो फिर वह इस संसार में शीघ्र फलजनक नहीं होता है ॥२४॥ समस्त अकल्याणों के विनाशक संवाद को मैंने प्राचीन काल में शङ्करजी से सुना था, यह रहस्यात्मक तथा अपराधों को विनष्ट करने वाला है ॥२५॥ जो अपराधी श्रीभगवान् विष्णु के नामों को लेते हैं उन सबों की भी मुक्ति नामों के पढ़ने के कारण होती है ॥२६॥ नाम का सारा माहात्म्य इस पुराण में बतलाया गया है अतएव हे मानद ! तुम सम्पूर्ण पुराण का श्रवण करो ॥२७॥ हे भ्रातः ! जो प्रतिदिन श्रद्धा पूर्वक पुराण को पढ़ता है उस पर साक्षात् शिवजी तथा भगवान् विष्णु अपने अनुचरों के साथ प्रसन्न रहते हैं ॥२८॥ पुष्कर तीर्थ में या प्रयाग में या सिन्धु सङ्गम स्थल में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसके दो गुना फल इस पुराण को श्रद्धा पूर्वक सुनने से फल प्राप्त होता है ॥२९॥ जो लोग शान्त मन से पुराणों को पढते अथवा सुनते हैं। वे उसके प्रत्येक अक्षर में कपिला गौ के दान का फल प्राप्त करते हैं ॥३०॥ उस पुराण के सुनने से पुत्रहीन पुत्र को, धनार्थी धन को, विद्यार्थी विद्या को और मोक्ष चाहने वाला मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥३१॥ पुराणों का श्रवण करने वाले करोड़ों जन्मों में अर्जित पाप समूह को विनष्ट करके श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥३२॥ हे मुने ! पुराण वाचक ब्राह्मण की पूजा गोदान, भूदान, वस्त्रदान तथा चन्दन पुष्प आदि से करना चाहिए ॥३३॥ उनको कांसें का जलपात्र, कानों का कुण्डल, सुवर्ण की अंङ्गूठी दान देनी चाहिए ॥३४॥ हे तपोधन ! उनको फूलों की माला और आसन दे । धन की कृपणता न करे ऐसा करने से फल में कमी आती है ॥३५॥ ब्राह्मण को सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए पुराण का पाठ करे जो मनुष्य वाचक को भक्तिपूर्वक सुवर्ण, रजत चन्दन तथा पुस्तक प्रदान करता है वह

दद्याद्यो पुस्तकं भक्त्या स गच्छेद्धरिमन्दिरम् ।
कुर्वन्ति विधिनाऽनेन सम्पूर्णं पुस्तकं च ये ॥३७॥
तेषां नामानि लिम्पेत चित्रगुप्तोऽर्चनाद् द्विज ॥३८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे भगवन्नाममाहात्म्यकथनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥

छबीसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते प्राज्ञ ! कथयस्व समूलकम् ।
प्रतिज्ञापालने पुण्यं खण्डने किं च किल्विषम् ॥१॥
अनृते शपथे किं वा सत्ये किञ्चिद्भवेन्मुने ।
दक्षिणं किं करं दत्वा कृपां कृत्वा कृपार्णव ! ॥२॥

सूत उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल ! कथयामि समूलतः। वैष्णवानां त्वमग्र्योऽसि सर्वलोकहितेरतः ॥३॥
धेनूनां तु शतं दत्त्वा यत्फलं लभते नरः। तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं प्रतिज्ञा पालने द्विज ॥४॥
प्रतिज्ञाखण्डनान्मूढो निरयं याति दारुणम्। शतमन्वन्तरं यावत्पच्यते नात्र संशयः ॥५॥
ततोऽत्र जन्म चासाद्य निर्धनस्य निकेतने ॥६॥

श्रीभगवान् के धाम में जाता है । जो इस विधि से सम्पूर्ण पुस्तक का पाठ करते हैं, चित्रगुप्त उनके नाम की अर्चना करते हैं ॥३६-३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूत शौनक संवादान्तर्गत भगवन्नाम माहात्म्य वर्णन नामक पचीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

प्रतिज्ञा पालन का फल तथा प्रतिज्ञा तोड़ने के दोष का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे महाप्राज्ञ ! आप मुझे मूल सहित बतलायें कि प्रतिज्ञा का निर्वाह करने का फल क्या है ? और प्रतिज्ञा तोड़ने का दोष क्या है ?॥१॥ झूठी प्रतिज्ञा करने से क्या होता है ? तथा सत्य प्रतिज्ञा करने से क्या होता है ? तथा दाहिना हाथ देकर कौन सा फल होता है ? उसे कृपा पूर्वक बतलायें ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! आप सुनें, मैं सारी बातें बतलाता हूँ आप वैष्णवों में अग्रगण्य हैं तथा सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करते हैं ॥३॥ सौ दुधारू गायों का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसके करोड़ गुना फल प्रतिज्ञा का निर्वाह करने से होता है ॥४॥ अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने वाला अज्ञानी नरक में जाता है ॥५॥ उसके कारण संसार में निर्धन के

अन्नवस्त्रैर्विहीनःस्यात्क्लेशी चापि स्वकर्मणा ॥७॥

सत्येन शपथं कुर्याद्दिवाग्निगुरुसन्निधौ। तावद्दहति वै गात्रं विष्णोर्वंशो न लुप्यते॥८॥

मिथ्यायां शपथे विप्र किमहं वच्मि साम्प्रतम्।
शतमन्वन्तरं विप्र निरयं मिथ्यया किमु ॥९॥

निर्माल्यं श्रीहरेःस्पृष्ट्वा सत्येन मुनिपुङ्गव। गृहीत्वा पुरुषान्सप्त पच्यते निरये चिरम्॥१०॥

कदाचिज्जन्म सम्प्राप्य कुष्ठी च प्रति जन्मनि।
सत्येनैवं भवेद्विप्र अनृते वै किमुच्यते ॥११॥
यो मर्त्यो दक्षिणं दत्त्वा करं तत्प्रतिपालयेत्।
तस्य प्राप्तो भवेत्कृष्णःसत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥१२॥
करं दत्त्वा तु यो मर्त्यो वचनस्य च पालनम्।
तावन्न कुर्यात्पितरः प्राप्नुवन्ति च यातनाम् ॥१३॥
स्वयं तु मुनिशार्दूल ! निरयं याति दारुणम्।
उद्धारं कोटिपुरुषैर्मृतो याति न संशय; ॥१४॥

शौनक उवाच

कृष्णप्राप्तिः पुरा कस्य करस्य प्रतिपालनात्।
दक्षिणस्य मुने ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि सादरात् ॥१५॥

सूत उवाच

पुरा किञ्चित्पुरे शूद्रो नाम्नाऽऽसीद्वीरविक्रमः।
बह्वाशी पृथुलाङ्गश्च बहुवक्ताऽतिसुन्दरः ॥१६॥

धनवान्पुत्रवान्सभ्यो विद्वान्सर्वजनप्रियः। विप्राणामतिथीनां च पूजकःसर्वदैव तु ॥१७॥

धर जन्म प्राप्त करके वह अपने कर्म के फलस्वरूप अन्न और वस्त्र से रहित होकर क्लेश प्राप्त करता है ॥६॥ हे विप्र ! मिथ्या शपथ के विषय में मैं क्या कहूँ ? मिथ्या शपथ करने वाले को सौ मन्वन्तरों तक नरक में रहना पड़ता है ॥८॥ श्रीहरि के निर्माल्य को धारण करके किसी वस्तु को सत्य शपथ करने पर मनुष्य को दीर्घ काल तक नरक में रहना पड़ता है ॥९॥ जब वह जन्म लेता है तो कोढ़ी प्रत्येक जन्म नें होता है। सत्य शपथ करने पर तो ऐसी स्थिति होती है असत्य शपथ के विषय में क्या कहना है ? अतएव श्रीहरि के निर्माल्य को धारण करके शपथ कभी न करे ॥१०॥ जो मनुष्य दाहिना हाथ प्रदान करके उसका पालन करता है, उसको श्रीहरि की प्राप्ति होती है, यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥११॥ जो दाहिना हाथ प्रदान करके उसका पालन नहीं करता है, उसके पितृगणों को यमयातना सहनी पड़ती है ॥१२॥ स्वयं तो वह भयङ्कर नरक में जाता है, और उसकी सौ पीढ़ी के मरने तक उसका उद्धार नहीं होता है ॥१३॥ **शौनक महर्षि ने कहा—** आप यह बतलायें कि हाथ देकर उसका पालन करने वाले किस व्यक्ति को श्रीभगवान् की प्राप्ति हुयी ? इसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥१४॥ **सूतजी ने कहा—** प्राचीनकाल में वीरविक्रम नामक एक शूद्र था, वह बहुत खाने वाला, मोटे अङ्गों वाला तथा बहुत बोलता था और सुन्दर था ॥१५॥ वह धनवान् पुत्रवान, विद्वान सभी लोगों को प्रिय तथा सदैव,

पितृभक्तो द्विजश्रेष्ठ ! प्रतिज्ञापालकः सदा ।
वाचां गुरुजनानां च पालको हरिसेवकः ॥१८॥
एकदा सुन्दरो गेहं श्वपचस्तस्य छद्मना । प्राप्तो धृत्वा ब्राह्मणस्य रूपं वै तरुणः सुधीः॥१९॥

ब्राह्मण उवाच

शृणु मे वचनं धीर ! मम जाया मृता शुभा ।
किं करोमि क्व गच्छामि कथयाद्यानुकम्पया ॥२०॥
विवाहं योजनःकुर्याद्ब्राह्मणस्य विशेषतः । किमुदानैःकिं च तीर्थैःकिं यज्ञैर्व्रतकोटिभिः ॥२१॥
इति श्रुत्वा त्वसौ विप्रं चोक्तवान्वीरविक्रमः ।
शृणु मे वचनं ब्रह्मन्बालाऽस्ति मम कन्यका ॥२२॥
यदीच्छा ते भवेद्विप्र ! दास्यामि विधिपूर्वकम् ।
नय मे दक्षिणं हस्तं दास्यामि चान्यथा न हि ॥२३॥
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा जग्राह दक्षिणं करम्। श्वपचो हर्षयुक्तो वै प्रोवाच वचनं त्विति॥२४॥

ब्राह्मण उवाच

कृत्वा शुभक्षणं मह्यं देहि कन्यां शुभान्विताम् ।
विलम्बे बहुविघ्नं स्यादिति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥२५॥

वीरविक्रम उवाच

तुभ्यं श्वःकन्यकां ब्रह्मन्दास्यामि नास्ति चान्यथा ।
दक्षिणं च करं दत्त्वा न कुर्यात्पुरुषाधमः ॥२६॥

सूत उवाच

ब्राह्मणं कृष्णशर्माणं चाहूयाकथयन्मुने ! । पुरोहितमिदं सर्वं प्रोवाच संविदं द्विज ! ॥२७॥

ब्राह्मणों तथा अतिथियों की पूजा करने वाला था ॥१६॥ हे विप्र ! वह पितृभक्त, अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने वाला, श्रीहरि का सेवक तथा वाणी और गुरुजनों का पालन करने वाला था ॥१७॥ एक बार उसके घर कोई चाण्डाल ब्राह्मण का रूप बनाकर आया, वह युवक बुद्धिमान था ॥१८॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे धीर ! मेरी बात आप सुनें, मेरी पत्नी मर गयी है । अब आप कृपा करके बतलाएँ कि मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?॥१९॥ विशेष रूप से जो ब्राह्मण का विवाह करता है उसको करोड़ों, दानों, तीर्थों और व्रतों के करने से कोई लाभ नहीं है ॥२०॥ उस ब्राह्मण की बात को सुनकर वीरविक्रम ने कहा— मेरी कन्या बालिका है ॥२१॥ हे ब्रह्मन ! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं विधि पूर्वक उसका दान करूँगा । आप मेरे दाहिने हाथ को धारण करें तब ही मैं ऐसा करूँगा, अन्यथा नहीं ॥२२॥ उसकी वाणी को सुनकर श्वपच ने प्रसन्नता पूर्वक उसके दाहिने हाथ को पकड़ लिया और कहा ॥२३॥ **ब्राह्मण ने कहा—** आप शुभ क्षण आने पर मुझे अपनी शुभ कन्या को प्रदान करें । विलम्ब होने पर अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं, यह शास्त्रों में निश्चित है ॥२४॥ **वीरविक्रम ने कहा—** हे ब्रह्मन ! मैं आपको अपनी कन्या कल प्रदान करूँगा इसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा । दाहिना हाथ पकड़ाकर उसका पालन नहीं करने वाला अधम पुरुष होता है ॥२५॥ **सूतजी ने कहा—** हे द्विज ! उसने अपने पुरोहित कृष्णशर्मा

कथं विप्राय ते कन्यां शूद्राय दातुमिच्छसि ।
अज्ञातायाकुलीनाय न ददस्व विशेषतः ॥२८॥
ऊचुस्तज्ज्ञातयः सर्वे जनकाद्यास्तपोधन । अस्माकं वचनं तात शृणुष्व वीरविक्रम !॥२९॥
न ज्ञायते कुलं यस्य देशगोत्रधनं तथा । शीलं वयस्तस्य कन्या स्वजनैर्न च दीयते॥३०॥
स उवाच द्विजश्रेष्ठ दत्तं मे दक्षिणं करम् ।
कदाचिदन्यथा कर्तुं न शक्नोमि च सर्वथा ॥३१॥
इत्युक्त्वा तान्स विप्राय कन्यां दातुं प्रचक्रमे ।
दृष्ट्वेति ज्ञातयः सर्वे विस्मयमद्भुतं ययुः ॥३२॥
सत्यं तद्वचनं श्रुत्वा शङ्खचक्रगदाधरः । आविर्बभूव सहसा चारुह्य गरुडं मुने॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

धन्यं ते च कुलं धर्मो धन्यस्ते जननी पिता ।
धन्यं ते वचनं सत्यं धन्यं ते दक्षिणं करम् ॥३४॥
धन्यं कर्म च ते जन्म त्रैलोक्ये नैव विद्यते ।
एवं ते कर्मणा साधो चोद्धारं कुरुषे कुलम् ॥३५॥

सूत उवाच

एवं ब्रूवति श्रीकृष्णे विमानं स्वर्णनिर्मितम् ।
आगतं हि गणैर्युक्तं सर्वत्र गरुडध्वजम् ॥३६॥
सर्वं तस्य कुलं ब्रह्मन्स श्वपाकपुराहितम् । रथे चारोपयामास शङ्खपद्मधरः स्वयम् ॥३७॥

को बुलाकर इन सारी बातों को बतलायी ॥२६॥ ब्राह्मण ने कहा कि तुम ब्राह्मण बनने वाले शूद्र को कैसे कन्या प्रदान कर रहे हो ? अज्ञात और अकुलीन को कन्या मत दो ॥२७॥ उसके पिता आदि ने तथा उसके बान्धवों ने कहा कि वीरविक्रम सुनो ॥२८॥ जिसका कुल, देश तथा गोत्र शील तथा अवस्था अज्ञात हो, उसको कन्या नहीं देनी चाहिए ॥२९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसने कहा— मैंने उसे अपना दाहिना हाथ पकड़ाया है, अब मैं उसको त्याग नहीं सकता हूँ ॥३०॥ इस तरह से उन सबों को कहकर वह अपनी कन्या देने के लिए प्रारम्भ किया । उसको इस अद्भुत कर्म को देखकर उसके बान्धव विस्मित हो गये ॥३१॥ उसकी सत्यवादिता को सुनकर हे मुने ! वहाँ पर शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले श्रीभगवान् गरुड़ पर सवार होकर आविर्भूत हो गये ॥३२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** तुम्हारे वंश का धर्म धन्य है तुम्हारे माता-पिता धन्य हैं, तुम्हारी सत्य वाणी धन्य है और तुम्हारा दाहिना हाथ धन्य है ॥३३॥ तुम्हारे कर्म और जन्म के समान त्रैलोक्य में किसी का भी कर्म और जन्म धन्य नहीं है। हे साधु पुरुष ! इस तरह के कर्म से तुमने अपने वंश का उद्धार कर दिया है ॥३४॥ **सूतजी ने कहा—** श्रीभगवान् के ऐसा कहते ही वहाँ पर स्वर्ण निर्मित विमान आ गया, उस पर भगवान् विष्णु के गण सर्वत्र विद्यमान थे ॥३५॥ हे ब्रह्मन् ! उसके सम्पूर्ण वंश उस चाण्डाल और पुरोहित के साथ सबों को भगवान् ने उस विमान पर बैठा लिया ॥३६॥ उन सबों को लेकर भगवान् श्रीहरि वैकुण्ठ चले गये। वहाँ पर भोगों को भोगते हुए वे दीर्घकाल तक रहे ॥३७॥ जो अपनी वाणी का उल्लंघन करता है

गृहीत्वा तान्हरि:सर्वान्गतो वैकुण्ठमन्दिरम् ।
तत्र तस्थुश्चिरं ते च कृत्वा भोगं सुदुर्ल्लभम् ।।३८।।
वचनं लङ्घयेद्यस्तु यस्तु वा दक्षिणंकरम् । सकुलो निरयं याति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।३९।।
तस्यान्नं तु जलं ब्रह्मन्नग्राह्यं पितृदैवतैः। त्यक्त्वा धर्मो गृहं तस्य भीत्या याति द्विजोत्तम।।४०।।
दत्त्वाऽऽशां यो जनःकुर्यान्नैराश्यं चैव मूढधीः ।
स स्वकान्कोटिपुरुषान्गृहीत्वा नरकं व्रजेत् ।।४१।।
वचनं लङ्घयेद्यस्तु धर्मस्तस्य विलुप्यते। नृपाग्नितस्करैर्विप्र सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ।।४२।।
स्वर्गोत्तरमिमं सम्यक् च्छ्रुत्वा स्वर्गोत्तरं व्रजेत् ।
जीवन्मुक्तस्त्विहामुत्र कृष्णाख्यं धाम चोत्तमम् ।।४३।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे प्रतिज्ञापालनस्य फलकथनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।।२६।।

इति ब्रह्मखण्डं सम्पूर्णम् ।

अथवा अपने दाहिने हाथ का पालन नहीं करता है वह अपनु पूरे वंश के साथ नरक में जाता है यह मैं सत्य कहता हूँ ।।३८।। हे द्विजोत्तम ! उसके अन्न और जल को देवता तथा पितृगण नहीं ग्रहण करते है, धर्म भयभीत होकर उसके घर से भाग जाता है ।।३९।। जो मूर्ख मनुष्य किसी को आशा देकर उसको निराश बना देता है, वह अपने करोड़ों पूर्वजों के साथ नरक में चला जाता है ।।४०।। जो अपनी वाणी का उल्लंघन कर देता है, उसके धर्म का लोप हो जाता है यह मैं सत्य कहता हूँ । जो इस मुक्तिप्रद अध्याय का अच्छी तरह से श्रवण करता है वह इस लोक में जीवनमुक्त हो जाता है और परलोक में भगवान् के उत्तम धाम में जाता है ।।४१-४३।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के चतुर्थ ब्रह्मखण्ड के सूत शौनक संवादान्तर्गत प्रतिज्ञा पालन के फल का वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

इसतरह ब्रह्मखण्ड का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।